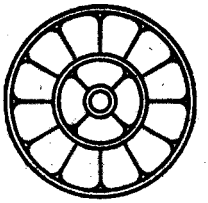


प्रश्न और उत्तर

(१९५३)

प्रश्न और उत्तर

(१९५३)



श्रीमातृवाणी

प्रश्न और उत्तर

(१९५३)

श्रीअरविंद सोसायटी
पांडिचेरी

प्रथम संस्करण १९७७
मूल फ्रेंच भाषामें 'आंत्रतियें : १९५३' के नामसे १९७५ में प्रकाशित
स्वत्वाधिकार श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट १९७५
हिन्दी अनुवाद © श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्ट १९७७
सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य ३०.००

खंड ५

श्रीअरविंद आश्रम ट्रस्टकी ओरसे
श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी द्वारा प्रकाशित
श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी द्वारा भारतमें मुद्रित
वितरक :
शब्द : श्रीअरविंद बुक्स डिस्ट्रिब्यूशन एजेंसी, पांडिचेरी-६०५००२

प्रकाशकका वक्तव्य

जून १९५१ और मार्च १९५३ के बीच कोई "प्रश्न और उत्तर" नहीं हुआ; परंतु माताजी उन दिनों श्रीअरविंदके कुछ ग्रंथोंका फ्रेंच अनुवाद करती थीं और उन बैठकोंको "अनुवादकी क्लास" कहा जाता था और प्रमुख रूपसे "द आइडियल ऑफ ह्यूमन यूनिटी" (मानव एकताका आदर्श) "द ह्यूमन साइकल" (मानव चक्र), "द लाइफ डिवाइन" (दिव्य जीवन) के अंतिम छः अध्याय तथा "द सिंथसिस ऑफ योग" (योग समन्वय)का कुछ अंश आदिका अनुवाद किया गया। इस अवधिमें माताजीने बच्चोंसे बातचीत करना जारी रखा लेकिन उसको व्यवस्थित रूपसे अभिलिखित नहीं किया गया।

माताजी आश्रमके खेलके मैदानमें रोज शामको उपस्थित रहती थीं जबकि शारीरिक-शिक्षण-विभागके दलपतियोंको प्रशिक्षण दिया जाता था। जब वह उनके व्यायामोंका निरीक्षण करती थीं तब कुछ बच्चे आकर उनके पास बैठ जाते थे। ये बच्चे एक नयी पीढ़ीके थे और उन बच्चोंसे बहुत छोटे थे जो सन् १९५०-५१ के पहलेके वार्त्तालापोंमें उपस्थित रहते थे। इन बच्चोंने माताजीसे प्रश्न करना शुरू कर दिया। जब इनकी संख्या बढ़ गयी तो माताजीने हर बुधरवाको इनके लिये एक कक्षा लेनी शुरू कर दी। पीछे चलकर उस कक्षामें कुछ अध्यापक और शिष्य भी आने लगे और जब कक्षा-गृहमें बहुत भीड़ हो गयी तो फिर बैठकें खुले मैदानमें होने लगीं। इस प्रकार "बुधवारकी कक्षाएं" मार्च १९५३ में शुरू हुईं और नवंबर १९५८ तक चलती रहीं।

१९५३ के आठ वार्त्तालापोंको कुछ शिष्योंने लिख लिया था और बाकीको 'टेप-रेकार्ड' कर लिया गया था।

१९५३ के वार्त्तालापोंके समय माताजी प्रायः अपनी किसी पुस्तकसे कुछ अंश पढ़ती थीं और फिर उसकी व्याख्या करती थीं अथवा उस विषय पर पूछे गये प्रश्नोंका उत्तर देती थीं। इस खंडमें दिये गये अधिकांश उद्धरण उनके १९२९ के वार्त्तालापोंसे लिये गये हैं; पहले इनको "कनवर्सेशन विद द मदर", "वर्डस ऑफ द मदर" और अंतमें "कनवर्सेशन्स" शीर्षक दिया गया था, पर यहां इन्हें "प्रश्न और उत्तर १९२९" के नामसे सूचित किया जा रहा है, क्योंकि "श्रीमातृवाणी"के लिये इन्हें यही नाम दिया गया है।

आर्ष वाणीका अनुवाद करना एक असंभव कार्य है। मूल भाषा न जाननेवालोंके लिये "श्रीमातृवाणी"का अनुवाद 'श्रीअरविंद अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्र'का हिंदी विभाग कर रहा है।

श्रीमाताजी

जन्म

२१ फरवरी, १८७८

भारतमें आगमन

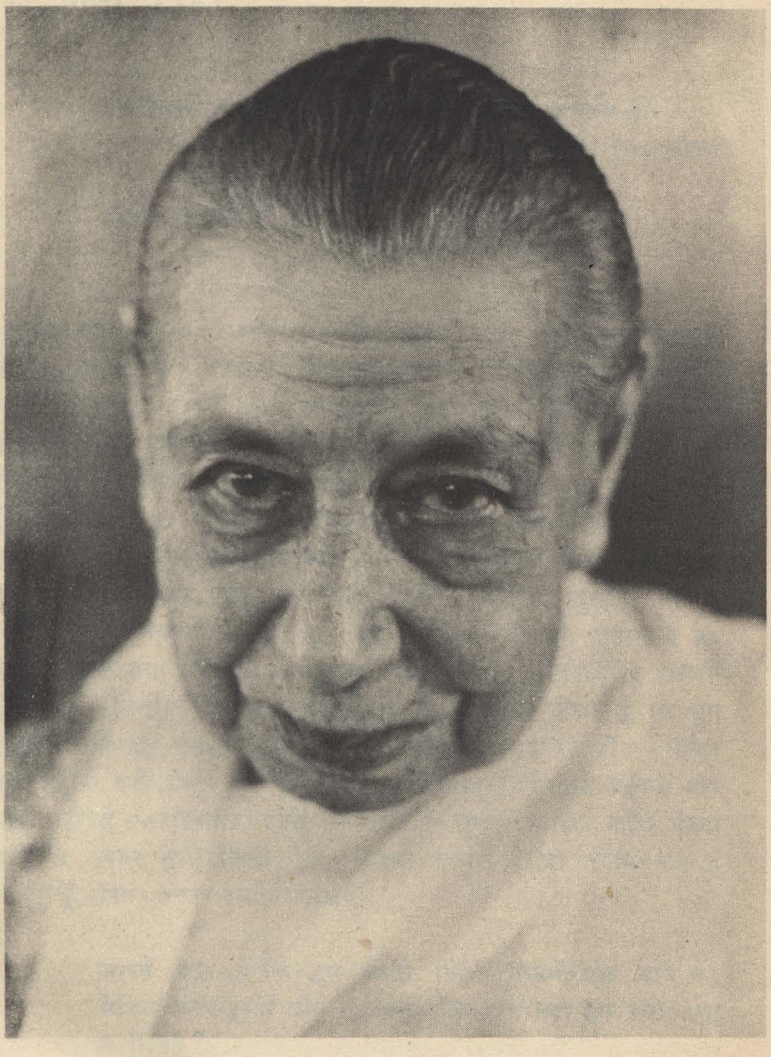
२९ मार्च, १९१४

महासमाधि

१७ नवम्बर, १९७३

शताब्दी

२१ फरवरी, १९७८



१८ मार्च, १९५३

हम अपनी सत्ताके एक नगण्य भागके बारेमें सचेतन हैं।
प्रश्न और उत्तर १९२९ (७ अप्रैल)

हमारी सत्ताके ये नगण्य भाग कौन-से हैं?

प्रायः सभी।

ऐसी बहुत ही कम चीजें हैं जो नगण्य नहीं हैं। तुम्हारी सभी सामान्य प्रतिक्रियाएं, सामान्य विचार, संवेदन, क्रियाएं, गति-विधियां — ये सब बहुत ही नगण्य हैं। कभी-कदास ही, जब चैत्यके द्वारा उच्चतर चेतनाकी एक चमक आ जाती है, किसी और चीजकी ओर उन्मीलन होता है, चैत्य पुरुषके साथ संपर्क होता है (जो भले एक सेकंडभरके लिये हो), तो उस क्षण वह नगण्य नहीं होता। अन्यथा और सब तो लाखों-करोड़ों प्रतिलिपियोंमें दोहराया जाता है। तुम्हारा देखने और काम करनेका तरीका, तुम्हारी सभी प्रतिक्रियाएं, तुम्हारे विचार, तुम्हारे संवेदन, — ये सब सामान्य हैं। और तुम यह मानते हो कि तुम असामान्य हो, विशेष रूपसे तब जब तुम असामान्य संवेदनों और भावनाओंकी पकड़में होते हो — जिन्हें तुम असामान्य समझते हो। तुम्हें लगता है कि तुम ऊंचे उठ गये हो, कुछ-कुछ अतिमानसके आस-पास पहुंच रहे हो। लेकिन यह तुम्हारी पूरी पक्की भूल है। यह एक सामान्य स्थितिसे बढ़कर और कुछ नहीं है — शोचनीय ढंगसे सामान्य। तुम्हें ज्यादा गहरा पैठना चाहिये। अगर तुम्हें किसी ऐसी चीजकी तलाश है जो नगण्य नहीं है तो तुम्हें अपने अंदर देखना चाहिये।

आपने कहा है कि हम किसी पिछले जन्ममें एक साथ थे; लेकिन अगर हमने योग न किया होता, तो क्या हम इसी तरह न मिलते?

आवश्यक नहीं है।

मुझे वे परिस्थितियां याद हैं जब मैंने यह बात कही थी: मैंने यह बात एक महिलासे कही थी जो यहां आयी थी और उसने पूछा था कि यह बात कैसे बनी कि वह यहां आ गयी — यह एक सामान्य रूपसे सत्य

है। जब दूर-दूर, छितरे हुए स्थानोंपर जन्मे हुए लोग परिस्थितियों या प्रेरणाके कारण खिंचकर यहां आ मिले हैं तो इसका कारण प्रायः हमेशा यही होता है कि हम किसी-न-किसी पिछले जन्ममें (सब एक ही जन्ममें नहीं) मिल चुके हैं और चैत्य सत्ताने यह अनुभव किया है कि वे सब एक ही परिवारके हैं। अतः उन्होंने एक आंतरिक प्रतिज्ञा की है कि साथ-साथ काम करते रहेंगे और आपसमें सहयोग देंगे। इसीलिये यद्यपि वे एक-दूसरेसे दूर पैदा हुए हैं, फिर भी कुछ चीज है जो उन्हें नजदीक आनेके लिये बाधित करती है और यह है चैत्य पुरुष, पीछे रहनेवाली चैत्य चेतना। लोग उसी हदतक मिल सकते हैं जिस हदतक उनकी चैत्य चेतनामें परिस्थितियोंको और जीवनको संगठित करनेकी शक्ति हो, अर्थात्, बाहरी शक्तियों, बाहरी जीवनकी गतिविधियोंको अपने विरुद्ध न होने देनेकी क्षमता हो।

यह वास्तवमें एक गहरी सचाई है। "सत्ताओंके बड़े परिवार" हैं जो एक ही उद्देश्यके लिये काम करते हैं, जो कम या अधिक बड़ी संख्याओंमें इकट्ठे हुए हैं, जो मानों दल बनाकर आये हैं। यह तो ऐसे है मानों अमुक समयोंपर चैत्य जगत्में जागरण हुआ हो, मानों बहुत-से सोते हुए छोटे-छोटे बच्चोंको जगानेके लिये आवाज दी गयी हो: "समय हो गया है, जल्दी, जल्दी करो, नीचे जाओ...!" और वे नीचेको दौड़ पड़े हों। और कभी-कभी वे एक ही जगह नहीं उतरते, वे बिखर जाते हैं, फिर अंदर कोई चीज होती है जो उन्हें तकलीफ देती है, उन्हें धकेलती है और किसी-न-किसी कारणसे वे नजदीक खिंचते हैं और वही चीज उन्हें साथ ले आती है। लेकिन सत्ताके अंदर बहुत गहरी चीज होती है, कोई ऐसी चीज जो ऊपरी तलपर बिलकुल नहीं है, अन्यथा, एक-दूसरेके साथ मिलनेपर भी लोग इस बंधनको न जान पाते। लोग उसी हदतक मिलते और एक-दूसरेको पहचानते हैं जिस हदतक वे अपने चैत्य पुरुषके बारेमें सचेतन होते हैं। अपनी चैत्य पुरुषकी आज्ञाका पालन करते हैं, उसका मार्ग-दर्शन पाते हैं। अन्यथा सब कुछ विरोध करता है, सब कुछ ढक देता है, सब कुछ जड़ बना देता है, सब कुछ तुम्हें अपने-आपको अपनी गहराइयोंमें जाननेसे और 'कार्य' में सच्चा सहयोग दे सकनेसे रोकता है। तुम प्रकृतिकी शक्तियोंके द्वारा इधर-उधर उछाले जाते हो।

बस, एक ही समाधान है। अपने चैत्य पुरुषको खोजो और एक बार वह मिल जाय तो उसके साथ पूरी तरह चिपट जाओ और उसे पग-पग-पर मार्ग दिखाने दो — फिर चाहे कोई भी बाधा क्यों न आये। यही एकमात्र समाधान है।

यह सब मैंने लिखा तो नहीं, लेकिन उस महिलाको समझा दिया था।

उसने मुझसे यह प्रश्न पूछा था : "मैं यहां कैसे आ गयी ?" मैंने उससे कहा कि बाह्य चेतनाके किन्हीं कारणोंसे तो अवश्य ही नहीं। उसकी आंतरिक सत्तामें स्थित किसी चीजने उसको प्रेरित किया था। केवल, बाकी सब कुछ पार करनेके लिये उसमें जागरण पर्याप्त प्रबल नहीं था और जीनेके किन्हीं साधारण कारणोंसे वह साधारण जीवनमें लौट गयी।

बाहरी तौरपर वह एक ऊट-पटांग-से कारणसे यहां आयी थी। वह युवती थी। उसकी सगाई हो चुकी थी पर शादी नहीं हुई थी। आदमीने नाता तोड़ दिया था। वह बहुत दुःखी थी। वह बहुत रोयी थी जिससे उसका सुन्दर चेहरा बिगड़ गया था और उसपर झुर्रियां पड़ गयी थीं। जब दुःखका भार कम हुआ तो वह उतनी सुन्दर नहीं रही। वह बहुत ज्यादा परेशान हुई। वह उन लोगोंसे मिली जिनका पेशा ही लोगोंको सुन्दर बनाना है। उन्होंने पैराफीनके इंजेक्शन लगवानेकी सलाह दी। उन्होंने कहा : "उसके बाद झुर्रियां नहीं रहेंगी।" उसे चरबीके इंजेक्शन लगाये गये, लेकिन मनचाहा परिणाम आनेकी जगह इधर-उधर चरबीके गुमटे-से निकल आये। वह निराश हो गयी। अब वह पहलेसे बहुत ज्यादा कुरूप लगती थी। तब उसे एक नीम-हकीम मिला जिसने कहा : "इंगलैंडमें तुम्हारे सुन्दर चेहरेको ठीक करनेका कोई उपाय नहीं है। तुम भारत चली जाओ, वहां बहुत बड़े-बड़े योगी हैं जो तुम्हें ठीक कर देंगे।" इस कारणसे वह यहां आयी थी। उसने मुझसे पहली बात यही कही : "देखिये, मेरा चेहरा कितना बिगड़ गया है। क्या आप मेरी सुन्दरता वापिस ला सकती हैं ?" और मैंने "ना" कर दी ! तब उसने योगके बारेमें प्रश्न पूछने शुरू किये और वह प्रभावित हुई। उस दिन उसने मुझसे कहा : "मैं अपनी झुर्रियोंसे पिंड छुड़ानेके लिये भारत आयी थी। अब आप जो बातें कह रही हैं उनमें मुझे रस आ रहा है। तो फिर मैं यहां आयी क्यों थी ? मेरे यहां आनेका यही सच्चा कारण नहीं हो सकता।" मैंने उसे समझाया कि उसकी बाहरी सत्ताके अतिरिक्त कुछ और भी है, और यह कि उसका चैत्य पुरुष उसे यहांतक लाया था : बाहरी हेतु तो केवल बहाने होते हैं जिनका चैत्य पुरुष अपनी उपलब्धिके लिये उपयोग करता है।

लेकिन वह अद्भुत व्यक्ति थी। शुरूमें उसने सबके प्रति, हर चीज और हर व्यक्तिके प्रति, बुरे-से-बुरे बदमाशके प्रति भी सद्भावना और हितैषिताकी वृत्ति अपनायी। वह हर एकका केवल अच्छा पहलू ही देखती थी। वह यहां टिक गयी। उसकी चेतनाका विकास हुआ और कुछ समय बाद उसने लोगोंको उनके अपने रूपमें देखना शुरू किया।

एक बार उसने मुझसे कहा : "पहले, जब मैं अचेतन थी तो मैं यह समझती थी कि हर एक अच्छा है। लोग कितने भले मालूम होते थे। आपने मुझे सचेतन क्यों बनाया?" मैंने उत्तर दिया : "रास्तेमें ही न रुको, जरा और आगे बढ़ो।"

एक बार तुमने योग शुरू कर दिया है तो अंततक जाना ही ज्यादा अच्छा है।

२५ मार्च, १९५३

आपने कहा है: "तुम्हें जागरूक रहना चाहिये कि कहीं तुम भगवान्‌को अपनी इच्छाओंकी तुष्टिके लिये योगकी तरह काममें न लाओ।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१४ अप्रैल)

बहुत-से लोग नाना प्रकारके मतोंको अपनाते हैं जिनमेंसे कई बहुत सुविधाजनक होते हैं। कुछ कहते हैं : "सब कुछ भगवान्‌की इच्छासे होता है।" और कुछ कहते हैं : "भगवान् सब जगह हैं, हर चीजमें हैं और सब कुछ करते हैं।" और कुछ लोग यह भी कहते हैं : "मेरी इच्छा भगवान्‌की इच्छाके साथ एक है, मुझे वही प्रेरणा दिया करते हैं।" वास्तवमें बहुत सारी मान्यताएं हैं जो ऐसा कहती हैं। स्वभावतः उनका अहं बहुत सजीव होता है। वे जो कुछ करना चाहते हैं करते हैं और कहते हैं : "यह तो स्वयं भगवान् ही मेरे अंदर कर रहे हैं।" उनका दिमाग जो कुछ दे दे वही "भगवान्‌की इच्छा" है। यह व्यक्तिगत प्रेरणा नहीं होती : "सब कुछ भगवान्‌की इच्छाका परिणाम है।" "यह मैं नहीं कर रहा, मेरे द्वारा भगवान् कर रहे हैं।" उनकी जो मर्जी होती है वह सब करते हैं। ऐसे बहुत-से लोग हैं। इसीलिये मैंने कहा है : "भगवान्‌को अपनी इच्छाओंको छिपानेवाला सुन्दर चोगा न बनाओ।"

"सवाल है सच्चाईका। अगर तुम सच्चे नहीं हो तो योग शुरू मत करो।"

(वही)

सच्चाई शायद सब चीजोंमें सबसे कठिन है और शायद सबसे अधिक प्रभावशाली भी।

अगर तुम्हारे अंदर पूर्ण सच्चाई है तो तुम्हारी विजय निश्चित है। यह अत्यधिक कठिन है। सत्ताके सब तत्त्वोंमें, सारी गतिविधियोंमें (चाहे वे भीतरी हों या बाहरी), सत्ताके सब भागोंमें यह एकमात्र संकल्प लाना है कि हमें केवल भगवान्‌का ही अंश होना है, भगवान्‌के लिये ही जीना है, भगवान् जो चाहते हैं उसीको चाहना है, भागवत संकल्पको ही अभिव्यक्त करना है, भगवान्‌के अतिरिक्त कोई और शक्ति-स्रोत नहीं रखना है।

और तुम देखोगे कि ऐसा एक भी दिन नहीं, एक भी घंटा नहीं, एक भी क्षण नहीं जब तुम्हें अपनी सच्चाईको तीव्र बनानेकी जरूरत न पड़े, सुधारना न पड़े — भगवान्‌को धोखा देनेसे एकदम इंकार। पहली बात है अपने-आपको धोखा न देना। व्यक्ति जानता है कि भगवान्‌को धोखा नहीं दिया जा सकता। असुरोंमें सबसे चतुर भी भगवान्‌को धोखा नहीं दे सकता। हम देखते हैं कि व्यक्ति बहुधा अपने जीवनमें, यह सब समझ लेनेके बाद भी, एक ही दिनके दौरानमें अपने-आपको धोखा देनेकी — सहज रूपसे लगभग यंत्रवत् — कोशिश करता है। व्यक्ति जो कुछ करता है उसकी, अपने शब्दोंकी और अपनी क्रियाओंकी हमेशा ही अनुकूल व्याख्या कर लेता है। पहले यही होता है। मैं यहां स्पष्ट दीखनेवाली चीजोंकी बात नहीं कर रही, जैसे लड़-झगड़कर आदमी कहता है: "यह दूसरेका दोष है।" मैं दैनिक जीवनकी छोटी-छोटी चीजोंकी बात कर रही हूं।

मैं एक बच्चेको जानती हूं जो एक दरवाजेसे टकरा गया और फिर दरवाजेको एक अच्छी-सी लात जमायी। बात यही है। हमेशा गलती दूसरेकी होती है, दूसरा ही भूलें करता है। बचपनकी अवस्था पार कर लेनेके बाद भी, जब तुम्हारे अंदर तर्क-बुद्धि आ जाती है, तुम बहुत मूर्खतापूर्ण बहाने बनाते हो: "अगर उसने यह न किया होता तो मैं ऐसा न करता।" लेकिन बात इससे ठीक उल्टी होनी चाहिये!

मैं इसीको सच्चा या निष्कपट होना कहती हूं। जब तुम किसीके साथ हो और निष्कपट हो, तो तुरंत तुम्हारी प्रतिक्रिया यही होनी चाहिये कि तुम ठीक चीज करो, भले तुम जिसके साथ हो वह ठीक चीज न भी करे। सबसे सामान्य उदाहरण ले लो: कोई नाराज होता है: उसे चोट पहुंचानेवाली बातें कहनेकी जगह तुम चुप रहते हो, स्थिर और शांत रहते हो। तुम्हें उसके गुस्सेकी छूत नहीं लगती। जरा अपनी

ओर देखनेसे ही तुम्हें पता लग जायगा कि यह आसान है या नहीं। यह बिलकुल प्रारंभिक चीज है। यह जाननेके लिये कि तुम सच्चे और निष्कपट हो या नहीं, बहुत ही छोटा आरंभ है। और मैं उन लोगोंकी बात नहीं कर रही जो हर छूतके, यहांतक कि भद्दे मजाकोंके भी शिकार हो जाते हैं; मैं उनकी बात भी नहीं कर रही जो वही मूर्खता करते हैं जो दूसरे करते हैं।

मैं तुम्हें कहती हूं: अगर तुम अपने-आपको तेज आंखोंसे देखो तो तुम अपनी सामान्य वृत्तिमें निष्कपट होनेकी कोशिश करते हुए भी अपने अंदर सैकड़ों कपट और कुटिलताएं देखोगे, तुम देखोगे कि यह कितना कठिन है।

मैं तुमसे कहती हूं: अगर तुम अपनी सत्ताके सभी तत्त्वोंमें, अपने शरीरके कोषाणुओंतकमें सच्चे और निष्कपट हो, अगर तुम्हारी सारी सत्ता समग्र रूपसे भगवान्‌को चाहती है तो तुम्हारी विजय निश्चित है, लेकिन उससे जरा भी कमपर नहीं। मैं इसे सच्चा या निष्कपट होना कहती हूं।

मैं ऐसी स्पष्ट दीखनेवाली चीजोंकी बात नहीं कर रही जैसे कोई अपने आवेगों और सनकोंके अनुसार काम करे और कहे: "मैं अब अपना नहीं रहा, मैं पूरी तरह भगवान्‌का हूं। भगवान् ही मेरे अंदर सब कुछ कर रहे हैं, वे ही मेरे अंदर क्रियाशील हैं।" यह तो अपने-आपमें काफी अनगढ़ चीज है। मैं ज्यादा सुसंस्कृत लोगोंकी बात कर रही हूं जो जरा कुलीन होते हैं और अपनी इच्छाओंको छिपानेके लिये सुंदर-सा चोगा डाल लेते हैं।

एक दिनमें कितनी चीजें, कितने विचार, कितने संवेदन, कितनी क्रियाएं शुद्ध रूपसे भगवान्‌की ओर अभीप्सामें मुड़ी होती हैं? कितनी? मुझे लगता है कि सारे दिनमें एक भी हो तो उसे सुनहरे अक्षरोंमें लिखा जा सकता है।

जब मैं कहती हूं: "यदि तुम निष्कपट हो तो तुम्हारी विजय निश्चित है," तो मेरा मतलब सच्ची निष्कपटतासे होता है, मेरा मतलब होता है कि तुम हमेशा सच्ची ज्वाला बने रहो जो आत्म-निवेदनके रूपमें जलती रहती है। सच्ची निष्कपटता है केवल भगवान्‌के लिये और भगवान्‌के द्वारा जीनेका तीव्र आनंद, और यह अनुभव कि उनके बिना किसी चीजका अस्तित्व नहीं है, उनके बिना जीवनका कोई अर्थ नहीं रहता, किसी चीजका कोई हेतु नहीं होता, किसी चीजका कोई मूल्य नहीं होता, किसी चीजमें रस नहीं होता जबतक कि — उस सबके प्रति जिसे हम भगवान् कहते

हैं, क्योंकि किसी-न-किसी शब्दका उपयोग तो करना ही होगा — यह पुकार, यह अभीप्सा, परम सत्यके प्रति उन्मीलन न हो। सारे विश्वके अस्तित्वका यही एकमात्र हेतु है। उसे अलग कर दो और सब कुछ गायब हो जायगा।

१ अप्रैल, १९५३

"महत्त्वाकांक्षाने बहुत-से योगियोंका नाश किया है। यह नासूर बहुत समयतक छिपा रह सकता है। बहुत-से लोग जब इस मार्गपर चलते हैं तो उन्हें इसका पता भी नहीं होता लेकिन जब उन्हें शक्तियां प्राप्त होती हैं तो उनकी महत्त्वाकांक्षा उठ खड़ी होती है। शुरूमें ही उसे निकालकर दूर नहीं फेंका गया था इसलिये और भी ज्यादा भड़क उठती है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१४ अप्रैल)

आप "नासूर" किसे कहती हैं?

यह एक बिंब है। जैसे एक बहुत सुंदर आम, देखनेमें बहुत अच्छा होता है लेकिन काटनेपर उसके अंदरसे कीड़ा निकलता है। यह इसलिये कि फल बननेसे पहले ही उसमें मक्खीने अंडा दे दिया था। बाहरसे देखनेसे उसका कहीं कोई चिह्न नहीं दिखायी देता। सब कुछ निष्कपट और निःस्वार्थ दीखता है। लेकिन अंदर, ठीक तलीमें, बहुत बड़ी महत्त्वाकांक्षा होती है। विशिष्ट पद पानेकी, सबके द्वारा सम्मानित होनेकी इच्छा रहती है...। यह है अहंकार। यही वह नासूर है, यह बहुत शांत रहता है, पर रहता जरूर है। जब शक्ति आती है तो यह अनुभव करनेकी जगह कि हम कुछ नहीं हैं, हम किसी चीजके अधिकारी नहीं और इतना ही करनेकी जगह कि बस जहांतक हो सके निष्क्रिय बने रहें, हम अपने-आपको धोखा देने लगते हैं और यह आवश्यक मानते हैं कि दूसरे भी उसे लक्ष्य करें! मैं इसीको नासूर कहती हूं। यह अंदरका सब कुछ खा डालता है; सिर्फ बाहरी दिखावा ठीक बना रहता है।

आप कहती हैं कि "हमारी सत्तामें समरूपता" स्थापित करना जरूरी है?

(वही)

क्या तुम नहीं जानते कि समरूप चीज क्या होती है? वह एक-से भागोंसे बनी होती है। इसका मतलब यह है कि सारी सत्ताको एक ही प्रभावके अधीन, एक ही चेतना, एक ही प्रवृत्ति, एक ही संकल्पके अधीन होना चाहिये। हम सब प्रकारके अलग-अलग भागोंसे बने हैं। वे एकके बाद एक सक्रिय होने लगते हैं। जो भाग सक्रिय होता है उसके अनुसार आदमी अलग-अलग रूपमें दीखता है, एक और ही व्यक्तित्व बन जाता है। उदाहरण-के लिये, किसीमें पहले अभीप्सा थी, यह लगता था कि सब कुछ भगवान्‌के लिये ही है; फिर, कुछ होता है, कोई आता है, कुछ-न-कुछ करना होता है और सब कुछ गायब हो जाता है। तुम उस अनुभवको वापिस लानेकी कोशिश करते हो लेकिन उसकी यादतक नहीं रहती। तुम पूरी तरह किसी और प्रभावके आधीन होते और आश्चर्य करते हो कि यह कैसे हो गया। दोहरे, तिहरे, चौहरे व्यक्तित्वोंके उदाहरण हैं जो अपने बारेमें एकदम अचेतन हैं...। लेकिन मैं उनकी बात नहीं कर रही। मैं ऐसी चीजकी बात कर रही हूं जो तुम सबके साथ हो चुकी है, तुम्हें अनुभव हो चुका है और कुछ समयके लिये तुमने अनुभव किया कि वह अनुभूति ही एकमात्र मूल्यवान वस्तु थी — उसीका निरपेक्ष मूल्य है — आधे घंटेके बाद तुम उसे वापिस लानेकी कोशिश करते हो, वह धुएंकी तरह गायब हो जाती है। अनुभूति गायब हो गयी। और अभी आधा घंटा पहले ही वह इतनी प्रबल थी...। इसका कारण यह है कि आदमी बहुत तरहकी अलग-अलग चीजोंसे बना है। शरीर एक ऐसे बोरेकी न्याईं है जिसमें कंकर और मोती मिले हुए हैं और बोरा ही उन सबको इकट्ठा रखता है। यह समरूप, एक-सी चेतना नहीं है, यह पंचमेल चेतना है।

तुम अपने जीवनके भिन्न-भिन्न क्षणोंमें भिन्न-भिन्न व्यक्ति हो सकते हो। मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जो निश्चय कर सकते थे, जिनमें संकल्प-बल था, जो जानते थे कि वे क्या चाहते थे और उसे करनेके लिये तैयार थे। फिर उनकी सत्तामें जरा-सा उलट-फेर हुआ, कोई और भाग ऊपर आ गया और सारा काम दस मिनटमें खराब हो गया। उन्होंने दो महीनेमें जो प्राप्त किया था वह सब नष्ट हो गया। ऐसी स्थितिमें जब पहला भाग वापिस आता है तो वह व्याकुल होकर कहता है: "क्या!..." तब

फिरसे सारा काम शुरू करना पड़ता है, धीरे-धीरे। अतः यह स्पष्ट है कि अपने चैत्य पुरुषके बारेमें सचेत होना बहुत जरूरी है। तुम्हारे पास एक प्रकारका मार्ग-निदेशक या दर्पण होना चाहिये जिसमें सब चीजें प्रतिबिंबित हों और अपने-आपको उसी रूपमें दिखायें जैसी वे सचमुच हैं। और तब वह जो कुछ है उसके अनुसार तुम उन्हें एक या दूसरे स्थानपर रखते हो। तुम उनकी व्याख्या शुरू करते हो और संगठित करते हो। इसमें समय लगता है। वही भाग तीन-चार बार ऊपर आता है और जो भी भाग ऊपर आता है वही कहता है: "मुझे पहले स्थानपर रखो, जो कुछ दूसरे करते हैं उसका महत्त्व नहीं है, बिलकुल महत्त्व नहीं है, अब मैं ही निश्चय करूंगा, मैं ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हूं।" मुझे विश्वास है कि यदि तुम अपनी ओर देखो तो तुम देखोगे कि तुममेंसे एक भी ऐसा नहीं है जिसे यह अनुभव न हुआ हो। तुम सचेतन होना चाहते हो, सद्भावनावाले बनना चाहते हो, तुम समझ गये हो, तुम्हारी अभीप्सा चमक रही है — सब कुछ चमकदार, आलोकमय है, पर अचानक कुछ होता है, कोई बेकार-सी बातचीत, कोई अशुभ वाचन, और उससे सारी चीज अस्त-व्यस्त हो जाती है। तब तुम सोचते हो कि तुम भ्रांतिमें रह रहे थे, कि सभी चीजें एक विशेष कोणसे देखी गयी थीं।

यही जीवन है। आदमी पहले ही अवसरपर ठोकर खाता और गिर पड़ता है। आदमी अपने-आपसे कहता है: "ओफ ! मैं हमेशा इतना गंभीर नहीं रह सकता;" और जब वह दूसरा भाग लौटता है तो बुरी तरह पछताते हुए कहता है: "मैं मूर्ख हूं, मैंने अपना समय नष्ट किया। अब मुझे फिरसे शुरू करना होगा ...।" कभी-कभी एक भाग बदमिजाज होता है, विद्रोह करता है, चिंतासे भरा रहता है और दूसरा भाग प्रगतिशील और समर्पणसे भरपूर होता है। और यह सब एकके बाद एक।

बस, एक ही उपाय है। वह मार्ग-निदेशक हमेशा रहना चाहिये। तुम्हारी भावनाओं, तुम्हारे आवेगों और संवेदनोंमें हमेशा दर्पण ठीक स्थानपर लगा रहना चाहिये। तुम उन्हें दर्पणमें देखते हो। उनमेंसे कुछ बहुत सुंदर या देखनेमें मोहक नहीं होते, जब कि दूसरे सुंदर और मोहक होते हैं और उन्हें रखना चाहिये। जरूरत पड़े तो तुम इसे दिनमें सौ बार करते हो, और वह बहुत मजेदार होता है। तुम अपने चैत्य दर्पणके चारों ओर एक घेरा खींच देते हो और अपने सभी तत्त्वोंको उसके इर्द-गिर्द बिठा देते हो। अगर कोई चीज ठीक नहीं है तो वह दर्पणपर एक धुंधली-सी छाया डालती है। इस तत्त्वको हटाना होगा, व्यवस्थित करना होगा। उससे बातचीत करनी होगी, उसे समझाना होगा। तुम्हें उस

अंधेरेमेंसे बाहर आना होगा। अगर तुम ऐसा करो तो कभी न उकताओगे। जब लोग भद्र न हों, जब तुम्हारे सिरमें सर्दी हो, जब तुम्हें अपना पाठ याद न हो आदि-आदि, तो तुम इस दर्पणमें देखना शुरू करते हो। यह बहुत मजेदार है, वहां तुम नासूर देखते हो। "मैंने सोचा था कि मैं निष्कपट हूं" — बिलकुल नहीं।

जीवनमें ऐसी कोई चीज नहीं होती जो मजेदार न हो। दर्पण बहुत, बहुत अच्छी तरह बना है। तुम यह दो, तीन, चार वर्षतक करते, कभी-कभी यह बीस वर्षतक करना पड़ता है। तब कुछ वर्षोंके बाद पीछे देखो, तुम तीन वर्ष पहले जो थे उसकी ओर नजर घुमाओ: "ओह! मैं कैसा बदल गया हूं! . . . क्या मैं ऐसा था? . . ." यह बहुत मनोरंजक है। "मैं ऐसे बोल सकता था? क्या मैं ऐसे बातचीत कर सकता था, ऐसे सोच सकता था? . . . लेकिन सचमुच मैं मूर्ख था। मैं कैसा बदल गया हूं!" यह बहुत मजेदार है न, नहीं है?

८ अप्रैल, १९५३

"महत्त्वाकांक्षाके सबसे सामान्य विचारोंमेंसे एक विचार है मानव-सेवाका। इस प्रकारकी सेवा या ऐसे कार्यके साथ सब तरहका लगाव व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाका चिह्न है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१४ अप्रैल)

आप यह क्यों कहती हैं कि यह महत्त्वाकांक्षा है?

तुम मानवजातिकी सेवा क्यों करना चाहते हो, तुम्हारा क्या भाव है? इसके पीछे महत्त्वाकांक्षा है। यह मनुष्योंमें बड़ा आदमी बननेके लिये है। यह समझना कठिन है? . . . मैं देख सकती हूं!

भगवान् सब जगह हैं। अतः अगर तुम मानवजातिकी सेवा करते हो तो वह भगवान्‌की ही सेवा होती है। क्या ऐसा नहीं है?

यह अद्‌भुत बात है! इस मामलेमें यह कहना सबसे स्पष्ट होगा: "मग-

वान् मेरे अंदर हैं, मैं अपनी सेवा करता हूं तो मैं भगवान्‌की सेवा भी कर लेता हूं।" (हंसी) वास्तवमें भगवान् हर जगह हैं। भगवान् तुम्हारे बिना अपना काम भली-भांति कर लेंगे।

मैं अच्छी तरह देख रही हूं कि बात तुम्हारी समझमें नहीं आयी। लेकिन अगर सचमुच तुम यह समझते हो कि भगवान् सब चीजोंमें हैं तो मानवजातिकी सेवा करके तुम किस चीजमें हस्तक्षेप करते हो? मानवजातिकी सेवा करनेके लिये तुम्हें भगवान्‌की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानना चाहिये कि उसके लिये क्या करना चाहिये। क्या तुम भगवान्‌की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह उसकी सेवा करना जानते हो?

भगवान् हर जगह हैं। हां, चीजें भागवत नहीं मालूम होतीं...। जहांतक मेरा सवाल है, मैं केवल एक ही समाधान देखती हूं: अगर तुम मानवजातिकी सहायता करना चाहते हो तो एक ही काम करने लायक है। अपने-आपको, जितना संभव हो, पूरी तरहसे भगवान्‌के अर्पण कर दो। यही समाधान है। क्योंकि इस तरह तुम जिस भौतिक सद्वस्तुके प्रतिनिधि हो वह कुछ अधिक भगवान् जैसी बन सकेगी।

हमसे कहा जाता है कि भगवान् सब चीजोंमें हैं, तब फिर चीजें बदलती क्यों नहीं? क्योंकि भगवान्‌को प्रत्युत्तर नहीं मिलता। हर चीज भगवान्‌को प्रत्युत्तर नहीं देती। यह देखनेके लिये तुम्हें चेतनाकी गहराइयोंको खोजना होगा। तुम मानवजातिकी सेवाके लिये क्या करना चाहते हो? गरीबोंको भोजन देना? — तुम लाखोंको खिला सकते हो, पर यह समाधान न होगा, समस्या जैसी-की-वैसी बनी रहेगी। उनके रहनेके लिये नयी और ज्यादा अच्छी व्यवस्था करोगे? — भगवान् उनमें हैं, फिर यह कैसे होता है कि परिस्थितियां नहीं बदलतीं? मानवजातिकी हालतको भगवान् तुम्हारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानते होंगे। तुम क्या हो? तुम बस जरा-सी चेतना और जरा-से भौतिक पदार्थके प्रतिनिधि हो। बस, उसीको तुम "मैं" कहते हो। अगर तुम मानवजातिकी, संसार या विश्वकी सेवा करना चाहते हो तो करने लायक चीज यही है कि उस छोटे-से टुकड़ेको पूरी तरह भगवान्‌के अर्पण कर दो। यह संसार दिव्य क्यों नहीं?... यह तो स्पष्ट ही है कि संसार सुव्यवस्थित नहीं है। इसका एक ही समाधान है। जो कुछ तुम्हारा है उसे दे दो। उसे पूरी तरह, समग्र रूपमें भगवान्‌को दे दो, सिर्फ अपने हितमें नहीं, मानवजातिके हितमें, विश्वके हितमें। इससे अच्छा कोई समाधान नहीं है। तुम मानवजातिकी सहायता कैसे करना चाहते हो? तुम्हें तो यह भी नहीं मालूम कि उसे क्या

चाहिये। शायद यह तो तुम्हें और भी कम मालूम है कि तुम किस शक्ति-की सेवा कर रहे हो? वास्तवमें अपने-आपको बदले बिना तुम किसी चीज-को कैसे बदल सकते हो?

बहरहाल, तुम इसके लिये काफी समर्थ नहीं हो। जबतक तुम्हारी चेतना दूसरेसे ऊंची न हो तबतक तुम उसकी सहायता करनेकी आशा ही कैसे कर सकते हो? यह बचकाना विचार है! बच्चे कहा करते हैं: "मैं छात्रावास खोल रहा हूं, मैं एक शिशु-सदन खोलनेवाला हूं, गरीबोंको शोरबा दूंगा, यह ज्ञान फैलाऊंगा, इस धर्मका प्रचार करूंगा...। यह केवल इसलिये है कि तुम अपने-आपको दूसरोंसे अच्छी स्थितिमें मानते हो, तुम सोचते हो कि तुम उनकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानते हो कि उन्हें क्या होना और क्या करना चाहिये। मानवजातिकी सेवा बस यही है। तुम उसीको जारी रखना चाहते हो? इसने चीजों-में ज्यादा परिवर्तन नहीं किया। आदमी मानवजातिकी सहायताके लिये हस्पताल या विद्यालय नहीं खोलता।

फिर भी इसने सहायता तो की ही है, नहीं की क्या? अगर सब विद्यालय बंद कर दिये जायं...।

मुझे नहीं लगता मानवजाति अब पहलेसे ज्यादा सुखी है, न कोई बहुत सुधार ही हुआ है। इस सबसे तुम्हें यह लगता है: "मैं भी कुछ हूं।" मैं इसीको महत्त्वाकांक्षा कहती हूं।

अगर यहीं लोग जो विद्यालयोंके लिये पैसा देनेको तैयार होते हैं, उनसे कहा जाय कि कोई भगवान्‌का काम है जिसे भगवान्‌ने अमुक तरीकेसे करनेका निश्चय किया है, और यदि उन्हें विश्वास भी हो कि यह सच-मुच भगवान्‌का कार्य है, तो भी वे कुछ देनेसे इंकार करते हैं, क्योंकि यह माना हुआ परोपकारका काम नहीं है — यह करके कुछ अच्छा करने-का संतोष नहीं होता! इसीको मैं महत्त्वाकांक्षा कहती हूं। मेरे सामने ऐसे उदाहरण आये हैं जिनमें लोगोंने हस्पताल खोलनेके लिये लाखों रुपये दिये हैं क्योंकि इससे उन्हें संतोष हुआ कि उन्होंने कोई बड़ा, उदारतापूर्ण, उदात्त काम किया है। वे अपने-आपको महिमान्वित करते हैं। मैं इसे महत्त्वाकांक्षा कहती हूं।

मैं एक विनोदप्रिय व्यक्तिको जानती थी जो कहा करता था: "भगवान्‌का राज्य बहुत जल्दी नहीं आयेगा क्योंकि तब इन बेचारे परोप-कारियोंके लिये क्या बच रहेगा? अगर मानवजाति दुःख न भोगती रहे

तो बेचारे परोपकारी लोग बेकार हो जायंगे।" इसमेंसे निकलना मुश्किल है। फिर भी यह तथ्य है कि दुनिया इस स्थितिमेंसे तबतक बाहर नहीं निकल सकती जबतक कि वह अपने-आपको भगवान्‌को न सौंप दे। सभी सद्‌गुण — तुम उनकी चाहे जितनी महिमा गाओ — तुम्हारे आत्म-संतोषको, यानी, अहंको बढ़ाते हैं। वे तुम्हें सचमुच भगवान्‌के बारेमें सचेतन होनेमें सहायता नहीं देते। दुनियाके बुद्धिमान् और उदार लोगों-को बदलना सबसे कठिन होता है। वे अपने जीवनसे बहुत संतुष्ट होते हैं। एक गरीब आदमी जिसने जीवनमें सब प्रकारकी बेवकूफियां की हैं तुरंत दुःखी हो उठता है और कहता है: "मैं कुछ नहीं हूं, मैं कुछ नहीं कर सकता। मुझे तुम जो बनाना चाहो बना लो।" यह आदमी ज्यादा ठीक है और यह भगवान्‌के, उस आदमीकी अपेक्षा बहुत ज्यादा नजदीक है जो बुद्धिमान् है तथा अपनी बुद्धिमत्ता और गर्वसे भरा है। यह अपने-आपको वैसा ही देखता है जैसा कि वह है।

उदार और बुद्धिमान् व्यक्ति जिसने मानवजातिके लिये बहुत कुछ किया है अपने-आपसे इतना अधिक संतुष्ट होता है कि उसे बदलनेका जरा भी ख्याल नहीं आता। प्रायः इसी तरहके लोग कहा करते हैं: "वास्तवमें, यदि मैंने संसार रचा होता तो ऐसा न बनाता। मैं इससे बहुत ज्यादा अच्छा बनाता," और वे उस चीजको ठीक करनेकी कोशिश करते हैं जिसे भगवान्‌ने बुरी तरह बनाया है। उनके चित्रके अनुसार, यह सब मूर्खतापूर्ण और व्यर्थ है...। इस वृत्तिके साथ तुम भगवान्‌के नहीं हो सकते। तुम्हारे और भगवान्‌के बीच हमेशा अपनी बौद्धिक श्रेष्ठताका सचेतन अहंकार रहेगा जो भगवान्‌का मूल्य आंकता है और यह विश्वास करता है कि वह कभी भूल नहीं कर सकता। उन्हें यह विश्वास होता है कि अगर उन्होंने जगत् बनाया होता तो वे ये सब मूर्खताएं न करते जो भगवान् कर बैठे हैं! और यह सब अभिमान, गर्व और आत्म-वंचनासे आता है। जो लोग मानवजातिकी सेवा करना चाहते हैं उनमें इसका बीज होता है।

वे मानवजातिको क्या देनेवाले हैं? कुछ भी नहीं! यदि वे अपने रक्तकी एक-एक बूंद, अपने दिमागके सब विचार, अपनी जेबका सारा धन दे दें तो भी, वे एक व्यक्तिको भी न बदल सकेंगे, और वह व्यक्ति क्या है? शाश्वत कालमें एक सेकंड। वे मानते हैं कि वे शाश्वतकी सेवा कर सकेंगे? मनुष्यसे ज्यादा ऊंची सत्ताएं यहां आयी हैं, वे अपने साथ प्रकाश लायी हैं और उन्होंने अपनी जान दे दी है, लेकिन उससे भी चीजोंमें बहुत फर्क नहीं पड़ा। तो फिर एक छोटा-सा मनुष्य, एक क्षुद्र

सूक्ष्म सत्ता, सच्ची सहायता कैसे कर सकती है? यह धर्मांध है। युक्ति यह दी जाती है: "यदि हरएक मरसक अच्छे-से-अच्छा करे तो सब कुछ ठीक हो जायगा।" मुझे ऐसा नहीं लगता, और यह है भी असंभव। एक तरहसे संसारमें हर एक चीज अपना अच्छे-से-अच्छा करती है पर उस अच्छे-से-अच्छेका मूल्य कुछ नहीं होता। जबतक सब कुछ न बदले तबतक कुछ भी न बदलेगा। इस "अच्छे-से-अच्छे"को बदलना होगा। अज्ञानके स्थानपर ज्ञान, शक्ति और चेतनाको जन्म लेना चाहिये अन्यथा हम हमेशा उसी मूर्खताके चारों ओर गोल-गोल घूमते रहेंगे।

तुम लाखों अस्पताल खोल सकते हो, इससे लोग रोगी होनेसे न बचेंगे। इसके विपरीत उन्हें बीमार होनेके लिये हर प्रकारकी सुविधा मिलेगी, प्रोत्साहन मिलेगा। हम इस प्रकारके विचारोंमें डूबे हुए हैं। इससे तुम्हारे अंतःकरणको आराम मिलता है: "मैं संसारमें आया हूं, मुझे औरोंकी मदद करनी चाहिये।" तुम अपने-आपसे कहते हो: "मैं कितना निःस्वार्थ हूं। मैं मानवजातिकी सहायता करने जा रहा हूं।" यह अहंकारके सिवा कुछ नहीं है।

वास्तवमें सबसे पहली मानव सत्ता जिसके साथ तुम्हारा संबंध है, तुम स्वयं हो। तुम दुःख कम करना चाहते हो लेकिन जबतक तुम दुःख सहनेकी क्षमताको प्रसन्न रहनेकी निश्चितता में न बदल दो तबतक संसार कभी न बदलेगा। वह हमेशा वह-का-वही रहेगा। हम एक चक्रमें घूमते रहेंगे। एक संस्कृतिके बाद दूसरी संस्कृति आती है, एक चिमदाके बाद दूसरी आती है, लेकिन चीज नहीं बदलती क्योंकि कोई चीज गुम है, कोई चीज वहां नहीं है। वह है चेतना। और बस।

कम-से-कम यह मेरी राय है, इसका जो भी मूल्य हो। अगर तुम अस्पताल, विद्यालय आदि बनाना चाहते हो तो बना सकते हो। यदि इससे तुम सुखी होते हो तो तुम्हारे लिये बहुत ही अच्छा। इसका बहुत महत्त्व नहीं है। जब मैंने 'मस्य वैसों'की फिल्म देखी तो मुझे बहुत रस आया। उन्होंने पता लगा लिया कि वे इस गरीबोंको खिलाते थे तो हजार आ खड़े होते थे। कोलबर्टने उनसे कहा: "ऐसा लगता है कि आप उनको, गरीबोंको, खिला-खिलाकर बढ़ाते जाते हैं," और यह बात बिलकुल गलत नहीं है। फिर भी! यदि तुम्हारी नियति यही है कि तुम विद्यालयोंकी स्थापना करो और शिक्षा दो, रोगियोंकी देखभाल करो और अस्पताल खोलो, तो यह अच्छा है। यही करो। लेकिन इसे बहुत गंभीरतासे न लो। यह एक आडंबरपूर्ण चीज है जिसे तुम स्वयं अपनी प्रसन्नताके लिये कर रहे हो। यूं कहो: "मैं यह काम इसलिये कर रहा

हूं क्योंकि इससे मुझे प्रसन्नता होती है।" लेकिन योगकी बात मत करो। यह तुम योग नहीं कर रहे। तुम समझते हो कि तुम कोई बड़ा काम कर रहे हो, बस इतना ही, और यह तुम्हारे निजी संतोषके लिये है।

कहा जाता है कि ऋषि विश्वामित्रने भी नयी सृष्टि बनायी थी।

उन्होंने क्या किया? कहो। वह इस संसारसे खुश नहीं थे इसलिये एक और संसार बनाया? कहां है वह संसार?

स्वभावतः पहला विचार होता है सृष्टिके कर्तासे बड़ा बननेका। तुम सोचते हो कि यह बुरी तरह बना है। यह संभव है, तुम कह सकते हो कि यह बुरी तरह बना है। अगर तुम यह मानते हो कि तुम भगवान्‌से ज्यादा अच्छी तरह सृष्टि बना सकते हो, मैं यह नहीं कह रही कि तुम गलत हो, मैं कहती हूं कि तुम यह नहीं कह सकते कि तुम महत्त्वाकांक्षी नहीं हो। मैं यह नहीं कहती कि वे गलत थे। मैं कहती हूं कि वे महत्त्वाकांक्षी थे। यह उसके सिवा कुछ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि जो लोग भला करते हैं, जो उदार हैं, अच्छे और अनासक्त हैं, उन्हें बदलना बहुत कठिन होता है। उनका अहं भयानक होता है। उनका न्याय, उदारताका विचार इतना विकट होता है कि वहां और किसी चीजके लिये, भगवान्‌के लिये जगह नहीं होती।

भला करनेके योग्य होनेसे पहले तुम्हें अपने अंदर गहराईमें जाना चाहिये और एक बहुत महत्त्वपूर्ण खोज करनी चाहिये। वह यह कि तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं है। केवल एक ही वस्तु है जिसका अस्तित्व है और वह है भगवान् और जबतक तुमने वह खोज नहीं की तबतक तुम मार्गपर आगे नहीं बढ़ सकते। लेकिन यह कछुएकी पीठकी तरह सख्त है! ...अगर तुम्हारा मन दार्शनिक है तो तुम अपने-आपसे पूछोगे: "मैं अपना "आपा" किसे कहता हूं? क्या अपने शरीरको?— वह हमेशा बदलता रहता है। वह कभी वह-का-वही नहीं बना रहता। क्या ये मेरी भावनाएं हैं?—वे प्रायः बदलती रहती हैं। क्या ये मेरे विचार हैं?—वे तो हमेशा बनते-बिगड़ते रहते हैं। यह सब मेरा आपा नहीं है। तब फिर मेरा वह आपा कहां है? वह कौन-सी चीज है जो निरंतरताका भाव देती है?" अगर तुम सचाईसे यह खोज जारी रखो, यदि तुम कुछ वर्ष पीछे जाओ तो समस्या और भी ज्यादा चकरानेवाली बन जाती है। तुम देखना जारी रखते हो; तुम अपने-आपसे कहते

हो : "यह मेरी स्मृति है।" लेकिन अगर कोई अपनी स्मृति खो बैठे तब भी वह बना तो रहता ही है। अगर तुम सचाईके साथ यह गभीर खोज जारी रखो तो एक क्षण आता है जब सब कुछ गायब हो जाता है और सिर्फ एक ही चीज बच रहती है और वह है भगवान्, भागवत उपस्थिति। सब कुछ गायब हो जाता है, विलीन हो जाता है, धूपमें रखे मक्खनकी तरह पिघल जाता है...। यह खोज करनेके बाद व्यक्तिको पता लगता है कि वह केवल आदतोंका गट्ठर था। हमेशा बोलता वही है जो भगवान्को नहीं जानता, उनके बारेमें सचेतन नहीं होता। हर एकमें ऐसे सैकड़ों, हजारों "स्व" होते हैं जो बोलते हैं और सैकड़ों एकदम अलग तरीकोंसे बोलते हैं — ये "स्व" अचेतन, बदलते हुए द्रव-जैसे होते हैं। आज जो स्व बोल रहा है यह वही नहीं जो कल बोल रहा था; और अगर तुम और आगे देखो तो स्व गायब! बस, एक ही बच रहता है और वह है भगवान्। एक भगवान् ही है जो हमेशा एकरस रहते हैं। जबतक तुम इतनी दूर न जाओ...।

अगर सब कुछ भगवान्से ही आता है तो इतनी भूलें क्यों हैं?

तुम्हें यह नहीं मानना चाहिये कि तुम्हारे जीवनमें जो कुछ होता है वह स्वभावतः भगवान्से आता है — अर्थात्, 'सत्य-चेतना' ही तुम्हारे जीवनका निर्देशन कर रही है। क्योंकि यदि सब कुछ भगवान्से ही आता तो तुम्हारे लिये भूल करना असंभव हो जाता।

तब फिर यह कैसे होता है कि हर जगह भूल-भ्रांति है? चीजें भगवान्के विरुद्ध और जो होना चाहिये उसके विरुद्ध क्यों जाती हैं?... क्योंकि बहुत-से तत्त्व हैं जो एक-दूसरेको काटते हैं और हस्तक्षेप करते हैं। संकल्प एक-दूसरेको काटते हैं, सबसे मजबूत सबसे सफल हो जाता है। मानवोंकी इस जटिलताने ही नियतिवादकी सृष्टि की है। भागवत इच्छा इन सब चीजोंके ढेरसे ढक जाती है। मैंने यहां कहा है (माताजी अपनी पुस्तक उठाती हैं) : "तुम्हें वे सब चीजें स्वीकारनी चाहिये — केवल वही चीजें — जो भगवान्से आती हैं। क्योंकि चीजें छिपी इच्छाओंसे भी आ सकती हैं। इच्छाएं अवचेतनामें काम करती हैं और ऐसी चीजोंको आकर्षित करती हैं जिनके स्रोतको भी शायद तुम न पहचान सको, लेकिन वे भगवान्से नहीं, छिपी हुई इच्छासे आती हैं।"

अगर, तुम जिस चीजको नहीं पा सकते उसके लिये तुम्हारे अंदर प्रबल तृष्णा है तो तुम अपनी इच्छाको बाहर भेजते हो। वह तुमसे भिन्न एक

स्वतंत्र व्यक्तित्वके रूपमें संसारमें घूमती है। वह एक छोटा-सा, कम या अधिक बड़ा चक्कर लगाकर तुम्हारे पास वापिस आ जाती है, शायद तबतक तुम उसे भूल चुके हो। जिन लोगोंमें एक तरहका आवेश होता है, जो कुछ चीज चाहते हैं — उनमेंसे वह एक छोटी-सी सत्ताके रूपमें बाहर जाता है मानों परिवेशमें एक छोटी-सी लौ हो। इस छोटी सत्ता-की अपनी नियति होती है। वह संसारमें घूमती-फिरती है शायद चीजें इसे इधर-से-उधर उछालती हैं। तुम उसे भूल चुकते हो। लेकिन वह नहीं भूलेगी कि उसे अमुक परिणाम लाना है... कई-कई दिनोंतक तुम अपने-आपसे कहते हो: "ओह! मैं उस स्थानतक — उदाहरणके लिये, जापान-तक, जानेके लिये कितना इच्छुक हूं। मैं इतनी सारी चीजें देखना चाहूंगा।" और तुम्हारी इच्छा तुम्हारे अंदरसे बाहर निकल पड़ती है। लेकिन इच्छाएं भगोड़ी होती हैं, तुम उसे पूरी तरह भूल गये हो, जिसे तुमने इतनी शक्तिके साथ बाहर फेंका था। किसी और चीजके बारेमें सोचनेके लिये तुम्हारे पास बहुत-से कारण हैं। दस वर्ष या उससे भी अधिक के बाद, कम भी संभव है, वह तुम्हारे पास तुरत परोसी हुई गरम रसोईकी तरह वापिस आती है। हां, भली-भांति सजे हुए गरम भोजन-की तरह। तुम कहते हो: "मुझे अब इसमें रस नहीं है।" दस-बीस वर्ष बाद तुम्हें उसमें रुचि नहीं रहती। यह एक छोटी-सी रचना थी जो बाहर गयी और उसने भरसक अपना काम किया...। यह असंभव है कि इच्छाएं तो हों पर वे पूरी न हों, चाहे कोई छोटी-सी इच्छा ही क्यों न हो, रचना जो कर सकती थी कर चुकी, उसने काफी कष्ट उठाया, उसने बड़ी मेहनत की और अब बरसोंके बाद लौटी है। वह एक नौकरकी तरह है जिसे तुमने कहीं भेजा था, जिसने अपना भरसक काम किया है। जब वह लौटता है तो तुम कहते हो: "यह तुमने क्या किया है?" — "लेकिन, मालिक, आप ही तो चाहते थे।"

यह नहीं हो सकता कि तुम कोई सशक्त विचार बनाओ और वह एक छोटे-से गुब्बारेकी तरह तुम्हारे अंदरसे बाहर न जाये। हमारे यहां कुछ कहानियां हैं जो अविश्वास करने लायक नहीं हैं। जैसे एक कंजूसकी कहानी है जो अपने धनके सिवाय किसी चीजके बारेमें न सोचता था। उसने अपनी जमीन-जत्था कहीं छिपा रखी थी और हमेशा उसे देखनेके लिये जाया करता था। अपनी मौतके बाद भी वह भूतके रूपमें आकर (अर्थात्, उसका प्राण पुरुष) अपने धनकी रखवाली करता था। कोई भी आदमी विपत्तिमें पड़े बिना उस जगहके पास न फटक सकता था। यह ऐसा ही होता है। अगर तुमने किसी चीजके लिये काम किया है तो वह

जरूर प्राप्त होगी। वह तुम्हारी मौतके बाद भी प्राप्त हो सकती है। हां, जब तुम्हारे शरीरका अस्तित्व नहीं रहता तब भी, तुम्हारे स्पंदनोंमेंसे किसीका अंत नहीं आता। वे कहीं-न-कहीं सिद्ध होते हैं। बुद्धने यही कहा था : स्पंदन जीते रहते हैं स्थायी बननेके लिये। वे संक्रामक होते हैं। वे दूसरोंके अंदर बने रहते हैं, औरोंके अंदर चले जाते हैं और हर एक उनमें कुछ जोड़ देता है।

क्या सद्भावनाके स्पंदनोंसे हम संसारकी सहायता कर सकते हैं?

शुभ कामनाओंसे हम बहुत-सी चीजें बदल सकते हैं, पर वह बहुत ही शुद्ध और अमिश्रित सद्भावना होनी चाहिये। यह तो बिलकुल स्पष्ट है कि यदि संसारमें एक विचार, एक पूर्ण रूपसे शुद्ध प्रार्थना भेजी जाय तो वह अपना काम करती है। लेकिन जब वह पूर्णतः शुद्ध और सच्चा विचार आदमीके दिमागमेंसे गुजरता है तो शुद्ध कहां रहता है? वह नीचेकी ओर उतरता जाता है। यदि अंतःचेतना और ज्ञानके प्रयत्नसे तुम सचमुच अपने अंदर किसी कामनापर विजय पा सको, अर्थात्, उसे विघटित कर सको, उसे जड़से निकाल सको और यदि आंतरिक सद्भावनाके द्वारा, चेतना, प्रकाश, ज्ञानके द्वारा कामनाको विघटित कर सको तो सबसे पहले अपने अंदर व्यक्तिगत रूपसे, कामनाकी पूर्तिपर जितने प्रसन्न होते उससे सैकड़ों गुने अधिक प्रसन्न होगे और फिर इसका अद्भुत परिणाम होगा। इसकी प्रतिक्रिया सारे संसारमें होगी जिसका तुम्हें कोई अंदाज नहीं। वह फैलेगी। तुमने जो स्पंदन पैदा किये हैं वे फैलते जायंगे। ये चीजें बरफके गोलेकी तरह बढ़ती जाती हैं। तुम अपने चरित्रमें जो विजय प्राप्त करते हो, वह चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, वह ऐसी है जो सारे संसारमें प्राप्त की जा सकती है। अभी मेरा आशय इसीसे था। ये सब चीजें बड़े आंतरिक परिवर्तनके बिना केवल बाहरसे की जाती हैं — जैसे विद्यालय, हस्पताल वगैरा बनवाना — वे मिथ्याभिमानके द्वारा, बड़े होनेकी भावनाके द्वारा की जाती है जब कि ये छोटी अलक्षित चीजें जिन्हें अपने अंदर जीता जाता है, अनंतगुनी बड़ी विजय होती है, भले उनके परिणाम छिपे रहें। तुम्हारी जीवनकी प्रत्येक गति-विधि जो मिथ्या और सत्य-विरोधी है, वह भागवत जीवनका निषेध है। तुम्हारे छोटे प्रयासोंके अत्यंत परिणाम होते हैं, तुम्हें उन्हें जाननेका संतोष भी नहीं मिलता, परंतु वे सच्चे होते हैं और उनका प्रभाव ठीक निर्वैयक्तिक और सामान्य होता है।

अगर तुम सचमुच कुछ भला करना चाहते हो तो सबसे अच्छी चीज जो तुम कर सकते हो वह यह है कि एकके बाद एक पूरी सचाईके साथ अपने अंदर विजय प्राप्त करो। इस तरह तुम संसारके लिये अपनी क्षमताके अनुसार अधिक-से-अधिक कर सकोगे।

क्या हमारी जीत सारे संसारके लिये काम करेगी ?

वह सारे संसारको बदल नहीं देगी। क्योंकि तुम्हारी विजय संसारके लिये बहुत छोटी है। इस प्रकारकी लखोखा विजयोंकी जरूरत है। संसारकी तुलनामें तुम्हारी विजय बहुत ही छोटी है। लेकिन वह और चीजोंके साथ मिल जाती है...। यह कहा जा सकता है कि यह संसारमें एक चीज करने की क्षमता लानेके समान है। लेकिन इसके प्रभावपूर्ण ढंगसे काम करनेके लिये कभी-कभी सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। यह अनुपातका सवाल है। तुम इसका परीक्षण कर देखो, (और यह कहीं अधिक कठिन है), उन लोगोंके साथ कर देखो जो तुम्हारे चारों ओर हैं। इस बारेमें तुम्हें पूरी तरह निष्कपट होना चाहिये कि तुम जो कर रहे हो वह परिणामके विचारसे नहीं, बल्कि विजय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे कर रहे हो। यदि तुम जीत जाओ तो निश्चित रूपसे उसका प्रभाव तुम्हारे चारों ओरके लोगोंपर होगा। किंतु यदि इसमें सौदेबाजीकी भावना मिल जाय, अगर तुम यह चीज इसलिये करो कि तुम वह दूसरा परिणाम चाहते हो : "मैं अपनी त्रुटियोंपर विजय पाना चाहता हूं, लेकिन उस व्यक्तिको भी ऐसी ही विजय प्राप्त करनी चाहिये," तब यह चीज काम न करेगी। यह तो व्यापारीकी वृत्ति है : "मैं यह देता हूं, पर वह लूंगा ?" इससे सब कुछ बिगड़ जाता है। यह न तो सचाई या निष्कपटता है, न शुद्धि है। यह सौदेबाजी है।

तुम्हारी सचाईमें, तुम्हारे उद्देश्य-हेतुमें, तुम्हारी अभीप्सामें और कोई चीज नहीं मिलनी चाहिये। तुम भगवान्‌के प्रेमके लिये, सत्यके लिये, पूर्णताके लिये बिना किसी हेतु, बिना किसी विचारके चीजें करते हो। और इसीसे परिणाम आते हैं।

आपने लिखा है: "भागवत शक्तियोंको जबरदस्ती खींचनेकी कोशिश न करो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१४ अप्रैल)

क्या कोई उग्रतासे भागवत शक्तियोंको खींच सकता है?

हां, यदि तुम बहुत जोरसे बुलाओ। अगर तुम बहुत जोरसे अभीप्सा करो तो तुम अपने अंदर बहुत सारी शक्तियोंको खींच सकते हो, लेकिन तुम्हारे अंदर उन्हें पहचाननेकी, उन्हें आत्मसात् करनेकी शक्ति न होगी। यह वही बात है जो भोजनके साथ होती है। जब तुम हाथमें जो कुछ हो वह एक साथ निगल जाते हो तो अजीर्ण हो जाता है; गला रुंध जाता है, तुम उसे नहीं सह सकते। तो यदि तुम तेजीसे जाना चाहो तो तुम जल्दी करते हो, एक प्रकारकी पुकार भेजते हो, अपनी ओर बहुत अधिक शक्तियोंको खींचते हो, ऐसी शक्तियोंको जो, अन्यथा, कम तेजीसे आतीं।

जरा-सी छिपी हुई महत्त्वाकांक्षा ही काफी है...। ऐसे लोग हैं जो योग योग करनेके लिये नहीं, परिणाम पानेके लिये, शक्तियां पानेके लिये, किसी-न-किसी चीजको जाननेके लिये करते हैं।

तो इसका मतलब हुआ कि वे निष्कपट नहीं हैं? तब फिर भगवान् प्रत्युत्तर कैसे देते हैं?

तुम्हारा ख्याल है कि भगवान्में छोटा-सा मानव विवेक है? तुम्हें भगवान्-पर अपने मानव विचारोंको प्रक्षिप्त नहीं करना चाहिये।

अगर तुम सच्चे नहीं हो तो तुम्हारी अपनी चेतनापर परदा पड़ जाता है। उदाहरणके लिये, एक आदमीको लो जो झूठ बोलता है। उसकी चेतनापर परदा पड़ जाता है और कुछ समय बाद वह सत्य और मिथ्या-में फर्क नहीं कर सकता। वह बिंब देखता है और उन्हें सत्य कह लेता है। जो दुष्ट है वह अपनी अभीप्सा खो बैठता है, समझने, अनुभव करने और उपलब्ध करनेकी सारी संभावना खो बैठता है। यही दंड है।

आदमी परदे डालता है। अपने और भगवान्के बीच बाधाएं खड़ी

करता है। इस प्रकार आदमी अपने-आपको दंड दे लेता है। भगवान् पीछे नहीं हटते, आदमी अपने-आपको उन्हें पानेमें असमर्थ बना लेता है। भगवान् इस तरह पुरस्कार और दंड नहीं बांटा करते। यह ऐसी बिलकुल नहीं है।

जब आदमी कपटी होता है, जब उसमें अशुभ भावना होती है, जब वह विश्वासघातक होता है तो वह तुरत अपने-आपको दंड दे लेता है। कपटी लोग अपनी थोड़ी-सी वह चेतना भी खो बैठते हैं जो यह बता सकती कि वे दुष्ट हैं। वे मानों निश्चेतन बन जाते हैं। और उनका अंत ऐसे होता है कि वे किसी विषयमें कुछ भी नहीं जानते।

आप "बाहरी सत्तामें संतुलनका आधार" किसे कहती हैं?

(वही)

अच्छा स्वास्थ्य, ठोस शरीर, सुसंतुलित। जब तुम्हारी स्नायुएं छोटी लड़कीके जैसी नहीं होतीं कि बात-बातमें हिल जायं, जब व्यक्ति अच्छी तरह सोता है, अच्छी तरह खाता है... जब वह बिलकुल धीर, अच्छी तरह संतुलित, बिलकुल शांत होता है तब उसकी नींद ठोस होती है और वह बहुत-सी शक्तियोंको ले सकता है।

अगर तुममेंसे किसी एकने आध्यात्मिक शक्तियां पायी हैं, भगवान्की शक्तियां पायी हैं, उदाहरणके लिये, आनंद, तो वह अनुभवसे जानता है कि अगर वह स्वस्थ न हो तो वह उन्हें अपने अंदर समा नहीं सकता, उन्हें रख नहीं सकता। वह रोना-चिल्लाना शुरू कर देता है, जो मिला है उसे खर्च कर डालनेके लिये बेचैन हो जाता है। उसे हंसना, बात-चीत करना, इशारा करना पड़ता है, वरना वह उस चीजको नहीं रख सकता। उसे घुटन होती है। इस तरह हंस-रोकर, घूम-फिरकर वह जो कुछ मिला है उसे बाहर फेंक देता है।

अच्छी तरह संतुलित होनेके लिये, जो कुछ प्राप्त हुआ है उसे अपना लेनेके लिये तुम्हें बहुत स्थिर और शांत होना चाहिये। तुम्हारे अंदर ठोस नींव, अच्छा स्वास्थ्य होना चाहिये। तुम्हारे अंदर बहुत ठोस नींव होनी चाहिये। यह बहुत जरूरी है।

बाहरी समता और अंतरात्माकी समतामें क्या भेद है?

अंतरात्माकी समता एक मनोवैज्ञानिक चीज है। यह है, अच्छा-बुरा जो

कुछ भी हो उसे दुःखी, निरुत्साहित, निराश या विक्षुब्ध हुए बिना सह सकना। जो कुछ भी हो तुम विक्षुब्ध हुए बिना शांत बने रहो।

दूसरी है शरीरकी समता। यह मनोवैज्ञानिक नहीं, कुछ भौतिक चीज है। भौतिक संतुलन रखो और बिना परेशानीके शक्तियोंको ग्रहण करो।

यदि कोई इस मार्गपर प्रगति करना चाहता है तो दोनों समान रूपसे जरूरी हैं। इनके अतिरिक्त और चीजें भी हैं। उदाहरणके लिये, मानसिक संतुलन जिसमें सभी संभव विचार, यहांतक कि परस्पर विरोधी विचार भी चारों ओरसे आते रहें पर आदमी परेशान न हो। व्यक्ति उन्हें देखकर हर एकको यथास्थान रख सके। यह मानसिक संतुलन है।

२२ अप्रैल, १९५३

स्वप्न और निद्राके बारेमें यह छोटा-सा अवतरण एक लंबी वार्ताका भाग है जो पूरी तरह ध्वन्यांकित नहीं हुई।

जब आदमी सोता है तो वह अंतर्दर्शनोंकी प्रकृतिमें भेद कैसे करे?

वे एक-सा संस्कार नहीं छोड़ते। चीजोंको भली-भांति जाननेके लिये अपने-आपको शिक्षा देनी पड़ती है और चेतनाको विकसित करना पड़ता है। लेकिन सब प्रकारकी चीजें होती हैं, इनमें मानसिक और प्राणिक प्रक्षेपण होते हैं, ठीक सिनेमाकी तरह। फिर ऐसे अंतर्दर्शन होते हैं जो मानसिक या प्राणिक लोकमें बाहर जानेपर दिखायी देते हैं। बहुत बड़ा फर्क यह है कि ये स्वप्न तुम पर लादे जाते हैं, तुम इनमें पकड़े जाते हो।

(यहां कुछ हिस्सा गायब है।)

फिर अनगिनत स्वप्न ऐसे होते हैं जिनमें कोई शृंखला नहीं होती, उनमें कोई मजेकी बात नहीं होती। तुम्हारा मस्तिष्क एक ध्वन्यांकन-यंत्र जैसा है। कोई चीज आती है और सैकड़ों कोषाणुओंपर चोट करती है। हर

चीजमेंसे एक स्वर निकलना चाहिये। चीजें मस्तिष्कके कुण्डलोंपर चोट करती हैं — एक स्मृति, एक छाप, बहुत प्रकारकी छोटी-मोटी यादें (यह तुम्हारी स्थितिपर निर्भर है)। लेकिन तुम्हारा नियंत्रण होता है। विचार एक-दूसरेके बाद किसी विशेष युक्तिके अनुसार आते हैं। एक ऐसी यंत्र-रचना भी होती है जो छूतके द्वारा स्मृतियोंको गति देती है और छूतके द्वारा गति युक्तियुक्त (जिसे तुम युक्ति कहते हो) ढंगसे होती है। लेकिन जब तुम सोते हो तो यह क्षमता भी प्रायः सो जाती है। सभी छोटे-छोटे कोषाणु अपने हालपर छोड़ दिये जाते हैं और संयोजन, जो बिजलीके संयोजनोंके जैसे होते हैं, काम नहीं करते। चीजें गलत दिशामें आती हैं या किसी भी ओरसे आती हैं, तुम्हें उनमें कोई अर्थ नहीं ढूंढना चाहिये। यह एक छूत थी। चूंकि इसमें स्पंदन हो रहा था इसलिये वह भी स्पंदित होने लगा। एक स्पंदन दूसरेको पैदा करता है। तुम्हारा तर्क अब यहां काम नहीं करता। तुम्हें ऊट-पटांग-से निरर्थक स्वप्न दिखायी देते हैं।

अपने मनको विश्राम देना बहुत कठिन है। अधिकतर लोग बहुत थके हुए जागते हैं, वे जितने थके हुए सोते हैं उससे ज्यादा थके हुए जागते हैं। तुम्हें अपने मनको शांत करना सीखना चाहिये। उसे बिलकुल खाली कर दो। जब तुम उठोगे तो बिलकुल ताजा अनुभव करोगे। तुम्हें अपने पूरे मनको शुद्ध, श्वेत नीरवतामें ढीला छोड़ देना चाहिये। तब तुम्हें कम-से-कम स्वप्न आयंगे।

२९ अप्रैल, १९५३

मधुर मां, आपने कहा है कि आदमी अपने सचेतन संकल्पका उपयोग करके स्वप्नोंकी दिशा बदल सकता है।

हां, मैं पहले ही एक बार यह बता चुकी हूं। अगर तुम स्वप्नके बीचमें हो और कोई ऐसी चीज हो जो तुम्हें पसंद नहीं है (उदाहरणके लिये, कोई चिल्लाता है कि वह तुम्हें मार डालना चाहता है), तो तुम कहो: "यह बिलकुल नहीं चलेगा। मैं अपना स्वप्न इस तरह नहीं चाहता," और तुम उसकी क्रिया या उसके अंतको बदल सकते हो। तुम अपने

स्वप्नको जैसा चाहो वैसा व्यवस्थित कर सकते हो। तुम अपने स्वप्नोंको क्रमबद्ध कर सकते हो। लेकिन इसके लिये तुम्हें सचेतन होना चाहिये कि तुम स्वप्न देख रहे हो, तुम्हें जानना चाहिये कि तम स्वप्न देख रहे हो।

लेकिन इन स्वप्नोंका बहुत महत्त्व नहीं होता — होता है क्या?

हां, महत्त्व होता है। तुम्हें सचेतन होना चाहिये कि क्या हो सकता है। मान लो कि तुम प्राणिक जगत्में घूमने निकले हो। वहां तुम्हें ऐसी सत्ताएं मिलती हैं जो तुमपर आक्रमण करती हैं (यह प्रायः होता है), अगर तुम जानते हो कि यह स्वप्न है तो तुम बहुत आसानीसे अपनी प्राणिक शक्तियोंको इकट्ठा कर सकते हो और विजय पा सकते हो। यह एक सच्चा तथ्य है। तुम किसी विशेष वृत्तिसे, किसी शब्द-विशेषसे, एक विशेष प्रकारके होकर ऐसी चीजें कर सकते हो जो तुम सिर्फ स्वप्न देखनेकी अवस्थामें कभी न करते।

अगर स्वप्नमें कोई तुम्हें मार डाले तो कोई बात नहीं, यह स्वप्न ही तो है।

क्षमा करो! सामान्यतः अगले ही दिन तुम बीमार हो जाते हो, या थोड़े दिन बाद हो सकते हो। यह एक चेतावनी है। मैं एक ऐसे व्यक्तिको जानती हूं जिसकी आंखोंमें स्वप्नमें इसी तरह चोट आयी थी और वास्तवमें कुछ दिन बाद वह अंधा हो गया। मेरे बारेमें, एक बार मैंने स्वप्न देखा कि मेरे चेहरेपर मार पड़ रही है। अगले दिन जब मैं जागी तो उसी जगह, माथे और गालोंपर लाल निशान थे। स्पष्टतः प्राण पुरुषको लगा हुआ घाव भौतिक शरीरमें अनूदित हो जाता है।

लेकिन यह कैसे होता है? कोई माध्यम तो होता ही होगा।

मुझे प्राणमें पीटा गया था। यह अंदरसे आता है। बाहरसे किसी व्यक्ति या किसी चीजने छुआ भी नहीं। अगर अपने प्राणमें तुम्हारे चोट लगे तो शरीर परिणाम भोगता है। हमारी आधीसे ज्यादा बीमारियां इस तरहकी चोटका परिणाम होती हैं और यह, हम जितना मानते हैं उससे

बहुत ज्यादा बार होता है। लेकिन लोग अपने प्राणके बारेमें सचेतन नहीं होते और चूंकि वे सचेतन नहीं होते इसलिये यह नहीं जानते कि उनकी पचास प्रतिशतसे अधिक बीमारियां प्राणमें हुई किसी चीजके कारण आती हैं: आघात, दुर्घटनाएं, लड़ाई, दुर्भावना...। बाहरी रूपसे यह सब बीमारीमें अनूदित होता है। अगर तुम यह जानते हो कि यह भौतिक-पर किस तरह प्रतिक्रिया करती है तो तुम मूल-स्रोततक जाकर अपने-आपको कुछ घंटोंमें ही स्वस्थ कर सकते हो।

यह कैसे होता है कि स्वप्नोंके प्रतीक परंपराओं, जातियों और धर्मोंके अनुसार बदलते रहते हैं?

क्योंकि स्वप्नोंको जो रूप दिया जाता है वह मानसिक होता है। अगर तुमने सीखा है कि अमुक प्रकारका रूप अमुक पौराणिक देवी-देवताका प्रतीक है तो तुम उस रूपको देखते हो और कहते हो: "यह वही है।" तुम्हारे मनमें कुछ विचारोंका कुछ विशेष रूपोंके साथ संबंध है, स्वप्न-में यही चीज जारी रहती है। जब तुम अपने स्वप्नको अनूदित करने लगते हो तो जो तुमने सीखा है उसके अनुरूप व्याख्या देते हो, जो तुम्हें पढ़ाया गया है और तुम्हारे मस्तिष्कमें जो मानसिक बिंब बना है तुम उसीके अनुसार जानते हो। और फिर यह बात मैंने जरा आगे चलकर जोन ऑफ आर्कके अंतर्दर्शनोंके सिलसिलेमें समझायी है।

(माताजी पुस्तक लेकर पढ़ती हैं): "जो सत्ताएं हमेशा जोन ऑफ आर्कके पास आती और उससे बातें करती थीं उन्हें अगर कोई हिंदुस्तानी देखता तो उसे कोई और ही रूप दिखायी देता: क्योंकि जब तुम देखते हो तो अपने मनके रूपको ही प्रक्षिप्त करते हो...। भारतमें तुम्हें एक अंतर्दर्शन होता है जिसे तुम दिव्य माता कहते हो। उसीको कैथोलिक कुमारी मरियम कहते हैं और वही जापानियोंकी क्वानोन है या दयाकी देवी; दूसरे लोग उसीको कुछ और नाम दे लेंगे। वही बल है, वही शक्ति है, लेकिन अलग-अलग मत उसकी अलग-अलग प्रतिमाएं बना लेते हैं।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२१ अप्रैल)

और फिर? आज तुम बहुत बातूनी नहीं हो! तो बस?

आप कहती हैं कि "हर व्यक्तिके स्वप्न-बिंबोंकी अपनी ही दुनिया होती है।"

(वही)

हर व्यक्तिका अभिव्यक्त करनेका, सोचनेका, बोलनेका, अनुभव करनेका, समझनेका अपना ही तरीका होता है। सत्ताके ये तरीके मिलकर व्यक्तिका निर्माण करते हैं। इसीलिये हर एक अपनी प्रकृतिके अनुसार ही समझ सकता है। जबतक तुम अपनी प्रकृतिमें बंद हो तबतक तुम केवल वही जान सकते हो जो तुम्हारी चेतनामें है। सब कुछ तुम्हारी चेतनाकी प्रकृतिकी ऊंचाईपर निर्भर है। तुम्हारी चेतनामें जो कुछ है, तुम्हारा संसार बस वहींतक सीमित है। अगर तुम्हारी चेतना बहुत छोटी-सी है तो तुम बस थोड़ी-सी ही चीजें समझ सकोगे। जब तुम्हारी चेतना बहुत विशाल हो तभी तुम संसारको समझ सकोगे। अगर चेतना तुम्हारे छोटेसे अहंतक ही सीमित है तो बाकी सब तुम्हारी पकड़से निकल जायगा ...। ऐसे लोग होते हैं जिनका मस्तिष्क और जिनकी चेतना अखरोटसे भी छोटे होते हैं। तुम जानते हो कि अखरोट दिमागसे मिलता-जुलता है; तो ये लोग चीजोंको देखते हैं पर समझते नहीं। वे सिर्फ उन्हीं चीजोंको समझ सकते हैं जिनका सीधा संपर्क उनकी इंद्रियोंके साथ है — और कुछ नहीं। उनके लिये सत्य वही है जिसे वे चख सकते हैं, जिसे देख, सुन और छू सकते हैं; बाकी सबका कोई अस्तित्व ही नहीं। वे हमें मनमानी बातें करनेका दोष देते हैं! वे कहते हैं: "जिस चीजको मैं छू नहीं सकता उसका अस्तित्व नहीं है।" उन्हें एक ही उत्तर दिया जा सकता है: "उसका तुम्हारे लिये कोई अस्तित्व नहीं है, पर यह कोई कारण नहीं कि दूसरोंके लिये भी उसका अस्तित्व न हो।" तुम्हें इन लोगोंके साथ आग्रह न करना चाहिये। तुम्हें यह न भूलना चाहिये कि जो जितना छोटा होता है वह उतने ही अधिक ढिठाई-भरे दावे कर सकता है।

आदमीकी मतांधता उसकी अचेतनाके अनुपातमें होती है। जो जितना ज्यादा अचेतन होता है वह उतना ही अपने ऊपर अधिक विश्वास करता है। सबसे अधिक मूर्ख सबसे अधिक घमंडी होते हैं। तुम्हारी मूर्खता तुम्हारे घमंडके अनुपातमें होती है। आदमी जितना अधिक जानता है...। वास्तवमें, एक समय होता है जब आदमीको यह विश्वास होता है कि वह बिलकुल कुछ नहीं जानता। संसारमें एक क्षण भी ऐसा नहीं होता जो कुछ नयी चीज नहीं लाता, क्योंकि संसार निरंतर बढ़ता जाता है। अगर

आदमी इस विषयमें सचेतन हो तो उसके लिये हमेशा सीखने लायक कोई नयी चीज रहती ही है। लेकिन आदमी उसके बारेमें धीरे-धीरे ही सचेतन हो सकता है। अपनी जानकारीके बारेमें विश्वास, अपनी मूर्खता और अज्ञानके अनुपातमें होता है।

मां, तो क्या वैज्ञानिकोंकी चेतना बहुत छोटी होती है?

क्यों? सभी वैज्ञानिक ऐसे नहीं होते। अगर तुम किसी सच्चे वैज्ञानिकसे मिलो जिसने कठोर परिश्रम किया हो तो वह तुमसे कहेगा: "हम कुछ नहीं जानते। हम कल जो जानेंगे उसकी तुलनामें आज जो जानते हैं वह कुछ भी नहीं है। इस वर्षकी खोजें अगले वर्ष पीछे छूट जायंगी।" सच्चा वैज्ञानिक जानता है कि वह जितनी चीजें जानता है उनकी अपेक्षा वे चीजें बहुत ज्यादा हैं जिन्हें वह नहीं जानता। और यह बात मानव क्रिया-कलापकी सभी शाखाओंके बारेमें सच्ची है। मैंने कभी ऐसा वैज्ञानिक नहीं देखा, जो इस नामके योग्य हो, जो घमंडी हो। मैंने कभी ऐसा आदमी नहीं देखा, जिसका कुछ मूल्य हो, जो कहता हो: "मैं सब कुछ जानता हूं।" मैंने जिन लोगोंको देखा है उन्होंने हमेशा स्वीकार किया है: "संक्षेपमें, मैं कुछ नहीं जानता।" उसने जो कुछ किया है, उसे जो कुछ मिला है उस सबकी चर्चा करनेके बाद वह शांतिसे कहता है: "आखिर, मैं कुछ नहीं जानता।"

ऐसे लोग हैं जो विनम्र दीखनेके लिये कभी-कभी कह देते हैं: "मैं कुछ नहीं जानता," परंतु इस बातपर विश्वास नहीं करते।

संसार-भरमें सभी जगह कपटी और ढोंगी लोग हैं। यह उनका दुर्भाग्य है। वे प्रगतिका द्वार पूरी तरह बंद कर देते हैं। बस।

तो हम लोगोंके लिये, जो कक्षामें आते हैं, अध्ययन करना खतरनाक है?

नहीं, इसके बिलकुल विपरीत! अगर तुम अच्छी तरहसे अध्ययन करना शुरू करो तो तुम्हारी चेतना जागती है और तुम्हें इस बातका ज्यादा अच्छी तरह पता लग जाता है कि तुम्हारे अंदर अभीतक क्या नहीं है। इसी बातसे मुझे एक महिलाकी याद हो आयी जिसने धीरे-

धीरे सचेतन होनेके बाद मुझसे कहा: "आपकी बातें सुननेसे पहले मुझे आदमियोंपर विश्वास था, हर एक बहुत भला था और मैं सुखी थी। लेकिन अब जब मैंने स्पष्ट देखना शुरू किया है, मैं सचेतन हो गयी हूं तो मैं अपनी सारी शांति खो बैठी हूं। सचेतन होना भयंकर है।"

तो क्या करना चाहिये? — और अधिक सचेतन बनो। थोड़ा-सा सीखना बहुत बुरा है। तुम्हें अधिक सीखना चाहिये, यहांतक कि तुम उस स्थितिमें आ जाओ जहां तुम देख सको कि तुम्हें कुछ नहीं आता . . .। मैंने तुम्हें उस नौसिखियेकी बात बतायी थी जो, उसने जो कुछ सीखा था उसे औरोंतक पहुंचाना चाहता था — जबतक कि उसे यह पता नहीं लग जाता कि उसके पास औरोंतक पहुंचानेके लिये कुछ अधिक नहीं है। सामान्यतः सभी धार्मिक शिक्षाएं इसीपर आधारित होती हैं। बहुत थोड़ा-सा ज्ञान, पक्के बंधे-बंधाये सूत्र जो प्रायः अच्छी तरह लिखे होते हैं (प्रायः काफी अच्छी तरह लिखे हुए), दिमागमें जम जाते हैं और दावेके साथ कहते हैं: "वास्तवमें यही सत्य है।" तुम बस इतना ही पढ़ लो जो इस पुस्तकमें लिखा है। यह कितना आसान है! हर एक धर्ममें एक पुस्तक होती है चाहे वह प्रश्नोत्तरी हो, हिंदू शास्त्र हों, कुरान हो, संक्षेपमें, सभी पवित्र ग्रंथ — तुम उन्हें रट डालो। तुमसे कहा जाता है कि बस यही सत्य है और तुम इस बारेमें निश्चित होते हो कि यही सत्य है और आरामसे रहते हो। यह बहुत सुविधाजनक है, तुम्हें समझनेकी कोशिश करनेकी जरूरत नहीं। जो लोग उसी चीजको नहीं जानते जिसे तुम जानते हो वे मिथ्यात्वमें हैं, और तुम उनके लिये प्रार्थना भी करते हो जो "सत्य"के बाहर हैं। सभी धर्मोंके बीच यह एक सामान्य तथ्य है। लेकिन सभी धर्मोंमें ऐसे लोग हैं जो ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं और इन बातोंपर विश्वास नहीं करते। मुझे ऐसा एक आदमी मिला था जो कैथोलिक धर्मावलंबी था। वह एक बड़ा आदमी था। मैंने उससे मैं जो जानती थी उसके बारेमें बातचीत की और पूछा: "आप इस तरीकेका उपयोग क्यों करते हैं? आप अज्ञानको स्थायी क्यों बनाना चाहते हैं?" उन्होंने उत्तर दिया: "यह शांतिकी नीति है। अगर हम यह न करें तो लोग हमारी बात न सुनेंगे। वास्तवमें, यही धर्मोंका रहस्य है।" उन्होंने मुझसे कहा: "हमारे धर्ममें भी, प्राचीन दीक्षाओंकी तरह जाननेवाले लोग हैं। ऐसे विद्यालय हैं जहां प्राचीन परंपराएं सिखायी जाती हैं। लेकिन हमें उनके बारेमें बातचीत करना मना है। ये सभी धार्मिक बिंब किसी चीजको चित्रित करनेवाले प्रतीक हैं। उनका अर्थ जो सिखाया जाता है उससे भिन्न है, लेकिन वह अर्थ बाहर नहीं सिखाया जाता।"

(उनके अनुसार) इसका कारण बहुत उदारतापूर्ण और दयापूर्ण है: जिन लोगोंके छोटे-से दिमाग हैं — और ऐसे बहुत-से हैं — अगर हम उन्हें ऐसी चीज बतायें जो उनके लिये बहुत ऊंची हैं तो वह उन्हें कष्ट देती है और परेशान करती है और वे दुःखी हो जाते हैं। वे कभी न समझ सकेंगे। उन्हें व्यर्थमें क्यों परेशान किया जाय? उनके अंदर सत्यको पानेकी क्षमता नहीं है। जब कि अगर तुम उनसे कहो: "अगर तुम्हें इस बातपर श्रद्धा है तो तुम स्वर्ग जाओगे," तो वे बहुत खुश रहते हैं। तो देखो, यह बहुत सुविधाजनक है। इसीलिये इसे स्थायी बनाया जाता है, अन्यथा कोई धर्म न टिकेगा।

मैं तुमसे यह बात किसी धर्मकी तुलनामें किसी और विशेष धर्मको प्रोत्साहित करनेके लिये नहीं कह रही। पर यह ऐसी प्रक्रिया है जो उदार मालूम होती है...। अन्यथा कोई धर्म ही न होंगे। गुरु और शिष्य होंगे, ऐसे लोग जिनके पास उच्चतर शिक्षा और विरल अनुभूति है। यह बहुत अच्छी चीज होगी। लेकिन जैसे ही गुरु चला जाता है तो होता यह है कि उसकी शिक्षाको धर्ममें बदल दिया जाता है, कठोर मतवाद बन जाते हैं, धार्मिक नियम बन जाते हैं और धर्मके विधानके आगे झुकना अनिवार्य हो जाता है। और फिर भी, आरंभमें ऐसा न था। तुमसे कहा जाता है: "यह सत्य है, यह मिथ्या है। गुरुने कहा है..." कुछ समय बाद गुरु भगवान् बन जाता है और तुमसे कहा जाता है: "भगवान्‌ने यह कहा है।"

ध्यान रखो कि मैं तुमसे यह सब इसलिये कह रही हूं क्योंकि मैं जानती हूं कि यहां तुम सब धर्मोंसे मुक्त हो। यदि मेरे सामने कोई ऐसा व्यक्ति हो जो किसी धर्मपर विश्वास रखता है तो मैं उससे कहूंगी: "यह बहुत अच्छा है, अपना धर्म बनाये रखो, जारी रखो।" तुम्हारे सबके सौभाग्यसे तुम्हारा कोई धर्म नहीं है। और मैं आशा करती हूं कि होगा भी नहीं। क्योंकि उसका अर्थ होता है समस्त प्रगतिके लिये द्वार बंद।

६ मई, १९५३

"लोग प्रायः धरतीपर मिलनेसे पहले इन (मानसिक या प्राणिक) स्तरों या लोकोंमें मिलते हैं। वे यहां इकट्ठे हो सकते हैं,

बातचीत कर सकते हैं और वे सब संबंध रख सकते हैं जो भरतीपर होते हैं। कुछ लोग इन संबंधोंके बारेमें जानते हैं, कुछ नहीं जानते। कुछ लोग, वास्तवमें अधिकतर लोग, आंतरिक सत्ता और आंतरिक संपर्कके बारेमें अचेत होते हैं, फिर भी यह होता है कि जब वे संसारमें कोई नया चेहरा देखते हैं वह उन्हें बहुत परिचित, जाना-पहचाना लगता है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२१ अप्रैल)

यह बहुत हदतक तुम्हारी आंतरिक सत्ताकी चेतनाके स्तरपर निर्भर है। अधिकतर लोगोंके लिये यह सब मानसिक, प्राणिक और भौतिक स्तरोंपर मिश्रण होता है। वे इस बारेमें जरा भी सचेतन नहीं होते कि क्या हो रहा है। कुछ लोग सचेतन होते हैं और जब उनसे कहा जाता है: "मैं आपको इसी तरह जानता था, हां, मैं आपको घनिष्ठ रूपसे जानता हूं। मुझे ऐसा लगता है पर यह छाप है बहुत अस्पष्ट-सी", तो उनको भी कुछ इसी तरह लगता है। बहुत कम लोग इतने विकसित होते हैं कि यह कह सकें: "मैंने आपको अमुक परिस्थितियोंमें देखा है", फिर भी ऐसा हुआ तो है।

और फिर वह है जिन्होंने थोड़ा-बहुत जान लिया है, जो कम या अधिक गुह्यवेत्ता होते हैं या बचकाने ढंगसे पुनर्जन्मपर विश्वास करते हैं। वह मानते हैं कि एक छोटे-से व्यक्तिने चोगा पहन लिया है, और वह है शरीर, और जब यह कपड़ा गिर जाता है तो वह जाकर एक और पहन लेता है, फिर एक और... एक गुड़ियाकी तरह जिसके कपड़े बदले जाते हैं। उनके लिये यह बात ऐसी ही होती है: व्यक्ति शरीर उसी तरह बदलता है जैसे वह अपने कपड़े बदलता है। कुछ लोगोंने किताबें भी लिख डाली हैं जिनमें वे बंदरकी योनिसे लेकर अपने सभी जन्मोंकी सारी बातें बताते हैं! लेकिन वास्तवमें यह बिलकुल बचपना है, क्योंकि हजार-मेंसे नौ सौ निन्नानवे उदाहरणोंमें केवल छोटी-सी केंद्रीय सत्ता ही, मृत्युके बाद बनी रहती है, बाकी सब घुल जाता है, टुकड़े-टुकड़े होकर इधर-उधर बिखर जाता है और व्यक्तित्व बिलकुल नहीं बचता। भौतिक जीवनमें, भौतिक जीवनके क्रिया-कलापमें कितनी बार चैत्य पुरुष सचेतन रूपसे काम करता है?... मैं उन लोगोंकी बात नहीं कर रही जो योग करते हैं या जरा साधनारत हैं। मैं औसत लोगोंकी बात कर रही हूं जिनमें चैत्य क्षमता है, अर्थात्, जिनका चैत्य इतने पर्याप्त रूपमें विकसित हो चुका है कि जीवनमें हस्तक्षेप और मार्ग-दर्शन कर सके — कइयोंमें चैत्यके हस्त-

तेपके बिना बरसों-पर-बरस गुजर जाते हैं। और वह आकर तुमसे कहते हैं कि वे किस देशमें पैदा हुए थे, उनके मां-बाप कैसे थे और वे किस घर में रहते थे, मकानके पास गिरजाकी छत कैसी थी और जंगल कैसा था, इसी तरहकी जीवनकी एकदम सामान्य बातें बताते हैं! यह एकदम मूर्खतापूर्ण बात है क्योंकि ये सब चीजें तो मिट चुकी हैं और अब उनका कोई अस्तित्व नहीं। तुम्हारे अंदर जो स्मृति रह सकती है वह उस क्षणकी हो सकती है जब कोई विशेष बात हुई हो, जिसे हम "मार्मिक" क्षण कह सकते हैं, जब चैत्य किसी आंतरिक पुकारके कारण या अनिवार्य आवश्यकताके कारण सहसा हस्तक्षेप करता है — चैत्य अचानक हस्तक्षेप करता है — और चैत्य-स्मृतिपर वह चीज अंकित रहती है। जब चैत्य-स्मृति हो तो तुम जीवनके उस क्षणकी परिस्थितियोंकी शृंखलाको याद रखते हो, विशेष रूपसे आंतरिक भावनाको और उस समय कार्य करनेवाली चेतनाको। और तब वह दूसरे संसर्गोंके साथ चेतनामें चला जाता है। उसके साथ ही आस-पासकी चीजें भी चली जाती हैं, जैसे बोला हुआ एक शब्द, सुना हुआ एक वाक्य। लेकिन जो चीज सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी, वह थी अंतरात्माकी अवस्था जिसमें तुम थे: क्योंकि वह बहुत स्पष्ट रूपसे अंकित रहती है। ये चैत्य जीवनके क्षेत्र-चिह्न हैं, ऐसी चीजें हैं जिन्होंने गहरी छाप छोड़ी है और उसकी रचनामें भाग लिया है, जब तुम्हें लगे कि तुम्हारा चैत्य पुरुष स्पष्ट, सतत रूपमें निरंतर तुम्हारे साथ है, तो ऐसे क्षण तुम्हें याद रहते हैं। ये थोड़े-से हो सकते हैं, पर ये तुम्हारे जीवनकी दीप्तियां हैं। तुम यह नहीं कह सकते: "मैं अमुक-अमुक व्यक्ति था, मैंने यह-यह किया। मेरा यह नाम था और मैं यह या वह करता था।" या फिर इसका मतलब होगा कि उस समय (यह विरल है) परिस्थितियोंका ऐसा मेल था कि व्यक्ति घटनाकी तारीख या जगह, देश या युग निश्चित कर सकता है। यह हो सकता है।

स्वभावतः चैत्य पुरुष अधिकाधिक भाग लेता जाता है और स्मृतियोंका समूह भी बढ़ता जाता है और तब व्यक्ति अपने जीवनका फिरसे अवलोकन कर सकता है, लेकिन पूरे ब्यौरेके साथ नहीं आदमी कह सकता है कि अमुक क्षणोंमें "चीज ऐसी थी," या "मैं ऐसा था।" अमुक क्षणोंमें, हां, जीवनके बहुत महत्त्वपूर्ण क्षणोंमें...। जरूरी बात तो यही है कि सत्ताका चैत्य पुरुषके साथ पूरी तरहसे तादात्म्य हो — जिसमें सारी सत्ता चैत्यके चारों ओर संगठित हो, सारी सत्ता उसके छोटे-से-छोटे भाग, उसके सभी तत्त्व, उस सत्ताकी सभी गतियां चैत्य केंद्रके इर्द-गिर्द हों। वह सब मिलकर अपने-आपको एकमात्र सत्तामें बना लें जो पूरी तरहसे भगवान्‌की ओर

मुड़ी हुई हो। तब यदि शरीर छूट जाय तो वह सत्ता बनी रहती है। समग्र रूपमें रची हुई चेतन सत्ता ही ठीक-ठीक याद रख सकती है कि पिछले जन्ममें और उससे पिछले जन्ममें क्या हुआ था। वह अपनी चेतनाका कोई अंश भी खोये बिना सचेतन रूपसे एक जीवनसे दूसरे जीवनमें जा सकती है। धरतीपर कितने आदमी इस भूमिकातक पहुंच पाये हैं? . . . मुझे नहीं लगता कि ऐसे लोग बहुत हैं और सामान्यतः उन्हें अपने अपूर्व अनुभव सुनानेमें जरा भी रुचि नहीं होती।

कुछ लोग हैं जो दूसरोंके जीवन सुनाते हैं।

हां, मैं जानती हूं। मैं बहुत-सी बातें जानती हूं। मैंने वह सब सुन रखा है जो कोई सुन सकता है। वे कहानी-पर-कहानी सुनाते जाते हैं। वे तुमपर निगाह डालते हैं और कहते हैं: "तुम अमुक व्यक्ति थे। तुमने यह-यह किया था।" मैं विश्वास दिलाती हूं कि यह सच नहीं है। क्योंकि मैं जानती हूं कि यह कैसे जाना जा सकता है कि तुमने अमुक व्यक्तिको कहां देखा था, वह कैसा था और अब कैसा है। यह कोई कहानी नहीं है कि तुम किताबमें लिख डालो। जब तुम किसीके अंदर देखते हो, जब तुम्हें यथार्थ रूपमें, चैत्य जगत्का बोध प्राप्त होता है जो तुम्हें यह क्षमता देता है कि तुम देख सको कि चैत्य कहां था, फिर अचानक तुम एक दृश्य, एक बिंब, एक रूप, एक शब्द देखते हो। एक प्रकारका संसर्ग होता है जिसके कारण अभीतक पिछले जन्मोंकी सहानुभूतियां और आकर्षण बने रहते हैं। लेकिन, जैसा कि मैं कह रही थी, ये जीवनमें "क्षण" होते हैं। और इस तरह आदमी देखता है, विभिन्न क्षणोंको देख सकता है, लेकिन सारे जीवनका वर्णन नहीं कर सकता।

मेरा ख्याल है श्रीअरविंदने इस बारेमें कुछ, बहुत मजेदार बात लिखी है — उन सब बड़े लोगोंके बारेमें जिनके नाम इतिहासमें सुरक्षित हैं — अनेकों सीजर, अनेकों महान् व्यक्ति, नेपोलियन, शेक्सपीयर! वे कितने हैं! वे सैकड़ों हैं! और उनकी कहानियां सुनो: "मैं यह था, मैं वह था, मैंने यह किया।" या उन बैठकोंमें देखो जहां तथाकथित "प्रेतात्माएं" आती और तुमसे बातचीत करती हैं। एक बड़ी संख्यामें लोग प्रेतात्माओंके साथ खिलवाड़ करनेमें मज़ा लेते हैं। स्वतःलेखन और विशेष रूपसे प्रेतात्माओंके साथ संपर्क साधनेमें मजा लेते हैं। कुछ बातूनी प्रेतात्माएं होती हैं जो एक ही समय अनेक स्थानोंपर आती हैं, विशेषकर नेपोलियन जैसे लोग (मालूम नहीं उन्हें नेपोलियनके लिये विशेष

आकर्षण क्यों है), हर जगह नेपोलियन आ जाता है और अपने जीवनकी असाधारण घटनाएं सुनाता है, प्रायः यह घटनाएं परस्पर-विरोधी होती हैं, शायद एक ही समयपर कही जाती हैं! सचमुच वे बड़े सक्रिय लोग होते हैं। यह सारी चीज अत्यंत हास्यास्पद है — और असंभव है।

सचमुच ये छोटी-छोटी प्राणिक सत्ताएं होती हैं। आदमीके मर जानेपर उसकी जो इच्छाएं बनी रहती हैं और अपना आकार बनाये रहती हैं, उनकी सड़ांधसे, तथा जो कल्पनाएं जमी रह गयी हैं लेकिन अभिव्यक्त होना और फिरसे प्रकट होना चाहती हैं उनसे, इन सत्ताओंका वर्ग उत्पन्न होता है। कभी-कभी ये छोटी-छोटी प्राणिक सत्ताएं होती हैं, जो बहुत अनुकूल नहीं होतीं, जैसे ही वे देखती हैं कि लोग स्वतःलेखन, प्रेतात्माओंके साथ संपर्क आदिके साथ खेल रहे हैं, वे भी आकर खेलने लग जाती हैं। और चूंकि वे ऐसे क्षेत्रमें होती हैं जहांसे आदमीके विचारोंको पढ़ सकना आसान है इसीलिये वे भली-भांति तुम्हें बता सकती हैं कि तुम्हारे दिमागमें क्या है। तुम जो आशा करते हो वे उसीके अनुकूल उत्तर देती हैं। तुम एक विशेष उत्तर चाहते हो, वे तुम्हारे पूछनेसे पहले ही उत्तर दे देती हैं! वे तुम्हें ठीक-ठीक ब्योरेकी बातें बता सकती हैं, वे कह सकती हैं कि तुम्हें यह-यह हुआ था, कि तुम्हारे परिवारके अमुक सदस्य . . . वे बहुत अच्छी तरह जानती हैं। वे भली-भांति विचार पढ़ लेती हैं और तुम्हें विश्वास दिलाते हुए बातें बनाती हैं। तुम कह उठते हो: "मैंने तो नहीं कहा था कि मैं विवाहित हूं और मेरे तीन लड़के और चार लड़कियां हैं। तब उसे यह सब कैसे मालूम हुआ?" — क्योंकि यह तुम्हारे सिरमें था।

चैत्य-स्मृतिका एक बहुत विशेष स्वरूप होता है, एक अद्भुत तीव्रता होती है, पर उनका इस तरह वर्णन नहीं किया जा सकता . . . । वे जीवनके अविस्मरणीय क्षण होते हैं जब चेतना तीव्र, प्रकाशमय, सबल, सक्रिय और शक्तिशाली होती है और कभी-कभी ये जीवनके ऐसे मोड़ होते हैं जो जीवनकी दिशा ही बदल देते हैं। लेकिन इससे तुम यह कभी नहीं कह सकते कि तुम कौन-से कपड़े पहने थे या किससे बातें कर रहे थे या तुम्हारा पड़ौसी कौन था या तुम किस प्रकारके खेतमें थे।

हम अपने स्वप्न क्यों भूल जाते हैं?

क्योंकि तुम हमेशा एक ही स्थानपर स्वप्न नहीं देखते। तुम्हारी सत्ताका

वही भाग हमेशा स्वप्न नहीं देखता और तुम हमेशा उसी स्थानपर स्वप्न नहीं देखते। यदि तुम अपनी सत्ताके सभी भागोंके साथ, सीधे, सचेतन, निरंतर संपर्कमें रहते तो तुम अपने सभी स्वप्नोंको याद रख सकते लेकिन सत्ताके बहुत थोड़े भाग ही संपर्कमें हैं।

उदाहरणके लिये, तुम सूक्ष्म-भौतिकमें, अर्थात्, भौतिकके बिलकुल नजदीक ही, एक स्वप्न देखते हो। साधारणतः ये स्वप्न बड़े सवेरे यानी, नींदके अंतमें, लगभग चार-पांच बजेके बीचमें दिखायी देते हैं। यदि तुम जागते ही अचानक कोई गति न करो, यदि तुम बहुत स्थिर रह सको, बिलकुल चुपचाप और जरा सावधान — चुपचाप सावधान — और एकाग्र-चित्त रह सको तो तुम उन्हें याद रख सकोगे, क्योंकि सूक्ष्म-भौतिक और भौतिकमें संबंध स्थापित हो जाता है — यह बहुत कम ही होता है कि संबंध न हो।

अधिकतर तुम स्वप्न इसलिये भूल जाते हो क्योंकि स्वप्न देखते समय तुम एक अवस्थामें होते हो और फिर दूसरी अवस्थामें चले जाते हो। उदाहरणके लिये, जब तुम सोते हो तो तुम्हारा शरीर नींदमें होता है, तुम्हारा प्राण सोया रहता है, फिर भी तुम्हारा मन क्रियाशील होता है। इसलिये तुम्हारा मन स्वप्न देखना शुरू करता है, यानी, उसकी क्रिया कम या अधिक समन्वित होती है, कल्पना बहुत सक्रिय होती है और तुम भांति-भांतिकी चीजें देखने लगते हो, असाधारण घटनाओंमें भाग लेते हो। कुछ समय बाद, वह सब ठंडा हो जाता है और मन भी ऊंघने लगता है। प्राण, जो अभीतक सो रहा था, जाग उठता है, वह शरीरमेंसे बाहर निकल आता है, घूमता-फिरता है, इधर-उधर जाता है, सब तरहकी चीजें करता है, प्रतिक्रिया करता है, मार-पीट करता है और अंतमें वह खाता है। वह सब तरहकी चीजें करता है। प्राण बहुत साहसी होता है। वह निगरानी करता है। वह जब बहादुरीके आवेश-में आता है तो जेलमें पड़े बंदियोंको बचानेके लिये या शत्रुओंको नष्ट करनेके लिये झपटता है या बड़ी अद्‌भुत खोजें करता है। इससे मान-सिक स्वप्न कहीं पीछे जा पड़ता है। वह बिलकुल मिटा दिया, भुला दिया जाता है। स्वभावतः तुम उसे याद नहीं कर सकते क्योंकि प्राणका स्वप्न उसकी जगह ले लेता है, लेकिन अगर तुम अचानक उसी समय जाग जाओ तो वह याद रह सकता है। ऐसे लोग हैं जिन्होंने यह परीक्षण किये हैं, जो रातके निश्चित समयपर उठ बैठे, जब वह अचानक उठे तो उन्हें स्वप्न याद था। तुम्हें बहुत हड़बड़ी नहीं करनी चाहिये, बल्कि साधारण ढंगसे उठना चाहिये, तब स्वप्न याद रहेगा।

कुछ समय बाद, प्राण सैर पूरी करके आराम करना चाहता है, अपने तरह-तरहके साहस-कार्योंके अंतमें बिलकुल थककर विश्राम और शांति चाहता है। तब कोई और चीज जाग जाती है। मान लो, तब सूक्ष्म शरीर सैरके लिये निकल पड़ता है। वह गति करना शुरू करता है और घूमना-फिरना शुरू करता है। कमरोंका निरीक्षण करता है...। यह क्या! यह चीज वहां थी अब यहां आ गयी और वह चीज दूसरे कमरेमें थी अब इस कमरेमें है आदि-आदि। अगर तुम हिले-डुले बिना जाग जाओ तो तुम्हें बातें याद रहती हैं। लेकिन यह स्वप्न प्राणकी सभी कहानियोंको चेतनामें कहीं पीछे धकेल देता है। अब वे भुलायी जा चुकी हैं और तुम उन स्वप्नोंको याद नहीं कर सकते। लेकिन अगर जागते समय तुम जल्दीमें न हो, तुम एकदम बिस्तर छोड़नेके लिये बाधित न हो, बल्कि जितनी देर चाहो आंखें खोले बिना ही लेटे रह सको, तो अपने सिरको वहीं बना रहने दो जहां वह था और अपने-आपको एक शांत दर्पणकी तरह बनाकर वहां एकाग्रचित्त होओ। तुम अपने स्वप्नकी जरा-सी दुम पकड़ लो। उसे पकड़कर, हिले-डुले बिना खींचना शुरू करो। बहुत धीरे-धीरे खींचो। पहले एक भाग आयेगा, थोड़ी देरमें दूसरा भाग आयेगा। तुम पीछेकी ओर जाते हो, अंतिम भाग पहले आता है, हर चीज पीछेकी ओर जाती है, धीरे-धीरे और फिर अचानक सारा स्वप्न फिरसे सामने आ जाता है: "आहा, यह रहा। वह ऐसा था।" सबसे जरूरी यह है कि कूद मत पड़ो, हिलो-डुलो मत। सारे स्वप्नको अपने-आप कई बार दोहराओ — एक बार, दो बार, जबतक कि सारी चीज पूरे विस्तार-के साथ स्पष्ट न हो जाय। एक बार वह स्वप्न जम जाय तब भी तुम बिना हिले-डुले पड़े रहो और आगे बढ़नेकी कोशिश करो, और अचानक किसी औरकी दुम तुम्हारी पकड़में आयेगी। वह ज्यादा दूर है, ज्यादा अस्पष्ट है लेकिन फिर भी तुम उसे पकड़ सकते हो। और यहां भी पकड़े रहो, उसे पकड़कर खींचो। तुम देखोगे कि सब कुछ बदल गया है और तुम किसी और ही दुनियामें जा पहुंचे हो। अचानक एक और ही अपूर्व अनुभव होता है — यह एक नया स्वप्न है। यहां भी वही प्रक्रिया रखो। तुम स्वप्नको अपने आगे एक बार, दो बार दोहराओ जबतक कि उसके बारेमें विश्वास न हो जाय। तुम सारे समय बिलकुल शांत बने रहो। तब तुम अपने अंदर और अधिक गहराईमें घुसना शुरू करो, दूर, दूर चलते चले जाओ और तुम्हें अचानक एक अस्पष्ट-सा रूप दिखायी देता है, एक वेदन होता है, एक अनुभूति होती है ... हवाके एक झोंकेकी तरह, मंद समीरकी तरह, जरा-सी सांस: और तुम कहते हो: "ओहो! ओहो!"...

वह एक आकार लेता है — और तीसरी शृंखला शुरू होती है। तुम्हारे पास बहुत समय होना चाहिये, बहुत धीरज होना चाहिये। तुम्हें मन और शरीरमें बहुत शांत होना चाहिये, बहुत शांत और तुम अपनी सारी रातकी कहानी, अंतसे शुरूतक पूरी-पूरी सुना सकोगे।

यह कसरत किये बिना भी जो लंबी और कठिन है, स्वप्न याद करनेके लिये, चाहे वह अंतिम हो या बीचका कोई स्वप्न जिसने तुम्हारी सत्तापर जोरदार असर डाला है, तुम्हें जागनेपर वही करना चाहिये जो मैंने अभी बताया है : इस बातका खास ख्याल रखो, तकियेपर सिर न हिले। एकदम शांत रहो और स्वप्नको लौट आने दो।

कुछ लोगोंमें एक स्थिति और दूसरी स्थितिके बीच कोई रास्ता नहीं होता, बीचमें छोटी-सी दरार होती है और वे एकसे दूसरेपर कूदते-फिरते हैं। सत्ताके सभी स्तरोंके बीच कहीं कोई राजमार्ग नहीं जिसमें चेतना कहीं भी कटती न हो। यह एक छोटे काले सूराखके समान है जिसके बारेमें हमें याद नहीं रहता। यह एक छोटी खाईके समान है जहां चेतनाको बढ़ाना जरूरी है। पुल बनानेमें बहुत देर लगती है। इसमें भौतिक पुल बनानेकी अपेक्षा ज्यादा समय लगता है...। बहुत कम लोग यह बनाना चाहते हैं और बनाना जानते हैं। हो सकता है कि वे रातको शानदार कार्य करते हों, पर उन्हें कुछ भी याद नहीं रहता या कभी-कभी सबसे अंतका, सबसे नजदीकका अत्यंत भौतिक कार्य याद रहता है, बिना समन्वयकी गतियां याद रहती हैं — अर्थहीन स्वप्न।

लेकिन जितने विभिन्न प्रकारके दिन और दिनकी गतिविधियां हैं, उसी तरह उतने ही प्रकारकी रातें और उतने ही प्रकारकी नींद होती है। ऐसे दिन अधिक नहीं होते जो एक समान हों। हर दिन अलग होता है। सब दिन एक नहीं होते, रातें भी एक नहीं होतीं। ऊपरी दृष्टिसे तुम और तुम्हारे दोस्त भले एक ही चीज कर रहे हों, लेकिन हर एकके लिये वह अलग है और हर एककी अपनी ही प्रक्रिया होनी चाहिये।

दो स्वप्न कभी एक जैसे क्यों नहीं होते?

क्योंकि सभी चीजें अलग-अलग हैं। सारे विश्वमें कोई दो मिनट एक जैसे नहीं होते और विश्वके अंततक ऐसा ही रहेगा। कोई दो मिनट कभी एक जैसे नहीं होंगे। और मनुष्य आग्रहके साथ नियम बनाना चाहते हैं! तुम्हें यह करना चाहिये, वह नहीं...। हमें लोगोंको अपने-आपको संतुष्ट करने देना चाहिये।

तुम मुझसे एक बड़ा मजेदार सवाल पूछ सकते हो: "आज मैं चौदह वर्ष-का क्यों हूं?" बुद्धिमान् लोग कहेंगे: "क्योंकि तुम्हें पैदा हुए चौदह वर्ष हुए।" यह ऐसे आदमीका जवाब है जो अपने-आपको बहुत बुद्धिमान् मानता है। लेकिन एक और कारण भी है। मैं सिर्फ तुम्हें ही बताऊंगी . . .। मैंने तुम सबको काफी अच्छी डुबकी दे दी है! अब तुम्हें तैरना सीखना चाहिये!

अगर हम वस्तुओंमें सत्यको पा लें तो क्या इसका यह मतलब है कि हमने भगवान्‌को पा लिया?

निश्चय ही। हर चीजमें, वह चाहे कुछ क्यों न हो, यही एक तराका है। ऐसी कोई भी चीज नहीं है जो अपने अंदर शाश्वत सत्यको लिये हुए न हो वरना उसका अस्तित्व ही न होता। विश्वमें यदि सत्य न होता तो वह एक सेकंडके हजारवें हिस्सेके लिये भी न टिक सकता।

अगर हमारा भगवान्‌के साथ संपर्क हो तो इसका असर क्या होगा?

हर एकके लिये अलग प्रभाव होगा। चूंकि हम एक तथ्यके सामने हैं: एक विश्व है, कम-से-कम एक धरती तो है ही। कम-से-कम इस बारेमें तो कोई विवाद नहीं हो सकता, मानते हो? . . . . . क्या तुमने कभी यह पूछा है कि धरती क्यों है? नहीं! शायद यह काफी बुद्धिमत्ताकी बात है। एक बार मैंने तुम्हें एक गुह्यवेत्ताकी बात बतायी थी जिन्हें मैं जानती थी। वह अपने तौरपर बुद्धिमान् आदमी था। लोग आकर उससे पूछा करते थे:

पहले तो यह कि यह विश्व है ही क्यों? उत्तर: तुम्हें इससे क्या?
दूसरे, वह ऐसा क्यों है? उत्तर: वह जैसा है, है, तुम्हें इससे मतलब?
तीसरे, मुझे यह संतोषजनक नहीं लगता।

यह बहुत अच्छी बात है, अब हम व्यावहारिक होना शुरू कर रहे हैं। जिन्हें विश्व संतोषजनक नहीं लगता, मैं कहूंगी: बस करने लायक काम एक ही है उसे बदलनेके लिये काम करना शुरू कर दो। इसे किसी और तरह-का बनानेका, अच्छा बनानेका उपाय खोजो। चीजें जैसी हैं वैसी हैं। वे ऐसी क्यों हैं? . . . शायद हम जान सकते हैं — यह निश्चित नहीं है। बहरहाल वे ऐसी हैं। सबसे ज्यादा ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि

अगर तुम सच्चे हो तो तुम जान जाओगे कि वे ऐसी क्यों और कैसे हैं: कारण, मूल और प्रक्रिया। क्योंकि यह सब एक ही चीज है। जिस चीजको हम सत्य कहते हैं वह सब चीजोंका आधार है: क्योंकि अगर यह न होता तो कुछ भी न होता। एक बार तुमने सत्य खोज लिया है तो तुमको स्रोत भी मिल जाता है। तुम कारणको बदलनेका उपाय पा लेते हो —यह ऐसा कैसे है, यह ऐसा क्यों है और इसे बदलनेका क्या उपाय है। अगर भगवान्‌के साथ तुम्हारा संपर्क है तो तुम्हारे पास हर चीजकी चाबी है। तुम क्यों, कैसे और बदलनेकी प्रक्रिया सब कुछ जानते हो।

करने लायक कुछ है, काम करना है, यह बहुत मजेदार है! तुम अपने-आपको बनानेवाले थोड़े-से संचित द्रव्यके प्रतिनिधि हो। अपने अंदर घुसो और चाबी खोज लो। तुम्हें बस अंदर नीचे जाना है। तुम यह नहीं कह सकते: "यह मेरे बसकी बात नहीं है। यह मेरे लिये बहुत बड़ी बात है।" अपने छोटे-से व्यक्तित्वके अंदर जाओ, तुम्हें वह चाबी मिल जायगी जो सब दरवाजोंको खोलती है।

१३ मई, १९५३

"कुछ ऐसे लोग हैं, जब वे ध्यानके लिये बैठते हैं तो एक ऐसी अवस्थामें चले जाते हैं जिसे वे बहुत अच्छी और आनंददायक मानते हैं।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२१ अप्रैल)

वह कौन-सी अवस्था है?

वह जो भी हो, वह सोचते हैं कि यह आनंददायक और अनोखी है। उनकी अपने बारेमें बहुत अच्छी राय होती है। वह मानते हैं कि, चूंकि वह बिना हिले-डुले, चुपचाप बैठ सकते हैं इसलिये बहुत ही ज्यादा विलक्षण हैं, और अगर वह किसी चीजके बारेमें सोचते भी नहीं तब तो और भी विलक्षण हैं। लेकिन साधारणतः उनके दिमागमें एक प्रकारका बहुमूर्ति-दर्शी या बहुरंगदर्शी-यंत्र चलता रहता है और उन्हें उसकी खबर भी नहीं

होती। फिर भी जो लोग कुछ क्षण कुछ बोले और सोचे बिना, हिले-डुले बिना रह सकते हैं उनकी अपने बारेमें बहुत ही अच्छी राय होती है। हां, जैसा कि मैंने कहा, अगर उन्हें उस अवस्थामेंसे बाहर निकाला जाय, अगर कोई आकर उनका दरवाजा खटखटाये और उनसे कहे : "कोई आपके लिये प्रतीक्षा कर रहा है" या "श्रीमतीजी, आपका बच्चा रो रहा है," तो, वे आपेसे बाहर होकर चिल्ला पड़ेंगे : "लो, तुमने मेरा ध्यान खराब कर दिया, सत्यानाश कर दिया।" मैं ऐसी बातें कह रही हूं जो मैंने अपनी आंखोंसे देखी हैं। ऐसे लोग देखे हैं जो अपने ध्यानके बारेमें बहुत गंभीर थे और ध्यानमें जरा-सी बाधा पड़ते ही उग्र रूपसे क्रुद्ध हो उठते थे...। स्वभावतः, यह बड़ी आध्यात्मिक प्रगति-का चिह्न नहीं है। अगर उन्हें अपने आनंदपूर्ण ध्यानसे बाहर निकाला जाता तो वे हर एकपर झल्ला पड़ते थे।

जो लोग ध्यान करते हैं उनमेंसे कुछ ध्यान करना जानते हैं। वह किसी विचारपर नहीं, नीरवतामें ध्यान लगाते हैं — आन्तरिक ध्यान, जिसमें उनका कहना है कि वे भगवान्‌के साथ एकत्व भी पा लेते हैं। और यह बिलकुल ठीक है। कुछ और हैं, बहुत थोड़े-से, जो किसी विचारका बहुत सावधानीसे अनुसरण कर सकते हैं और यह जाननेकी कोशिश करते हैं कि उसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है। यह भी ठीक है। लेकिन अधिकतर लोग एकाग्र होनेकी कोशिश करते हैं और एक प्रकारकी आधी नींदमें या कम-से-कम तामसिक अवस्थामें प्रवेश कर जाते हैं। वह किसी प्रकारकी जड़ चीज बन जाते हैं, मन जड़ हो जाता है, भावना जड़ हो जाती है, शरीर जड़ हो जाता है। वह घंटों इस अवस्थामें रह सकते हैं क्योंकि तमस्‌के जैसी स्थायी चीज और कोई नहीं होती! मैं इस समय तुमसे जो कुछ कह रही हूं — ये सब ऐसे लोगोंके अनुभव हैं जिनसे मैं मिली हूं। और ये लोग जब अपने ध्यानसे बाहर आते हैं तो यही समझते हैं कि उन्होंने कोई बहुत बड़ा काम कर लिया है। लेकिन सचमुच वे सीधे-सीधे तमस् और निश्चेतनामें उतर गये थे। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं जो सचमुच ध्यान करना जानते हों। और फिर यह मान भी लें कि बहुत-सी साधना और बरसोंके प्रयासके बाद तुम अपने ध्यानमें भागवत सत्ताके साथ सचेतन संपर्क साधनेमें सफल हो गये हो तो स्पष्ट है कि यह परिणाम है और इस परिणामका तुम्हारे चरित्र और जीवनपर प्रभाव होना चाहिये। परंतु यह प्रभाव व्यक्ति-व्यक्तिपर अलग-अलग होता है। ऐसे उदाहरण हैं जहां व्यक्ति ऐसे दो भागोंमें बंट जाता है कि जब ऐसे लोग ध्यानमें होते हैं तो भगवान्‌के साथ संपर्कमें आते हैं,

उनके साथ तादात्म्यका परम आनंद प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन जब ध्यान-से बाहर आते हैं, साधारण जीवनमें उतरते हैं, जीना और काम करना शुरू करते हैं तो बहुत ही मामूली आदमी बन जाते हैं जिनकी बहुत मामूली और कभी-कभी तो बहुत ही गंवारू और भद्दी प्रतिक्रियाएं होती हैं। वास्तवमें, मैं ऐसे लोगोंको जानती हूं जो एकदम साधारण मनुष्य बन जाते हैं और तब, उदाहरणके लिये, ऐसी सब चीजें करते हैं जो नहीं करनी चाहिये, जैसे, दूसरोंके बारेमें गप्पें लगानेमें समय बिताते हैं, केवल अपने बारेमें ही सोचते हैं। उनकी एकदम स्वार्थ-भरी प्रतिक्रिया होती है, हमेशा अपनी ही तुच्छ भलाईके बारेमें सोचते हैं, किसी औरके बारे-में सोचते भी नहीं, कभी किसीके लिये कुछ नहीं करते और उनमें कोई बड़े विचार नहीं उठते। फिर भी वे अपने ध्यानमें उस संपर्कको पा चुके हैं। इसीलिये जो लोग यह जान चुके हैं कि इस शरीरके साथ लगी तुच्छ बाहरी प्रकृतिको बदलना कितना मुश्किल है, अपने परे जाना, अपनी गतिविधियोंका रूपांतर करना कितना कठिन है, वे कहते हैं कि यह संभव ही नहीं है, प्रयास करनेका कोई लाभ नहीं। संसारमें आकर तुमने माटीका शरीर धारण किया है। तुम्हें बस उसे छोड़कर चले जाने-की तैयारी करनी चाहिये, संसार जैसा है रहने दो। बस, करने लायक काम यही है, जितनी जल्दी हो सके यहांसे भाग चलो। और अगर सभी भाग जायं तो फिर संसार ही न रह जायगा और दुःख-दारिद्रय न रहेगा। बात तर्क-संगत है। अगर उनसे कहा जाय: "तुम जो कह रहे हो वह बहुत स्वार्थपूर्ण है, तुम अपने-आप तो चले जाओ और दूसरोंको छटपटाते छोड़ दो," — "बस, वे सब भी यही करें जो मैं कर रहा हूं। अगर हर एक वही करे जो मैं कर रहा हूं तो वे सब भी छुटकारा पा जायंगे, तब कोई संसार ही न रहेगा, कोई दुःख-दर्द न रहेगा।" मानों यह सब व्यक्तियोंकी इच्छापर निर्भर है जिनका संसारके निर्माणमें कोई हाथ न था! वे उसे समाप्त करनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? कम-से-कम यदि यह संसार उनका बनाया हुआ होता तो वे यह जानते कि यह कैसे बनाया गया है और तब उसे बिगाड़नेकी कोशिश कर सकते थे (यद्यपि अपनी बनायी चीजको बिगाड़ना हमेशा आसान नहीं होता)। लेकिन यह सृष्टि उन्होंने नहीं बनायी, उन्हें यह भी पता नहीं है कि इसे कैसे बनाया गया है और उन्हें यह दुराशा है कि वे इसे मेट सकेंगे क्योंकि उन्हें आशा है कि वे स्वयं इससे भाग सकेंगे ...। मुझे नहीं लगता कि यह संभव है। आदमी प्रयत्न करनेपर भी भाग नहीं सकता। लेकिन यह एक और ही विषय है। बहरहाल, मेरे लिये, मेरा अनुभव (जो

काफी लंबा है। मैं प्रायः तरेपन वर्षसे लोगोंके साथ, उनके योग और उनके आंतरिक जीवनके साथ व्यवहार रखती आयी हूं। मैंने यहां और वहां बहुत कुछ देखा है और सारी दुनियामें भी थोड़ा-बहुत देखा है), हां, तो मैं नहीं मानती कि ध्यानके द्वारा तुम अपने-आपको रूपांतरित कर सकते हो। मुझे इससे उल्टी बातपर पूरा विश्वास है।

तुम्हें जो करना है उसे करते हुए, वह चाहे कुछ क्यों न हो, चाहे जो काम हो — अगर तुम उसे करो और करते समय इस बातकी सावधानी रखो कि भगवान्‌को भूलने न पाओ, तुम जो कुछ करते हो उसे भगवान्‌के अर्पण कर दो, अपने-आपको भगवान्‌को इस तरह देनेकी कोशिश करो कि वे तुम्हारी सारी प्रतिक्रियाओंको बदल दें — स्वार्थी, तुच्छ, मूढ़ और अज्ञानी होनेकी जगह उन्हें आलोकपूर्ण, उदार बना दें, तो तुम इस दिशामें प्रगति करोगे। यही नहीं कि स्वयं तुम कुछ प्रगति कर लो, बल्कि तुम सामान्य प्रगतिमें भी सहायता दोगे। मैंने यह कमी नहीं देखा कि जो लोग सब कुछ छोड़कर रीते चिंतन-मननके लिये बैठ जाते हैं (क्योंकि वह लगभग रीता ही होता है), मैंने ऐसे लोगोंको कभी प्रगति करते नहीं देखा, किसी भी सूरतमें उनकी प्रगति नगण्य-सी होती है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्होंने योग करनेका दावा कभी नहीं किया, जो पार्थिव रूपांतर और धरतीपर भगवान्‌के अवतरणके विचारसे ही उत्साहमें भरे रहते थे। उन्होंने हृदयमें उत्साह लिये, अपने-आपको पूरी तरह, बिना कुछ बचाये, बिना व्यक्तिगत मुक्तिके स्वार्थपूर्ण विचारके, अपना थोड़ा-सा काम किया। मैंने इन लोगोंको शानदार प्रगति करते हुए देखा है, सचमुच शानदार प्रगति। और कभी-कभी वे अद्‌भुत होते हैं। मैंने संन्यासी देखे हैं, मठोंमें रहनेवाले देखे हैं, ऐसे लोग देखे हैं जो योगी होनेका दावा करते हैं। मैं उस पहले प्रकारके एकके बदले इस तरहके बारह लेना पसंद न करूंगी (मेरा मतलब है, पार्थिव रूपांतर और जगत्‌की प्रगतिकी दृष्टिसे, यानी, जो काम हम करना चाहते हैं उसकी दृष्टिसे — यह प्रयास करनेके लिये कि यह जगत् जैसा है वैसा ही न बना रहे, यह सचमुच भागवत चेतनाके साथ भागवत संकल्पका यंत्र बन जाय)। तुम जगत्‌से भागकर उसे नहीं बदल सकते। यहां काम करते हुए, नम्रता और विनयके साथ काम करते हुए उसे बदला जा सकता है; तुम्हारे हृदयमें आग हो, ऐसी चीज हो जो आहुतिकी तरह जलती हो। तो बस।

तो क्या ध्यानका कोई उपयोग नहीं?

नहीं, और जिस हदतक वह जरूरी होगा, वह सहज रूपसे आ जायगा। अचानक तुम्हें कोई ऐसी चीज आकर पकड़ लेगी जो तुम्हें निश्चल बना देगी, तुम्हें किसी भावके अंतर्दर्शन या किसी मनोवैज्ञानिक अवस्थापर केंद्रित कर देगी। वह तुम्हें पकड़ लेगी। तुम्हें प्रतिरोध न करना चाहिये। तब तुम आवश्यक प्रगति करोगे। ऐसे अवसरपर तुम कुछ देखते, कुछ समझते हो और अगले क्षण, अपने अंदर उस चीजको प्राप्त करके, बिना किसी दावे या पाखंडके अपना काम शुरू कर देते हो। मुझे सबसे ज्यादा डर उनका लगता है जो अपने-आपको बहुत श्रेष्ठ मानते हैं क्योंकि वे बैठकर ध्यान करते हैं। और सब चीजोंमें यही सबसे अधिक भयंकर है क्योंकि ये लोग मिथ्याभिमानसे भर जाते हैं और इतने अधिक आत्म-तुष्ट हो जाते हैं कि वे प्रगतिके सभी रास्तोंको बंद कर लेते हैं...।

एक बात है जो हमेशा कही गयी है लेकिन हमेशा गलत समझी गयी है, यह है नम्रताकी आवश्यकता। हम उसे बुरी तरह लेते हैं, बुरी तरह समझते हैं, और बुरी तरह उसका उपयोग करते हैं। नम्र बनो, यदि तुम ठीक ढंगसे नम्र बन सकते हो; और इससे बढ़कर, गलत तरीकेसे मत बनो क्योंकि यह तुम्हें कहीं नहीं पहुंचाता। लेकिन एक बात है। अगर तुम अपने अंदरसे इस जंगली घासको — जिसे मिथ्याभिमान कहते हैं — खींचकर बाहर कर सको तो वास्तवमें तुम कुछ प्राप्त करोगे। काश, तुम्हें मालूम होता कि यह कितना कठिन है! तुम (बिना जाने ही) अंदरसे संतुष्ट होकर फूले बिना कोई चीज ठीक तरह नहीं कर सकते, कोई अच्छा विचार नहीं कर सकते, कोई सच्ची गति नहीं कर सकते, थोड़ी-सी प्रगति नहीं कर सकते। और तब तुम जोरसे हथौड़े बरसाकर इसे तोड़नेके लिये बाधित होते हो। फिर भी टूटे टुकड़े बचे रहते हैं! और फिरसे अंकुरित होने लगते हैं। इस रूखड़ीको जड़से निकालनेके लिये तुम्हें जन्म-भर काम करना पड़ता है। यह बार-बार निकल आती है और इतने छिपे रूपमें उगती है कि तुम मान बैठते हो कि अब यह चली गयी। तुम अपने-आपको बहुत विनम्र मानकर कहते हो: "यह मैंने नहीं किया। मुझे लगता है कि यह भगवान्‌ने किया है। भगवान् न हों तो मैं कुछ भी नहीं हूं," और अगले ही क्षण, ऐसी बात सोचनेके लिये तुम अपने-आपसे बहुत संतुष्ट होते हो!

विनम्र होनेका ठीक और गलत तरीका क्या है?

यह बहुत सरल है। जब लोगोंसे विनम्र होनेके लिये कहा जाता है तो

वे तुरंत "दूसरे लोगोंके सामने नम्र" होनेकी बात सोच लेते हैं, यह नम्रता गलत है। सच्ची नम्रता भगवान्‌के प्रति नम्रता है। यानी, एक यथार्थ, ठीक-ठीक जीता-जागता भाव कि हम भगवान्‌के बिना कुछ भी नहीं हैं, कुछ भी नहीं कर सकते और कुछ भी नहीं समझ सकते, कि अगर हम बहुत ही अधिक, विरल रूपमें, बुद्धिमान् हैं तो भी यह भागवत चेतनाके सामने कुछ भी नहीं है। और यह जीता-जागता भाव हमेशा बना रहना चाहिये क्योंकि तब ग्रहणशीलताका सच्चा भाव हमेशा बना रह सकता है — एक ऐसी विनम्र ग्रहणशीलताका जो भगवान्‌के सामने व्यक्तिगत आत्म-प्रदर्शन नहीं करती।

आपने कहा है: "अगर तुम समर्पण करो तो तुम्हें प्रयास छोड़ देना चाहिये, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संकल्पके कार्य भी छोड़ दो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२१ अप्रैल)

लेकिन अगर आदमी कुछ करना चाहे तो उसका अर्थ होता है व्यक्तिगत प्रयत्न। तब यह संकल्प क्या है?

संकल्प और प्रयास, यानी, तनावके इस संवेदनमें फर्क है। प्रयासका अर्थ है अपने ऊपर ही निर्भर रहना; प्रयासमें केवल अपना ही सहारा होता है, यह एक ऐसा तनाव है जो बहुत तीव्र और कभी-कभी बहुत पीड़ादायक होता है। तुम केवल अपने ही भरोसे रहते हो और तुम्हें लगता है कि अगर तुम हर क्षण प्रयास न करोगे तो सब कुछ मटियामेट हो जायगा। यह है व्यक्तिगत प्रयास।

लेकिन संकल्प बिलकुल ही अलग चीज है। यह, तुम जो कुछ करते हो उसपर एकाग्र होनेकी क्षमता है, उसे भरसक अच्छे-से-अच्छा करो और जबतक ठीक-ठीक यह सूचना न मिल जाय कि काम समाप्त हो गया है तबतक बिना रुके करते जाओ। तुम्हारे सामने इसकी व्याख्या करना कठिन है। मान लो कि सहमति या परिस्थितियोंके कारण कोई काम तुम्हारे हाथमें आता है। एक चित्रकारको ले लो। किसी-न-किसी तरह उसके अंदर एक प्रेरणा आयी और उसने एक चित्र बनानेका निश्चय किया। वह भली-भांति जानता है कि अगर उसमें प्रेरणा न हो, और अपनी-से भिन्न शक्तियोंका सहारा न हो तो वह कुछ खास न कर सकेगा। वह चित्रकी जगह पोता हुआ रंग लगेगा। उसे यह मालूम है। लेकिन

यह तय हो गया है, चित्र बनाना है, इसके बहुत-से कारण हो सकते हैं पर चित्र तो बनाना ही है। अब अगर उसमें निष्क्रिय वृत्ति हो तो वह अपना पटल, रंग, पट्टी, कलम आदि सामने रखकर बैठ जायगा और भगवान्‌से कहेगा : "लो, अब तुम चित्र बनानेवाले हो।" लेकिन भगवान् इस तरह काम नहीं किया करते। स्वयं चित्रकारको सब कुछ अपने हाथमें लेना होगा, सब कुछ व्यवस्थित करना होगा, अपने विषयपर एकाग्र होना होगा, ऐसे आकार और रंग ढूंढने होंगे जो उसे व्यक्त कर सकें और अपना सारा संकल्प लगा देना होगा ताकि काम अधिक-से-अधिक पूर्ण हो सके। उसका संकल्प हमेशा रहना चाहिये लेकिन उसे यह ख्याल भी रखना चाहिये कि उसे प्रेरणाके प्रति खुला रहना चाहिये। उसे यह न भूलना चाहिये कि तकनीकके ज्ञानके बावजूद, रंग, आकार, आकृति आदिको व्यवस्थित और संगठित करनेके बावजूद यदि उसमें प्रेरणा नहीं है तो वह और हजारों, लाखों चित्रोंके जैसा एक चित्र होगा और बहुत रोचक न लगेगा। वह भूलता नहीं, वह कोशिश करता है, वह अपने चित्रमें जो अभिव्यक्त करना चाहता है उसे किस तरह अभिव्यक्त किया जाय यह देखने और अनुभव करनेका प्रयास करता है। उसके पास अपने रंग हैं, कलम है, अपना मॉडल है, उसने अपना खाका बना लिया है जिससे वह बड़ा चित्र बनायेगा। वह अपनी प्रेरणाका आवाहन करता है। ऐसे भी होते हैं जो, जो कुछ करना है उसका स्पष्ट, यथार्थ अंतर्दर्शन पा लेते हैं। पर उसके बाद दिन-पर-दिन, घंटे-पर-घंटे उनके अंदर काम करनेका, अध्ययन करनेका संकल्प रहता है, संकल्प रहता है कि पूरी सतर्कताके साथ तबतक अच्छे-से-अच्छा करते चलें जबतक वे अपनी पहली प्रेरणाको अधिक-से-अधिक पूर्ण रूपसे अभिव्यक्त कर सकें...। ऐसे व्यक्तिने भगवान्‌के लिये काम किया है, उनके सायुज्यमें काम किया है, लेकिन निष्क्रिय रूपमें नहीं, निष्क्रिय समर्पणके साथ नहीं, बल्कि सक्रिय समर्पण और गतिशील संकल्पके साथ। परिणाम प्रायः बहुत अच्छा होता है। हां, तो चित्रकारका उदाहरण मजेदार है। अगर चित्रकार सच्चा कलाकार हो तो वह देख सकता है कि वह क्या करनेवाला है। वह उस भागवत शक्तिके साथ नाता जोड़ सकता है जो सभी अभिव्यक्तियोंके परे है और अभिव्यक्तिको प्रेरणा देती है। कवि और लेखकके लिये भी यही बात है, उन सबके लिये यही बात है जो कुछ करना चाहते हैं।

क्या तुम नहीं समझते कि अगर तुम अपने पाठोंके लिये इसका प्रयोग करो तो इसमें सफलता मिलेगी?

दो दिनके बाद माताजीने शुक्रवार-
की कक्षामें फिर यही विषय लिया।

मेरे बच्चो, अगर तुम अपने-आपसे कहो: "हम संसारमें भागवत संकल्प-को प्रकट करनेके लिये यथासंभव पूर्ण यंत्र बनना चाहते हैं," तो इस यंत्रको पूर्ण बनानेके लिये इसे परिष्कार करना होगा; शिक्षा और प्रशिक्षण देना होगा। इसे एक अनगढ़ पत्थरके टुकड़ेकी तरह नहीं छोड़ा जा सकता। जब तुम पत्थरसे कुछ बनाना चाहो तो उसपर छैनी चलानी पड़ती है, जब तुम एक रूपहीन ढेलेमेंसे सुन्दर हीरा बनाना चाहो तो उसे तराशना पड़ता है। हां, तो यहां भी वही बात है। जब तुम अपने शरीर और मस्तिष्कसे भगवान्‌के लिये एक सुन्दर यंत्र बनाना चाहते हो तो उसे परिष्कार करना होगा, उसे सूक्ष्म बनाना होगा, जो कमी है उसे पूरा करना और जो है उसे पूर्ण बनाना होगा।

उदाहरणके लिये, तुम अपनी कक्षामें जाते हो। अगर तुम बहुत अच्छी मनोवृत्तिमें नहीं हो तो तुम कहते हो: "आह, कितनी नीरस होगी कक्षा!" मान लो कि कोई ऐसा अध्यापक है जो तुम्हें रिझाना नहीं जानता (हो सकता है कि कोई बहुत अच्छा अध्यापक हो पर तुम्हें बहलाना न जानता हो, यह हमेशा आसान नहीं होता ...। ऐसे दिन होते हैं जब विनोद करनेकी इच्छा नहीं होती), तुम विद्यालयमें नहीं, कहीं और रहना चाहोगे। फिर भी तुम विद्यालय जाते हो, तुम इस तरह जाते हो क्योंकि तुम्हें जाना चाहिये, क्योंकि, अगर तुम अपनी सनकके अनुसार चलो तो तुम्हें कभी अपने ऊपर अधिकार न होगा। तुम्हारी सनकें ही तुम्हारे ऊपर अधिकार रखेंगी। तुम अपने-आपको वशमें न रखोगे। तुम अपनी कक्षामें जाते हो लेकिन यह कहनेकी जगह: "हाय, कैसी ऊब आयेगी, कक्षा जरा भी मजेदार न होगी," आदि-आदि, तुम कहो: "अगर जीवनमें एक भी क्षण ऐसा नहीं है, एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो प्रगतिका अवसर न देती हो तो आज मैं कौन-सी प्रगति करनेवाला हूं? — मैं अपने छोटे-से व्यक्तित्वको पूरी तरह भगवान्‌के अर्पण करता हूं। मैं चाहता हूं कि यह उनका यंत्र बन सके जिसके द्वारा वे अपने-आपको अभिव्यक्त कर सकें, कि एक दिन मैं रूपांतरके लिये तैयार हो जाऊं। आज मैं क्या करनेवाला हूं? मैं कक्षामें जा रहा हूं। यह ऐसा विषय है जिसके लिये मुझे उत्साह नहीं है, लेकिन अगर मैं इस काममें रस नहीं लेना जानता तो शायद इसलिये कि मेरे अंदर कुछ कमी है, क्योंकि मेरे दिमागमें कहींपर कुछ कोषाणुओंकी कमी है।

अगर ऐसी बात है तो मैं पता लगानेकी कोशिश करूंगा। मैं अच्छी तरह सुनूंगा। अच्छी तरह ध्यान दूंगा और उससे भी बढ़कर, अपने अंदरसे इस तरहके छिछोरेपनको निकाल बाहर करूंगा। इस बाहरी हल्केपनको निकाल दूंगा जो, जब मैं किसी बातको पकड़ नहीं पाता तो, मुझे उबा देता है। मैं क्यों ऊब जाता हूं? — क्योंकि मैं प्रगति नहीं करता।" जब तुम प्रगति नहीं करते तो ऊब जाते हो — बूढ़े और जवान सभी — क्योंकि हम यहां, धरतीपर प्रगति करनेके लिये आये हैं। अगर हम हर मिनट अच्छी तरह प्रगति नहीं करते तो यह सचमुच उबानेवाली बात है, नीरस है, यह हमेशा सुखकर नहीं होती, यह अच्छी तो बिलकुल नहीं है। "तो आज मैं यह पता लगा लूंगा कि मैं इस कक्षामें क्या प्रगति कर सकता हूं, कोई ऐसी चीज है जिसे मैं नहीं जानता, जो मैं सीख सकता हूं।"

अगर तुम सीखना चाहो तो हर क्षण सीख सकते हो। मैंने तो छोटे बच्चोंकी बकबकसे भी कुछ सीखा है। हर क्षण कुछ हो सकता है, कोई तुमसे कोई ऐसा शब्द कह सकता है, कोई बेवकूफ भी ऐसी बात कह सकता है जो तुम्हें किसी ऐसी चीजकी ओर खोल दे जो तुमसे प्रगति करवाये। और तब, यदि तुम जान सको, जीवन कितना मजेदार हो उठता है! अब तुम उकताते नहीं हो, हर चीज मजेदार हो उठती है। हर चीज अद्‌भुत होती है — क्योंकि तुम हर क्षण सीखते हो, हर कदमपर तुम प्रगति करते हो। उदाहरणके लिये, तुम रास्तेपर हो। वहां यूंही होनेकी जगह, यह जाने बिना कि तुम क्या कर रहे हो, अगर तुम इधर-उधर देखो और निरीक्षण करो...। मुझे याद है जब मुझे इस तरह कुछ खरीदनेके लिये, किसीसे मिलनेके लिये, कुछ सौदा-सुलुफ करनेके लिये सड़कपर जाना पड़ता था — क्यों जाना पड़ता था इसका कोई महत्त्व नहीं है; सचमुच, सड़कपर जाना हमेशा मजेदार नहीं होता लेकिन अगर तुम निरीक्षण करना शुरू करो कि यह आदमी कैसे चलता है, वह कैसे गति करता है, यह प्रकाश उस चीजपर कैसा रंग लाता है, यह छोटा-सा पेड़ वहांके भूदृश्यको कैसे सुंदर बना देता है, सैकड़ों चीजें कैसे चमकती हैं... तो तुम हर क्षण कुछ सीख सकते हो। तुम केवल सीख ही नहीं सकते...। मुझे याद है, एक बार सड़कपर चलते-चलते मुझे एक प्रकारका प्रबोध मिला था क्योंकि मेरे सामने एक स्त्री चल रही थी और वह सचमुच चलना जानती थी। वह कैसी सुंदर चाल थी, उसकी गति भव्य थी! मैंने उसे देखा और देखते ही अचानक मैंने यूनानी संस्कृतिका पूरा प्रारंभ देख लिया, किस तरह यह सारे रूप सौंदर्यको अभिव्यक्त करनेके लिये धरतीपर उतरते हैं — केवल इसी कारण कि एक स्त्री चलना जानती थी! समझे, इस तरह सभी चीजें

मजेदार बन सकती हैं। तो इस तरह कक्षामें जाकर मूर्खता-भरी चीजें करनेकी जगह (मैं आशा करती हूं, तुममेंसे कोई ऐसा न करता होगा, मुझे विश्वास है कि वे सब जो यहां मेरी कक्षाके लिये आते हैं वे कभी विद्यालय-में जाकर मूर्खता-भरी चीजें न करेंगे; अपवाद ही नियमका प्रमाण देते हैं: फिर भी मैं जानती हूं कि दुर्भाग्यवश बहुत-से वहां जाकर खोज-खोजकर हर संभव मूर्खता-भरी चीज करते हैं)। हां, तो उसकी जगह, यदि तुम कक्षा-में प्रगति करनेके लिये, हर रोज एक नयी प्रगति करनेके लिये जा सको — भले वह यह जाननेके लिये ही हो कि तुम्हें अपने अध्यापक क्यों उबा देते हैं — तो यह अद्‌भुत बात होगी, क्योंकि अचानक वह तुम्हें उबानेवाले न रह जायंगे। अचानक तुम देखोगे कि वे बहुत मजेदार हैं! बात ऐसी ही है। अगर तुम जीवनको इस तरह देखो तो जीवन एक बहुत अद्‌भुत चीज बन जाता है। उसे मजेदार बनानेका यही तरीका है। धरतीपर जीवन प्रगतिके क्षेत्रके रूपमें बनाया गया है और यदि हम अधिक-से-अधिक प्रगति करें तो धरतीके जीवनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकेंगे। और तब तुम प्रसन्न होते हो। जब आदमी जो कर सकता है उसमें अच्छे-से-अच्छा करे तो वह प्रसन्न होता है।

जब आदमी ऊब जाता है तो क्या इसका यह मतलब होता है कि वह प्रगति नहीं कर रहा?

उस समय, हां। निस्संदेह, केवल इतना ही नहीं कि वह प्रगति नहीं करता, बल्कि वह प्रगतिका एक अवसर खो देता है। परिस्थितियोंका एक संयोग था जो तुम्हें नीरस, उबाऊ और मूर्खतापूर्ण लगा और तुम उसके बीचमें थे। तो, यदि तुम उसमें ऊब उठो तो इसका अर्थ है कि स्वयं तुम भी उतने ही उबाऊ हो जितनी कि परिस्थितियां! और यह इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि तुम प्रगतिकी स्थितिमें नहीं हो। इस ऊबकी क्षणिक लहरसे बढ़कर जीवनके हेतुका विरोधी और कोई नहीं है। उस समय तुम अपने अंदर जरा-सा प्रयत्न करो और अपने-आपसे कहो: "जरा ठहरो, मुझे कौन-सी चीज सीखनी चाहिये? यह सब कौन-सी नयी चीजको ला रहे हैं जिसे मुझे सीखना चाहिये? मुझे अपने ऊपर विजय पानेके लिये कौन-सी प्रगति करनी होगी? कौन-सी दुर्बलता है जिसे जीतना होगा? कौन-सी जड़ता है जिसे जीतना होगा?" अगर तुम अपने-आपसे यह कहो तो तुम देखोगे कि अगले ही मिनट तुम ऊबे हुए नहीं हो। तुम्हें तुरत रुचि आने लगेगी और तुम प्रगति करोगे। यह चेतनाकी मामूली बात है।

और तुम जानते ही हो कि अधिकतर लोग ऊब जानेपर एक पग ऊपर उठनेकी जगह एक पग नीचे उतर जाते हैं, जैसे थे उससे ज्यादा खराब हो जाते हैं, दूसरे जो मूर्खताएं करते हैं उन सबको करते हैं, हर प्रकारके गंवारूपन और नीचतामें उतर जाते हैं। वे अपने-आपको बहलानेके लिये सब कुछ करते हैं। वे नशा करते हैं, विष लेते हैं, अपना स्वास्थ्य बरबाद करते हैं, दिमाग बरबाद करते हैं और अशोभन बातें करते हैं। वे यह सब इसलिये करते हैं क्योंकि वे ऊबे हुए हैं। नीचे जानेकी जगह वे ऊपर उठे होते तो परिस्थितियोंका लाभ उठा पाते। लाभ उठानेकी जगह आदमी जहां था उससे जरा नीचे जा गिरता है। जब लोगोंको अपने जीवनमें एक आघात मिलता है, कोई दुर्भाग्य आता है (जिसे लोग दुर्भाग्य कहते हैं, लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनपर दुर्भाग्य आता है), तो पहली चीज वे यही करते हैं: वे उसे भुला देनेकी कोशिश करते हैं — मानों यूं भी आदमी काफी जल्दी नहीं भूल जाता ! और भूलनेके लिये वे कुछ भी कर बैठते हैं। जब कोई कष्टदायक चीज हो तो वे मन-बहलानेकी कोशिश करते हैं, जिसे वे मन-बहलाना कहते हैं, यानी, मूर्खतापूर्ण चीजें करते हैं, अर्थात्, चेतनामें नीचे जाते हैं, ऊपर उठनेकी जगह नीचे जाते हैं...। क्या तुम्हारे साथ कोई अत्यंत कष्टकर बात हुई है, कोई बहुत ही दुःखद बात ? हक्के-बक्के मत बनो, भूलनेकी कोशिश मत करो और निश्चेतनामें नीचे न उतरो। तुम्हें अंततक जाना चाहिये और वहां पीछे रहनेवाले प्रकाशको खोजना चाहिये, सत्य, शक्ति और आनंदको देखना चाहिये। इसके लिये तुम्हें बलवान् होना चाहिये, नीचे फिलसनेसे इन्कार करना चाहिये। लेकिन, मेरे बच्चो, इस चीजको हम जरा बादमें देखेंगे, जब तुम जरा बड़े हो जाओगे।

२० मई, १९५३

आपने कहा है: "जिनमें निकल भागनेका संकल्प है, वे भी, जब वे ऊपर, दूसरी दिशामें पहुंच जाते हैं तो उन्हें पता चल सकता है कि यह भागना, आखिर बहुत लाभदायक नहीं हुआ।"
प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ अप्रैल)

"दूसरी दिशा" से आपका क्या मतलब है ?

हमारा मतलब होता है परदेके उस पार, अस्तित्वका दूसरा पार्श्व। यह भौतिकमें न रहकर, उदाहरणके लिये, प्राणमें रहना या प्राणके सचेतन भागमें रहना है। व्यक्ति दो पार्श्वोंके बारेमें सचेतन हो जाता है इसलिये जानता है कि क्या हो रहा है। ऐसे लोग हैं जो दोनोंके विभेदका अनुभव प्राप्त करनेके लिये विधिवत् शरीरसे बाहर जाते हैं। लेकिन इसके लिये, तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह कैसे किया जाता है। और इसे एकदम अकेले नहीं करना चाहिये। वहां कोई आदमी शरीरकी देखभाल और निगरानीके लिये होना चाहिये।

क्या भगवान्‌के प्रति आत्म-निवेदन और समर्पण एक ही चीज है?

ये एक ही चीजके दो पहलू हैं। लेकिन बिलकुल एक नहीं हैं। एक दूसरेसे ज्यादा सक्रिय है। वे सत्ताके एक ही स्तरकी चीजें नहीं है।

उदाहरणके लिये, तुमने अपना जीवन भगवान्‌को निवेदित करनेका निश्चय कर लिया। लेकिन अचानक तुम्हारे साथ कोई बहुत ही अप्रिय, अप्रत्याशित घटना होती है और तुम्हारी पहली क्रिया होती है प्रतिक्रियाकी, विरोधकी, फिर भी तुमने अर्पण तो किया ही है, तुमने एक बारमें ही कह दिया है: "मेरा जीवन भगवान्‌का है।" और अचानक कोई बहुत ही अप्रिय घटना होती है (ऐसा हो सकता है), और तुम्हारे अंदर कोई चीज है जो प्रतिक्रिया करती है, जो उसे नहीं चाहती। लेकिन यहां, अगर तुम अपने निवेदनमें युक्तिसंगत होना चाहो तो तुम्हें इस अप्रिय घटनाको सामने लाकर भगवान्‌के आगे निवेदित कर देना चाहिये और बहुत निष्कपट भावसे उनसे कहना चाहिये: "भगवान्, तुम्हारी इच्छा पूरी हो। अगर तुमने इस तरह किया है तो यह इसी तरह होगा।" और यह एक स्वेच्छापूर्वक किया गया सहज लगाव होना चाहिये। और यह बहुत कठिन है।

छोटी-से-छोटी चीजके लिये भी, जो चीज उससे मेल नहीं खाती जिसकी तुमने आशा की थी, जिसके लिये तुमने काम किया है, एक विरोधी प्रतिक्रिया होनेकी जगह, तुम सहजभावसे, अप्रतिरोध्य रूपसे पीछे हटते हो: "नहीं, नहीं, यह नहीं" —, अगर तुमने पूर्ण समर्पण किया है, तो यह नहीं हो सकता, तुम एक अवस्थामें भी उतने ही अचंचल, शांत, स्थिर बने रहो जितने दूसरी अवस्थामें। शायद तुम्हारा ख्याल था कि चीज अगर एक तरहसे हो तो ज्यादा अच्छा होगा, लेकिन अगर वह

दूसरी तरहसे हो तो तुम्हें वह भी ठीक लगता है। उदाहरणके लिये, तुमने किसी चीजके लिये बहुत मेहनत की होगी ताकि अमुक परिणाम आये, तुमने बहुत समय लगाया होगा, बहुत शक्ति, बहुत इच्छा-शक्ति लगायी होगी — और यह सब अपने लिये नहीं, बल्कि मान लो, भगवान्‌के लिये (यह आत्म-निवेदन है); अब मान लो कि इतना कष्ट उठानेके बाद, इतना काम करनेके बाद, इतने प्रयासके बाद, सारी चीज उलटी दिशामें चली जाय, सफलता न मिले। अगर तुम सचमुच समर्पित हो तो तुम कहते हो: "यह अच्छा है, यह सब अच्छा है, यह बिलकुल ठीक है। मैं जो कुछ कर सकता था कर चुका, जितना अच्छा कर सकता था किया। अब यह मेरा निर्णय नहीं है, यह भगवान्‌का निर्णय है, वह जो कुछ निर्णय करें वह मुझे पूरी तरह स्वीकार है।" दूसरी ओर अगर तुम्हारे अंदर यह गहरा और सहज समर्पण नहीं है तो तुम अपने-आपसे कहते हो: "यह कैसे! मैंने यह करनेके लिये इतना कष्ट उठाया, यह मेरे स्वार्थके लिये नहीं भगवान्‌के कामके लिये है — और परिणाम यह आया। यह असफल रहा।" सौमेंसे निन्नानवे बार यही होता है।

सच्चा समर्पण बहुत कठिन चीज है।

क्या आत्म-समर्पणके लिये व्यक्तिको वह काम जारी रखना चाहिये जो करना चाहिये?

जो करना चाहिये उसे जारी रखना चाहिये, जो तुम्हें स्पष्ट रूपसे कर्तव्य कर्मके रूपमें दिखाया गया है, जो करना ही चाहिये — चाहे सफलता मिले या न मिले, चाहे परिणाम वैसा हो जैसा तुम सोचते और जिसकी आशा करते हो या वैसा न हो — उसका कोई महत्त्व नहीं — तुम जारी रखते हो।

लेकिन जब हम कोशिश करते हैं, तब बिना जाने हम जो भूलें करते हैं उन्हें कैसे जाना जाय?

अगर तुम पूरी तरह सच्चे हो तो तुम जान जाते हो। अपनी भूलको न जानना कहीं-न-कहीं कपटके होनेका चिह्न है। और प्रायः वह प्राणमें छिपा रहता है। जब प्राण सहयोग करना स्वीकार कर लेता है (जो अपने-आपमें एक बड़ा कदम है), जब वह निश्चय कर लेता है कि वह काम करेगा, अपना सारा प्रयास, अपनी सारी ऊर्जा काम सिद्ध करनेमें

लगा देना तब भी कहीं नीचे अच्छी तरह छिपी हुई एक प्रकारकी — उसे क्या कहें? — एक प्रत्याशा रहती है कि चीजें ठीक ढर्रेपर चलेंगी और परिणाम अनुकूल होगा। और यह चीज पूर्ण निष्कपटतापर परदा डाल देती है। क्योंकि यह प्रत्याशा एक अहंकारपूर्ण, व्यक्तिगत चीज है जो पूर्ण सचाईको छिपा देती है। और तब तुम नहीं जानते।

लेकिन अगर कोई पूरा-पूरा सच्चा हो तो जैसे ही जो कुछ वह कर रहा है वह ठीक वैसा न हो जैसा होना चाहिये तो वह उसे बहुत स्पष्ट रूपसे अनुभव करता है — उग्र रूपमें नहीं, स्पष्ट रूपसे, बहुत यथार्थ रूपसे: "नहीं, नहीं, यह नहीं।" और तब यदि व्यक्तिमें कोई आसक्ति नहीं है तो वह एकदम बंद हो जाता है, तुरंत बंद हो जाता है।

लेकिन व्यक्तिमें निष्काम कर्मके लिये भी आसक्ति होती है। तुम्हें यह समझ लेना चाहिये। तुमने अपना जीवन किसी ऐसे कामके लिये दे दिया है जो अहंकारमय नहीं है, फिर भी अहं तो है ही। और काम करनेका तुम्हारा एक विशेष और व्यक्तिमत तरीका है, और तुम्हारे अंदर एक आशा है (हम कामनाकी बात नहीं करते) कि परिणाम ऐसा होगा कि तुम्हें यह मिलेगा और यह हो जायगा। उस कामके लिये भी जो तुम्हारे अपने लिये नहीं है, जिसे तुमने अपने हाथमें लिया है, तुम प्रत्याशा करते हो कि उसमें सफलता मिलेगी, कि तुम्हें — व्यक्तिगत रूपमें नहीं — सफलता मिलेगी। जो काम तुम कर रहे हो, जिस लिये कर रहे हो उसमें सफलता मिलेगी। हां, यह उस तरहकी किसी चीजका जरा-सा टुकड़ा ले आती है, बिलकुल नीचे, बिलकुल छिपी हुई, जरा-सी चीज जो जरा... बिलकुल सीधी नहीं है, जरा टेढ़ी, ऐंठी हुई। और तब तुम नहीं जानते। लेकिन अगर वह न होती तो जैसे ही तुम जो करना चाहिये वह करनेसे चूकते हो तो तुम्हें पता लग जायगा। तुम उसे ठीक-ठीक पूरे यथार्थ रूपमें जान लोगे। यह एक बहुत ही सूक्ष्म गति है, एक मिलीमीटरके हजारवें भाग जैसी। हां, वह है, और यह काफी है। तुम जानते हो: "मेरी भूल थी।" तुम्हारे अंदर वह परम-निष्कपटता होनी चाहिये जो यथार्थ रूपमें, किसी कीमतपर भी भूल नहीं होने देना चाहती, जो कुछ भी कर सकती है, किसी भी चीजको त्याग सकती है। किसी प्रकारके भ्रममें रहनेकी अपेक्षा हर चीजको त्याग सकती है। परंतु यह बहुत कठिन है, इसमें बहुत समय और बहुत श्रम लगता है। जब तुम कुछ चीज करते हो तो वे दो, मन और प्राण, हमेशा मौजूद होते हैं और तुम जो कर रहे हो उससे कुछ लाभ उठाना चाहते हैं, आत्म-संतोषका लाभ, सुखका लाभ, अपने बारेमें

अच्छी रायका लाभ। अपने-आपको धोखा न देना मुश्किल है।

यह अनुभव करनेका ठीक उपाय क्या है कि हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे द्वारा काम कर रहे हैं?

तुम्हें अपने सिरसे अनुभव नहीं करना चाहिये (क्योंकि तुम ऐसा सोच सकते हो, पर यह अस्पष्ट-सी चीज है)। तुम्हें अपनी संवेदन-भावनासे अनुभव करना चाहिये। स्वभावतः इसका आरंभ होता है मनके द्वारा चाहनेसे क्योंकि वही पहली चीज है जो समझ सकती है। और तब यहां (हृदयकी ओर संकेत) अभीप्सा होती है, एक ज्वाला होती है जो तुम्हें उसे अनुभव करनेके लिये धकेलती है। परंतु यदि तुम सचमुच वही चीज चाहते हो तो, तुम्हें अनुभव करना चाहिये।

तुम कुछ कर रहे हो, उदाहरणके लिये मान लो, तुम कसरत कर रहे हो, भार उठा रहे हो। अब अचानक तुम्हारे यह जाने बिना कि यह कैसे हुआ, सहसा तुम्हें लगता है कि एक शक्ति तुमसे अनंतगुनी महान् है, एक अधिक महान्, अधिक बलशाली शक्ति तुम्हारे लिये भार उठानेका काम कर रही है। तुम्हारा शरीर लगभग असत् बन जाता है, कोई और ही 'चीज' है जो भार उठाती है। और तब तुम देखोगे; जब तुम्हारे साथ ऐसी घटना घटे तब फिर तुम यह न पूछोगे कि यह कैसे किया जाय। तुम जानते होगे। ऐसा होता है।

यह व्यक्तियोंपर निर्भर है, इसपर निर्भर है कि उनमें कौन-सी चीज प्रधान है। जो सोचते हैं उन्हें अचानक यह लगता है कि अब वह नहीं सोच रहे, कि कोई और चीज है जो उनसे बहुत अधिक अच्छी तरह जानती है, बहुत अधिक स्पष्ट देखती है, जो कहीं अधिक प्रकाशमान है, उनके अंदर अधिक सचेतन है, जो विचारों और शब्दोंको व्यवस्थित करती है और तब वे लिखते हैं। लेकिन अगर अनुभूति पूर्ण है तो फिर वे नहीं लिखते, वही चीज उनके हाथको पकड़कर उससे लिखवाती है। हां, तो तब तुम्हें पता लगता है कि यह भौतिक व्यक्ति तो एक छोटा-सा, बहुत ही नगण्य अस्त्र है जो अनुभूतिमें बाधा न देनेके लिये यथासंभव, अधिक-से-अधिक अचंचल है।

हां, किसी भी कीमतपर इस अनुभूतिमें बाधा न देनी चाहिये। अगर तुम अचानक कह उठो: "लो देखो, यह कैसा अजीब है!

हम उस अवस्थातक कैसे पहुंच सकते हैं?

उसके लिये अभीप्सा करो, उसे चाहो। कम, और भी कम स्वार्थी रहनेकी कोशिश करो लेकिन इस अर्थमें नहीं कि अपने-आपको भूलकर औरोंके साथ भले बनो। नहीं, यह नहीं। यह भावना कम, और भी कम रखो कि तुम एक अलग व्यक्ति हो, औरोंसे अलग, अपनेमें विद्यमान सत्ता हो।

और फिर सबसे बढ़कर, सबसे बढ़कर है वह आंतरिक ज्वाला, वह अभीप्सा, वह प्रकाशकी आवश्यकता। यह एक प्रकारकी — (कैसे कहा जाय? — प्रकाशमय उत्साह है जो तुम्हें पकड़ लेता है। यह गल जानेकी, अपने-आपको देनेकी, केवल भगवान्‌के लिये जीनेकी आवश्यकता है जिसके सामने कोई चीज नहीं टिक सकती।

उस क्षण तुम्हें अपनी अभीप्साका अनुभव होता है।

लेकिन वह क्षण पूरी तरहसे निष्कपट और भरसक समग्र होना चाहिये और यह सब केवल मस्तिष्क, न सिर्फ यहां, बल्कि सब जगह, शरीरके कोषाणुओंतकमें होना चाहिये। समग्र चेतनाको ऐसी आवश्यकताका अनुभव होना चाहिये जिसका कोई प्रतिरोध न हो सके...। यह चीज कुछ देर रहती है, फिर कम होती है और बुझ जाती है। तुम इन चीजोंको लंबे समयतक नहीं रख सकते। लेकिन फिर वह होता है कि अगले ही क्षण या अगले दिन या कुछ दिन बाद तुम्हें इससे उलटा अनुभव होता है। इस आरोहणका और उन सब चीजोंको अनुभव करनेकी जगह, यह कुछ नहीं रहता, तुम्हारे अंदर एक 'अवतरण' की भावना रहती है — 'उत्तर'। और उत्तरके सिवाय किसीका अस्तित्व नहीं होता। भागवत विचार, भागवत संकल्प, भागवत ऊर्जा, भागवत कर्मके सिवाय किसीका अस्तित्व नहीं रहता। और तुम भी, "तुम" का भी अस्तित्व नहीं रहता।

अर्थात्, यह हमारी अभीप्साका उत्तर है। यह तुरंत बाद हो सकता है — यह बहुत विरल है पर हो सकता है। अगर दोनों साथ-ही-साथ आयं तो आदर्श स्थिति है। साधारणतः, वे एकके बाद एक आती हैं, बीचका अंतर कम होता जाता है, यहांतक कि दोनों मिल जाती हैं। तब दोनोंमें कोई फर्क नहीं रह जाता। मैंने एक सूफी रहस्यवादीसे (जो साथ-ही-साथ एक बड़ा भारतीय संगीतज्ञ था), यह सुना था कि सूफियोंकी दृष्टिमें भगवान्‌के प्रति पूजा और समर्पणसे भी ऊंची एक अवस्था होती है, यही अंतिम अवस्था नहीं है। प्रगतिकी अंतिम अवस्था वह है जिसमें कोई भेद नहीं रह जाता। पूजा या समर्पण

या आत्म-निवेदन नहीं रह जाता। यह एक बहुत सरल-सी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति अपने और भगवान्‌के अंदर कोई फर्क नहीं करता। वे इसे जानते हैं। उनकी किताबोंमें भी इसका वर्णन मिलता है। यह एक सामान्य रूपसे जानी हुई अवस्था है जिसमें सब कुछ काफी सरल बन जाता है। कोई फर्क नहीं रह जाता। तब उस प्रकारका "किसी ऐसी चीज" के प्रति आनंद-भरा समर्पण नहीं रह जाता जो सब प्रकारसे तुमसे परे है, जिसे तुम समझ नहीं पाते, जो केवल तुम्हारी अभीप्सा, तुम्हारी भक्तिका परिणाम है। तब कोई फर्क नहीं रह जाता। जब ऐक्य पूरा हो जाता है तो कोई फर्क नहीं रह जाता।

तो क्या आत्म-प्रगतिका यही अंत है?

प्रगतिका अंत कहीं नहीं है — कभी कोई अंत नहीं है। तम कहीं पर्ण विराम नहीं लगा सकते।

क्या यह शरीरके रूपांतरसे पहले हो सकता है?

शरीरके रूपांतरसे पहले? ... यह तो चेतनाकी घटना है। उदाहरणके लिये कोषाणुओंके बदलनेसे बरसों पहले भौतिक चेतनाको यह अनुभूति हो सकती है। भौतिक चेतना (शारीरिक चेतना) और जड़ शरीरमें बहुत फर्क है। इसमें बहुत समय लगता है क्योंकि यह पहले कभी नहीं किया गया। वह अवस्था, जैसा कि मैं पहले ही कह चुकी हूं, साधारण रूपमें जानी हुई अवस्था है जिसे कुछ लोग, बहुत आगे बढ़े हुए, रहस्यवादियोंमें सबसे ऊंचे लोग पा चुके हैं लेकिन शारीरिक रूपांतर कभी किसीने नहीं किया।

और इसमें बहुत अधिक समय लगता है। श्रीअरविंदने कहा — एक दिन मैंने उनसे पूछा: "शरीरके रूपांतरमें कितना समय लगेगा?" उन्होंने संकोच नहीं किया। उन्होंने कहा: "लगभग तीन सौ वर्ष।"

बस तीन-सौ वर्ष?

मैं अभी जिस चेतनाकी बात कर रही थी उसकी प्राप्तिके बाद तीन सौ वर्ष। (हंसी)

नहीं, निष्कर्ष, तुम्हें जो करनेमें सफल होना चाहिये वह यह है: अपने

जीवनको इच्छाके अनुसार लंबा कर सको; जबतक तुम शरीरको छोड़ना ही न चाहो तबतक न छोड़ो।

हां, तो अगर तुमने शरीरको रूपांतरित करनेका निश्चय कर लिया है तो तुम्हें धीरजके साथ प्रतीक्षा करनी होगी — तीन सौ वर्ष, पांच सौ वर्ष, एक हजार वर्ष, इसका कोई महत्त्व नहीं है — परिवर्तनमें चाहे जितना समय लगे। मैं सोचती हूं कि तीन सौ वर्ष कम-से-कम हैं। सच कहूं तो, मुझे चीजोंका जो अनुभव है, मेरा ख्याल है कि यह सचमुच कम-से-कम है।

जरा कल्पना करो। तुमने कभी सोचा भी नहीं कि इसका क्या मतलब है, सोचा है? तुम्हारा शरीर कैसे बना है? सभी अवयवों, सभी क्रियाओंके साथ शुद्ध पाशविक रूपमें। तुम पूरी तरह निर्भर हो: यदि तुम्हारा हृदय एक सेकंडके हजारवें हिस्सेके लिये भी बंद हो जाय तो किस्सा खतम, तुम चले जाते हो। सारी चीज चलती रहती है और तुम्हारी सचेतन इच्छाके बिना अपने-आप चलती रहती है (यह तुम्हारे लिये सौभाग्यकी बात है, यदि तुम्हें उस कार्य-कलापकी निगरानी करनी होती तो वह बहुत पहले गलत रास्तेपर चले जाते!)। यह सब तो है ही। सब कुछ जरूरी है; क्योंकि यह इसी रूपमें संगठित किया गया था। तुम किसी अवयवके बिना काम नहीं कर सकते, कम-से-कम पूरी तरह नहीं कर सकते, कोई ऐसी चीज होनी चाहिये जो उसका स्थान ले सके।

रूपांतरमें यह बात आ जाती है कि इस पूरी तरहसे भौतिक व्यवस्थाका स्थान शक्तिके केंद्रोंकी व्यवस्था ले ले जिसमें अमुक प्रकारके विभिन्न स्पंदन होते हैं; हर अवयव और इंद्रियका स्थान सचेतन ऊर्जाका केंद्र ले ले जिसका संचालन सचेतन संकल्प और ऊपरसे, उच्चतर क्षेत्रोंसे आनेवाली गति ले ले। आमाशय नहीं, हृदय नहीं, रक्त संचार नहीं, फुफ्फुस नहीं...। ये सब गायब। और इन सबके स्थानपर स्पंदनोंकी माला — जो उसका प्रतिनिधित्व करेगी, अवयव जिसका प्रतीक है। क्योंकि अवयव या इंद्रियां ऊर्जाके केंद्रोंके भौतिक प्रतीक-भर हैं, वे तात्त्विक सद्वस्तु नहीं हैं। वे उसे केवल एक आकार या किन्हीं परिस्थितियोंमें सहारा देते हैं। तब रूपांतरित शरीर अपने वास्तविक ऊर्जा-केंद्रोंके द्वारा काम करेगा, पाशविक शरीरमें बने उनके प्रतीकात्मक प्रतिनिधियोंद्वारा नहीं। इसलिये सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि वैश्व ऊर्जामें तुम्हारा हृदय किस चीजका प्रतिनिधि है, रक्तसंचार किस चीजका प्रतिनिधि है, मस्तिष्क किस चीजका प्रतिनिधि है। शुरूमें, पहले तो तुम्हें इस सबके बारे-

में सचेतन होना होगा। और तब ये अवयव या इंद्रियां जिन मौलिक स्पंदनोंका प्रतिनिधित्व करते हैं, वे तुम्हारे अधिकारमें होने चाहिये। और तुम्हें धीरे-धीरे अपने शरीरमें इन सब ऊर्जाओंको इकट्ठा करना होगा और हर अवयवके स्थानपर सचेतन ऊर्जाके केंद्रको लाना होगा जो प्रतीकात्मक क्रियाके स्थानपर वास्तविक क्रियाको लायेगा...। तुम्हें लगता है कि यह सब करनेमें बस तीन सौ वर्ष ही लगेंगे? मुझे तो लगता है कि एक ऐसा रूप पानेमें तीन सौ वर्षसे बहुत अधिक समय लगेगा जिसमें ठीक वही गुण नहीं होंगे जिन्हें हम जानते हैं, बल्कि बहुत अधिक श्रेष्ठ गुण होंगे, एक ऐसा रूप जिसके बारेमें हम यह स्वप्न ले सकते हैं कि वह नमनीय होगा। जैसे तुम्हारे भावोंके साथ चेहरेका भाव भी बदलता है, उसी तरह तुम शरीरसे जो व्यक्त करना चाहते हो उसके अनुसार शरीर भी बदलेगा (रूप नहीं, उसी रूपके अंदर), वह बहुत घन हो सकता है, बहुत विकसित, बहुत आलोकमय, बहुत मेधावी हो सकता है जिसमें इच्छानुसार पूर्ण नमनीयता, पूर्ण लचीलापन, हल्कापन होगा...। क्या तुमने ऐसा स्वप्न नहीं देखा जिसमें तुम धरतीको लात मारकर ऊपर उठ जाते हो और हवामें उड़ते फिरते हो? तुम इधर-उधर घूमते हो। तुम अपने कंधेसे जरा-सा धक्का देते हो और इस ओर चले जाते हो; तुम फिर धक्का देते हो और उस ओर चले जाते हो। तुम आसानीसे जहां चाहो चले जाते हो और अंतमें यह सब करके तुम अपने शरीरमें लौट आते हो। हां, तो तुम्हें यह सब अपने शरीरके साथ कर सकना चाहिये, और श्वासोच्छ्वासके साथ संबंध रखनेवाली कुछ चीजें भी — लेकिन वहां फेफड़े न होंगे। प्रतीकात्मक गतिके पीछे एक सच्ची गति होती है जो तुम्हें हल्केपनकी यह क्षमता देती है। तुम अब गुरुत्वाकर्षणके तंत्रसे बच निकलते हो। यही बात और अवयवोंके बारेमें होती है।[1]

कल्पनाका कहीं अंत नहीं: जब चाहो अलोकमय बन जाओ, जब चाहो

---

[1] श्रीअरविन्दके मतानुसार श्वासोच्छ्वासके पीछे भी वही शक्ति काम करती है जो विद्युत् और चुंबकके क्षेत्रोंका नियंत्रण करती है। इसे प्राचीन योगी वायु या 'प्राण-शक्ति' कहते थे। प्राणायाम वायुपर अधिकार करनेवाली अनेक पद्धतियोंमेंसे एक है जो आगे चलकर तुम्हें गुरुत्वाकर्षणसे मुक्त कर देती है और कुछ ऐसी सिद्धियां देती है जिनसे प्राचीन लोग परिचित थे (गरिमा, लघिमा, महिमा, अणिमा) इस वार्ताके अंतमें हम इस प्रकारकी "सच्ची गतियों" के बारेमें श्रीअरविन्दकी बातचीतका एक उद्धरण दे रहे हैं। (देखो इसी वार्ताका परिशिष्ट)

पारदर्शक बन जाओ। स्वभावतः इस शरीरमें हड्डियोंकी जरूरत न रहेगी। यह हड्डी, चमड़ी और आंतोंका शरीर न होगा। यह और ही चीज होगी। यहां संकल्पकी आज्ञा माननेवाली घन ऊर्जा होगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि कोई निश्चित या पहचाने जा सकनेवाले रूप न होंगे। रूप ठोस कणोंसे नहीं, गुणोंसे बने होंगे। यह कहा जा सकता है कि वह क्रियात्मक और व्यावहारिक रूप होगा। वह स्थूल भौतिक शरीरकी स्थिरताकी तुलनामें सुनम्य, गतिशील और इच्छानुसार हल्का होगा।

हां, तो इसे जैसा कि मैंने कहा, उस रूपमें बदलनेके लिये, जिसका मैंने अभी वर्णन किया है, तीन सौ वर्ष सचमुच बहुत कम हैं। लगता तो यह है, इससे बहुत ज्यादा लगेंगे। शायद बहुत, बहुत, बहुत केंद्रित कामसे...।

एक ही शरीरके साथ तीन सौ वर्षतक?

नहीं, परिवर्तन होता है, यह वही शरीर नहीं बना रहता।

लेकिन देखो, हमारी छोटी-सी मानवता जब एक ही शरीरमें तीन सौ वर्ष रहनेकी बात करती है तो तुम कहते हो: "मैं अभी पचासका हूं और अभीसे क्षीण होने लगा। तीन सौ वर्षमें तो भयंकर चीज हो जायगी।" लेकिन बात ऐसी नहीं है। तीन सौ वर्षतक ऐसे शरीरके साथ जो अपने-आपको पूर्ण बनाता जाता है शायद तीन सौ वर्ष पूरे होने-पर तुम कहोगे: "ओह! मैं जो होना चाहता हूं वह होनेके लिये मुझे अभी और तीन सौ वर्ष चाहिये।" यदि व्यतीत होनेवाला हर वर्ष एक प्रगतिका, एक रूपांतरका प्रतीक हो तो तुम अधिकाधिक वर्ष रहना चाहोगे ताकि अधिकाधिक रूपांतर हो सके। जब कोई चीज ठीक वैसी न हो जैसी तुम चाहते हो, उदाहरणके लिये, मैंने अभी जो चीजें गिनायीं उनमेंसे किसी एकको ले लो। नमनीयता, हल्कापन, लचीलापन, दीप्ति, इनमेंसे कोई भी उस स्थितिमें नहीं है जिसमें तुम चाहते हो। तुम्हें उसे पूरा करनेके लिये और दो सौ वर्षोंकी जरूरत है। तुम कभी यह न सोचोगे: "यह कैसे! यह अभी और दो सौ वर्ष लेगा!" उसके विरुद्ध तुम कहोगे: "और दो सौ वर्ष तो एकदम जरूरी हैं ताकि यह काम सच-मुच हो सके।" और तब जब सब कुछ हो जायगा, जब सब कुछ पूर्ण होगा, वर्षोंका सवाल ही न रहेगा, तुम अमर होगे।

लेकिन बहुत-सी आपत्तियां की जा सकती हैं। यह कहा जा सकता है कि जबतक परिवेशमें कुछ परिवर्तन न हो तबतक शरीरमें परिवर्तन होना संभव नहीं है। अगर तुम इतने ज्यादा बदल गये तो और चीजोंके

साथ क्या संबंध होगा? और अन्य सत्ताओंके साथ? ऐसा लगता है कि तुम्हारे अस्तित्वके लिये, तुम्हारे रह सकनेके लिये चीजोंकी शृंखलाका, कम-से-कम, सापेक्ष अनुपातमें बदलना जरूरी है। इससे बहुत जटिलता आ जाती है क्योंकि तब केवल एक व्यक्तिगत चेतनाके कामकी बात नहीं रहती। यह तो सामूहिक चेतनाकी बात हो जाती है। इसलिये यह और भी अधिक कठिन है।

(मौन)

भगवान् हमारे लिये जो कुछ कर रहे हैं, अगर हम उस सबके बारेमें सचेतन न हों तो क्या हम प्रगति नहीं करते?

तुम प्रगति तो करते हो, पर प्रगतिके बारेमें सचेतन नहीं होते, यह संकल्पके साथ की गयी प्रगति नहीं होती। अर्थात्, यह ऐसी प्रगति होती है जिसे भगवान् तुम्हारे सहयोगके बिना तुम्हारे अंदर करवाते हैं। इसमें बहुत अधिक समय लगता है। यह होती तो है, पर इसमें समय बहुत लगता है। जब तुम सचेतन हो और सहयोग दो और वास्तवमें जो करना चाहिये उसे सचेतन रूपसे करते चलो तो प्रगति बहुत अधिक तेजीसे होती है।

बहुत-से लोग ऐसे हैं जो इतने भी सचेतन नहीं होते, मनुष्योंका बहुत बड़ा भाग अपने अंदर भागवत शक्तिके कामके बारेमें सचेतन नहीं होता। अगर तुम उनसे इसके बारेमें बात करो तो वे आंखें घुमाकर आश्चर्यसे तुम्हारी ओर देखते हैं, वे तुम्हें आधा पागल मान लेते हैं और यह नहीं जानते कि तुम क्या कह रहे हो। मानव सत्ताओंका बहुत अधिक भाग ऐसा ही है। फिर भी 'चेतना' काम कर रही है, सारे समय काम कर रही है। वे चाहें या न चाहें, वह उन्हें अंदरसे गढ़ती रहती है। लेकिन फिर, जब उन्हें इस बातका होश आता है, तो ऐसे लोग हैं जिन्हें इससे धक्का लगता है। ऐसे मूर्ख हैं जो विद्रोह करते और कहते हैं: "ओह! नहीं, मैं अपने-आप बना रहना चाहता हूं।" "अपने-आप", मतलब, ऐसा मूढ़ जो कुछ नहीं जानता। फिर यह अवस्था भी गुजर जाती है। अंतमें एक क्षण आता है जब व्यक्ति सहयोग करता है और कहता है: "आहा! क्या आनंद है! और तब तुम अपने-आपको दे देते हो, तुम जितने निष्क्रिय और ग्रहणशील बन सकते हो, बनना चाहते हो ताकि इस भागवत संकल्पके, भागवत चेतनाके, जो काम कर रही है, रास्तेमें न आओ। तुम ज्यादा-ज्यादा दत्तचित्त होते हो और जिस अनुपातमें तुम अधिक दत्तचित्त और

अधिक सच्चे बनते हो उसी अनुपातमें यह अनुभव कर सकते हो कि यह भागवत चेतना किस दिशामें, किस गति-विधिमें काम कर रही है और तुम अपने-आपको पूरी तरह उसे दे देते हो। चीज ज्यादा तेजीसे परिपक्व हो जाती है। इस तरह जो काम कई वर्ष ले लेता उसे तुम मिनटोंमें कर सकते हो। योगका यही लक्ष्य है : तुम कामको कुछ घंटोंमें, संकेन्द्रित और कम समयमें कर सकते हो : प्रकृति जिस कामको कर रही है, प्रकृति जो करेगी उसे तुम एक दूसरे तरीकेसे कर सकते हो — प्रकृति इस सबका रूपांतर करनेमें सफल होगी, लेकिन जब हम देखते हैं कि उसने जितना किया है उसमें कितना समय लगा है, तो अगर हम उसे एक और ही तरीकेसे करना चाहें...। स्पष्ट है कि भागवत चेतनाके लिये समयका कोई मूल्य नहीं लेकिन यहांकी चेतनाके लिये यह बहुत अधिक है। एक दृष्टिकोण है जिससे तुम कहते हो : "उंह ! यह हो जायगा, यह जरूर होगा, इसलिये यह ठीक है। चीजोंको बस चलते रहने दो।" लेकिन यह बाह्य मानव चेतना नहीं है, वह भाग नहीं लेती, वह छोटी-सी चेतना जो इस शरीरमें बनी है (इस शरीरमें जो वर्तमान रीतिसे बना है), यह, काम पूरा होनेसे बहुत पहले जा चुकेगी। क्योंकि आखिर प्रकृतिकी प्रगति एक शताब्दीसे दूसरी शताब्दीमें नहीं होती। अगर हम पीछे मुड़कर देखें तो ऐसा नहीं लगता कि मनुष्य तीन हजार वर्ष पहले जो था, वास्तवमें, उससे कोई विशेष प्रगति हुई हो — बस, जरा-सी, कुछ-कुछ; कुछ-कुछ जो विशेष रूपसे दिमागमें हुई है जो कुछ ज्यादा समझता है; और प्रकृति जो करती है उसपर एक प्रकारका नियंत्रण, उसकी प्रक्रियाको समझकर उसकी युक्तियोंको ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता है और जैसे-जैसे व्यक्ति उसकी युक्तियोंको समझता है, वह हस्तक्षेप करना शुरू कर देता है। लेकिन चूंकि व्यक्तिके पास सच्चा ज्ञान नहीं होता इसलिये जब वह हस्तक्षेप करता है तो आसानीसे बहुत-सी भूलें कर सकता है...। वास्तवमें, जब मनुष्य, उदाहरणके लिये, जड़-पदार्थकी रचनाके सब रहस्य जान लेगा तब न जाने क्या होगा। पहले ही उन्होंने अपने-आपको नष्ट करनेके काफी अच्छे उपाय खोज निकाले हैं। हम देखेंगे कि क्या होनेवाला है। लेकिन यह एक बहुत छोटा कदम है। यह विशेष रूपसे यहां होता है (सिरकी ओर संकेत), और बहुत ही सापेक्ष भौतिक परिणाम लाता है।

इस चेतनाका अभ्यास कैसे किया जाय ?

तुम्हें सचेतन होनेके संकल्पको निरंतर बनाये रखना चाहिये और फिर

मानसिक संकल्पको अभीप्सामें बदलना चाहिये। तुम्हारे अंदर यह गति होनी चाहिये। और फिर कभी न भूलो। तुम्हें देखना चाहिये, अपने-आपको देखना चाहिये, और अपने जीवनको सचाईके साथ, बिना भूल किये देखना चाहिये। अपने-आपको कभी धोखा न दो। ओह! यह कितना कठिन है!

क्या तुम्हें सहज रूपसे — बिना प्रयासके सहज रूपसे — यह बोध हुआ है कि तुमने भूल की है? मैं यहां बाहरी प्रतिक्रियाकी बात नहीं कह रही जो तुम्हें थप्पड़ देकर अचानक जगाती है और तुम कह उठते हो: "आह! धिक्कार है, मैंने क्या कर डाला?" मैं उसकी बात नहीं कर रही। जब तुम एक चीज करते हो, एक चीजका अनुभव करते हो, जब तुम एक बात कहते हो — उन मामूली छोटे-मोटे झगड़ोंको ही ले लो, जैसे (कम-से-कम) एक दरजन रोज मुझे सुनाये जाते हैं (मुझे आश्चर्य है कि तर्क-बुद्धिके होते हुए कोई ऐसी चीजोंके बारेमें कैसे झगड़ सकता है), हां, तो उस समय तुम ऐसे शब्द कहते हो जो नहीं कहने चाहिये, जो बिलकुल मूर्खतापूर्ण होते हैं, क्या उस समय तुम देख सकते हो कि तुम सचमुच मूर्ख हो — हम इससे अधिक नहीं कहते — सहज रूपमें देख सकते हो? तुम हमेशा सफाई देते हो। तुम्हें हमेशा यह लगता है कि गलती दूसरे व्यक्तिकी है और तुम ठीक हो और सचमुच, उससे कह देना चाहिये कि वह गलत है, है न? वरना वह कभी न जान पायेगा! है न? मैं चीजको जरा ज्यादा स्पष्ट करके रख रही हूं, मानों एक छोटे-से सूक्ष्मदर्शीके नीचे रखी हो ताकि वह कुछ बड़ी दिखायी दे। लेकिन बात है ऐसी ही। और जबतक चीज ऐसी है तबतक तुम सत्य चेतनासे लाखों मील दूर हो। जब तुम तुरंत, उसी क्षण पीछे न हट सको, अपने-आपको दूसरेकी जगह-पर रखकर यह न समझ सको कि उसे ऐसा क्यों लगता है, अपनी कमजोरी-की झांकी न ले सको, दोनोंकी तुलना करके इस परिणामपर न आ सको: "ओह! चीज ऐसी है, सच्ची बात यह है" — तो इसका मतलब यह है कि तुम अभीतक बहुत पीछे हो। जब तुम सहज भावसे तुरंत यह कर सको, इसमें समय न लगे, यह एक स्वाभाविक गति हो, तब तुम संतुष्ट हो सकते हो कि तुमने थोड़ी-सी प्रगति की है...। ऐसा अनुभव तुम्हें दिनमें कितनी बार होता है? भले खुलकर लड़ाई न हो, सिरमें कितनी बार यह प्रतिक्रिया होती है, वहां सिरके अंदर कुछ चीज कूदती है। समताकी इस बुद्धिमत्ताकी जगह जो घटनाके होनेके समय ही उसे देखती है और समझती है कि चीजें कैसे और क्यों हो रही हैं, और देखती है इतने निर्वैयक्तिक रूपसे कि वह हमेशा मुस्करा सके और कभी उग्र प्रतिक्रिया न करे — कभी नहीं।

और अगर तुम सत्यका बोध पा भी लो, जो बहुत परे और बहुत ऊपर है, जो सत्य उपलब्ध नहीं हुआ है और जिसे तुम पाना चाहते हो, यदि तुम्हें उसका स्पष्ट अंतर्दर्शन हो और तुम हमेशा जो सत्य है और जिसे होना चाहिये और जो मिथ्या और विकृत है, जिसे अपना स्थान दूसरेको दे देना चाहिये, उन्हें स्पष्ट रीतिसे देख सको, तो फिर कोई प्रतिक्रिया न होगी। जो चीजें तुम्हें महामूर्खतापूर्ण, अत्यंत जड़मति, अत्यंत अंधेरी, अत्यंत अज्ञानी, अत्यंत गंवारू, अत्यंत अनगढ़ लगती हैं वे भी तुम्हारे चेहरेपर मुस्कान ला सकती हैं क्योंकि तुम उस सारे रास्तेकी लंबाईको देख सकते हो जिसे तुम्हें पार करना होगा ताकि वह ऊपरसे यहां नीचे आ सके। और अगर इसपर उग्र प्रतिक्रियाएं ही होतीं तो संसार कबका गायब हो गया होता। क्योंकि वास्तवमें, अगर संसार केवल सत्य होनेकी शर्तपर ही टिका रह सकता तो बहुत पहले उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता! क्योंकि वह आजतक तो कभी सत्य नहीं हुआ।

लेकिन अगर तुम उस चेतनामें रहो और वहांसे देखो तो तुम सत्यको कुछ-कुछ समझने लगते हो। और यह चेतना समग्र होनी चाहिये कि यदि चीजें सीधी तुम्हारे विरुद्ध आयं, यहांतक कि तुम्हें पीटनेके लिये किसीकी भौतिक क्रिया भी हो (तुम्हें उसे अपनी हत्या नहीं करने देनी चाहिये, हत्या न होने देनेके लिये जो कुछ जरूरी हो वह करना चाहिये), लेकिन अगर तुम इस समग्र चेतनामें रहो और तुम्हारे अंदर कोई व्यक्तिगत प्रतिक्रिया न हो, तो मैं जिम्मा लेती हूं कि दूसरा व्यक्ति तुम्हारी हत्या न कर सकेगा। वह कोशिश करे तब भी न कर सकेगा। वह तुम्हें पीटनेकी कोशिश करे तो भी न पीट सकेगा। बस, तुम्हारे अंदर एक भी उग्र या गलत स्पंदन न होना चाहिये। समझे? अगर जरा-सा भी मिथ्या स्पंदन है तो वह दरवाजा खोल देता है और वह चीज अंदर आ जाती है और सब कुछ बिगड़ जाता है। तुम्हें पूरी तरह सचेतन होना चाहिये, पूरा ज्ञान होना चाहिये, हर चीजपर पूरा प्रभुत्व होना चाहिये — 'सत्य' का स्पष्ट अंतर्दर्शन होना चाहिये — और चाहिये पूर्ण शांति।

तुम्हें सारे समय प्रयास करना चाहिये।

लो बस!

परिशिष्ट

(एक फरासीसी वैज्ञानिक शिष्यके साथ श्रीअरविंदकी बातचीतसे उद्धृत)

८ मई, १९२६

पश्चिमके उच्चतम मन आध्यात्मिकताकी ओर नहीं, भौतिक विज्ञानकी ओर मुड़े हैं। भौतिक विज्ञानका क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। वह भौतिक स्तरके एकदम बाहरी भागको ही छूता है।

और वहां भी विज्ञान सचमुच क्या जानता है? वह नियमोंकी क्रियाका अध्ययन करता है, सिद्धांत बनाता है जिन्हें हर बार परम सत्यका अंतिम रूप बतलाया जाता है और हमेशा ही बदला जाता है! अभी कुछ समय पहले आणविक सिद्धांत था, अब इलेक्ट्रोनिक आ गया है।

उदाहरणके लिये, आधुनिक विज्ञानके दो वक्तव्य गुह्यविद्यावालोंके गहरे क्षेत्रोंको जगाते हैं:

१. परमाणु सौर मंडलकी तरह तेजीसे घूमते रहते हैं।

२. सभी चीजोंके परमाणु उन्हीं तत्त्वोंसे बने होते हैं, भिन्न व्यवस्था ही उनके भिन्न गुणोंका कारण है।

अगर इन वक्तव्योंको उनके सच्चे रूपमें देखा जाय तो ये विज्ञानको ऐसी नयी खोजोंकी ओर ले जायंगे जिनके बारेमें अभी कोई धारणातक नहीं है और जिनकी तुलनामें वर्तमान विज्ञान बहुत अपर्याप्त है।

प्राचीन योगियोंके अनुभवके अनुसार गोचर द्रव्य पांच भूतोंसे बना है: पृथ्वी, आपः, अग्नि (तेज), वायु और आकाश।

अग्नि तीन प्रकारकी है:

१. समान्य आग, जड़ अग्नि;

२. बिजलीकी आग, वैद्युत अग्नि;

३. सूर्यकी आग, सौर अग्नि;

विज्ञानका अभी पहली और दूसरी अग्निसे ही परिचय है। यह तथ्य कि अणु सौर मंडल जैसा होता है उसे तीसरीके संपर्ककी ओर ले जा सकता है।[1]

अग्निके परे वायु है जिसके बारेमें विज्ञान कुछ नहीं जानता। यह सभी

---

[1] (यह द्रष्टव्य है कि १९२६ के बाद सचमुच एक तीसरी अग्निकी खोज हुई है जो आणविक प्रतिक्रियाके साथ रहती है — और यह अग्नि

संपर्क और आदान-प्रदानका सहारा है, गुरुत्वाकर्षण और चुंबकीय और बिजलीके क्षेत्रोंका कारण है। यही अग्नि रूपायन करनेवाले तत्त्वकी क्रियाको संभव बनाता है।

और वायुके परे आकाश है।

लेकिन ये पांचों भौतिक लोकके केवल स्थूलतम भागको बनाते हैं। इसके एकदम पीछे भौतिक प्राण — जीवन तत्त्व, द्रव्यमें छिपा रहता है। जगदीशचंद्र बसु अपने परीक्षणोंमें इसे छू रहे हैं। इसके परे जड़-तत्त्वमें मन है। इस मनका रूप मनुष्यके मनसे बहुत भिन्न है, फिर भी वह संगठनके उसी तत्त्वकी एक अभिव्यक्ति है। और बहुत अधिक गहराईमें दो और स्तर छिपे हुए हैं।

यह केवल भौतिक स्तरके साथ संबंध रखनेवाली गुह्यविद्या है। विज्ञान इससे बहुत पीछे है।

जिन हिंदू योगियोंने इन सत्योंको प्राप्त किया था उन्होंने इन्हें फैलाकर वैज्ञानिक ज्ञानका रूप नहीं दिया। उनके सामने कर्म और ज्ञानके दूसरे क्षेत्र खुले हुए थे इसलिये उन्होंने, जिसे वे अभिव्यक्तिके सबसे बढ़कर बाहरी क्षेत्र मानते थे, उसकी उपेक्षा की।

वैज्ञानिक मन और गुह्यवेत्ताके मनकी गठनमें फर्क होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि जो इन दो क्षमता-समूहोंको मिला सकेगा वही विज्ञानको महान् प्रगतिकी ओर ले जायगा।

२७ मई, १९५३

"भगवान्‌के साथ ऐक्य-प्राप्त चेतनाकी एक ऐसी स्थिति होती है

सचमुच सूर्यकी अग्नि है। हाइड्रोजन नाभिकोंका हीलियमके साथ बिलयन हो तो विशाल विकिरण होता है (बेथ चक्र)। पहली अग्नि रासायनिक प्रतिक्रियाओंकी होती है जिसमें परमाणुओंके भीतर परिवर्तन हुए बिना अणु नष्ट होते और फिरसे नये बनते हैं। दूसरी अग्नि परमाणुके परिधीय विद्युदणुओंमें परिवर्तन ले आती है, ऐसे विद्युदणुओंके परिवर्तनसे जो विद्युत्-चुम्बकीय घटनाके मूलमें हैं।)

जिसमें तुम जो भी पढ़ो उसमें रस ले सकते हो, तुम जो भी देखो उसमें रस ले सकते हो, बिलकुल नगण्य पुस्तकों और नीरस चीजोंमें भी। तुम बिलकुल मामूली-सा संगीत सुन सकते हो, ऐसा जिसे सुनकर भाग जानेकी इच्छा हो, फिर भी उसकी बाहरी अभिव्यक्तिके कारण नहीं, उसके पीछेकी चीज-के कारण उसमें रस ले सकते हो। तुम्हारा अच्छे संगीत और बुरे संगीतका विवेक नहीं मारा जाता, परंतु तुम दोनोंके द्वारा उस चीजतक पहुंच जाते हो जिसे वह प्रकट कर रहा है। क्योंकि संसारमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका चरम सत्य और सहारा भगवान्‌में न हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ अप्रैल)

संगीतके बाहरी रूपके "पीछे" क्या है?

संगीत अमुक विचारों, भावनाओं, भावों और अभीप्साओंको व्यक्त करने-का साधन है। एक ऐसी भूमिका भी है जहां ये सब गतियां विद्यमान हैं और उन्हें जब उतारा जाता है तो वे संगीतमय रूप ले लेती हैं। कोई बहुत अच्छा संगीतकार, थोड़ी-सी प्रेरणासे साथ बहुत सुन्दर संगीत बना सकता है क्योंकि वह अच्छा संगीतज्ञ है। एक बुरा संगीतज्ञ भी बहुत ऊंची प्रेरणा पा सकता है, उसे कोई अच्छी चीज मिल सकती है परंतु चूंकि उसमें संगीतकी क्षमता नहीं है, इसलिये वह जो कुछ तैयार करता है वह एकदम घिसा-पिटा, मामूली, नीरस होता है। लेकिन अगर तुम परे जा सको, ठीक उस जगह पहुंच सको जो इस संगीतका मूल है — भाव, भावना और प्रेरणाका मूल — अगर तुम वहां पहुंच सको तो तुम रूपों, के बारेमें जरा भी कष्ट उठाये बिना असली चीजका रस ले सकते हो। घिसे-पिटे संगीतका नाता भी फिर उससे जोड़ा जा सकता है, क्योंकि वही तो संगीतकारकी प्रेरणा थी। स्वभावतः ऐसे उदाहरण होते हैं जहां कोई प्रेरणा नहीं होती, जहां केवल यांत्रिक संगीत ही मूल होता है। यह हमेशा, हर जगह रसप्रद नहीं होता। मेरे कहनेका मतलब यह है कि एक आंतरिक अवस्था ऐसी होती है जिसमें बाहरी रूप ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज नहीं होता, महत्त्व होता है संगीतके मूलका, उस पारसे आनेवाली प्रेरणाका। वह शुद्ध ध्वनियोंका महत्त्व नहीं है, बल्कि उस चीजका महत्त्व है जिसे ध्वनियां व्यक्त करती हैं।

तो क्या अभिव्यक्ति प्रेरणासे अधिक सुन्दर नहीं हो सकती?

संगीतकी ऐसी रचनाएं होती हैं जिनमें कोई प्रेरणा नहीं होती। वे यांत्रिक चीजों जैसी होती हैं। ऐसे संगीतज्ञ होते हैं जिन्हें बहुत प्रवीणता प्राप्त होती है, यानी, जो संगीतके कौशलपर पूरा प्रभुत्व रखते हैं। उदाहरणके लिये, वे कठिन-से-कठिन चीजोंको बड़ी तेजीसे बिना भूल किये बजा सकते हैं। वे संगीत तो बजा सकते हैं पर वह कुछ भी अभिव्यक्त नहीं करता। वह मशीन जैसा होता है। उसका अर्थ बस इतना ही होता है कि उन्हें कौशल प्राप्त है, इसके सिवा कुछ नहीं। आदमी जो कुछ करता है उसमें प्रेरणा ही सबसे ज्यादा महत्त्व रखती है। सभी मानव रचनाओंमें सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है प्रेरणा। स्वभावतः कार्यान्वयन उसी स्तरका होना चाहिये जिस स्तरकी प्रेरणा हो। उच्चतम चीजोंको सचमुच अच्छी तरह प्रकट कर सकनेके लिये बहुत अच्छी तकनीक भी जरूरी है। मैं यह नहीं कहती कि तकनीक जरूरी नहीं है, वह अनिवार्य भी है, लेकिन वह एकमात्र अनिवार्य चीज नहीं है। वह प्रेरणासे कम महत्त्वपूर्ण है।

संगीतका तात्त्विक गुण इस बातपर निर्भर है कि वह कहांसे आता है, उसका मूल कहां है!

"उसका मूल"का मतलब क्या है?

उसके शुरू होनेका स्थान, जैसे नदीका मूल है उसका स्रोत।

क्या हर चीजके लिये बहुत-से स्रोत होते हैं?

सारे भौतिक जीवनका स्रोत प्राणिक और मानसिक जीवनमें होता है। प्राणिक और मानसिक वास्तविकताका कोई और ही स्रोत है, और इसी तरह धरतीपर ऐसी कोई चीज भौतिक रूपसे प्रकट नहीं हो सकती जिसका उच्चतर सत्यमें मूल न हो, अन्यथा संसार रहेगा ही नहीं। अगर यह कोई चपटी चीज होती जिसका मूल स्वयं उसीके अंदर है तो यह शीघ्र ही समाप्त हो जाती। चूंकि एक शक्ति है जो धकेलती है, एक ऊर्जा है जो अभिव्यक्तिकी ओर धकेलती है, इसीलिये जीवन बना हुआ है, वरना वह बहुत जल्दी अपने-आपको खतम कर डालता।

यदि जो कुछ भौतिक जगत्में प्रकट हुआ है उसका मूल उच्च-

तर सत्यमें है तो फिर वह कौन-सी चीज है जो उसके प्रकट होनेपर उसे भद्दा बना देती है। कुरूप चीजें हैं ही क्यों?

क्योंकि ऐसी शक्तियां हैं जो मूल-स्रोत और अभिव्यक्तिके बीच हस्तक्षेप करती हैं।

अगर मैं तुमसे पूछूं : "क्या तुम अपनी सत्ताके सत्यको जानते हो?" तो तुम क्या कहोगे? ... क्या तुम उसे जानते हो? हां, तो हर चीजके बारेमें यही बात है। और फिर, तुम तो काफी विकसित, चिंतनशील सत्ता हो, बहुत प्रकारके शोधन और परिमार्जनमेंसे गुजर चुके हो। अब तुम ठीक, छिपकली कह लो, छिपकली जैसे नहीं हो जो दीवारपर दौड़ती फिरती है, फिर भी तुम यह नहीं कह सकते कि तुम्हारी सत्ताका सत्य क्या है। संसारमें विकृतिका ठीक यही रहस्य है। क्योंकि मूलसे अलगावके तथ्यने सारी निश्चेतनाको जन्म दिया है। इस निश्चेतनाके कारण ही सदा उपस्थित होते हुए भी मूल-स्रोत अपने-आपको अभिव्यक्त नहीं कर सकता। वह मौजूद है इसीलिये संसारका अस्तित्व है। लेकिन अभिव्यक्तिमें वह विकृत हो गया है क्योंकि वह अपने-आपको निश्चेतना, अज्ञान और अंधकारमेंसे प्रकट करता है।

यह ऐसा विषय है जिसके बारेमें मैं बुलेटिन[1]के अगले अंकमें समझानेकी कोशिश करूंगी, फिर भी, संक्षेपमें वह यूं है:

सृष्टि, जैसी कि वह थी, बनाते समय दिव्य संकल्प एक व्यक्तिगत प्रक्षेपण था — व्यक्तिगत, समझे? बिखेरता हुआ: एक ऐसी इकाई होनेकी जगह जिसमें सब कुछ समाया हुआ हो, वह अनगिनत छोटी-छोटी इकाइयोंसे बना हुआ ऐक्य था। ये इकाइयां व्यक्तित्व हैं, यानी ऐसी चीजें हैं जो अपने-आपको अलग अनुभव करती हैं। दूसरोंसे अलग होनेका तथ्य ही तुम्हें व्यक्ति होनेकी प्रतीति देता है, वरना तुम्हें यह लगता कि तुम एक द्रव-राशि हो। उदाहरणके लिये, अपने बाहरी रूपके बारेमें और उन सब चीजोंके बारेमें सचेतन होनेकी जगह, जो तुम्हें अलग व्यक्तित्व देती हैं, अगर तुम प्राणिक शक्तियोंके बारेमें सचेतन होते जो हर जगह घूमती-फिरती हैं, या उस निश्चेतनाके बारेमें सचेतन होते जो हर चीजके आधारमें है, तो तुम्हें एक ऐसी राशिकी प्रतीति होती जो सब प्रकारकी उलझी हुई परस्पर विरोधी गतियोंसे हिल-डुल रही है, उन गतियोंको अलग नहीं किया जा सकता। तुम्हारे अंदर व्यक्तित्व-

---

[1]देखो चार तपस्याएं (प्रेमकी तपस्या)।

की अनुभूति बिलकुल न होती, तुम्हें एक समग्रके अंदर एक स्पंदनकी-सी प्रतीति होती। हां, तो मौलिक संकल्प ऐसी व्यक्तिगत सत्ताएं बनाना चाहता था जो फिरसे अपने दिव्य स्रोतके बारेमें सचेतन हो सकें। व्यक्तिकरणकी प्रक्रियाके कारण यदि तुम्हें व्यक्ति बनना है तो तुम्हें अलगावका अनुभव करना ही होगा। जिस क्षण तुम अलग होते हो, तुम कम-से-कम बाहरी रूपमें, मौलिक चेतनासे कट जाते हो और निश्चेतनामें जा गिरते हो। एक ही चीज है जो जीवनका भी जीवन है और वह है मूल-स्रोत। अगर तुम अपने-आपको उससे अलग कर लो तो स्वाभाविक रूपसे चेतना निश्चेतनामें बदल जाती है और तब इसी निश्चेतनाके कारण तुम अपनी सत्ताके सत्यसे अवगत नहीं रहते...। यह एक प्रक्रिया है। तुम यह बहस नहीं कर सकते कि वह परिहार्य है या अपरिहार्य, तथ्य ऐसा ही है। रचना और सृजनकी इस प्रक्रियाके कारण ही पवित्रता अपने तात्त्विक रूपमें और अपने शुद्ध रूपमें प्रकट नहीं हो पाती, निश्चेतना और अज्ञानके विकृत रूपके द्वारा प्रकट होती है...। अगर तुमने तुरंत उत्तर दिया होता: "हां, निश्चय ही, मैं अपनी सत्ताके सत्यको जानता हूं," तो मामला यहीं खतम हो जाता और कोई समस्या न रहती।

सारी कुरूपता इसी कारण है, मृत्यु इसी कारण है, इसी कारण बीमारी है, इसी कारण दुष्टता है, इसी कारण कष्ट है। कोई इलाज नहीं है। इन सब चीजोंके लिये एक ही रास्ता है। ये सब चीजें अलग-अलग क्षेत्रोंमें, अलग-अलग स्पंदनोंसे आती हैं लेकिन कारण सबका एक है। व्यक्तिगत रचनाकी आवश्यकताके कारण जो निश्चेतना पैदा हुई वही सबका कारण है। फिर एक बार, मैं यह नहीं कहती कि यह अनिवार्य था। यह एक और समस्या है जिसका समाधान करनेके लिये शायद हम बादमें तैयार होंगे। अभी तो हम यह कहनेके लिये बाधित हैं कि यह ऐसा ही है।

तो फिर उपाय? जब कारण यह है तो सभी चीजोंको ठीक करनेका एक ही उपाय है, फिरसे सचेतन बन जाओ। और यह बहुत सरल है, बहुत सरल।

मान लो कि विश्वमें दो परस्पर-विरोधी शक्तियां हैं, जैसा कि कुछ धर्मोंने प्रचार किया है। शुभ और अशुभ था, और शुभ और अशुभ हमेशा रहेगा। द्वंद्व, संघर्ष और युद्ध हमेशा रहेगा। जो अधिक मजबूत होगा, चाहे वह शुभ हो या अशुभ, वही जीतेगा। अगर शुभ अधिक है तो शुभ जीतेगा और अगर अशुभ अधिक है तो अशुभ जीतेगा, लेकिन अस्तित्व दोनोंका बना रहेगा। अगर ऐसी बात है तब तो कोई आशा नहीं। तब यह कहनेकी जरूरत नहीं कि यह कठिन या सरल है, यह असंभव स्थिति

होगी। इसमेंसे निकलना संभव न होगा। लेकिन वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। वास्तवमें केवल एक ही मूल-स्रोत है और यह स्रोत सत्यकी पूर्णता है क्योंकि सचमुच यही एक चीज है जिसका अस्तित्व है। अपने-आपको बाहर निकालकर, बिखेरकर, प्रक्षिप्त करके वह इन सब चीजोंको पैदा करती है जिन्हें हम देखते हैं। छोटे-से सिरोंका बहुत भद्र, बहुत प्रदीप्त, सिरोंका झुंड किसी चीजकी खोजमें है जिसे अभीतक वह पकड़ नहीं पाया है पर पकड़ सकता है, क्योंकि वह उसीके अंदर है। यह निश्चित है। इसमें कम या अधिक समय लग सकता है, लेकिन यह होगा जरूर। स्वयं अशुभके हृदयमें उसका इलाज है। यह लो।

उसे बहुत-से नाम दिये गये हैं, हर एकने इसे अपने ही ढंगसे प्रस्तुत किया है। देखनेके कोणसे अनुभूतिमें फर्क पड़ता है। उन सब लोगोंने जिन्होंने भगवान्‌को अपने अंदर पाया है, उन्हें एक विशेष मार्गसे, एक विशेष अनुभूतिका अनुसरण करते हुए एक विशेष कोणसे पाया है। उनके लिये यह कोण स्वयं सिद्ध था। लेकिन जो लोग भली-भांति सतर्क न रहे उन्होंने कहना शुरू किया: "भगवान्‌को पानेके लिए आदमीको यह करना चाहिये और वह करना चाहिये, और चीज ऐसी है, और इस पथका अनुसरण करना जरूरी है।" क्योंकि उनके लिये यही सफलताका मार्ग था। लेकिन जब आदमी जरा आगे बढ़ता है, जरा अधिक अनुभव पाता है तो उसे पता चलता है कि यही आवश्यक नहीं है, कि यह करनेके लिये लाखों रास्ते हैं...। केवल एक चीज निश्चित है कि जो चीज पायी जाती है वह हमेशा वही होती है। और यह बात विलक्षण है कि चाहे जिस रास्तेसे जाओ, उसे चाहे जो रूप दो, परिणाम हमेशा एक ही होता है। उनका और हर एकका अनुभव हमेशा वही होता है। जब वे 'उस चीज'तक जा पहुंचते हैं तो वह हर एकके लिये वही होती है। और यह इस बातका प्रमाण है कि उन्होंने उसका स्पर्श पा लिया है कि वह सबके लिये एक ही होती है। अगर वह एक ही चीज न हो तो इसका अर्थ है कि उन्होंने अभीतक उसे नहीं छुआ है। जब वे उसे छू लेते हैं तो वह सबके लिये एक ही होती है। और उसे तुम अपने मनचाहे सभी नाम दे सकते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

शब्द केवल शब्द हैं। जबतक उनके पीछे कुछ चीज न हो तबतक उनका कोई अर्थ नहीं होता। क्या तुमने कभी नहीं देखा कि कुछ लोगोंके साथ बात करते हुए, तुम चाहे अपने-आपको कितनी भी स्पष्ट रीतिसे क्यों न व्यक्त करो, फिर भी वे कुछ नहीं समझ पाते; और दूसरे ऐसे लोग भी होते हैं जिनके आगे तुम दो शब्द ही कहो तो वे तुरंत समझ जाते हैं।

तुम्हें ऐसा अनुभव नहीं हुआ? नहीं? मुझे तो यह बहुत बार हुआ है। इसलिये बात बाहरी रूपपर निर्भर नहीं होती, उन शब्दोंपर निर्भर नहीं होती जिन्हें तुम बोलते हो, बल्कि उस विचार-शक्तिपर निर्भर होती है जो तुम उन शब्दोंके पीछे रखते हो। विचार-शक्ति जितनी ही अधिक, जितनी ही मजबूत, यथार्थ और स्पष्ट होगी, उतनी ही अधिक संभावना है कि जो लोग उस विचार-शक्तिको ग्रहण कर सकते हैं वे तुम्हारी बातको ज्यादा अच्छी तरह समझ पायंगे। लेकिन अगर कोई सोचे बिना बोलता हो तो प्रायः, उसकी बातको समझना असंभव होता है। उसके शब्द एक प्रकारका शोर मचाते हैं, और बस। उदाहरणके लिये, जब तुम्हें किसीके साथ बोलनेकी, विचार-विनिमयकी आदत हो, जब तुम्हारे अंदर एक प्रकारका मानसिक समायोजन हो, अर्थात्, तुमने यह कहनेकी सावधानी बरती हो: "जब मैं इस शब्दका प्रयोग करता हूं तो मेरा यह मतलब होता है," और दूसरे व्यक्तिने कहा है: "जब मैं उस शब्दका प्रयोग करता हूं तो मेरा मतलब वह होता है" आदि-आदि, अर्थात्, जब तुम आदान-प्रदानके लिये अभ्यस्त होते हो, जब तुमने मस्तिष्क-मस्तिष्कके बीच एक प्रकारका नाता जोड़ लिया हो — वह इतना ही क्यों न हो — तो तुम एक-दूसरेकी बात बिलकुल आसानीसे समझ लेते हो। लेकिन जो लोग एकदम कहीं औरसे आते हैं, जिनके साथ तुमने कभी बातचीत नहीं की, उनके साथ समायोजन करनेमें, उनके शब्दोंका ठीक-ठीक भाव समझनेमें तुम्हें कुछ समय लगता है....। वह कौन-सी चीज है जिसके कारण तुम समझते हो? वह शब्दके पीछेका मानसिक भाव है। जब विचार जोरोंसे सोचा जाता है तो एक सशक्त स्पंदन होता है, उसीको अनुभव किया जाता है, शब्द तो केवल माध्यम होते हैं। तुम इस संवेदनको इतना विकसित कर सकते हो कि कम-से-कम शब्दोंके साथ या बिना शब्दोंके ही सीधा मानसिक संपर्क स्थापित कर सको, लेकिन उसके लिये तुम्हारे अंदर विचारोंको केंद्रित करनेकी प्रबल शक्ति होनी चाहिये। और तुम जो कुछ करो उसके लिये यही बात है। जब पीछे एक विकसित चेतना हो, जब तुम्हारे अंदर उसे केंद्रित करनेकी शक्ति हो तो तुम कुछ भी कर सकते हो — यह चेतना ही काम करेगी।[1]

---

[1]इस वार्ताके पहली बार प्रकाशित होते समय, १९६८ में माताजीने यह जोड़ दिया: "महत्त्वपूर्ण चीज है 'उपस्थिति' की चेतना बनाये रखना, यानी, उपस्थिति ठोस होनी चाहिये और तब तुम जो कुछ करो और जो कुछ कहो — तुम चाहे जो करो और चाहे जो कहो — उसके द्वारा भागवत उपस्थिति ही अपने-आपको व्यक्त करती है।

निश्चय ही यह शारीरिक यंत्र तुमसे काम नहीं करवाता, यह यंत्र तो केवल एक उपकरण है, उससे बढ़कर कुछ नहीं। जिस दिन तुम उसे पकड़ सको (वह अदृश्य है फिर भी तुम उसे पकड़ सकते हो), और जब तुम उसे पकड़ लो और अपनी गतिमें ला सको तो यह गति सचेतन हो जाती है और तुम जो कुछ कर रहे हो, अच्छी तरह करते हो। जिस दिन तुम उसे नहीं पकड़ पाते, वह पानीकी तरह तुम्हारी उंगलियोंमेंसे फिसल जाती है, तब तुम फूहड़ बन जाते हो। तुम समझ नहीं पाते, तुम नहीं जानते कि क्या करना चाहिये। अतः इस भौतिक यंत्रका महत्त्व नहीं है, महत्त्व है पीछेकी चीजका।

साधारणतः संगीत किस स्तरसे आता है?

इसके अलग-अलग स्तर हैं। संगीतकी एक पूरी श्रेणी है जो उच्चतर प्राणसे आती है। वह बहुत मोहक होती है, कुछ-कुछ (ठीक शब्दोंमें नहीं) अशिष्ट और गंवारू। एक ऐसी चीज जो स्नायुओंको मरोड़ती है। यह जरूरी नहीं कि यह संगीत अरुचिकर हो लेकिन साधारणतः यह तुम्हें स्नायुओंके केंद्रोंमें पकड़ लेता है। तो एक प्रकारके संगीतका मूल-स्रोत प्राणमें होता है, एक संगीत, इससे बिलकुल भिन्न ऐसा भी होता है जिसका मूल चैत्यमें होता है। एक और संगीतका आध्यात्मिक स्रोत होता है। यह बहुत ही सुस्पष्ट और प्रफुल्ल होता है और तुम्हें बहा ले जाता है, पूरी तरहसे अधिकारमें कर लेता है। लेकिन अगर तुम इसे अच्छी तरह से बजाना चाहो तो तुम्हें उसको प्राणके रास्तेसे ला सकना चाहिये। यदि तुम्हारे अंदर प्राणिक स्पंदनोंकी तीव्रता न हो तो ऊपरसे आता हुआ संगीत भी अपनी बाहरी अभिव्यक्तिमें बिलकुल नीरस या बेसुरा बन सकता है। मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जिन्हें बहुत ऊंची प्रेरणा आती थी, पर उनका संगीत बेसुरा हो जाता था क्योंकि उनका प्राण गति करनेसे इंकार करता था। मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि उन लोगोंने अपनी आध्यात्मिक साधनाके द्वारा अपने प्राणको पूरी तरह सुला दिया था —वह सचमुच सो गया था और कोई क्रिया न करता था और संगीत सीधा भौतिक स्तरपर आता था। अगर कोई उस संगीतके मूल-स्रोतसे संबंध जोड़ सकता तो देखता कि वह सचमुच अद्भुत था, परंतु बाहरी रूपमें उसमें शक्ति न थी, उसमें बहुत दुर्बल लय भले हो पर स्वर-संगीत और ताल-मेलका बल न था। जब तुम प्राणको भी सक्रिय बना सको तब स्पंदनकी पूरी शक्ति आ जाती है। उसमें अगर उच्चतर स्रोतको

उतारा जा सके तो वह प्रतिमासंपन्न संगीत बन जाता है।

संगीतकी बात विशेष है; यह बहुत कठिन है, उसके लिये एक माध्यमकी जरूरत होती है। अन्य सभी चीजोंके लिये भी यही बात है। साहित्यके लिये, काव्यके लिये, चित्रकलाके लिये, तुम जो कुछ करते हो सभीके लिये यही बात है। तुम्हारी रचनाका सच्चा मूल्य प्रेरणाके उत्सपर और उस स्थिति या ऊंचाईपर निर्भर है जहां तुम उसे पाते हो। लेकिन उसके कार्यरूपका मूल्य उस प्राण-शक्तिपर निर्भर है जो उसे अभिव्यक्त करती है। प्रतिभाको पूरा करनेके लिये दोनोंका होना जरूरी है। यह बहुत विरल है। साधारणतः एक चीज होती है या दूसरी, अधिकतर प्राण-शक्ति होती है। और फिर संगीतके वे अन्य प्रकार हैं — होटलोंके संगीत, सिनेमा संगीत — उसमें असाधारण कौशल होता है और साथ ही विरल नीरसता और असाधारण गंवारूपन। लेकिन चूंकि उसमें असाधारण कौशल होता है इसलिये वह तुम्हें सौर चक्रमें पकड़ लेता है और तुम इसे याद रखते हो, यह तुम्हें एकदम पकड़ लेता है और पकड़े रहता है, इससे छूटना मुश्किल होता है क्योंकि यह अच्छी तरह रचा हुआ, बहुत अच्छी तरह रचा हुआ संगीत होता है। यह प्राणिक स्पंदनोंसे सजीव रूपमें बनता है परंतु इसके पीछे जो चीज होती है वह भयावह होती है।

लेकिन इसी अभिव्यक्तिकी प्राणिक शक्तिकी कल्पना करो, जिसमें प्रेरणा बहुत ऊपरसे — यथासंभव ऊंचे-से-ऊंची प्रेरणा जिससे हमारे आगे सभी स्वर्ग खुल जाते हैं — आये, तब अद्भुत होती है। सीजर फ्रैंकके कुछ परिच्छेद, बिठोवेनके कुछ परिच्छेद, बाखके कुछ परिच्छेद और कुछ अन्य लोगोंके परिच्छेद ऐसे हैं जिनमें ऊंची प्रेरणा भी है और शक्ति भी। लेकिन वह क्षणिक होती है, वह एक क्षणकी तरह आती है, टिकती नहीं। तुम किसी कलाकारकी सारी कृतिको उस स्तरकी नहीं कह सकते। जब कार्य अखंड हो, प्रेरणा बिजलीकी कौंधकी तरह आती है, कभी-कभी वह काफी लंबे समयतक रहती है। जब इसे लंबे समयतक रखा जा सके तो वही प्रभाव पैदा होता है, यानी, अगर तुम सतर्क और केंद्रित हो तो तुम अचानक ऊपर उठ जाते हो, तुम्हारी ऊर्जाएं ऊपर उठ जाती हैं, ऐसा लगता है मानों किसीने तुम्हारा सिर खोल दिया और तुम हवामें बहुत बड़ी ऊंचाइयोंमें और भव्य ज्योतियोंमें फेंक दिये गये। कुछ सेकंडोंमें वह ऐसे परिणाम लाता है जो बरसोंकी योग-साधनाके बाद मिलते हैं। हां, साधारणतः व्यक्ति उसके बाद नीचे आ गिरता है क्योंकि वहां चेतनाका आधार नहीं होता। आदमीको अनुभूति होती है लेकिन बादमें उसे

यह भी पता नहीं रहता कि हुआ क्या था। लेकिन अगर तुम तैयार हो, अगर तुमने योगके द्वारा अपनी चेतना तैयार कर ली है, तब जो चीज होती है वह प्रायः सुदृढ़ होती है।

यूरोपीय और भारतीय संगीतमें बहुत बड़े फर्कका कारण क्या है? यह स्रोतका फर्क है या अभिव्यक्तिका?

दोनों ही, पर एक उल्टे अर्थमें।

यूरोपीय संगीतमें बहुत ऊंची प्रेरणा विरल है, चैत्य स्रोत भी विरल है, बहुत विरल। या तो वह ऊपरसे आती है या फिर प्राणसे। अभिव्यक्ति प्रायः हमेशा, कुछ विरले उदाहरणोंको छोड़कर, प्राणिक अभिव्यक्ति होती है, मनमोहक और सशक्त। बहुधा स्रोत पूरी तरह प्राणिक होता है। कभी-कभी बड़ी ऊंचाइयोंसे आता है और तब वह अद्‌भुत होता है। कभी-कभी वह चैत्य होता है, विशेषकर धार्मिक कहानेवाले संगीतमें, परंतु यह बहुत बार नहीं होता।

भारतीय संगीत, यदि अच्छे संगीतकार हों, प्रायः, चैत्य स्रोतसे आता है। उदाहरणके लिये, रागोंका मूल-स्रोत चैत्यमें है, वे चैत्यसे आते हैं। प्रेरणा प्रायः, ऊपरसे नहीं आती। लेकिन भारतीय संगीत बहुत कम ही सशक्त प्राणमें होता है, बल्कि उसमें एक आंतरिक और प्रगाढ़ स्रोत होता है। मैंने बहुत-सा भारतीय संगीत सुना है, हां, बहुत-सा। मैंने कभी-कदास ही ऐसा भारतीय संगीत सुना है जिसमें प्राण-शक्ति हो, शायद चार-पांच बारसे ज्यादा नहीं। लेकिन बहुत बार मैंने चैत्य स्रोतवाला भारतीय संगीत सुना है। अपने-आपको लगभग सीधा ही भौतिक रूपमें अनूदित कर देता है। और तब सचमुच व्यक्तिको एकाग्र होना चाहिये। और जैसा कि वह है — इसे कैसे कहा जाय? — वह बहुत सूक्ष्म, अत्यंत सूक्ष्म होता है। चूंकि उसमें तीव्र प्राणिक स्पंदन नहीं होते इसलिये मनुष्य उसके अंदर आसानीसे बहता हुआ संगीतके चैत्य स्रोततक वापिस चढ़ सकता है। इसका कुछ ऐसा प्रभाव होता है। यह एक प्रकारकी भावविभोर समाधि होती है मानों मादक द्रव्योंकी मस्ती हो। वह तुम्हें थोड़ा-बहुत समाधिमें ले जाता है। तब यदि तुम अच्छी तरह सुनो और अपने-आपको छोड़ दो तो तुम आगे बढ़ते जाओगे, बढ़ते और बहते जाओगे और बहते हुए चैत्य चेतनामें जा पहुंचोगे। लेकिन अगर तुम केवल बाहरी चेतनामें ही रहो, तो संगीत इतना सूक्ष्म होता है कि प्राण कोई प्रतिक्रिया नहीं करता, वह तुम्हें नीरस लगता है। कभी-कभी उसमें प्राण-शक्ति होती है, तब संगीत

काफी अच्छा हो जाता है . . .। स्वयं मुझे इस तरहका संगीत बहुत पसंद है। इस प्रकारका संगीत-विषय जो विकसित होकर खिलता है। संगीत-विषय तत्त्वतः बहुत संगीतमय होता है, फिर उसे बहुत-से परिवर्तित रूपोंके साथ विकसित किया जाता है — अनगिनत परिवर्तनोंके साथ, संगीत-विषय हमेशा वही रहता है जिसे एक या दूसरे प्रकारसे विकसित किया जाता है। यूरोपमें ऐसे संगीतकार हुए हैं जो सचमुच संगीतज्ञ थे, उनमें भी यह चीज थी। बाखमें यह चीज थी, वह इसी प्रकारकी चीज किया करता था, मोजारमें यह चीज थी। उसका संगीत शुद्ध रूपसे संगीतमय था, वह कोई और चीज न प्रकट करना चाहता था, उसका संगीत संगीतके लिये था। व्यक्तिगत रूपसे मुझे, इस तरह कुछ स्वरोंको अमुक संबंधमें रखना (उसके प्रायः अनंत परिवर्तित रूप होते हैं) अद्भुत रूपमें विश्रामदायक लगता है, और तुम अपने अंदर गहराइयोंमें चले जाते हो। और तब यदि तुम तैयार हो तो यह तुम्हें चैत्य चेतना प्रदान करता है : एक ऐसी चीज जो तुम्हें बाहरी चेतनासे हटा लेती है, जो कहीं और, अंदर प्रवेश कराती है।

बड़े-बड़े संगीतकारोंके पास संगीत किस रूपमें आता है? मेरा मतलब, केवल स्वरध्वनि आती है या जैसा हम सुनते हैं?

यह संगीतकारपर निर्भर है। मैं यही तो कह रही थी। उदाहरणके लिये, यहां, भारतवर्षमें सुरसंगति (हार्मनी) का विज्ञान अधिक नहीं है, इसलिये चीज लय (मेलोडी) में अनूदित हो जाती है। जैसे ही प्राणका प्रवेश होता है, संगीतमें एक प्रकारकी स्वरमाधुर्य-भरी जटिलता आ जाती है। इससे उसमें वह समृद्धि और पूर्णता आती है जो पहले न थी।

क्या लय आती है?

नहीं, संगीत आता है और संगीत आवश्यक रूपसे लय नहीं है। यह ध्वनियोंका एक संबंध होता है जिसका लयबद्ध होना जरूरी नहीं है। लय ध्वनियोंके संबंधका एक भाग है।

"जब निश्चय कर लिया गया, जब तुमने यह निर्णय कर लिया कि तुम्हारा सारा जीवन भगवान्‌को अर्पित होगा तब भी तुम्हें हर क्षण उसे याद रखना और अपने जीवनके ब्योरेमें कार्यान्वित

करना होगा। तुम्हें हर कदमपर यह अनुभव करना चाहिये कि तुम भगवान्‌के हो, तुम्हें इस बातकी ठोस अनुभूति होनी चाहिये कि तुम जो कुछ सोचो या करो उसमें हमेशा भागवत चेतना ही तुम्हारे द्वारा काम करती है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ अप्रैल)

जब आदमी सचेतन हो तो क्या वह भगवान्‌के रूपको हर चीजमें देखता है?

ओह! तो तुम हर चीजमें भगवान्‌के एक रूपको देखना चाहते हो?...मुझे नहीं मालूम, यह हो सकता है। लेकिन मुझे लगता है कि इसमें बहुत अधिक कल्पना घुस आती है। क्योंकि चीज ऐसी नहीं है। तुम्हारी चेतना बदल जाती है, तुम चेतनाकी अवस्था बदल लेते हो और बोधकी अवस्थाएं बदल लेते हो।

अगर मैं तुम्हारी बात ठीक तरहसे समझ रही हूं तो तुम हर व्यक्तिमें, उदाहरणके लिये, कृष्णका रूप, या ईसाका या बुद्धका रूप देखना चाहते हो? मुझे यह बात बचकानी लगती है। फिर भी मैं यह नहीं कहती कि यह असंभव है, मेरा ख्याल है कि यह होना चाहिये। लेकिन उस बोधमें बहुत-सी मानव चेतना मिली हुई होगी। वह ठीक वह चीज नहीं रह जाती जिसके बारेमें मैंने तुमसे अभी कहा है: जिसको भागवत चेतना प्राप्त हो, जब वे भगवान्‌के संपर्कमें आते हैं, वे चाहे कोई क्यों न हों, किसी भी युगमें क्यों न हों, किसी देशके क्यों न हों, उनकी अनुभूति एक ही होती है। जब कि अगर वैसा हो जैसा तुम कह रहे हो, तो भारतीय केवल अपने देवी-देवताओंको देख सकेंगे, यूरोपीय अपने और जापानी अपने और इसी तरह...। तब यह शुद्ध बोध न रहेगा, उनकी अपनी मानसिक रचना उसमें जुड़ जायगी। तब वह तत्त्वतः शुद्ध रूपमें वह चीज न रह जायगी जो सभी रूपोंसे परे है।

लेकिन व्यक्तिको एक बोध हो सकता है। भागवत उपस्थितिका ठोस रूपमें बोध हो सकता है, हां। भगवान्‌के साथ तुम्हारा व्यक्तिगत संपर्क हो सकता है, जरूर। पर इस तरहसे नहीं। और यह अनिर्वचनीय होता है, वे लोग अपवाद हैं जिन्हें यह अनुभूति हो चुकी है। अगर तुम्हें कोई अनुभव नहीं हुआ तो मैं तुम्हें इसके बारेमें घंटों बताऊं तो भी तुम कुछ न समझ पाओगे। यह सारी व्याख्यासे बच निकलता है। तुम इसे तभी समझ सकते हो जब तुम्हें अनुभव हो।

और तुम आशा करते हो? जब तुम चीजोंके बारेमें बोलते या लिखते हो तो आवश्यक रूपसे कुछ मानसिक तत्त्व जुड़ जाते हैं, वरना तुम बोल न सकोगे। लिख भी न सकोगे। हां, तो इस मानसिक जोड़के कारण ही लोगोंने अपनी अनुभूतियोंकी व्याख्या करनेकी कोशिश की है और उन्होंने इस तरह लिखा या कहा है: "मैं भगवान्‌की प्रतिमूर्तियां देखता हूं।" ये कहनेके ढंग हैं। यह संभव है कि तुम जिन चीजोंके बारेमें बोल रहे हो वे उस तरह घटें। हो सकता है कि तुम अचानक किसी विशेष स्थितिमें आकर भागवत उपस्थितिको देखो और यह उपस्थिति ऐसा रूप लेती है जो तुम्हारे लिये परिचित है — लोग भगवान्‌के साथ अपनी शिक्षा और परंपराके कारण कोई-न-कोई रूप जोड़ देनेके आदी होते हैं और वह बाह्य रूप ले लेता है। लेकिन यह अनुभूतिका परम तत्त्व नहीं है, यह रूप है। और यह अनुभूतिको एक प्रकारकी सीमामें बांध देता है जो उसकी व्यापकताको और बहुत-सी शक्तिको कम कर देती है।

> "स्पष्ट है कि जो हुआ है वह होना ही था, अगर वह अभिप्रेत न होता तो ऐसा न होता। हमने जो भूलें कीं और हमपर जो मुसीबतें आयीं वे भी आनी ही थीं क्योंकि हमारे जीवनमें उनकी कुछ आवश्यकता थी, कुछ उपयोगिता थी। लेकिन सच तो यह है कि इन बातोंकी मनसे व्याख्या नहीं की जा सकती और करनी भी नहीं चाहिये। क्योंकि जो कुछ हुआ वह जरूरी था, लेकिन किसी वास्तविक कारणसे नहीं, बल्कि हमें किसी ऐसी चीजकी ओर ले जानेके लिये जो हमारे मनकी कल्पनाके परे है। लेकिन क्या व्याख्या करनेकी कोई जरूरत है? सारा विश्व हर क्षण, हर चीजकी व्याख्या करता रहता है और कोई वस्तु-विशेष इसलिये होती है क्योंकि सारा विश्व जो है वही है।"
>
> (वही)

विश्व हर क्षण विश्वकी व्याख्या कैसे करता है?

मैंने यह नहीं कहा। अगर तुम किसी चीजकी व्याख्या चाहो तो विश्व ही उस चीजकी व्याख्या करता है। और हर चीजकी व्याख्या सब कुछसे होती है। और तुम सारे विश्वके बिना किसी चीजकी व्याख्या नहीं कर सकते और सारे विश्वकी व्याख्या सब कुछसे होती है...।

जरा देखो : अगर तुम सभी विज्ञानोंकी दी हुई सभी व्याख्याओंको पढ़ो, मानव ज्ञानकी सभी शाखाओंको देखो तो हमेशा एक चीजकी व्याख्या दूसरी चीजसे होती है और अगर तुम इस दूसरी चीजकी व्याख्या करना चाहो तो किसी और चीजसे करनी होगी, तो इसी तरह तुम सारे विश्वका चक्कर लगा लोगे — सिर्फ एक चीजकी व्याख्या करनेके लिये। लेकिन लोग थोड़ी देरके बाद थक जाते हैं : वे अंतिम व्याख्याको स्वीकार कर लेते हैं और उससे चिपक जाते हैं। नहीं तो अगर वे व्याख्याकी खोज करते जाते तो वे सभी चीजोंका पूरा चक्कर लगाकर हमेशा उसी एक बिंदुपर आ जाते। चीजें ऐसी हैं क्योंकि वे ऐसी हैं, क्योंकि उन्हें ऐसा होना था, अन्यथा वे न होतीं। चीजें ऐसी हैं क्योंकि वे जैसी हैं वैसी ही हैं। इसके बारेमें कोई संदेह नहीं। और वास्तवमें यही चरम बुद्धिमत्ता है।

क्या कोई ऐसा भौतिक विधान नहीं है जो विश्वकी सब चीजोंकी व्याख्या कर दे?

उसे खोज निकालो, मैं बहुत खुश होऊंगी।

क्या उसे विज्ञानके द्वारा खोजा जा सकता है?

हां, अगर वह एक बहुत निश्चित दिशामें गति करे, अगर वह काफी प्रगति कर ले। अगर वह रास्तेमें न रुक जाय तो वैज्ञानिक भी वही चीज पायेंगे जिसे रहस्यवेत्ताओंने पाया है, सभी धार्मिक लोगोंने पाया है, सभीने पाया है, क्योंकि खोज निकालने लायक एक ही चीज है, दो नहीं। बस एक ही है....। इसलिये आदमी एक लंबे रास्तेपर जा सकता है, गोल-गोल चक्कर-पर-चक्कर लगा सकता है और अगर वह बिना रुके घूमता जाय और काफी लंबे समयतक घूमता जाय तो वह उसी स्थानपर लौटनेके लिये बाधित होगा जहांसे चला था। एक बार व्यक्ति वहां पहुंच जाय तो ऐसा लगता है कि खोजनेके लिये कुछ है ही नहीं। जैसा कि मैंने तुमसे अभी कहा है खोजनेके लिये कुछ है ही नहीं। यह वह चीज है, वह शक्ति।[1] बस वही है, बस। यह ऐसा ही है। और कोई प्रश्न?

---

[1]बादमें एक शिष्यने माताजीसे पूछा : "यह वह चीज है, वह शक्ति"से

क्या भगवान् हमसे अपने-आपको अलग कर सकते हैं?

यह असंभव है। क्योंकि यदि भगवान् अपने-आपको किसी चीजसे खींच लें तो वह तुरंत समाप्त हो जायगी, उसका अस्तित्व ही न रहेगा। ज्यादा स्पष्ट रूपमें कहें तो: भगवान्का ही एकमात्र अस्तित्व है।'

अगर भगवान् अपने-आपको खींच लें तो इसका मतलब होगा कि वे अपने-आपको विश्वसे खींच लें। तब कोई विश्व ही न रहेगा (यह तुम्हें समझानेके लिये एक रूपक है, मैं असंभवकी बात कर रही हूं)। मनुष्य भगवान्से खिंच सकते हैं और वे बहुधा खिंचते रहते हैं। लेकिन भगवान्का अपने-आपको मनुष्योंसे खींच लेना असंभव है।

उनका क्या मतलब था। माताजीने उत्तर दिया: "हां, वे उसी चीजको पायंगे जिसे रहस्यवेत्ताओंने पाया है, धार्मिक लोगोंने पाया है, हर एकने पाया है — यह वही है — शक्ति। तुम जिस चीजको पाते हो वह शक्ति है और तुम उसे तत्त्वतः न तो नाम दे सकते हो, न उसकी व्याख्या कर सकते हो...। ओरोविलके बारेमें यह बड़ा झगड़ा है। मैंने उसके घोषणा-पत्रमें 'भागवत चेतना' शब्द रखे थे ('ओरोविलमें रहनेके लिये व्यक्तिको 'भागवत चेतनाका स्वैच्छिक सेवक होना चाहिये') तो उनका कहना है कि इससे भगवान्के बारेमें सोचना पड़ता है। मैंने कहा (हंसते हुए), मुझे, मुझे तो यह भगवान्का ख्याल नहीं देता! इसलिये कुछ लोग इसका अनुवाद करते हैं 'उच्चतम चेतना', दूसरे लोग कुछ और नाम रखते हैं। मैं रूसियोंके 'पूर्ण चेतना' से सहमत हो गयी थी, पर वह भी है लगभग ही...। और यह वह है जिसे न तो नाम दे सकते हो, न जिसकी व्याख्या कर सकते हो, जो परम शक्ति है। व्यक्ति इस शक्तिको पाता है और परम शक्ति तो केवल एक पहलू है जिसका सृष्टिके साथ संबंध है।"

(शिक्षण पत्रिका, १९६८)

इस वार्ताके प्रकाशनके समय माताजीने यह जोड़ दिया: "अब मैं यह उत्तर देती हूं: यह तो ऐसी बात हुई कि तुम पूछो कि क्या भगवान् अपने-आपसे खिंच सकते हैं?' (माताजी हंसती हैं) हां, मुश्किल तो यही है। जब तुम 'भगवान्'की बात करते हो तो वे समझते हैं 'देव' — सचमुच केवल वही है। केवल उसका अस्तित्व है। वह, वह क्या है? केवल उसीका अस्तित्व है।'

(शिक्षण पत्रिका, १९६८)

हम संगीत, कला या किसी और चीजके रास्तेसे भागवत उपलब्धि और रूपांतरतक क्यों नहीं पहुंच सकते ?

यह तुमसे किसने कहा ? तुम्हारे अंदर जो कुछ हो रहा है, तुम उस सबको जानते हो ? क्या तुम्हें नहीं लगता कि ऐसे बहुत-से लोग हैं जिन्होंने भगवान्‌को पा लिया है, जिन्होंने इस बारेमें कभी कुछ नहीं कहा, कुछ नहीं जाना ?* ऐसे लोग हैं जिन्होंने इस बारेमें कहा है, दार्शनिक, जिनका पेशा ही यह है कि उन्हें जो भी अनुभव हो उसे अभिव्यक्त किया करें। लेकिन ऐसे लोग हैं जिन्हें अनुभूतियां हुई हैं लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। और मैं जानती हूं कि ऐसे कलाकार हैं जिन्होंने शुद्ध रूपसे अपनी कलाके द्वारा भागवत उपलब्धि पायी है।

रही बात रूपांतरकी। मैं खुश होऊंगी यदि तुम मुझे एक भी उदाहरण दिखा सको। मैं उसे देखकर खुश होऊंगी। बस, एक उदाहरण, व्यक्ति चाहे जिस रास्तेका अनुसरण करता हो, दार्शनिक मार्ग, योग मार्ग, रहस्यवादी मार्ग, किसीने भी रूपांतर नहीं पाया है।

चूंकि कला रूपांतरतक नहीं पहुंचती इसलिये उसका अधिक मूल्य नहीं है ?

लेकिन अभीतक वहांतक कौन पहुंचा है ? मुझे बताओ ? न दर्शन, न धर्म, न योग। अगर तुम उपलब्धि और जगत्‌के रूपांतरके हिसाबसे मूल्यांकन करो, उदाहरणके लिये, केवल एक व्यक्तिगत रूपांतर, यदि मान लिया जाय कि यह संभव है, यद्यपि मैं इसे नहीं मानती, तब तो किसी चीजका कोई मूल्य नहीं है क्योंकि आजतक कोई चीज वहांतक नहीं पहुंची है। समझे ?

जी, समझ गया।

---

* एक शिष्यने माताजीसे पूछा : "यह कैसे संभव है कि कोई भगवान्‌को प्राप्त कर ले फिर भी उसके बारेमें कुछ न जानता हो ?" माताजीने कहा : "यह फिरसे वही बात है। हम यह जोड़ सकते हैं : 'मानसिक रूपसे कुछ न जानता हो।' उन लोगोंने यह नहीं कहा कि वह भगवान्‌को जानते हैं क्योंकि वह बात किसी मानसिक धारणाके साथ मेल न खाती थी।"

तब फिर तुम अचानक यह क्यों कहते हो कि कलाका कोई मूल्य नहीं ? किसी चीजका कोई मूल्य नहीं, क्योंकि कोई चीज वहांतक नहीं पहुंची ? लेकिन हर चीज सहायता करती है। सारा विश्व रूपांतरकी सहायता कर रहा है।

लेकिन यह हो सकता है कि कलाकारको एक विशेष ऊंचाईतक पहुंचकर, जहां उसे अपनी कलापर प्रभुत्व प्राप्त हो, अपना काम बंद करके अपने जीवनके रूपांतरकी ओर चलना पड़े।

क्यों ? जीवनके रूपांतरके लिये ? यह किसने कहा तुमसे ? अगर तुम शारीरिक काम कर रहे हो तो बहुत-से कारीगर ऐसे हैं जिनमें अद्‌भुत परिवर्तन हुआ है। उस चमारका उदाहरण है जो संसारके सबसे बड़े योगियोंमेंसे एक हो गया। सौभाग्यवश यह इसपर निर्भर नहीं है कि तुम क्या करते हो ! तुम्हें इस तरह ध्यानमें बैठना होगा, गेरुआ वस्त्र पहनकर पेड़के नीचे बैठना होगा ताकि भगवान्‌को प्राप्त करने योग्य बन सको !

तो तुम जो कुछ कह रहे हो उससे मैं कुछ नहीं समझ पाती।

ऐसा समय आ सकता है जब व्यक्तिको अपना काम बदलना पड़े ?

लेकिन किसी भी रास्तेसे, अगर तुम काफी सचाईसे और काफी निरंतर रूपसे लगे रहो, तो चाहे कोई रास्ता क्यों न हो — मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं — तुम जूते गांठते हुए भी भगवान्‌को पा सकते हो। ऐसे, जाज्वल्यमान उदाहरण हैं जिनका खंडन नहीं किया जा सकता। व्यक्ति क्या करता है उसका महत्व न के बराबर है। ऐसे लोगोंके बहुत-से उदाहरण हैं जिनमें लोग बागवानी और खेती करते थे, जिन्होंने अपना शारीरिक काम करते हुए भगवान्‌को पाया। इसके लिये उन्हें अपना काम बंद करनेकी कभी जरूरत नहीं पड़ी। तुम नहीं समझ रहे ? तुम्हें लगता है कि क्या होना चाहिये ? — दार्शनिक ज्ञान ?

नहीं, यह बात नहीं, लेकिन मैं नहीं जानता कि अपनी बात कैसे व्यक्त करूं...।

नहीं, मैं अच्छी तरह समझती हूं कि तुम क्या कहना चाहते हो, पर क्षमा करना, यह मूर्खतामरी बात है।

३ जून, १९५३

"स्वाधीनता और भाग्यवाद, स्वतंत्रता और नियतिवाद चेतनाके अलग-अलग स्तरोंपर रहनेवाले सत्य हैं।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ अप्रैल)

चेतनाके ये भिन्न-भिन्न स्तर कौन-से हैं?

लेकिन आगे चलकर मैंने इसकी व्याख्या की है। इसके बाद जो कुछ है वह व्याख्या ही है।

मैं तुम्हें चेतनाके अगल-अलग स्तरोंके बारेमें पहले ही बता चुकी हूं। हां, भौतिक स्तरपर, शुद्ध भौतिक (प्राणसे अलग) स्तरपर शुद्ध रूपसे यंत्र-रचना है जहां अंततः सभी चीजें एक-दूसरेके साथ जुड़ी हुई हैं और जैसा कि मैं उस दिन कह रही थी, अगर तुम एक चीजका कारण जानना चाहो या एक चीजका परिणाम जानना चाहो तो तुम्हें एक चीज मिलेगी, फिर एक और, फिर एक और, और इस तरह तुम सारे विश्वका चक्कर लगा लोगे। और बात ऐसी है। हर चीज पूरी तरह यांत्रिक है। इस शुद्ध भौतिक स्तरपर केवल प्राण हस्तक्षेप कर सकता है और वह वनस्पति जगत्‌में हस्तक्षेप करता भी है। प्राण-स्तरकी नियति एकदम भिन्न होती है, उसकी अपनी विशिष्ट नियति। लेकिन जब भौतिक नियतिमें प्राणिक नियतिका प्रवेश हो तो उससे एक ऐसा मेल पैदा होता है जो सब कुछ बदल देता है। और प्राणमय स्तर या लोकके ऊपर है मनोमय लोक। मनोमय लोक-की अपनी ही नियति होती है जहां सब चीजें सत्तीके साथ जुड़ी हुई हैं। लेकिन यह ऐसी गति है जिसे "क्षैतिज" कह सकते हैं। अगर तुम एक ऊर्ध्वाधि गतिको लो, प्राणमें उतरता हुआ मन और भौतिकमें उतरता हुआ प्राण, तो तुम्हें तीन नियतियां मिलती हैं जो एक-दूसरेमें हस्तक्षेप करती हैं और स्वभावतः एकदम भिन्न परिणाम लाती हैं। जहां मनने हस्तक्षेप किया है वहां नियति स्वभावतः उससे बिलकुल भिन्न होगी जहां मनका

हस्तक्षेप नहीं है; यानी, उच्चतर पशु जीवनमें मानसिक नियति आ जाती है जो वनस्पति जगत्की नियतिसे बिलकुल भिन्न होती है।

इन तीन स्तरों या लोकोंके ऊपर अन्य लोक हैं — हर लोकके ऊपर कई हैं, उच्चतम लोकतक पहुंचनेवाले एकके बाद एक, कई लोक हैं। उच्चतम लोक निर्बाध स्वतंत्रताका लोक है। अगर तुम अपनी चेतनामें इन सब लोकोंमेंसे होते हुए, यूं कहें, सीधे ऊपरकी लकीरमें चढ़ सको और संयोजन-द्वारा उस पूर्ण स्वाधीनताके लोकको भौतिक नियतिमें उतार सको तो तुम सब कुछ बदल दोगे। और सभी बीचकी अवस्थाएं भी सब कुछ बदल देंगी। एकसे दूसरे स्तरपर जो परिवर्तन होते हैं उनके कारण पूर्ण स्वाधीनताका आभास होता है; क्योंकि एक लोकका दूसरेमें हस्तक्षेप या अवतरण दूसरे, निचले लोकके लिये एकदम भिन्न और अप्रत्याशित परिणाम लाता है। उच्चतर लोक पहलेसे देख सकता है पर निचला नहीं देख सकता। इसलिये ये परिणाम अनपेक्षित होते हैं और इससे एकदम अप्रत्याशित या आकस्मिकका आभास मिलता है। और अगर तुम सचेतन रूपसे निरंतर उच्चतम स्तर, यानी, परम चेतनामें रहो तो तुम वहां देख सकोगे कि सब कुछ एक ही साथ पूरी तरह निश्चित है और साथ ही इन नियतियोंको जोड़नेकी जटिलताओंके कारण सब कुछ पूरी तरह स्वतंत्र भी है। केवल वह उच्चतम स्तर ही ऐसा है जहां कोई विरोध नहीं, सब चीजें हैं, और एक-दूसरेका विरोध किये बिना पूर्ण सामंजस्यमें हैं।

क्या निचले लोकोंमें यह नहीं कहा जा सकता कि किसी विशेष क्षणमें क्या होगा?

यह निर्भर है। कुछ स्तरोंपर ऐसी चेतनाएं हैं जो रूप बनाती हैं और उन रूपोंको धरतीपर भेजकर अभिव्यक्त करनेकी कोशिश करती हैं। ये ऐसे लोक हैं जहां बड़ी-बड़ी शक्तियां खेला करती हैं, ऐसी शक्तियां जो चीजोंको एक या दूसरे रूपमें व्यवस्थित करनेके लिये संघर्ष करती रहती हैं। इन स्तरोंपर सभी संभावनाएं होती हैं, ऐसी सब संभावनाएं जो अपने-आपको प्रस्तुत करती हैं, पर अभीतक इस निर्णयपर नहीं आयी हैं कि उनमेंसे कौन-सी नीचे आयेंगी...। एक ऐसा लोक मान लो जो लोगोंकी कल्पनाओंसे भरा है, जो कुछ चीजोंको धरतीपर उपलब्ध करना चाहते हैं — एक उपन्यासका अन्वेषण करना, कहानियां कहना, सब प्रकारके प्रपंच रचना। इसमें उन्हें बहुत मजा आता है। यह रूप बनानेवालोंका लोक है और वे सब प्रकारकी परिस्थितियों और घटनाओंकी कल्पना करते रहते हैं। वे

शक्तियोंके साथ खेलते हैं। वे नाटककारों जैसे हैं, वे सब कुछ तैयार करके देखते हैं कि क्या होता है। ये सब रचनाएं आमने-सामने होती हैं और इनमें प्रधानता उनकी होती है जो सबसे ज्यादा बलवान्, सबसे ज्यादा सफल, सबसे ज्यादा आग्रही होती हैं या जिन्हें अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त होती हैं। वे मिलती हैं और उनके संघर्षके परिणामस्वरूप कुछ और ही परिणाम आता है। तुम एक चीज खो देते हो और एक दूसरी चीज उठा लेते हो। तुम एक नयी संहति पैदा कर देते हो; और अचानक देखते हो, फट! वह नीचे आ रहा है। अब अगर वह काफी जोरसे नीचे आये तो वह धरतीके वातावरणको हिलाने लगता है और चीजें जुड़ जाती हैं, उदाहरणके लिये, अगर तुम अपनी मुट्ठीसे लकड़ीके बुरादेपर चोट करो तो तुम निश्चय ही जानते हो कि क्या होता है। जानते हो न? तुम अपना हाथ उठाते ही और एक जोरदार घूंसा लगाते हो। सारी गर्द तुम्हारे घूंसेके चारों ओर लग जाती है। तो ऐसी ही बात है। ये रचनाएं जड़-पदार्थ-पर वैसे ही जोरसे आती हैं और हर चीज यांत्रिक रूपसे अपने-आप उसके चारों ओर व्यवस्थित हो जाती है, जैसे मुट्ठीके चारों ओर मिट्टी। और तुम्हारी अभीष्ट वस्तु बस उपलब्ध होनेको है, कभी-कभी वह प्रतिरोधके कारण थोड़ी विकृत हो जाती है, लेकिन अंतमें वह उपलब्ध होगी, न्यूनाधिक रूपमें उसी तरह जैसे ऊपर बैठकर कहानी सुनानेवालेने चाहा था। उस समय यदि तुम किसी-न-किसी कारण, कहानी बनानेवालेके भेदके साझीदार होओ और अगर तुम उस मार्गका अनुसरण करो जिसे बनाकर वह धरतीतक पहुंचता है और अगर तुम देखो कि किस प्रकार घूंसेको एक मार पार्थिव पदार्थपर क्रिया करती है, तब तुम कह सकते हो कि क्या होनेवाला है क्योंकि तुमने उसे ऊपरके जगत्में देखा है। चूंकि उसे वहांसे यहांतक की यात्रा करनेमें समय लगता है इसलिये तुम चीजको पहलेसे देख लेते हो। और तुम जितने ही ऊंचे उठो उतने ही पहलेसे देख सकोगे कि क्या होनेवाला है और अगर तुम दूर, परे चले जाओ, और भी आगे बढ़ जाओ, तब सब कुछ संभव है।

यह एक उन्मीलन है जो ऐसे राजपथका अनुसरण करता है जो तुम्हारे लिये अज्ञेय है: क्योंकि विश्वमें सब कुछ उन्मीलित होगा पर किस क्रममें और कैसे? वहां ऐसे निर्णय लिये जाते हैं जो हमारी साधारण चेतनाकी पकड़में आनेसे बच जाते हैं, इसलिये पहलेसे जानना बहुत कठिन है। लेकिन वहां भी, अगर तुम सचेतन रूपसे प्रवेश करो और वहां, ऊपर, उपस्थित रह सको ... मैं तुम्हें कैसे समझाऊं? वहां सब कुछ है, निरपेक्ष, अचल, शाश्वत, लेकिन वह सब जड़-पदार्थके जगत्में उन्मीलित होगा, स्वभावतः

न्यूनाधिक रूपमें एकके बाद एक। क्योंकि अचल सत्तामें सब कुछ हो सकता है, परंतु संभूतिमें सब कुछ कालमें रूप लेता है, यानी, एक चीजके बाद दूसरी चीज। हां तो, उन्मीलन कौन-से मार्गका अनुसरण करेगा? वहां, ऊपर निर्बाध स्वाधीनताका क्षेत्र है...। कौन कहता है कि एक काफी सच्ची अभीप्सा, एक काफी तीव्र प्रार्थना, उन्मीलनके मार्गको बदलनेमें सक्षम नहीं है?

इसका अर्थ है कि सब कुछ संभव है।

तो, तुम्हारे अंदर काफी अभीप्सा होनी चाहिये और प्रार्थना काफी तीव्र होनी चाहिये। परंतु यह मानव प्रकृतिको सौंपा गया है। यह भागवत कृपाके अद्‌भुत उपहारोंमेंसे एक है जो केवल मानव प्रकृतिको मिले हैं, लेकिन, मनुष्य उसका उपयोग करना नहीं जानता।

सारी बात यहां पहुंचती है कि क्षैतिज दिशामें अधिक-से-अधिक दृढ़ नियतिके होते हुए, यदि व्यक्ति इन क्षैतिज लकीरोंको पार करके चेतनाके उच्चतम बिंदुतक पहुंच सके तो वह उन चीजोंको बदल सकता है जो बाहरी रूपमें पूरी तरह नियत मालूम होती थीं। इसलिये तुम उसे जो नाम देना चाहो दे लो, पर है यह एक प्रकारसे निरपेक्ष नियति और निरपेक्ष स्वाधीनताका संयोग। तुम जिस तरह चाहो अपने-आपको उसमेंसे बाहर खींच सकते हो, पर बात है ऐसी ही।

मैं उस किताबमें कहना भूल गयी (शायद भूली नहीं, बस मुझे यह लगा कि यह कहना बेकार है) कि सब सिद्धांत बस सिद्धांत ही हैं, यानी, मानसिक धारणाएं हैं जो वास्तविकताके न्यूनाधिक चित्रण मात्र हैं, ये सद्-वस्तु बिलकुल नहीं हैं। जब तुम कहते हो "नियति" और जब तुम कहते हो "स्वतंत्रता" तो तुम केवल शब्द बोलते हो और यह सब बहुत अपूर्ण, बहुत मोटा-मोटा, बहुत कमजोर वर्णन है उस चीजका जो वास्तवमें तुम्हारे अंदर, तुम्हारे चारों ओर, सब जगह है। और यह जानना शुरू करनेके लिये कि विश्व क्या है, तुम्हें अपने मानसिक सूत्रोंसे बाहर निकलना होगा अन्यथा तुम कभी कुछ न समझ सकोगे।

सच कहा जाय तो, यदि तुम एक क्षण, एक छोटा-सा क्षण इस चरम अभीप्सामें या इस काफी तीव्र प्रार्थनामें जी लो तो तुम घंटों ध्यान करके जितना जान सकते हो उससे कहीं अधिक जान लोगे।

> "परम चेतना व्यक्तिको संसारके सक्रिय जीवनमें स्वाधीनता, स्वतंत्रता और सूत्रपात करनेका भाव देती है। उसके अंदर ये चीजें चेतनाके व्यावहारिक उपकरण हैं या साधन हैं और

इस यंत्रके द्वारा कहीं और पहलेसे देखी हुई और आयोजित गतियां और निर्णय यहां चरितार्थ होते हैं।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२९ अप्रैल)

"उसके अंदर ये चीजें", यानी, व्यक्तिमें ये चीजें हैं: स्वाधीनताका भाव, स्वतंत्रता और आरंभ करनेका भाव। क्या तुम जानते हो कि स्वाधीनता क्या है? वस्तुतः यह चुनावकी स्वाधीनता है। स्वाधीनताका अर्थ है चुनावकी छूट, और सूत्रपातका मतलब है चुनाव करनेका तथ्य। सबसे पहले व्यक्ति अनुभव करता है कि वह आजाद है; और फिर उसे लगता है कि उसे चुननेसे कोई नहीं रोक सकता; और अंतमें वह चुननेके लिये अपनी स्वाधीनताका उपयोग करता है और निर्णय करता है। ये तीन स्थितियां हैं। तो ये तीन स्थितियां, यह अनुभव करना कि तुम स्वाधीन हो, यह विचार कि तुम चुननेके लिये स्वाधीन हो और फिर चुनाव — मैं इन तीन चीजोंको व्यावहारिक उपकरण और साधन कहती हूं।

मुझे खेद है, मेरे बच्चो, कि यह सब जरा ज्यादा दार्शनिक भाषामें कहा गया है जिसे मैं अब बहुत पसंद नहीं करती। मुझे ऐसी भाषामें बोलना पड़ा जो अब मुझे जरा ज्यादा ही जटिल मालूम होती है, लेकिन क्या किया जाय, बात ऐसी ही थी। मैं कह रही थी कि ये तीन चीजें, स्वाधीनताका संवेद, चुनावका संकल्प और चुनाव ऐसे साधन हैं जिनका प्रकृति हमसे काम करवानेके लिये उपयोग करती है, अन्यथा हम हिलते भी नहीं।

अगर हमें यह भ्रम न होता कि हम स्वाधीन हैं, यह दूसरा भ्रम कि हम चुनाव करनेके लिये अपनी स्वाधीनताका उपयोग कर सकते हैं और तीसरा, चुनावका भ्रम, अगर ये न होते तो हम हिलते भी नहीं। इसलिये प्रकृति हमसे गति करानेके लिये हमें ये तीन भ्रम देती है क्योंकि वह चाहती है कि हम गति करें।

वह, मैंने कहा कि वह परम चेतना है पर वास्तवमें वह प्रकृति है और यह प्रकृतिकी चालाकी है; क्योंकि परम चेतना चालाकियां नहीं करती, यह प्रकृतिकी चालाकी है। परम चेतना सीधे, सरल रूपमें अपनी सारी चेतनाके साथ सभीमें प्रवेश करती है (क्योंकि वह स्वयं चेतना है)। और उस चेतनाके साथ वह सारी निश्चेतनाको चेतनाकी ओर गति करवानेके लिये कोशिश करती है, सीधे रूपमें, बिना किसी चालाकीके। उसे चालाकियोंकी जरूरत नहीं है। वह हर जगह है। वह हर जगह काममें लगी है और निश्चेतनामें चेतना डालती है। जब तुम किसी अंधेरे कमरे-

में रोशनी जलाते हो, जैसे ही तुम बटन दबाते हो, कमरेमें अंधेरा नहीं रहता। जैसे ही चेतना अंदर डाली जाय, निश्चेतना नहीं रहती। तो वह यही करती है। वह जहां कहीं निश्चेतना देखती है, वहीं प्रवेश करनेकी कोशिश करती है। कभी-कभी दरवाजोंपर ताले पड़े होते हैं, तब जरा ज्यादा समय लगता है। लेकिन कभी-कभी द्वार खुले होते हैं, वह तुरंत घुस आती है, निश्चेतना गायब हो जाती है और चेतना आ जाती है — चालाकियों और मध्यस्थोंके बिना ही। वह सचेतन हो जाती है। लेकिन जड़ प्रकृति, भौतिक प्रकृति ऐसी नहीं है। उसमें चालाकियां भरी हैं। वह तुम्हें सारे समय गतिशील रखती है। वह कठपुतलीके तार खींचती रहती है, उसके लिये तुम सब छोटी-छोटी गुड़ियों-के समान हो, वह तार खींचती है और तुम्हें नचाती है। वह तुम्हारे सिरमें सब प्रकारकी भ्रांतियां भर देती है ताकि तुम अपने-आप चाहे बिना भी, वह करो जो वह करवाना चाहती है। उसे इस बातकी जरूरत नहीं है कि तुम चाहो। वह बस तार खींचती है और तुम करते हो।

कभी-कभी हम इसीलिये झगड़ते हैं। लेकिन वह तो कुछ ऐसी चीज है जिसके बारेमें हम बात नहीं करते!

आपने यहां कहा है कि हम "कर्मकी बेड़ीसे बंधे हैं", पर कभी-कभी जब भागवत कृपा कार्य करती है तो यह उलटा...।

बिलकुल, भागवत कृपा कर्मको एकदम उलट देती है। यूं समझो वह उसे धूपमें रखे मक्खनकी तरह पिघला देती है।

मैं अभी यही बात कर रही थी। तुमने अभी जो कहा वह उसी बातको और तरहसे कहनेका ढंग है। मैं अपने-आपको तुम्हारे स्थानपर रखकर पूछ रही थी : यह लो, अगर तुम्हारे अंदर काफी सच्ची अभीप्सा है या काफी तीव्र प्रार्थना है तो तुम किसी ऐसी चीजको उतार कर ला सकते हो जो सब कुछ बदल सकती है, सब कुछ — सचमुच वह सब कुछ बदल सकती है। एक उदाहरण दिया जा सकता है जो बहुत ही सीमित और बहुत छोटा है पर वह तुम्हें यह चीज अच्छी तरह समझा सकता है। एक पत्थर बिलकुल यांत्रिक ढंगसे गिरता है; मान लो, एक खपरा गिरता है (अगर वह ढीला हो जाय तो गिर ही पड़ेगा, गिरेगा न?), लेकिन अगर, उदाहरणके लिये, उधरसे गुजरते हुए किसी आदमी-से प्राणिक या मानसिक नियति आ जाय, वह आदमी यह न चाहे कि

पत्थर गिरे और वह अपना हाथ आगे कर दे तो वह जमीनपर न गिरकर उस आदमीके हाथपर गिरेगा। तो इस आदमीने पत्थर या खपरेकी नियति बदल दी। यहां एक और नियति आ गयी और किसीके सिरपर गिरनेकी जगह पत्थर हाथपर गिरता है और किसीकी हत्या नहीं करता। यह एक और लोकसे हस्तक्षेप है, एक सचेतन संकल्पका हस्तक्षेप है जो न्यूनाधिक अचेतन यांत्रिकतामें प्रवेश करता है।

तो कर्म-फल कठोर नहीं हैं?

नहीं, बिलकुल नहीं। सभी धर्मोंमें ऐसे लोग हैं जिन्होंने यह बात कही है, जिन्होंने दृढ़ निरपेक्ष नियम बनाये हैं, लेकिन मेरा ख्याल है कि यह अपने-आपको प्रकृतिके स्थानपर रखकर तार खींचनेके लिये था। इस प्रकारकी सहजवृत्ति हमेशा प्रकृतिका स्थान लेकर लोगोंके तार खींचना चाहती है। इसलिये उनसे कहा जाता है: "तुम जो कुछ करते हो उसका एकदम निश्चित फल होता है...।" विकासके एक निश्चित क्षणमें इस प्रकारकी धारणा लोगोंको पूरी तरह निश्चेतन अहंकारमें रहनेसे रोकनेके लिये, वे जो कुछ करें उसके परिणामोंसे पूरी तरह निश्चेतन रहनेसे बचानेके लिये जरूरी है। आज भी ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है। मेरा ख्याल है इन्हींकी संख्या अधिक है। वे अपने आवेगोंके अनुसार चलते हैं और अपने-आपसे यहतक नहीं पूछते कि उन्होंने जो कुछ किया है उसका उनके अपने लिये और औरोंके लिये कोई परिणाम भी होगा। इसलिये अच्छा है कि कोई तुमसे सीधा, कड़ी नजरके साथ कहे: "सावधान, इसके परिणाम बहुत लंबे समयतक चलेंगे।" और फिर दूसरे आकर कहते हैं: "तुम्हें अगले जन्ममें इसका फल भोगना पड़ेगा।" वैसे तो यह ऊट-पटांग कहानियोंमेंसे है...। पर इसमें कोई हर्ज नहीं: यह भी लोगोंके भलेके लिये हो सकती है। ऐसे धर्म हैं जो कहते हैं: "ओह! तुमने पाप किया तो हमेशाके लिये नरकमें जा पड़ोगे।" तुम कल्पना कर सकते हो!... तो लोग इतना ज्यादा डर जाते हैं कि वे थोड़ी देर ठहरते हैं, उन्हें अपने आवेगके अनुसार चलनेसे पहले सोचनेका जरा-सा समय मिल जाता है — और यह भी हमेशा नहीं। कभी-कभी विचार बादमें आता है, जरा देरमें।

यही सुनिश्चित नहीं है। कुछ कम या अधिक सच्ची मानसिक रचनाएं हैं जो चीजोंको बिलकुल छोटे-छोटे, साफ टुकड़ोंमें काट देती हैं और तुमसे कहती हैं: "यह करो या वह करो। अगर यह न किया तो वह

होगा।" ओह! ऐसा जीवन भी क्या मुसीबत है! लोग पागल हो जाते हैं, वे भयभीत होते हैं! "बात ऐसी है या फिर ऐसी?" और वे उसे न तो इस रूपमें चाहते हैं, न उस रूपमें। तब वे क्या करें? — उन्हें बस एक ऊंची मंजिलपर चढ़ जाना चाहिये। उन्हें दरवाजा खोलनेकी चाबी देनी चाहिये। जीनेपर एक दरवाजा जिसकी चाबीकी जरूरत है। जैसा कि मैंने अभी कहा, काफी सच्ची अभीप्सा या काफी तीव्र प्रार्थना ही उसकी चाबी है। मैंने "या" कहा तो है पर मुझे नहीं लगता कि यहां "या" है। कुछ लोग हैं जिन्हें एक चीज ज्यादा अच्छी लगती है, औरोंको दूसरी। लेकिन दोनोंमें जादुई शक्ति है। तुम्हें जानना चाहिये कि उसका उपयोग कैसे किया जाय।

दोनोंमें कोई चीज बहुत सुन्दर है। मैं एक दिन तुम्हें उसके बारेमें बताऊंगी, मैं तुम्हें बताऊंगी कि अभीप्सामें क्या है और प्रार्थनामें क्या, और दोनों ही क्यों सुन्दर हैं...। कुछ लोगोंको प्रार्थना पसंद नहीं: अगर वे अपने हृदयकी गहराईमें जायं तो देखेंगे कि यह घमंड है — उससे भी बढ़कर, मिथ्या अभिमान है। और फिर ऐसे लोग हैं जिनमें कोई अभीप्सा नहीं होती। वे कोशिश करते हैं फिर भी अभीप्सा नहीं कर सकते। यह इसलिये क्योंकि उनके अंदर संकल्पकी ज्वाला नहीं होती, यह इसलिये कि उनमें नम्रताकी ज्वाला नहीं होती।

दोनोंकी जरूरत होती है। अपने कर्मको बदलनेके लिये बहुत ज्यादा नम्रता और बहुत प्रबल संकल्प होना चाहिये।

यह लो, फिर मिलेंगे, मेरे बच्चो।

१० जून, १९५३

'विरोधी शक्तियोंके आक्रमण अपरिहार्य हैं। तुम्हें उन्हें मार्ग-पर आनेवाली परीक्षाएं मानकर साहसके साथ अग्नि-परीक्षाओं-मेंसे आगे बढ़ते जाना चाहिये। संघर्ष कठिन हो सकता है पर जब तुम उसमेंसे बाहर आते हो तो कुछ लाभ उठाते हो, एक कदम आगे बढ़ जाते हो। विरोधी शक्तियोंके रहनेकी भी एक आवश्यकता है। वे तुम्हारे निश्चयको अधिक दृढ़ और अभीप्साको अधिक स्पष्ट बनाती हैं।"

"फिर भी यह सच है कि उनका अस्तित्व इसलिये है कि तुम उन्हें रहनेका कारण देते हो। जबतक तुम्हारे अंदर कोई ऐसी चीज है जो उन्हें प्रत्युत्तर देती है तबतक उनका हस्तक्षेप बिलकुल उचित है। अगर तुम्हारे अंदर कोई चीज प्रत्युत्तर न दे, अगर तुम्हारी प्रकृतिके किसी अंशपर उनका अधिकार न हो तो वे हट जायंगी और तुम्हें छोड़ देंगी।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (५ मई)

कभी-कभी जब कोई विरोधी शक्ति हमपर आक्रमण करती है और हम सफल हो जाते हैं तो उसके बाद वही शक्ति दोबारा क्यों आक्रमण करती है?

क्योंकि कोई चीज अंदर छूट गयी थी। हमने कहा है कि वह शक्ति तभी आक्रमण कर सकती है जब प्रकृतिमें कोई चीज उसे प्रत्युत्तर देती हो — चाहे कितना कम क्यों न हो। एक प्रकारका सादृश्य होता है, कोई चीज उसके अनुरूप होती है, एक अव्यवस्था या अपूर्णता होती है जो विरोधी शक्तियोंको प्रत्युत्तर देकर उन्हें आकर्षित करती है। इसलिये अगर आक्रमण हो तो तुम्हें पूरी तरह शांत रहना चाहिये और उसे वापिस भेज देना चाहिये। लेकिन इसका यह आवश्यक अर्थ नहीं है कि तुमने उस छोटे-से भागसे पिंड छुड़ा लिया जो आक्रमणको होने देता है।

तुम्हारे अंदर कोई ऐसी चीज है जो इस शक्तिको आकर्षित करती है। उदाहरणके लिये (यह बहुधा होनेवाली चीज है), अवसादकी शक्ति। अवसादकी धाराका आक्रमण जो अचानक तुमपर आ पड़ता है। तुम विश्वास खो देते हो, तुम आशा खो देते हो, तुम्हें लगता है कि अब तुम कभी कुछ न कर सकोगे। तुम निराश हो जाते हो। इसका मतलब है कि तुम्हारी प्राण सत्तामें कोई ऐसी चीज है जो स्वभावतः अहंकारमय है, निश्चय ही, जरा मिथ्याभिमानी है, जिसे उचित स्थितिमें रहनेके लिये प्रोत्साहनकी जरूरत है। तो यह मानो उन शक्तियोंके लिये एक सिकंदरा है जो उन्हें सूचना देता है: "तुम आ सकते हो, दरवाजा खुला है।" लेकिन सत्तामें एक और भाग है जो उस समय निगरानी कर रहा था। जब ये शक्तियां आयीं, तो उन्हें प्रवेश करने देनेकी जगह, वह भाग, जो स्पष्ट देख सकता है, जो जानता है, जिसमें शक्ति है, जो प्रतिरोध कर सकता है, कह देता है: "नहीं, मुझे वह नहीं चाहिये, वह सत्य नहीं है, मैं नहीं चाहता उसे;" और उन्हें वापिस भेज देता है। लेकिन तुम्हें अपने अंदरकी उस

छोटी-सी चीजसे छुटकारा नहीं मिला जिसने उन्हें आनेकी स्वीकृति दी थी। उन्हें बुलानेकी सारी संभावनाको मिटानेके लिये तुम्हें अपने अंदर बहुत गहराईमें जाना चाहिये, अपने अंदर निरंतर लगे रहना चाहिये। और जबतक तुमने उसे पूरी तरह नहीं मिटा दिया, आक्रमण अचानक, अप्रत्याशित रूपमें फिरसे होगा। तुम उसे पीछे धकेल दो — यह मानो एक गेंद है जिसे तुम दीवारपर मारते हो, वह झट लौट आती है। तुम फिर मारते हो और वह फिरसे लौट आती है : उसी तरह जबतक कि कोई चीज ऐसी न रहे जो उसे आकर्षित करती हो। तब यह नहीं लौटती।

इसलिये जब तुम्हारे ऊपर विरोधी शक्तिका आक्रमण हो तो सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि तुम अपने-आपसे कहो : "हां, यह शक्ति बाहरसे आती है और आक्रमण हो रहा है। निश्चय ही इसके अनुरूप कोई चीज मेरे अंदर होगी, अन्यथा यह आक्रमण मेरे ऊपर न हो पाता। अच्छा, अब मैं अपने अंदर देखता और खोजता हूं कि कौन-सी चीज इस शक्तिको आने देती है। मैं उसे खदेड़ दूंगा या उसका रूपांतर कर दूंगा या उसपर चेतनाका प्रकाश डालूंगा ताकि वह बदल जाय या उसे निकाल बाहर करूंगा ताकि मेरे अंदर न रहने पाये . . .।" एक रास्ता है, है न? जब शक्ति आये, विरोधी शक्ति, जब वह आक्रमण करे तो जो भाग उसके सदृश है वह उससे मिलनेके लिये निकल पड़ता है, वह आगे जाता है। एक प्रकारका मिलन होता है। उस समय पूरी तरह अभिभूत होनेकी जगह या आश्चर्यमें पड़नेकी जगह या असावधान होनेकी जगह तुम नजदीकसे देखो कि तुम्हारे अंदर वह कौन-सी चीज थी जिसने स्पंदन किया (वह टट्, टट्, टट्की आवाज करती है, एक और चीज आ गयी है), तब तुम उसे पकड़ सकते हो। उसी क्षण उसे पकड़ लो और कहो : "निकल जा अपने दोस्तोंके साथ, मुझे अब तेरी जरूरत नहीं।" तुम दोनोंको एक साथ निकाल देते हो, जो भाग आकर्षित करता था और जो चीज आकर्षित हुई थी, उनको निकाल दिया गया और तुम एकदम साफ हो गये।

उसके लिये तुम्हें बहुत जागरूक होना चाहिये और तुम्हारे अंदर थोड़ा साहस होना चाहिये। साहस इस अर्थमें कि कभी-कभी तुम्हें उसे सख्तीसे पकड़ना होता है और खींच निकालना होता है — इससे थोड़ा दर्द होता है — और तब तुम उसे भी उन शक्तियोंके साथ फेंक देते हो जिन्हें तुमने भेज दिया था। तब काम समाप्त हो जाता है। और जबतक यह नहीं होता, वह फिर-फिर कर वापिस आ जाता है और तब यदि आदमी काफी साहसी या जागरूक नहीं है या अध्यवसायी नहीं है तो वह चौथी-पांचवीं बारमें पट हो जाता है और कहता है : "यह बहुत अधिक है, बस बहुत हो

लिया।" तो वह शक्ति अपने-आपको प्रतिष्ठित कर लेती है, वह अपने कामसे खुश और संतुष्ट होती है। तब तुम उसे हंसते हुए देख सकते हो। वह बहुत मजा लेती है। वह अपने सौदेमें जीत गयी। अब उसे खदेड़नेमें बहुत श्रम करना पड़ता है। लेकिन अगर तुम दूसरे रास्ते चलो, अगर तुम सावधानीसे इस तरह देखो: "लो, मैं उस चीजको पकड़ने जा रहा हूं जिसने इसे आने दिया," तो कहीं अपने अंदर नजदीक आती हुई विरोधी शक्तिके प्रत्युत्तरमें कोई चीज उठती हुई, कुलबुलाती हुई ऊपर आती दिखायी देगी। वहीं उसे पकड़कर बाकी चीजोंके साथ बाहर फेंक देनेका समय है।

लेकिन जब हम उसे बाहर फेंकते हैं तो वह मरती नहीं, तब वह फिरसे कहीं और जा सकती है, क्योंकि वह दुनियामें ही रहती है।

बिलकुल ठीक। वह दुनियामें ही रहती है और निश्चय ही कहीं और चली जायगी — जबतक कि वह ऐसे व्यक्तिसे नहीं मिलती जिसमें काफी आध्यात्मिक और गुह्य शक्ति हो जो एक ऐसी गतिको विलीन कर सके और यह बहुत कठिन है...। व्यक्तिको बहुत शक्तिशाली होना चाहिये और उसके अंदर महान् ज्ञान और महान् शक्ति होनी चाहिये, एक ऐसी गतिको विलीन करनेके लिये जिसके (उसके लिये बस यही कहा जा सकता है) दुनियामें रहनेका कारण है — मैं औचित्य नहीं कह रही, पर उसके रहनेका कारण है। ऐसी चीजें हैं जिन्हें विलीन किया जा सकता है, लेकिन अगर दुनियामें कहीं किसीमें वह चीज मौजूद है तो वह फिरसे इसे बना लेगी। जब लोगोंपर प्राण जगत्की छोटी-छोटी शक्तियोंका आक्रमण होता है, विरोधी शक्तियां जो उनपर आक्रमण करती हैं, उनके परिवेशमें अपने-आपको जमा लेती हैं और उनपर अधिकार करनेकी कोशिश करती हैं, यानी, उनमें प्रवेश करके शरीरका और बाकी सबका उपयोग करना चाहती हैं। ये सत्ताएं — व्यक्तिके लिये इनसे छुटकारा पाना बहुत कठिन है: उसके लिये बहुत, बहुत कठिन योगकी जरूरत होती है। लेकिन जिसमें ज्ञान और शक्ति है और जो उन्हें देखता है, वह उन्हें भली-भांति वातावरणमेंसे निकालकर नष्ट कर सकता है। लेकिन अगर वह व्यक्ति जिसपर आक्रमण हुआ है, अपने अंदर जरा भी आकर्षण रखता है, जिसने उन्हें अंदर घुसने दिया था, तो वह उन्हें वापिस बुला लेगा। मुझे ऐसे बहुत-से अनुभव हैं, बहुत-से।

मेरे आगे एक व्यक्तिका उदाहरण था जो तीन-चौथाई ग्रस्त था और उस समय एक प्रकारकी शक्ति, एक बल प्रकट करता था जो बहुत अच्छा

न था। फिर भी वह बल, शक्ति और क्षमताका असर तो डालता ही था। हां, वह जानता था कि यह बुरी चीज थी और अशुभके लिये थी और वह उससे त्राण पानेके लिये प्रार्थना करता था। अवसर आता है, सत्ता अपने-आपको अधिकृत व्यक्तिसे अलग दिखाती है। उसे पकड़कर, खींचकर विलीन किया जा सकता है। तब ग्रस्त व्यक्तिको लगता है कि वह भी और लोगोंकी तरह सामान्य बना जा रहा है। उसे शक्तिका जो भान था वह खो जाता है और उसे लगता है कि वह बिलकुल साधारण होता जा रहा है और वह कहता है : "मेरे अंदर कोई विशेष क्षमताएं नहीं हैं, मेरा कोई विशेष मूल्य नहीं है, मेरे अंदर कोई विशेष योग्यता नहीं है। मैं एक बिलकुल साधारण मनुष्य हूं, बल्कि साधारणसे भी गया-बीता, बिलकुल घिनौने रूपमें साधारण।" अब वह क्या करता है? वह प्रार्थना करता है कि फिरसे ग्रस्त हो जाय और कुछ ही दिनों बाद मैं उसे पहले जैसा ही ग्रस्त पाती हूं।

हां, यहां यह कष्ट उठाने लायक नहीं है। ऐसे लोगोंको उनके भाग्यपर छोड़ देना ही ठीक है। यह बहुत बार हो चुका है। इस तरहके लोगोंमें साधारणतः एक प्रकारका मिथ्या अभिमान इन शक्तियोंके लिये द्वार खोल देता है। वे बड़े होना चाहते थे, शक्तिशाली होना चाहते थे, कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका पाना, विशेष व्यक्ति होना चाहते थे। यह चीज शक्तिको खींचती है और वे ऐसे बन जाते हैं, ग्रस्त हो जाते हैं। वह चीज उनसे ले ली जाती है तो उनकी विशेष क्षमता गायब हो जाती है और साथ ही उनका आत्म-तुष्ट मिथ्या अभिमान भी। उन्हें लगता है कि वे बिलकुल सामान्य बन गये हैं और उनके अंदरसे कोई छोटी-सी चीज कहती है : "आह! इससे तो पहले अच्छा था...।" जिस एकको नष्ट किया गया है उसकी जगह लेनेके लिये हमेशा दस तैयार रहते हैं। तो बात ऐसी है। यह एक विचित्र काम है!

तुम दुर्गाकी कहानी जानते ही हो। दुर्गा जिसे हर वर्ष अपने असुरका संहार करना होता है और हमेशा फिरसे शुरू करनेके लिये बाधित होती है। असुरोंको जो राज्यकाल दिया गया है उसके अंततक यह सिलसिला चलता ही रहता है। जब वे इस संसारसे निकाल दिये जायेंगे तब फिर ऐसा नहीं रहेगा। लेकिन तबतक, यानी, जबतक वे उपयोगी हैं (जैसा कि मैंने इस पुस्तकमें कहा है), अभीप्साको तीव्र बनानेके लिये, चेतनाको शुद्ध करनेके लिये, लोगोंकी सचाईकी परख करनेके लिये उपयोगी हैं, तबतक वे बने रहेंगे। जिस दिन परखकी जरूरत न रहेगी, जिस दिन सचाई और निष्कपटता शुद्ध और अपने पैरोंपर खड़ी होंगी, वे गायब हो जायेंगे। तब उस दिनसे दुर्गाको हर वर्ष नया युद्ध न शुरू करना पड़ेगा।

क्या उन्हें बदल देना ज्यादा अच्छा न होगा?

ओह! मेरे बच्चे, यह जरूर ज्यादा अच्छा होगा, बहुत अधिक अच्छा होगा। लेकिन फिर...।

यह ऐसा क्षेत्र है जहांका मुझे पूरा-पूरा अनुभव है। चालीस वर्षके निरंतर प्रयासके बाद मैंने जाना है कि जबतक कि कोई निष्कपट-भावसे, सचाईके साथ अपने-आपको बदलना न चाहे तबतक यह बिलकुल असंभव है। अगर वह पूरी तरह निष्कपट होकर काममें नहीं लग जाता — हां, मैंने चालीस वर्ष प्रयास किया। इसके लिये एक सौ चालीस वर्ष कोशिश करो तब भी परिणाम यही रहेगा — वह हिलेगा भी नहीं। इन सत्ताओं-का यह स्वभाव ही है कि वे अपने-आपसे पूरी तरह संतुष्ट रहें। उनकी इच्छा नहीं होती, जरा भी इरादा नहीं होता कि वे बदलें! अब भी जो सत्ताएं धरतीके साथ संपर्क रखती हैं — आसुरी सत्ताएं — सबसे बड़ा असुर जो धरतीके साथ व्यस्त है, जो मिथ्यात्वका असुर है, अपने-आपको "राष्ट्रोंका प्रभु" कहता है — उसका नाम सुंदर है, वह 'राष्ट्रोंका प्रभु' है — जहां कहीं कुछ गड़बड़ हो रही हो, वहां वह मौजूद रहता है, विश्वास करो, वहां वह या उसका कोई प्रतिनिधि जरूर होगा। और यह भी पूरी तरह निश्चित है कि बहुत जल्दी उसकी घड़ी आ जायगी और उसका काम तमाम हो जायगा, उसे गायब होना पड़ेगा। लेकिन वह बदलनेसे बिलकुल इंकार करता है, उसका ऐसा कोई इरादा नहीं है, क्योंकि तब वह अपनी सारी शक्ति तुरंत खो देगा। यह असंभव है। और वह जानता है कि उसे गायब होना पड़ेगा, लेकिन वह सुनिश्चित रूपसे घोषणा करता है कि गायब होनेसे पहले वह जितना बन पड़े उतना ध्वंस करता जायगा...। अपने हृदयमें वह तबतक गायब होना स्वीकार न करेगा जबतक, उसके साथ-ही-साथ सब कुछ न गायब हो जाय। उसके दुर्भाग्यवश यह संभव नहीं है। लेकिन उससे जितना अधिक बन पड़े, वह जितनी अधिक चीजोंको हो सके नष्ट, ध्वस्त और बरबाद कर देगा, भ्रष्ट कर देगा। यह निश्चित है। उसके बाद उसका पतन। वह पतनको अपनी शर्तोंपर स्वीकारता है। उसके मनमें यह विचार कभी नहीं आया कि वह बदल भी सकता है। तब वह नहीं होगा, तुम देखते हो, तब वह अपना-आप न रहेगा।

मनुष्य और प्राण लोककी इन सत्ताओंमें बहुत अंतर है। मैंने यह बात कई बार कही है और फिर कहती हूं:

मानव सत्तामें भागवत उपस्थिति और चैत्य पुरुष होते हैं, आरंभमें भ्रूणावस्थामें, लेकिन अंतमें पूर्णतया निर्मित, सचेतन, स्वतंत्र और व्यक्ति-

मावापन्न। प्राणमय लोकमें यह चीज नहीं होती। जड़-पदार्थमें धरती-पर रहनेवाले मनुष्योंपर यह विशेष कृपा है। और इसके कारण ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो बदल नहीं सकता — अगर वह चाहे। अर्थात्, उसके चाहनेकी संभावना है और वह जिस क्षण चाहे कर सकता है। वह जिस क्षण चाहेगा उसी क्षण अवश्य सफल होगा। जब कि प्राणकी उन सत्ताओंमें चैत्य पुरुष नहीं होता। उनके अंदर भगवान्‌की प्रत्यक्ष उपस्थिति नहीं होती (स्वभावतः मूलमें वे सीधे भगवान्‌से उतरे थे, लेकिन यह मूल-स्रोतकी बात थी, वह बहुत दूर है); उनका अपने अंदर भगवान्‌के साथ सीधा संबंध नहीं है, उनके अंदर चैत्य पुरुष नहीं है। और अगर वे परिवर्तित हुए तो उनका कुछ भी न बच रहेगा। क्योंकि वे पूरी तरह विरोधी गतियोंसे बने हैं। वे पूरी तरह स्वाग्रह, तानाशाही अधिकार, मूल-स्रोतसे अलगाव और उस सबसे जो शुद्ध, उदात्त और सुन्दर है, घृणासे बने हैं। उनके अंदर वह चैत्य तत्त्व नहीं है जो, अधिक-से-अधिक नीच पुरुषमें भी सुन्दर और शुद्धका मान करवाता है। अधम-से-अधम मनुष्य भी, अपने बावजूद, अपनी इच्छा-शक्तिके बावजूद शुद्ध, उदात्त और सुन्दरका मान करता है। लेकिन उन सत्ताओंमें यह नहीं होता। वे पूरी तरह दूसरी ओर होती हैं। उन्हें इससे हर तरहसे घृणा होती है। उनके लिये यह ऐसी चीज है जिसे छूना भी नहीं चाहिये क्योंकि वह नष्ट करती है, यही वह चीज है जो उन्हें गायब कर देती है। सद्भावना, सचाई या निष्कपटता, पवित्रता और सौंदर्य ऐसी चीजें हैं जो उन्हें गायब कर देती हैं। इसलिये वे इन चीजोंसे घृणा करते हैं।

मैं नहीं जानती कि उन्हें किस आधारपर बदला जा सकता है। वहां सहारेका बिंदु कौन-सा होगा? मैं उसे नहीं पाती। बड़े-से-बड़ेमें भी! यानी, इनमेंसे कुछ सत्ताएं तबतक गायब न होंगी जबतक घृणा धरतीसे गायब नहीं हो जाती...। इसे दूसरी तरह भी कहा जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि दुनियासे घृणा तब खतम होगी जब वे सत्ताएं खतम हो जायंगी। लेकिन मैंने जो कारण बताये हैं, अंधकारमेंसे प्रकाशको प्रकट करने, कुरूपतामेंसे सौंदर्य और अशुभमेंसे शुभ प्रकट करनेकी जो शक्ति मनुष्यमें है, वह असुरमें नहीं है। इसलिये मनुष्य ही वह काम करेगा, वही बदलेगा, वही अपनी धरतीका रूपांतर करेगा और वही असुरको दूसरे लोकोंमें भाग जाने या विलीन हो जानेके लिये बाधित करेगा। उसके बाद सब कुछ शांत हो जायगा। तो यह लो।

कोई प्रश्न?

आपने यहां मनके संबंधमें कहा है: "सत्ताका कोई भाग जो अपने उचित स्थानपर रहता है और अपना निश्चित कार्य करता है, सहायक है, लेकिन जैसे ही वह अपने क्षेत्रसे बाहर पांव रखता है वह विकृत और भ्रष्ट होनेके कारण मिथ्या हो जाता है। जब शक्ति भगवान्‌के उद्देश्यके लिये गतिशील होती है तो उसकी क्रिया उचित होती है। उसकी क्रिया गलत होती है जब वह अपने ही संतोषके लिये क्रियाशील हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (५ मई)

जब कोई भाग अपने क्षेत्रसे बाहर पांव रखता है तो वह विकृत या भ्रष्ट क्यों हो जाता है?

मैंने क्षेत्र शब्दका प्रयोग स्थान और अपनी निश्चित भूमिकाके अर्थमें किया है। सत्ताके हर भागका समग्रमें एक अपना स्थान है और उसकी अपनी निश्चित भूमिका है। वह भूमिका निभानेकी जगह वह कुछ और करने-लगे तो वह स्वभावतः अपनी निश्चित भूमिकाके लिये आवश्यक गुणोंको खो देता है। वह दूसरे गुण तो ले नहीं सकता क्योंकि वे उसके लिये विजातीय हैं तो अनिवार्य रूपसे वह विकृत और भ्रष्ट हो जाता है। उदाहरणके लिये, हम कहते हैं कि क्रियाके संबंधमें मनकी सच्ची भूमिका रचनात्मक है। मनमें एक विचार आता है, मन उसे ग्रहण करता और उसे सिद्ध करनेके लिये रूप देता है, उसे कार्यके हेतुमें बदल देता है और भौतिक क्षेत्रकी ओर भेज देता है। मन विचारको संगठित करता है ताकि वह क्रियामें सिद्ध हो सके। यह उसकी सच्ची भूमिका है। जब-तक वह इसे करता है और सावधानीके साथ करता है, वह अपनी भूमिका-को निभा रहा है, अपने स्थानपर है और सचमुच उपयोगी है। लेकिन अगर मन यह कल्पना कर ले कि वह जानता है, कि उसे सत्ताके किसी और भागसे, उच्चतर भागसे ज्ञान और विचार प्राप्त करनेकी कोई जरूरत नहीं, अगर वह यह कल्पना कर ले कि वह जानता है और आंतरिक गतियोंके संपर्कसे यह मान ले कि उसने कुछ ज्ञान पा लिया है, जो कभी किसी और चीजकी प्रतिच्छाया नहीं हो सकता, और अगर वह इस ज्ञान-को भौतिक जीवनपर लादनेकी कोशिश करे तो वह अपनी भूमिका छोड़-कर अत्याचारी बन जाता है — यह बहुधा होता है, तब यह पूरी तरह भ्रष्ट हो जाता है और साधनामें सहायक होनेकी जगह, उसे नीचे उतार लाता है। तुम आसानीसे यह अवलोकन कर सकते हो। स्वभावतः

तुम्हें अपने अंदर सच्ची क्रियाका अनुसरण करने योग्य होना चाहिये।

प्राणके साथ भी यही बात है। प्राण संचालन करनेके लिये है, वह सिद्ध करनेकी शक्ति, उत्साह, मनके द्वारा रचित विचारमें आवश्यक ऊर्जा भरनेके लिये है ताकि वह शरीरमें संचारित और क्रियामें चरितार्थ हो सके। अच्छा, जबतक प्राण अपने-आपको इस क्रियातक सीमित रखता है, अर्थात्, अपनी सारी ऊर्जा, उत्साह और कार्य करनेके बलको विचारके साथ सहयोगमें लगाता है तबतक यह बहुत अच्छा है। लेकिन अगर उसकी जगह अचानक उसमें एक इच्छा पैदा हो जाय — और यह बहुत बार होती है — और वह अपने सारे गुण, उस उच्चतर विचारके लिये नहीं जो अभिव्यक्त होना चाहता है — बल्कि अपनी निजी इच्छाको चरितार्थ करनेमें लगा दे तो वह अपने क्रिया-क्षेत्रसे बाहर पांव रखता है, वह भ्रष्ट हो जाता है, हर चीजको विकृत कर देता है और अनर्थ और महाविपत्ति पैदा करनेमें सफल होता है।

कभी-कभी हम यह नहीं देख पाते कि विरोधी शक्तियां हमपर आक्रमण कर रही हैं। क्यों नहीं देख पाते?

तुम उसे नहीं देख पाते! यह तब होता है जब तुम सतर्क नहीं होते; जब तुम सावधान नहीं होते, जब तुम एकदम बाहरी चीजोंमें, हर रोजके व्यावहारिक जीवनकी छोटी-छोटी चीजोंमें व्यस्त रहते हो। तब ये शक्तियां तुम्हारे जाने बिना ही तुमपर आक्रमण कर सकती हैं, तुम्हारे अंदर घुस सकती हैं और अपने-आपको प्रतिष्ठित कर सकती हैं। अधिकतर, वे तुम्हारे ऊपर सीधा आक्रमण नहीं करतीं क्योंकि अगर वे सीधा आक्रमण करें तो यह संभावना रहती है कि तुम जान लो (तुम अचानक बेचैनी अनुभव करो) और यह तुम्हारे ध्यानको जगा दे)। वे निश्चेतनामें नीचे जाती हैं और तब ऊपर आती हैं, इस तरहसे, चुपचाप, नीचेसे। इसलिये तुम बिलकुल नहीं जानते कि तुम्हें क्या हो रहा है। जब तुम्हें उसका भान होता है तबतक वह आ चुकी होती है, बड़े आरामसे, पूरी तरह जम चुकी होती है।

कभी-कभी हम विरोधी शक्तियों और दूसरी शक्तियोंमें भेद नहीं कर सकते।

यह तब होता है जब तुम बिलकुल निश्चेतन हो।

केवल दो अवस्थाएं हैं जब यह हो सकता है। या तो तुम अपनी सत्ताकी गति-विधिसे बहुत निश्चेतन हो — तुमने उनका अध्ययन नहीं किया, तुमने अवलोकन नहीं किया, तुम जानते ही नहीं कि तुम्हारे अंदर क्या हो रहा है। या फिर तुम पूरी तरहसे कपटी हो, यानी, तुम वास्तविकताको न देखनेके लिये शुतुरमुर्ग बन जाते हो: तुम अपना सिर छिपा लेते हो, तुम अपने अवलोकनको, अपने ज्ञानको छिपा लेते हो और कहते हो: "वह है ही नहीं।" मैं आशा करती हूं कि यहां दूसरी अवस्थाका प्रश्न नहीं है। अतः तुम्हें अपना अवलोकन करनेकी आदत नहीं है इसलिये तुम इतने निश्चेतन हो कि तुम्हें पता ही नहीं लगता कि तुम्हारे अंदर क्या हो रहा है।

क्या तुमने कभी तुम्हारे मनसे क्या आता है, तुम्हारे प्राणसे क्या आता है, तुम्हारे शरीरसे क्या आता है, इनमें भेद करनेका अभ्यास किया है?... क्योंकि यह सब मिला-जुला रहता है। वह बाहरी रूपमें मिला-जुला रहता है। अगर तुम सावधानीसे भेद न करो तो सब कुछ मिला-जुला शोरबेके जैसा लगता है। इसलिये वह अस्पष्ट होता है और उसे खोजना मुश्किल होता है। लेकिन अगर तुम अपना अवलोकन करो, कुछ समयके बाद तुम कुछ चीजें देखोगे, तुम उन्हें अनुभव कर सकोगे, इस तरहसे मानों वे तुम्हारी चमड़ीमें हों; कुछ और चीजोंके बारेमें जाननेके लिये, यह जाननेके लिये कि वे कहांसे आती हैं तुम्हें लगता है कि तुम्हें अपने अंदर पैठना होगा; और कुछ अन्य चीजोंके लिये तुम्हें और भी ज्यादा अंदर जाना पड़ता है या जरा ऊपर उठना होता है: वह निश्चेतनासे आती है। और कुछ और भी हैं; तब तो तुम्हें बहुत गहरे जाना होगा, बहुत गहरे, ताकि यह खोज सको कि वे कहांसे आती हैं। यह तो बस आरंभ है।

सिर्फ अवलोकन करो। तुम अमुक स्थितिमें हो, एक प्रकारकी अवर्णनीय स्थितिमें। अब देखो: "क्या! मैं ऐसा कैसे हूं?" पहले तुम यह देखनेकी कोशिश करते हो कि तुम्हें ज्वर या कोई और रोग है या नहीं। लेकिन ठीक है, सब कुछ ठीक है। न सिर-दर्द है, न बुखार। पेट विरोध नहीं कर रहा, हृदयको जैसे काम करना चाहिये वैसे ही कर रहा है। सब कुछ ठीक है। तुम स्वाभाविक स्थितिमें हो। "तब मैं इतनी बेचैनी क्यों अनुभव कर रहा हूं?"... अब तुम जरा और अंदर बढ़ते हो। यह उदाहरणोंपर निर्भर है। कभी तो तुम तुरंत जान जाते हो, हां, एक छोटी-सी घटना हुई थी जो बहुत प्रीतिकर न थी, किसीने कोई ऐसी बात कही थी जो सुखकर न थी, या

तुम अपने काममें असफल हो गये थे या अपना पाठ अच्छी तरह याद न था, अध्यापकने कोई टिप्पणी की थी। उस समय तुमने उचित ध्यान नहीं दिया लेकिन बादमें उसने अपना काम शुरू किया और वह एक कष्टकर छाप छोड़ गया। यह दूसरी अवस्था है। बादमें, यदि कुछ न हुआ तो: "सब ठीक है, सब कुछ सामान्य है, सब कुछ हमेशाकी तरह है, अवलोकन योग्य कुछ भी नहीं, कुछ भी तो नहीं हुआ। तब फिर मुझे ऐसा क्यों लग रहा है?" अब बात मजेदार हो चली, क्योंकि अब तुम्हें अपने बहुत अंदर पैठना पड़ेगा। और तब सब प्रकारकी चीजें हो सकती हैं। यह यथार्थ रूपमें किसी तैयारी करते हुए आक्रमणकी अभिव्यक्ति हो सकती है; जो प्रगति करनी है उसके लिये थोड़ी चिंता हो सकती है। यह इस बातकी पूर्व सूचना हो सकती है कि कहींपर तुम्हारे संपर्कमें कोई ऐसी चीज है जो पूरी तरह सामंजस्यपूर्ण नहीं है और जिसे बदलना होगा: कोई ऐसी चीज है जिसे देखना, खोजना और बदलना होगा, जिसपर प्रकाश डालना होगा, अभीतक कोई ऐसी चीज नीचे गहराईमें बनी है जिसे अब न रहना चाहिये। तब यदि तुम अपने-आपको बहुत सावधानीसे देखो तो तुम पाओगे: "लो, मैं अभीतक वैसा हूं। उस छोटे-से कोनेमें अभीतक कोई चीज इस तरहकी है, स्पष्ट नहीं है: जरा-सी स्वार्थपरता, जरा-सी बुरी भावना, कोई ऐसी चीज जो बदलना नहीं चाहती।" इस तरह तुम उसे देखते हो, उसकी नाक या उसका कान पकड़कर उठाते हो और भरपूर प्रकाशमें लाते हो: "ओह! तुम छिप रहे थे! तुम छिप रहे हो? लेकिन मैं अब तुम्हें बिलकुल नहीं चाहता।" और तब उसे जाना पड़ता है।

यह एक बड़ी प्रगति है।

अगर इस तरहकी चीज कक्षामें हो, अगर बेचैनी लगे...

तुम्हें कक्षामें ऐसा लगता है? इसका अर्थ है कि तुम अध्यापककी बात नहीं सुनते, वरना ऐसा न होता। अगर तुम कक्षामें बहुत एकाग्र रहो और अपने पाठकी ओर ध्यान दो तो तुम्हारे साथ यह नहीं हो सकता। जब तुम कक्षासे बाहर आओ तब भले ऐसा लगे, पर कक्षामें नहीं। इसका मतलब यह है कि तुम स्वप्न देख रहे थे या अपने अंदर जी रहे थे या अपनी कल्पनाके पीछे चल रहे थे, पाठ तो नहीं सुन रहे थे...। लेकिन यह अद्भुत बात है, मेरे बच्चो। जब तुम कुछ सीख रहे हो, जब तुम अध्ययन कर रहे हो, जब तुम अपने पाठपर एकाग्र हो तो तुम्हारे साथ ऐसी चीजें कभी नहीं हो सकतीं। ये पहले हो सकती

हैं, ये पीछे हो सकती हैं, लेकिन उस समय नहीं होंगी। क्योंकि अगर तुम पूरी तरह एकाग्र हो तो तुम्हारी सारी शक्तियां अध्ययनपर केंद्रित होंगी। और उसमें कोई अप्रीतिकर चीज नहीं हो सकती। तुम जो सीखते हो उसे समझते जाते हो और जो सीखते हो उसमें रस लेते हो।

कभी-कभी हम एकाग्र होनेकी कोशिश करते हैं पर हो नहीं पाते।

अगर सचमुच तुम एकाग्र नहीं हो पाते, तो तुम्हें अपना समय अपने अंदर इसका कारण खोजनेमें लगाना चाहिये। तब यदि अध्यापक तुमसे कोई प्रश्न पूछे तो तुम्हें कह देना चाहिये: "खेद है, मैं सुन नहीं रहा था!" तुम सीखना नहीं चाहते?

हां।

तब यह कैसे हो सकता है?

परंतु कुछ कक्षाओंमें मैं समझ नहीं पाता।

तब कुछ कक्षाओंमें तुम सीखना नहीं चाहते। तुम साधारण तौरपर कह सकते हो: "हां, हां, मैं सीखना चाहता हूं," लेकिन अगर कोई सचमुच सीखना चाहे तो एक भी कक्षा ऐसी नहीं होती जहां तुम कुछ न सीख सको। निश्चय ही, चाहे कोई भी कक्षा क्यों न हो, वहां कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर होती है जिसे तुम नहीं जानते, तुम हमेशा सीख सकते हो। तुम चलते-फिरते विश्वकोश नहीं हो! अगर तुम एक ही पुस्तक-को दोबारा पढ़ो (मेरा ख्याल है कि कुछ कक्षाओंमें यह होता है), और तुम कहो: "ओह! मैं इस पुस्तकमेंसे गुजर चुका हूं। यह उबानेवाली है," तो यह केवल इसलिये होता है क्योंकि तुम सीखना नहीं चाहते; क्योंकि सचमुच अगर तुम उसी पुस्तकको दोबारा पढ़ रहे हो तो इसका अर्थ है कि पहली बार तुमने उसे ध्यानसे नहीं पढ़ा। और तुमने जो चीज भली-भांति नहीं पढ़ी उसे विशेष ध्यानसे पढ़ना चाहिये। व्याकरण-की पुस्तक भी। मैं यह नहीं कहती कि व्याकरणकी पुस्तकें बहुत उत्तेजक होती हैं, लेकिन अगर तुम सीखना चाहो तो व्याकरणकी पुस्तक भी मजेदार हो जाती है — व्याकरणके अधिक-से-अधिक दुर्बोध नियम

भी ! तुम कल्पना नहीं कर सकते कि जब तुम सचमुच सीखना चाहते हो, जब तुम समझना चाहते हो कि ऐसा क्यों है, सिर्फ यूं ही रट लेने, मुखस्थ कर लेनेकी जगह अगर तुम समझना चाहो : ये शब्द क्या हैं जो यहां रखे गये हैं, किस विचारके लिये, किस सच्चे ज्ञानके लिये ये रखे गये हैं ? ये क्या कहना चाहते हैं ? — यह सब जानना चाहो तो चीज कितनी अधिक रुचिकर हो जाती है। . . . हर एक नियम, चाहे कोई-सा क्यों न हो, स्वयं अपने अंदर स्थित किसी चीजके लिये मनुष्यके मनका सूत्र होता है। किसी भी नियमको ले लो। वह यही बतलाता है कि कुछ मस्तिष्कोंने अपनी दृष्टिमें अधिक-से-अधिक स्पष्ट, अधिक-से-अधिक घन या संक्षिप्त रूपमें कोई ऐसी चीज कहनेकी कोशिश की है जिसका अपना अस्तित्व है। अगर तुम शब्दोंके पीछे जाकर इस चीजको ढूंढनेकी कोशिश करो — जो चीज अपने-आपमें अस्तित्व रखती है, जो शब्दोंके पीछे विद्यमान है — तो चीज कितनी मजेदार हो जाती है। उससे फुरहरी आने लगती है ! रोमांच हो उठता है ! यह एक जंगल-मेंसे गुजरते हुए एक नये देशकी खोज करनेकी तरह है, उत्तरी ध्रुव जाकर छानबीन करने जैसा है। अगर तुम व्याकरणके नियमोंके साथ ऐसा ही कर सको तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, फिर तुम्हें कोई चीज न उबा सकेगी।

सीखनेकी जगह समझो।

मैं स्वीकार करती हूं कि इसके लिये बहुत अधिक एकाग्रताकी जरूरत है। यह ऐसी एकाग्रताकी मांग करती है जो मनके आवरणको भेदकर, उसमें छेद करके उस पार निकल सके। और तब यह मेहनत सार्थक होती है . . . । तुम्हें किसी ठंडी, कठोर, सख्त, बिना लोचकी चीजपर धक्का दिया जाता है। तुम एकाग्र होते हो, एकाग्र होते हो, एकाग्र होते हो, जबतक कि . . . अचानक तुम दूसरी ओर निकल जाते हो और तुम प्रकाशमें जा निकलते हो और तब समझते हो : "आहा ! यह तो अद्भुत है ! अब मैं समझा।" एक नन्हीं-सी चीज तुम्हें बहुत हर्ष देती है।

तो देखो, विद्यालयमें न उकताना संभव है।

> विद्यालयमें अमुक पाठ्यक्रम एक वर्षमें समाप्त करना ही होता है। कभी-कभी जरा तेजी करनी पड़ती है, एक प्रश्नको भली-भांति समझे बिना ही अगले अध्यायपर जाना होता है।

मेरे बच्चे, इस बातमें मैं तुम्हारे साथ पूरी तरह सहमत हूं। यह बिल-

कुल ठीक नहीं है। हम इस सबको बदलनेकी कोशिश करेंगे। मेरी समझमें नहीं आता कि हमें एक पुस्तक एक ही वर्षमें क्यों समाप्त करनी चाहिये। वह बिलकुल मनमानी है। तुम्हें कोई अध्याय तबतक नहीं छोड़ना चाहिये जबतक वह पूरी तरह समझमें न आ जाय। उसके बाद ही दूसरा अध्याय लेना चाहिये, और इसी तरह। अगर कोई अध्याय पूरा हो गया, तो हो गया और नहीं हुआ, तो नहीं हुआ।

सच तो यह है कि अध्यापकको अपना पाठ पाठ्य पुस्तकके आधारपर करानेकी जगह अपने-आप पाठ तैयार करनेका कष्ट उठाना चाहिये। उसे काफी जानना चाहिये और दिन-प्रतिदिन पाठ तैयार करनेका कष्ट उठाना चाहिये और तब वह किसी विषयका पाठ कभी बंद करेगा जब — मैं यह नहीं कहती कि हर एक समझ लेगा, क्योंकि यह तो असंभव है — कम-से-कम जिन्हें वह कक्षामें रस लेनेवाले समझता है, वे समझ लेंगे। तब नया विषय लिया जाता है। और अगर यह चलता रहे और कोई विशेष विषय एक सालकी जगह दो साल ले ले या कोई और विषय दो सालकी जगह डेढ़में ही पूरा हो जाय तो इसमें कोई हर्ज नहीं; क्योंकि यह उसकी अपनी रचना है, उसका अपना लिखा हुआ पाठ है जिसे वह कक्षाकी आवश्यकताके अनुसार लिखता है। पढ़ानेके बारेमें मेरी यही धारणा है। अब, इसकी अपनी कठिनाइयां हैं। लेकिन काम करनेका सच्चा तरीका यही है। क्योंकि एक किताब लेकर उसीका अनुसरण करनेसे और विशेषकर ऐसी किताब जो विद्यार्थियोंके लिये जरा भी अनुकूल न हो ... मैं नहीं कहती कि एक विशेष पाठ्यक्रम सबके लिये अनुकूल हो सकता है, सबको संतुष्ट करना असंभव है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो प्रयास करना चाहते हैं; तुम्हें इनका खयाल करना चाहिये। जो आलसी, निद्रालु और अकर्मण्य हैं उन्हें तो अपने आलस्य, निद्रालुता और अकर्मण्यतामें ही छोड़ दो। अगर वे सारे जीवन सोते रहना चाहते हैं तो सोने दो, जबतक कि कोई चीज उन्हें काफी झकझोरकर जगा न दे। लेकिन श्रेणीमें वह भाग ध्यान देने योग्य है जो सीखना चाहता है, जो लोग सचमुच सीखना चाहते हैं। कक्षा उन्हींके लिये ली जानी चाहिये। तुम देखते नहीं हो कि शिक्षाकी वर्तमान पद्धति एक प्रकारसे समतल बनाना है। हर एकको उसी स्तरपर होना चाहिये। तो जिन लोगोंके सिर ज्यादा ऊंचे हैं उनके सिर काट दिये जाते हैं और जिनके बहुत छोटे हैं उन्हें नीचेसे धक्का दिया जाता है। लेकिन इससे कोई लाभ नहीं। तुम्हें उन्हींकी परवाह करनी चाहिये जो ऊपर आते हैं, दूसरे जितना ले सकते हैं, ले लेंगे। और वास्तवमें मैं इस बातकी कोई

जरूरत नहीं समझती कि हर एकको एक ही चीजका ज्ञान हो — क्योंकि यह सामान्य बात नहीं है। लेकिन जो जानना चाहते हैं और जान सकते हैं, जिन्हें काम करना चाहिये, उन्हें काम करनेके पूरे, सब संभव साधन दिये जाने चाहिये, उन्हें हमेशा ऊपर उठाना चाहिये और नया भोजन देना चाहिये। वे भूखे हैं और उन्हें खिलाना चाहिये... आह! अगर मेरे पास समय होता तो मैं एक कक्षा लेती। इसमें मुझे बहुत रस आयेगा — यह दिखानेमें कि यह कैसे किया जाना चाहिये। लेकिन हम एक ही समयमें हर जगह नहीं हो सकते।

यह लो, मेरे बच्चो, काफी देर हो गयी है। शुभ रात्रि।

१७ जून, १९५३

"बुद्धिकी एक सच्ची गति है और एक गलत गति है; एकसे सहायता मिलती है, दूसरी बाधा देती है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (५ मई)

बुद्धिकी सच्ची गति कौन-सी है?

बुद्धिका तुम ठीक क्या अर्थ समझते हो? यह मनकी एक क्रिया है या मानव सत्ताका एक भाग? तुम इसे किस रूपमें समझते हो?

मनकी एक क्रिया।

मनकी एक क्रिया? तो क्या यह मनका वह भाग है जो भावोंके साथ संबंध रखता है, तुम्हारा यही मतलब है?

भाव नहीं, मां।

भाव नहीं तो फिर क्या?

विचार। परंतु...

मनका एक भाग है जो भावोंको ग्रहण करता है, ऐसे भावोंको जो उच्चतर मनमें रूप ग्रहण करते हैं। फिर भी मैं नहीं जानती, यह परिभाषाका प्रश्न है और पहले यह जानना जरूरी है कि तुम क्या कहना चाहते हो।

बुद्धि भावोंको विचारोंका रूप देती है, और साथ ही विचारोंको इकट्ठा करती और संगठित करती है। बहुत-से महान् भाव हैं, जो साधारण मानव मनसे परे रहते हैं, जो सभी संभव रूप ले सकते हैं। ये महान् भाव नीचे उतरनेको होते हैं, वे अपने-आपको यथार्थ रूपोंमें अभिव्यक्त करना चाहते हैं। ये यथार्थ रूप ही विचार हैं। साधारणतः ऐसा ही होता है, मेरा ख्याल है, इसीको बुद्धि कहते हैं: यही भावोंको विचारका रूप देती है।

और फिर स्वयं विचारोंका अपने-आपमें संगठन है। उस सबको किसी क्रम-विशेषमें रखना होता है अन्यथा चीज असंगत हो जाती है। और उसके बाद इन विचारोंको क्रियाके उपयोगमें लाना होता है। यह एक और ही गति है।

यह कहनेके लिये कि सच्ची गति क्या है, सबसे पहले यह जानना चाहिये कि किस गतिकी बात हो रही है। तुम्हारे पास एक शरीर है, हां तो, तुम यह आशा नहीं करते कि यह शरीर सिरके बल चलेगा या अपने हाथोंके बल चलेगा या पेटके बल रेंगेगा और वास्तवमें, यह भी नहीं कि सिर नीचे रहे और पैर ऊपर हवामें। तुम हर अंगको एक विशेष कार्य देते हो जो उसका अपना है। यह तुम्हें बिलकुल स्वाभाविक लगता है क्योंकि यही आदत है; अन्यथा, बहुत छोटे बच्चे नहीं जानते कि अपने पैरोंसे या हाथोंसे या सिरसे क्या करें; धीरे-धीरे वे यह सब सीखते हैं। हां, तो मनकी क्रियाओंके बारेमें भी यही बात है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम मनके किस भागके बारेमें बोल रहे हो, उसकी अपनी क्रिया क्या है। उसके बाद ही तुम यह कह सकते हो कि उसकी सच्ची क्रिया कौन-सी है और कौन-सी सच्ची क्रिया नहीं है। उदाहरणके लिये, जो भाग महान् भावोंको ग्रहण करता है और उन्हें विचारोंमें बदलता है, उसकी सच्ची क्रिया है महान् भावोंके प्रति खुलना, उन्हें ग्रहण करना और जितने ठीक और यथार्थ रूपमें हो सके, अधिक-से-अधिक अभिव्यंजक विचारके रूपमें बदलना। मनके उस भागके लिये, जिसका काम है इन सब विचारोंको इस तरह व्यवस्थित करना कि वे सुसंगत, वर्गीकृत समग्र बन जायं, एक दुर्व्यवस्था न बने रहें, सच्ची क्रिया यही है कि वह उच्चतर न्यायके अनुसार पूरी तरह स्पष्ट, यथार्थ और सुविवेचित रूपमें वर्गी-

करण करे ताकि जब किसी विचारकी जरूरत हो तो यह पता रहे कि उसे कहां खोजा जाय, विरोधी चीजोंको एक साथ इकट्ठा न कर दिया जाय। ऐसे लोग हैं जिनका मन इस तरह काम नहीं करता; उसके अंदर जो भी भाव आते हैं उन्हें, यह जाने बिना कि भाव क्या है, अस्त-व्यस्त विचारोंमें अनूदित कर दिया जाता है, और वे विचार एक प्रकार-की आंतरिक अव्यवस्थामें रहते हैं। मैं ऐसे लोगोंसे परिचित थी जो दार्शनिक दृष्टिसे — यद्यपि इसमें कोई दार्शनिक बात नहीं है — अधिक-से-अधिक परस्पर-विरोधी चीजोंको साथ-साथ रख सकते थे, उदाहरणके लिये, क्रम-परंपरागत व्यवस्था और उसके साथ ही व्यक्तिकी निरपेक्ष स्वा-धीनता और अराजकता। दोनोंको समान रूपसे सहानुभूतिके साथ स्वी-कार करते थे और एक जंगली अव्यवस्थामें एक-दूसरेके साथ सिर टक-राते थे, और उन्हें इस बातका पतातक न होता था...! तुम यह उक्ति जानते हो : "प्रश्नका तीन-चौथाई समाधान तो अच्छी तरह पूछनेमें है।" तो अब, अपना प्रश्न पूछो। तुम किस बारेमें कहना चाहते हो? मैं सहायता देनेके लिये हाथ फैला रही हूं। तुम्हें उसे पकड़ना-भर है। तुम किस बारेमें बात कर रहे हो? तुम बुद्धि किसे कहते हो? क्या तुम भाव और विचारमें भेद जानते हो?

अच्छी तरह नहीं।

ओह! यह पहली बाधा है। यहांपर कोई बता सकता है? (एक बच्चे-से) क्या तुम भाव और विचारका फर्क जानते हो?

विचार कुछ अस्पष्ट-सी चीज होती है, भावसे ज्यादा अस्पष्ट।

नहीं, यह अस्पष्ट मनमें अस्पष्ट विचारका, या जब मन स्पष्ट हो तो स्पष्ट विचारका प्रश्न नहीं है। यह इस तरह नहीं है।

आपने अभी कहा कि भाव ऊपरसे आते हैं और विचारोंमें अनूदित होते हैं।

लेकिन वे ऊपरसे कैसे आते हैं?

मनके उच्चतर भागोंसे।

हां, परंतु क्या तुम मुझे एक भाव और उसे प्रकट करनेवाले विचारका उदाहरण दे सकते हो? यही तो मैं पूछ रही हूं। क्या कोई एक उदाहरण दे सकता है? (एक शिष्यकी ओर देखते हुए) वह बोलनेके लिये उत्सुक हो रहा है। हां, कुछ कहो, देखें।

धरतीपर भगवान्‌की अभिव्यक्ति एक भाव है और रूपांतर एक विचार है।

ओह! तुम अद्वैतवादी हो? अगर मैं भूल नहीं कर रही तो अद्वैतवादका यही सिद्धांत है।

भगवान्‌के विचारने यह विश्व बनाया है। लेकिन अब हम विचारकी जगह भाव कहते हैं।

क्या किसीके पास कहनेके लिये कोई मजेदार चीज है?

(एक अध्यापक) **न्यायशास्त्रमें कहा जाता है कि "नश्वरता" एक भाव है और "मनुष्य नश्वर है" एक विचार है।**

अब, तुम भाव और विचारका फर्क समझ गये? यह स्पष्ट है। भाव सब तरहके विचारोंमें अनूदित किया जाता है। वे अत्यधिक विरोधी विचार हो सकते हैं, उन्हें एक सुसंगत रूपमें व्यवस्थित करना ही सारी बात है। मेरा ख्याल है कि मैंने तुमसे कई बार कहा है कि अगर तुम काफी ऊंचे उठ जाओ, भावकी ओर चढ़ो तो विरोधी विचारोंमें भी एकता मिल सकती है ...। शायद हम इसका एक छोटा-सा खेल खेल सकते हैं। वह बहुत मजेदार होगा। हमारे पास एक स्थापना है। हम उसकी प्रतिस्थापना खोज सकते हैं। और फिर उसके बाद उसका समन्वय ढूंढेंगे।

स्थापना कौन प्रस्तावित करेगा? ... ओह! लो, मैं तुरंत प्रस्तावित करती हूं: "मनुष्य मर्त्य है।" प्रतिस्थापना होगी: "मनुष्य अमर है।" अब वह जगह खोज निकालो जहां दोनों मिलें: समन्वय।

अज्ञान मनुष्यको अमरताके साथ मिलनेसे रोकता है।

यह बात कहनेका बड़ा अस्पष्ट ढंग है। इसे ज्यादा बौद्धिक ढंगसे कहा जा सकता है। तुम कह सकते हो: अपनी वास्तविकतामें मनुष्य अमर

है; और अपने अज्ञान या निश्चेतनाके कारण मर्त्य बन गया है। यह ज्यादा अच्छा है? और तुम जरा और आगे जा सकते हो: वह अमर क्यों है? वह मर्त्य क्यों है? और मर्त्य होते हुए वह अमर कैसे हो सकता है?

सत्ताका कोई भी भाग क्यों न हो, चाहे वह बुद्धि हो या कोई और भाग, वह मन हो या प्राण हो या कुछ और, सच्ची क्रिया दोहरी क्रिया होती है : पहली, उसे भागवत सत्यकी अभिव्यक्तिमें रोक न लगानी चाहिये; दूसरी, उसे भागवत अभिव्यक्तिमें सहायक होना चाहिये। पहला नकारात्मक पक्ष है, व्यवधान न होना, किसी चीजमें रोक न लगाना, अपने-आपको अभिव्यक्त करनेवाली भागवत शक्तिके मार्गमें बाधा न देना; दूसरी ओर, इतना स्पष्ट और शुद्ध होना कि अभिव्यक्तिमें सहायक हो सके।

तुम इस बातको हर जगह लगा सकते हो। यह बहुत सुविधाजनक है। यह लो। अब, कोई और प्रश्न?

अगर आदमी न मरें तो बुढ़ापेके साथ उनके शरीर बेकार हो जायंगे?

ओह! नहीं। तुम गलत दिशासे देख रहे हो। वे मृत्युसे तभी बच सकेंगे जब उनके शरीर जीर्ण न हों। शरीरके जीर्ण होनेके कारण ही तो वे मरते हैं। क्योंकि उनका शरीर बेकार हो जाता है इसलिये वे मरते हैं। अगर उन्हें मरना नहीं है तो उनके शरीरको भी बेकार नहीं होना चाहिये। यह तो ठीक उल्टी बात है। मृत्यु इसी कारण जरूरी होती है कि शरीर जीर्ण हो जाता है, क्षीण होता और पूरी तरह अधोगतिको प्राप्त होता है। लेकिन अगर शरीर आंतरिक सत्ताकी प्रगतिशील क्रिया-का अनुसरण करे, अगर उसके अंदर भी प्रगति और पूर्णताकी वही भावना हो जो चैत्य पुरुषमें होती है तो फिर उसके मरनेकी कोई जरूरत न रहेगी। एकके बाद एक बढ़ता हुआ वर्ष, जरूरी नहीं है कि अधोगति ही लाये। यह तो प्रकृतिकी एक आदत है। यह तो इस क्षण जो हो रहा है उसकी आदत है। और ठीक यही मृत्युका कारण है। इसके विपरीत, हम यह भली-भांति देख सकते हैं कि पूर्णताकी क्रिया जो जीवन-के शुरूमें होती है वह किसी और रूपमें जारी रह सकती है। मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूं कि हम किसी अबाध वृद्धिका पूर्वज्ञान नहीं पाते, क्योंकि तब तो हमें कुछ समय बाद घरोंकी ऊंचाई बदलनी होगी! परंतु

लंबाईमें वृद्धि, पूर्णतामें वृद्धिका रूप ले सकती है : रूपकी पूर्णता। रूपकी सभी अपूर्णताएं धीरे-धीरे ठीक की जा सकती हैं, सभी कमजोरियोंकी जगह बल ले सकता है, सभी अक्षमताओंके स्थानपर कौशल आ सकता है। और ऐसा क्यों न हो ? तुम इस तरह नहीं सोचते क्योंकि तुम्हें चीजोंको और तरह देखनेकी आदत हो गयी है। लेकिन इसका कोई कारण नहीं कि ऐसा क्यों न हो।

क्या तुमने कभी किसी पेड़को, ताड़के पेड़को बढ़ते हुए देखा है? आश्रमके प्रांगणमें, समाधिके प्रांगणमें, उस दरवाजेके बिलकुल पास जिससे तुम रोज ऊपर जाते हो, एक ताड़ है। क्या तुमने कभी नहीं देखा कि वह कैसे बढ़ रहा है? यह पेड़ लगभग चालीस-पैंतालीस या पचास वर्षका है। तुमने देखा है कि वह कितना छोटा है। ये पेड़ इमारतसे भी बहुत ऊंचे हो सकते हैं। ये अपनी स्वाभाविक अवस्थामें, यदि कोई दुर्घटना न हो जाय तो, आसानीसे कई सौ वर्ष जी सकते हैं। तुमने कभी देखा नहीं कि वह क्या करता है? मैं उसे ऊपरसे देखती हूं। यह बड़ी सुन्दर चीज होती है, वर्षमें एक बार। पहले तुम एक तरहकी छोटी भूरी गेंद देखते हो। फिर यह छोटी भूरी गेंद बढ़नी शुरू होती है। जरा हल्के रंगकी हो जाती है, जरा कम गहरे रंगकी। थोड़ा-थोड़ा करके तुम देखते हो कि यह एक जटिल लकीरोंकी राशिसे बनी है जिनके छोर अंदरकी ओर मुड़े हुए हैं मानों अपने ही अंदर मुड़े हुए हों। फिर यह बढ़ने लगती है, वह बाहर निकल आती है, अधिकाधिक स्वच्छ, स्पष्ट होती जाती है, यहांतक कि उसका हरा रंग होने लगता है, जरा हल्का पीला हरा और फिर वह बिशपके क्रूसका रूप ले लेती है। तब तुम उसे बहुशाख होते और अलग होते देखते हो, अभीतक वह जरा भूरी होती है, जरा विचित्र-सी (लगभग तुम्हारे जैसी), कुछ-कुछ इल्ली या सुंडीकी तरह। और फिर अचानक वह मानों उछल पड़ती है, कूदती है। वह हल्के हरे रंगकी होती है, बहुत नाजुक। उसका रंग मनोहर होता है। वह लंबी होने लगती है। यह अवस्था दो-तीन दिन रहती है और अगले दिन पत्ते निकल आते हैं। मैंने कभी ये पत्ते नहीं गिने, मुझे नहीं मालूम वे कितने होते हैं। हर बार पत्तोंकी एक नयी श्रेणी दिखायी देती है। वे बहुत फीके रहते हैं, बहुत ही सुन्दर। वे छोटे बालक जैसे होते हैं। कुछ-कुछ नाजुक, सुन्दर, लालित्यपूर्ण, बच्चेकी तरह। तुम्हें अब भी लगता है कि वह सुकुमार, भंगुर है और सचमुच यदि उसपर चोट पड़े तो वह जीवन-भरके लिये खराब हो जायगी। वह बहुत नाजुक, मनोहर रूपमें कोमल होती है। उसका अपना आकर्षण

होता है। तुम कहते हो: "लेकिन प्रकृति ऐसी ही क्यों नहीं बनी रहती ?" और अगले सबेरे... प्लफ! वे अलग हो जाते हैं। उनका रंग चमकदार हरा होता है, यौवनके सारे बल, सारी शक्तिके साथ वे अद्‌भुत दीखते हैं, शानदार चमकदार हरा रंग। इसे यहीं रुक जाना चाहिये। हर्गिज नहीं। वह बढ़ते जाते हैं। फिर आती है धूल, आने-जानेवालोंसे विकृति, अब उसका झड़ना शुरू होता है, रंग पीला-सा, और तरहका पीला हो जाता है, सूखेपनका पीला, यहांतक कि वह पूरी तरह मुरझाकर झड़ जाती है, उसकी जगह तना आ जाता है। हर वर्ष तना थोड़ा बढ़ जाता है और अंततक पहुंचनेमें उसे सैकड़ों वर्ष लग जायंगे। लेकिन हर वर्ष, वही चीज दोहरायी जाती है, सौंदर्य, मनोहरता, आकर्षणकी अवस्थाएं आती हैं और तुम कहते हो: "लेकिन यह यहीं क्यों नहीं रुक जाती ?" और अगले क्षण कुछ और ही चीज होती है। तुम यह नहीं कह सकते कि यह ज्यादा अच्छी है, पर यह भिन्न है, और इस तरह वह एक अवस्थासे दूसरी अवस्थातक, फूलनेकी सभी अवस्थाओंमेंसे गुजरती है और तब शुरू होती है दुर्घटनाएं, दुर्घटनाओंके साथ ह्रास और ह्रासके साथ लगी रहती है मृत्यु।

चीज ऐसी ही है। परंतु दुर्घटनाएं अनिवार्य नहीं हैं और जो चीज मृत्यु-सी दीखती है वह भी पेड़की वृद्धिमें सहायक होती है। कुछ चीज झड़ जाती है लेकिन फिरसे बढ़नेके लिये। कुछ अधिक पानेके लिये होता है। व्यक्तिको अंततक सामंजस्य और सौंदर्य बनाये रख सकना चाहिये। ऐसे शरीरके रहनेका कोई कारण नहीं है जिसके बने रहनेका कोई उद्देश्य नहीं रह गया, वह तो किसी कामका न होगा। वह किसी कामका नहीं रहता इसीलिये गायब हो जाता है। ऐसा शरीर होना संभव है जो पूर्णतासे पूर्णताकी ओर चले। शरीरमें ऐसी बहुत-सी चीजें होती हैं जिन्हें देखकर तुम कह उठते हो: "काश, यह ऐसी होती! ओह! मैं उसे इस रूपमें चाहूंगा!" (मैं यहां तुम्हारे चरित्रकी बात नहीं कर रही, उसमें इतनी सारी चीजें हैं जिन्हें बदलनेकी जरूरत है; मैं सिर्फ तुम्हारे भौतिक रूपकी बात कर रही हूं)। तुम कहीं कुछ असामंजस्य देखते हो और कहते हो: "अगर यह असामंजस्य गायब हो जाय तो कितना अधिक अच्छा हो...।" लेकिन तुम यह क्यों नहीं सोचते कि यह किया जा सकता है? अगर तुम अपने-आपको एकदम तटस्थ रूपमें देखो — उस एक प्रकारके आकर्षणके साथ नहीं जो तुम्हें अपने छोटे-से व्यक्तित्वके लिये है — बिलकुल तटस्थ होकर। तुम अपने-आपको उसी तरह देखो जैसे किसी और आदमीको देखते, और अपने-आपसे कहो: "लेकिन इस

चीजका उसके साथ जरा भी सामंजस्य नहीं है," और तुम जरा और नजदीकसे देखो तो यह और भी रोचक हो जाता है। तुम्हें पता चलता है यह असामंजस्य तुम्हारे चरित्रकी किसी कमीके कारण है। यह इसलिये है क्योंकि तुम्हारे चरित्रमें कोई चीज ऐंठी हुई है, जो बिलकुल सामंजस्यपूर्ण नहीं है और यही चीज तुम्हारे शरीरमें कहींपर प्रकट होती है। तुम उसे अपने शरीरमें ठीक करनेकी कोशिश करते हो तो तुम्हें पता चलता है कि इस भौतिक असामंजस्यके मूल स्रोततक जानेके लिये तुम्हें अपनी आंतरिक सत्ताके दोषको जानना होगा। तब उसपर काम करना शुरू करो और परिणाम आ जायेगा।

तुम्हें पता नहीं है कि शरीर किस हदतक नमनीय है! दूसरी ओर, मैं कहूंगी कि वह अत्यधिक कठोर है और इसीलिये शरीरका ह्रास होता है। लेकिन उसका कारण यह है कि हम उसका उचित उपयोग करना नहीं जानते। हम जब ताजा, नयी कोंपलें होते हैं तभी शानदार, भव्य, निर्दोष पुष्पनके लिये संकल्प करना नहीं जानते। अपने-आपसे जरा दयनीय चेहरा बनाकर यह कहनेकी जगह: "कैसे दुःखकी बात है कि मेरी भुजाएं बहुत पतली और मेरे पैर बहुत लंबे हैं या मेरी पीठ सीधी नहीं है या मेरा सिर सामंजस्यपूर्ण नहीं है," अगर तुम यह कहो: "यह और तरहसे होना चाहिये। मेरी भुजाएं सामंजस्यपूर्ण होनी चाहिये, मेरा शरीर सामंजस्यपूर्ण होना चाहिये। मेरे अंदर हर एक रूपको कोई उच्चतर सौंदर्य प्रकट करना चाहिये," तब तुम्हें सफलता मिलेगी। और तुम्हें सफलता मिलेगी यदि तुम जानते हो कि सच्चे संकल्पसे इसे कैसे किया जाय, ऐसे संकल्पसे, जो सतत और शांत रहता है, जो धीरज नहीं खोता, पराजयके आभासकी परवाह नहीं करता, शांतिसे, बहुत शांतिसे यह संकल्प किये जाता है कि यह ऐसा होना चाहिये, आंतरिक कारणको खोजे, उसे पाले, और ऊर्जाके साथ काममें लगा रहे। जैसे ही तुम कहीं एक काला कीड़ा देखो, जो सुन्दर नहीं लगता, जो एक छोटा-सा, अप्रिय-सा, घृणित धब्बा लगा देता है, तुम उसे उठा लो, खींच लो और बाहर फेंक दो और उसकी जगह एक मनोहर प्रकाश डालो। और कुछ समय बाद तुम देखोगे: "आह! मेरे चेहरे-पर जो असामंजस्य था वह गायब हो रहा है। मेरे चेहरेके भावोंमें जो पाशविकता, निश्चेतना थी वह जा रही है।" और दस वर्षके बाद तुम अपने-आपको पहचान भी नहीं पाते।

तुम सब; यहां, तरुण पदार्थ हो; तुम्हें इससे लाभ उठाना जानना चाहिये — और वह भी तुच्छ, स्वार्थपूर्ण, मूर्खता-भरे कारणोंसे नहीं, बल्कि सौंदर्यके प्रेमके लिये, सामंजस्यकी आवश्यकताके लिये।

अगर शरीरको चिरस्थायी बनाना है तो उसका ह्रास नहीं होना चाहिये। उसे क्षीण नहीं होना चाहिये। उसे एक दिशामें विजय पानी चाहिये : वह है रूपांतर, उसे क्षीण नहीं होना चाहिये। क्षयके साथ अमरताकी संभावना नहीं रहती।

मृत्युके बाद आदमी कहां जाता है?

ओह, मेरे बच्चे तुम्हें एक पुस्तककी जरूरत है! यह एक प्रश्न नहीं है! चलो, यह अगली बारके लिये। इसके अतिरिक्त, मेरा ख्याल है, एक अध्याय है जो इसकी बातें बताता है — यदि मुझे ठीक याद है। हमें उसके बारेमें बोलनेका अवसर मिलेगा। . . . मैं अभी तुरत एक बात बताए देती हूं : जब तुम धरतीपर पैदा हुए हो, तो क्या तुम जानते हो कि तुम कहां जा रहे हो? और धरतीके सभी वासी, क्या वे सब एक ही स्थानपर जाते हैं? मुझे बतलाओ!

हर एक अपना रास्ता लेता है। हर एककी नियति अलग है। तो जो मर गये हैं उन सबकी नियति ही एक समान क्यों हो? क्योंकि हर एकके लिये अलग चीज है।

शुभ रात्रि।

२४ जून, १९५३

"प्राणलोककी सत्ताएं स्वभावसे ही शक्तिशाली होती हैं; जब उनकी शक्तिके साथ ज्ञान मिल जाता है तो वे दो गुनी भयंकर हो उठती हैं। इन प्राणियोंके साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता। जबतक तुम्हारे अंदर उन्हें कुचलने और नष्ट करनेकी शक्ति न हो तबतक उनसे किसी प्रकारका भी व्यवहार रखनेसे बचो। अगर तुम उनके साथ संपर्कमें आनेके लिये बाधित किये जाओ तो, वे जो जादू फेर सकती हैं उससे सावधान रहो। ये प्राणिक सत्ताएं जब भौतिक स्तरपर प्रकट होती हैं तो उनमें बड़ी सम्मोहक शक्ति होती है, क्योंकि उनकी चेतनाका केंद्र जड़ जगत्में नहीं, प्राणमय लोकमें होता है। वे

मनुष्योंकी तरह भौतिक चेतनाके द्वारा छिपाए नहीं जाते, बौने नहीं बनाये जाते।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१२ मई)

माताजी, आप कहती हैं: ये सत्ताएं बहुत शक्तिशाली होती हैं; उनमें किस तरहकी शक्ति होती है?

वह शक्ति जो प्राण भौतिक जगत्पर रखता है। और वास्तवमें तुम प्राणिक शक्तिके बिना कुछ भी नहीं कर सकते। अगर प्राण-शक्ति न होती तो भौतिक तत्त्व जड़ और निश्चेतन होता। संक्षेपमें, लोग जिसे शक्ति कहते हैं वह प्राण-शक्ति ही होती है।

क्या प्राण-शक्तिके स्थानपर कोई और उच्चतर शक्ति नहीं रखी जा सकती?

नहीं। प्राणका रूपांतर करना पड़ेगा। मैंने हमेशा कहा है कि प्राणके बिना कुछ नहीं किया जा सकता, लेकिन प्राणको बदलना पड़ेगा; यानी, वह उन सत्ताओंका यंत्र बने रहनेकी जगह, भागवत इच्छाका यंत्र बन जाय। भौतिक जगत्में तुम प्राणके बिना कुछ नहीं कर सकते। संन्यासी ठीक यहीं भूल करते हैं; वे जानते हैं कि यह शक्ति इच्छाओंसे भरी है और वास्तवमें अपने-आपको चरितार्थ करनेकी आवश्यकतासे भरी है, इसलिये वे इसका उन्मूलन कर देते हैं, वह इतनी सुप्त पड़ जाती है, कि उसका अस्तित्व नहीं रहता। प्राणको उखाड़ फेंकने या सुप्त कर देनेके लिये ही संन्यासियोंने बहुत-से तरीके खोज निकाले हैं। भौतिक जीवनसे संबंध काट लेनेका यह सबसे सुगम उपाय है: इससे मनुष्य वनस्पतिके जैसी सत्तासे भी बुरा बन जाता है।

लेकिन जिस चीजकी जरूरत है वह यह है कि प्राण, अपनी इच्छापूर्ति करनेकी जगह, भगवान्-विरोधी शक्तियोंका यंत्र बननेकी जगह, भगवान्का यंत्र बने और अपना सारा बल भगवान्की सेवामें लगा दे। यह बिलकुल संभव है।

जब हमें डर लगता है तो क्या यह इन सत्ताओंकी शरारतकी वजहसे होता है?

हां, बेटे बच्चे। इन सत्ताओंने संसारको जो उपहार दिये हैं भय उनमें

सबसे सुन्दर है। यह उनका पहला, सबसे अधिक सशक्त उपहार है। भयके द्वारा ही वे मानवजातिको अधिकारमें किये हुए हैं। सबसे पहले वे भयकी गति पैदा करते हैं, भयकी गति तुम्हें कमजोर कर देती है और फिर थोड़ा-थोड़ा करके तुम्हें उनके हाथोंमें सौंप देती है। और यह कोई सकारण भय नहीं होता; यह एक प्रकारका भय है जो तुम्हें पकड़ लेता है, तुम्हें पता नहीं लगता कि क्यों, यह ऐसी चीज है जो तुम्हें कंपा देती है, तुम्हें चिंतित करती है। तुम्हें पता नहीं लगता कि क्यों, इसका कोई कारण नहीं दिखायी देता। यह उनकी क्रिया है।

जब डर लगे तो व्यक्तिको क्या करना चाहिये?

यह इसपर निर्भर है कि तुम कौन हो? डर दूर करनेके कई तरीके हैं।

अगर तुम्हारा अपने चैत्य पुरुषसे कुछ संबंध है, तो तुरंत उसे बुला लो और चैत्य प्रकाशमें चीजोंको वापिस, व्यवस्थामें रख दो। यह सबसे सशक्त उपाय है।

जब यह चैत्य संपर्क न हो, फिर भी सत्ता समझदार हो, यानी, उसका विवेकशील मन स्वतंत्र रूपसे गति करता हो तो व्यक्ति उसका उपयोग तर्कके लिये कर सकता है, अपने-आपसे इस तरह बातचीत कर सकता है जैसे किसी बच्चेसे कर रहा हो, उसे यह समझाये कि डर अपने-आपमें बुरी चीज है और अगर संकट है भी तो भयके साथ संकटका सामना करना सबसे बड़ी मूर्खता है। अगर सचमुच संकट है तो केवल साहसकी शक्तिके द्वारा ही उसमेंसे बाहर निकलनेका अवसर मिल सकता है; अगर तुम्हारे अंदर जरा भी भय है, तो बस तुम खतम समझो। तो इस प्रकारके तर्कसे डरनेवाले भागको समझाओ कि वह डरना बंद कर दे।

अगर तुम्हारे अंदर श्रद्धा है और तुम भगवान्‌के प्रति निवेदित हो तो एक बहुत सरल-सा उपाय है। वह यह है, यूं कहो: "तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मुझे कोई चीज नहीं डरा सकती क्योंकि तुम ही मेरे जीवनको रास्ता दिखा रहे हो। मैं तुम्हारा हूं और तुम ही मेरे जीवनका मार्ग-दर्शन कर रहे हो।" यह बात तुरंत क्रिया करती है। सभी उपायोंमें यह उपाय सबसे बढ़कर प्रभावशाली है: वास्तवमें है। यानी, व्यक्तिको सचमुच भगवान्‌के प्रति निवेदित होना चाहिये। यह हो तो तुरंत क्रिया होती है। सारा भय सपनेकी तरह तुरंत गायब हो जाता है और सपनेके साथ-ही-साथ बुरा प्रभाव डालनेवाली सत्ता भी सपनेकी तरह

गायब हो जाती है। तुम्हें उसे पूरी तेजीके साथ दौड़ते हुए देखना चाहिये, पट, पट, पट! तो यह रहा उपाय।

अब, ऐसे लोग होते हैं जिनमें जबर्दस्त प्राण-शक्ति होती है। वे ऐसे योद्धा होते हैं जो एकदम सिर उठाकर कहते हैं: "ओह! एक शत्रु है। चलो, उसे कुचल देंगे।" लेकिन उसके लिये तुम्हारे अंदर ज्ञान और बहुत अधिक प्राणिक शक्ति होनी चाहिये। तुम्हें प्राणकी दृष्टिसे विशाल होना चाहिये। यह सबके लिये संभव नहीं है।

इस तरह बहुत-से अलग-अलग रास्ते हैं। सभी अच्छे हैं, अगर तुम जानते हो कि कौन-सा तुम्हारी प्रकृतिके अनुकूल है और तुम उसका उपयोग करना जानो।

जब जिम्नास्टिक्स करते समय मैं कूदना चाहता हूं और मुझे डर लगता है, तो यह क्यों होता है?

ओह! मेरे बच्चो, यह निर्भर करता है ...। तुम्हें दो अलग-अलग चीजोंमें फर्क करना चाहिये और उनसे अलग-अलग तरीकेसे निबटना चाहिये।

अगर यह प्राणिक भय है तो तुम्हें अपने साथ तर्क करना चाहिये और उसी तरीकेसे चलना चाहिये, लेकिन अगर यह भौतिक सहज-बोध है (यह संभव है; बहुधा एक प्रकारका भौतिक सहज-बोध होता है), तब तुम्हें उसकी बात सुननी चाहिये। शरीरका सहज-बोध बहुत सुनिश्चित चीज है, यदि उसे विचारों या प्राणिक इच्छाओंके द्वारा व्याकुल न किया जाय। अगर शरीरको उसीपर छोड़ दिया जाय तो वह बहुत अच्छी तरह जानता है कि वह क्या कर सकता है और क्या नहीं। और इतना ही नहीं, एक ऐसी चीज जिसे तुम आसानीसे कर सकते हो और सामान्यतः करते हो, अगर एक दिन उसके लिये एक प्रकारकी अरुचि हो, मानों तुम उससे पीछे खिंच रहे हो तो निश्चित रूपसे तुम्हें वह चीज न करनी चाहिये। यह इस बातका संकेत है कि किसी-न-किसी कारणसे — एक शुद्ध रूपसे भौतिक कारणसे, शरीर-क्रियाकी गड़बड़के कारण — तुम उस समय उसे करने योग्य नहीं हो। तब तुम्हें वह चीज नहीं करनी चाहिये। इस दशामें यह भय नहीं है, यह कोई ऐसी चीज है जो झिझकती है, पीछे हटती है। उस समय दिमागमें ऐसा कुछ नहीं है जो इस विचारसे मेल खाता हो: "क्या होनेवाला है?" जब सिर काम करने लगता है और तुम कहते हो: "क्या होनेवाला है?", तो तुम्हें उसे एकदम झाड़कर फेंक देना चाहिये क्योंकि इसका मूल्य कुछ भी नहीं है; तुम्हें इसे भगा देने-

के लिये बुद्धि और सद्भावनाके सभी उपाय काममें लाने चाहिये। लेकिन अगर यह शुद्ध रूपसे भौतिक संवेद है, मानों कोई चीज सिकुड़ रही हो, एक प्रकारकी भौतिक जुगुप्सा, अगर स्वयं शरीर इंकार कर रहा हो तो तुम्हें कभी जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये — कभी नहीं, क्योंकि प्रायः जब तुम जबरदस्ती करते हो तभी दुर्घटना होती है। यह एक प्रकारकी पूर्व-सूचना हो सकती है कि दुर्घटना होनेवाली है, कि अगर तुम इसे करोगे तो बहुत आगे न बढ़ पाओगे। और ऐसी दशामें तुम्हें न करना चाहिये। तुम्हें इसमें जरा भी आत्म-सम्मानकी भावना न लानी चाहिये। तुम्हें यह अनुभव करना चाहिये: "आज मैं अच्छी स्थितिमें नहीं हूं।"

लेकिन अगर प्राणिक भय है, उदाहरणके लिये, कोई प्रतियोगिता या टूर्नामेंट है और तुम्हें इस प्रकारका डर लगे और फिर: "क्या होनेवाला है?", तो उसे तुरंत झाड़कर फेंक दो, उसका अर्थ कुछ भी नहीं है।

कभी-कभी आलस्य हमें कुछ करनेसे रोकता है।

ओह! अगर तुम तामसिक हो तो बात और ही है। अगर तुम्हारी प्रकृति तामसिक है तो तुम्हें एक और ही पद्धति अपनानी होगी। तुम्हें चेतनापर जोर देना होगा, अपनी इच्छा-शक्ति लगानी होगी, अपना बल लगाना होगा, अपनी ऊर्जाको इकट्ठा करके, अपने-आपको जरा हिलाकर अपने-आपको चाबुक लगाओ और कहो: "चलो, चलो, आगे बढ़ो।" अगर आलस्य तुम्हें, मान लो, वॉल्टिंग करनेसे रोकता है तो तुरंत उससे भी ज्यादा थकानेवाली कसरत शुरू कर दो और कहो: "अच्छा, तुम वह नहीं करना चाहते? ठीक है, तब तुम पंद्रह सौ मीटर दौड़ोगे!" या: "आज मैं भार नहीं उठाऊंगा, मन नहीं कर रहा: अच्छा, मैं लगातार बार हजार बार रस्सीपर कूदूंगा।"

पढ़ाईके लिये भी यही तरीका बरतना चाहिये?

हां, ठीक यही। अगर पाठ सीखनेकी इच्छा नहीं हो रही तो तुम एक ऐसी किताब ले लो जो दसगुनी अधिक थकानेवाली है, एकदम नीरस, और अपने-आपको उसे ध्यान देकर पढ़नेके लिये बाधित करो। इस तरहकी पुस्तकें होती हैं, इतनी शुष्क, इतने नीरस ज्ञानवाली... अगर तुम्हारी इतिहास या भूगोलकी पुस्तक पढ़नेकी इच्छा नहीं हो रही, जो साधारणतः काफी सरल और बहुत रोचक होती हैं, उनकी जगह उन पुस्तकोंमेंसे एक ले लो जो

तुम्हें दी जाती है (माताजी एक अध्यापककी ओर देखती हैं) — मैं यहां कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं कर रही क्योंकि तुम्हारे अध्यापक यहां हैं! — एकदम नीरस, और अपने-आपको कम-से-कम आधी पुस्तक खतम करनेके लिये बाधित करो। तब सब कुछ रोचक लगेगा।

क्या आलस्य अनुभव करनेके बावजूद काम जारी रखना ज्यादा अच्छा न होगा?

यह कामपर निर्भर है। यहां हम एक और ही क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं।

अगर ऐसा काम है जो तुम सबके लिये कर रहे हो, अपने लिये निजी रूपमें नहीं, तो तुम्हें जारी रखना चाहिये, चाहे कुछ क्यों न हो जाय। यह प्रारंभिक अनुशासन है। तुमने यह काम ले लिया है या तुम्हें यह सौंपा गया है और तुमने स्वीकार लिया है, उस अवस्थामें तुम्हें करना चाहिये। सब समय, जबतक कि तुम बहुत ही बीमार न हो, बीमारीकी अंतिम सीमातक, जब तुम हिल-डुल न सको, उसे करना चाहिये। तुम भले बीमार-से क्यों न हो, तुम्हें काम करना चाहिये। निस्स्वार्थ काम हमेशा तुम्हें तुच्छ व्यक्तिगत रोगोंसे छुटकारा देता है। स्वभावतः, यदि तुम सच-मुच बिस्तरपर गिरनेके लिये बाधित हो गये हो; हिल-डुल नहीं सकते, ज्वरका बुखार चढ़ा है या कोई गंभीर रोग है, तो बात अलग है। अन्यथा अगर तुम्हारी तबीयत थोड़ी-सी खराब हो गयी है: "मेरी तबीयत ठीक नहीं लगती, मेरे सिरमें जरा-सा दर्द है, मुझे अजीर्ण है, मुझे जुकाम हो गया है, मैं खांस रहा हूं," और ऐसी ही दूसरी चीजें — तो अपना काम करना, अपने बारेमें सोचते न रहना, कामके बारेमें सोचना, उसे भरसक अच्छे-से-अच्छी तरह करना, इससे तुम तुरंत अच्छे हो जाते हो।

वास्तवमें बीमारी केवल एक असंतुलन है; इसलिये अगर तुम एक और संतुलन स्थापित कर लो तो यह असंतुलन गायब हो जाता है। रोग सिर्फ हमेशा, हर दशामें, सत्ताका असंतुलन है — तब भी जब डाक्टर कहते हैं कि कीटाणु हैं — विभिन्न क्रियाओंमें असंतुलन, शक्तियोंमें असंतुलन।

इसका यह मतलब नहीं है कि कीटाणु नहीं हैं: कीटाणु हैं, और आज-कल जितने ज्ञात हैं उनसे बहुत ज्यादा हैं। लेकिन तुम उनके कारण बीमार नहीं होते, क्योंकि वे तो हमेशा रहते हैं। वे हमेशा बने रहते हैं और दिन-पर-दिन बीतते जाते हैं और वे तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ते और फिर अचानक, एक दिन, उनमेंसे एक तुम्हें पकड़ लेता है और तुम बीमार हो जाते हो — क्यों? सिर्फ इसलिये कि हमेशाकी तरह सामान्य प्रतिरोध नहीं

था, क्योंकि किसी भागमें असंतुलन था और क्रिया सामान्य नहीं थी। लेकिन अगर किसी आंतरिक शक्तिसे, तुम संतुलन फिरसे स्थापित कर सको तो बीमारीका अंत हो जायगा; कोई कठिनाई न रहेगी, असंतुलन गायब हो जायगा।

लोगोंको रोग-मुक्त करनेका कोई और तरीका नहीं है। आदमी तभी रोग-मुक्त होता है जब वह असंतुलनको देख सके और फिरसे संतुलन स्थापित कर सके। हां, तुम्हें दो एकदम अलग श्रेणियोंसे काम पड़ता है...। कुछ लोग अपने असंतुलनको पकड़े रहते हैं — वे उसे पकड़े रहते हैं, उसके साथ चिपके रहते हैं, उसे छोड़ना नहीं चाहते, तब तुम चाहे जितना कड़ा प्रयास कर लो, चाहे तुम संतुलन ला दो, फिर भी वे अगले ही क्षण असंतुलित हो जायंगे क्योंकि उन्हें उससे प्रेम है। वे कहते हैं: "नहीं, नहीं! मैं बीमार नहीं होना चाहता," लेकिन उनके अंदर कोई चीज किसी असंतुलनको मजबूतीसे पकड़े रहती है, जो उसे नहीं छोड़ना चाहती। दूसरी ओर ऐसे लोग होते हैं जो निष्कपट-भावसे संतुलनसे प्यार करते हैं और जैसे ही तुम उन्हें संतुलनतक लौट आनेकी क्षमता दो कि संतुलन फिरसे स्थापित हो जाता है और कुछ ही क्षणोंमें वे रोग-मुक्त हो जाते हैं। उनके अंदर फिरसे व्यवस्था लानेके लिये काफी ज्ञान नहीं था, काफी शक्ति नहीं थी — असंतुलन एक अव्यवस्था ही तो है। लेकिन अगर तुम हस्तक्षेप करो, अगर तुम्हारे अंदर ज्ञान है और तुम संतुलनको पुनः स्थापित कर दो तो स्वभावतः बीमारी गायब हो जायगी; और जो लोग तुम्हें यह करने देंगे वे रोग-मुक्त हो जायेंगे। केवल वही जो यह नहीं करने देते, वे रोग-मुक्त नहीं होते, और यह तो स्पष्ट है। वे तुम्हें क्रिया नहीं करने देते, वे बीमारीसे चिपके रहते हैं। मैं उनसे कहती हूं: "ओह! रोग-मुक्त नहीं हुए? तब डाक्टरके पास जाओ।" और सबसे अजीब बात यह है कि उन्हें डाक्टरोंपर विश्वास होता है, हालांकि क्रिया वही रहती है! हर डाक्टर जो थोड़ा-बहुत दार्शनिक भी हो, तुमसे कहेगा "बात ऐसी ही है। हम चिकित्सक केवल एक अवसर देते हैं, लेकिन सचमुच तो स्वयं शरीर अपनेआपको अच्छा कर लेता है। जब शरीर रोग-मुक्त होना चाहता है तो रोगमुक्त हो जाता है।" हां तो, ऐसे शरीर हैं जो संतुलनको तबतक स्थापित नहीं होने देते जबतक उन्हें कोई दवाई या कोई और बहुत निश्चित चीज अपने अंदर लेनेके लिये बाधित नहीं किया जाता जिससे उन्हें यह लगे कि उसकी परिचर्या भली-भांति की जा रही है। लेकिन अगर तुम उनकी एक बहुत ठीक, यथार्थ चिकित्सा करो — जिसका अनुसरण करना कभी-कभी बहुत कठिन होता है, तो उन्हें विश्वास होने लगता है कि फिरसे

संतुलन पा लेनेसे ज्यादा अच्छा कुछ नहीं है और उन्हें संतुलन वापिस मिल जाता है।

मैं एक डाक्टरसे परिचित थी जो स्नायुओंका विशेषज्ञ था और पेटकी बीमारियोंका इलाज करता था। वह कहा करता था कि पेटकी सभी बीमारियां हमेशा कम या अधिक बुरी स्नायविक अवस्थासे आती हैं। वह अमीरोंका डाक्टर था और अमीर और बिना काम-धामके लोग ही उसके पास जाया करते थे। वे उसके पास आकर कहते: "मेरे पेटमें दर्द है, मैं हजम नहीं कर पाता" आदि, आदि। उनके भयंकर दर्द होता था, उनके सिरमें दर्द होता था। उनमें, हां, सब तरहकी चीजें होती थीं! वह उनकी बातें बहुत गंभीरतासे सुनता था। मेरी एक परिचित महिला उसके पास गयी। डाक्टरने कहा: "हां, तुम्हारी हालत बहुत गंभीर है। लेकिन तुम मकानकी कौन-सी मंजिलपर रहती हो? पहली मंजिलपर? अच्छा ठीक है। अगर तुम पेटकी व्यथासे मुक्त होना चाहो तो तुम्हें यह करना होगा। पूरी तरह पके हुए अंगूरोंका एक गुच्छा ले लो (नाश्ता मत करना, नाश्तेसे तुम्हारा पेट बिगड़ जाता है), अंगूरोंका एक गुच्छा लो; उसे अपने हाथमें पकड़ो, इस तरह, बहुत सावधानीसे। तब बाहर जानेकी तैयारी करो — दरवाजेसे होकर नहीं, दरवाजेसे होकर कभी मत जाओ! तुम्हें खिड़कीमेंसे होकर जाना चाहिये। एक स्टूल उठा लो और खिड़कीमेंसे होकर बाहर निकलो। सड़कपर चली जाओ और हर दो कदमपर एक अंगूर खाती जाओ — ज्यादा नहीं, हां, ज्यादा नहीं! तुम्हारे पेटमें दर्द होगा! हर दो कदमपर बस एक अंगूर। तुम्हें दो कदम चलना चाहिये और फिर एक अंगूर खा लेना चाहिये, और बस इसी तरह करती जाओ जबतक कि अंगूर समाप्त न हो जायं। वापस न मुड़ो, जबतक अंगूर खतम न हो जायं आगे बढ़ती ही जाओ। तुम्हें एक बड़ा गुच्छा लेना चाहिये। और जब अंगूर खतम हो जाएं तो तुम चुपचाप लौट सकती हो। लेकिन कोई गाड़ी न लो! पैदल ही वापिस आओ, वरना सारी तकलीफ फिरसे लौट आयगी। चुपके-से लौट आओ और मैं जिम्मा लेता हूं कि अगर तुम हर रोज इस तरह करती रहोगी तो एकदम ठीक हो जाओगी।" और सचमुच महिला अच्छी हो गयी!

(एक बालक) **कभी-कभी बहुत काम होता है और समझमें नहीं आता कि क्या करें?**

बहुत काम... सचमुच बहुत काम?

बहुत प्रकारके काम, उदाहरणके लिये, पढ़ाईमें, हमें बहुत-से विषय पढ़ने पढ़ते हैं।

तुम सारे दिन क्या करते हो, सुबहसे शामतक? तुम नित्यकर्म — स्नान, कपड़े पहनने आदिमें कितना समय लगाते हो? लगभग, ठीक मिनटके हिसाबसे नहीं।

लगभग पौन घंटा।

और खानेमें कितना समय लगाते हो?

पंद्रह मिनट।

हर बार? दिनमें कितनी बार? चार? अच्छा। गप्पोंमें कितना समय लगाते हो? ... यह तुम्हें नहीं मालूम!

मैं गप्पें नहीं लगाता।

तुम गप्पें नहीं लगाते! तुम अद्‌भुत हो, सचमुच। मैं तुम्हें पीठिकापर स्थापित कर दूंगी। तुम गप्पें नहीं लगाते?

हां, मैं गप्पें तो लगाता हूं पर जब मेरे पास काम हो तब गप्पें नहीं लगाता।

हां, तो तुम्हें अपना काम पूरा करनेके लिये दिनमें कितने घंटे चाहिये।

कभी-कभी मैं सवेरे साढ़े-चार बजे उठ बैठता हूं।

अपना गृहकार्य करने के लिये? उस समय तुम आधी नींदमें होते हो, होते हो न? — साढ़े चार बजे? क्या तुम पूरी तरह जागे हुए होते हो? नहीं, तो फिर, तुम तुरंत काम करना शुरू कर देते हो?

हां, कभी-कभी।

मैं तुम्हें सीधा उसी ओर लिये जा रही हूं . . . । जब तुम काम करो, उस समय यदि तुम एकाग्र हो सको तो तुम ठीक दस मिनटमें उतना काम कर सकोगे जितनेमें अन्यथा एक घंटा लग जाता । अगर तुम समय लाभ करना चाहो तो एकाग्र होना सीखो । ध्यान देकर काम करनेसे ही आदमी तेजीसे काम कर सकता है और काम ज्यादा अच्छा भी होता है । अगर तुम्हारे पास आधे घंटेका काम है — मैं यह नहीं कहती, निश्चय ही — कि यदि तुम्हें आध-घंटा लिखना हो — नहीं, यदि तुम्हें सोचना हो और तुम्हारा मन इधर-उधर उड़ता फिर रहा हो, अगर तुम जो कुछ कर रहे हो उसपर ध्यान न देकर यह भी सोचो कि तुम क्या कर चुके हो, और क्या करनेवाले हो, और इसी तरह और चीजें सोचा करो, तो इन सबके कारण, काममें जितना समय लगना चाहिये उससे तिगुना समय नष्ट होता है । जब तुम्हारे पास बहुत अधिक काम हो तो तुम्हें, जो कर रहे हो, केवल उसीपर एकाग्र होनेकी आदत डालनी चाहिये । ध्यान देकर काम करनेसे जिस काममें एक घंटा लग जाता वही काम दस मिनटमें हो सकता है ।

तो मैं नहीं जानती, मैं विषयकी पूरी जानकारीके बिना फैसला नहीं कर सकती कि तुम्हारे पास बहुत अधिक काम है या नहीं — जबतक कि तुम वह सारा काम मुझे न बतलाओ जो तुम्हें करना होता है; लेकिन मुझे नहीं लगता कि तुम कामके बोझसे दबे हुए हो । मैं कहती हूं कि मुझे नहीं लगता । मैं इस बातका दावा नहीं करती क्योंकि मुझे पता नहीं है कि सब अध्यापक क्या करते हैं । बहरहाल, अगर तुम्हें बहुत करना है तो तुम्हें ज्यादा एकाग्र होना सीखना चाहिये, और भी ज्यादा । जब तुम एक चीज कर रहे हो तो केवल उसीके बारेमें सोचो और अपनी सारी शक्ति जो कर रहे हो उसीपर केंद्रित रखो । तुम कम-से-कम आधा समय तो बचा ही लोगे । इसलिये, अगर तुम मुझसे कहते हो: "मेरे पास बहुत अधिक काम है," तो मेरा उत्तर है: "तुम काफी एकाग्र नहीं होते ।"

(एक दूसरा बालक) **किसी गणितके प्रश्नके लिये, कभी तो उसका उत्तर बहुत जल्दी मिल जाता है, कभी बहुत अधिक समय लगता है ?**

हां, ठीक यही बात है: यह एकाग्रताकी मात्रापर निर्भर है । अगर तुम अपना अवलोकन करो तो यह बात अच्छी तरह देख सकोगे । जब उत्तर

नहीं आता तो उसका कारण यह होता है कि दिमागमें एक प्रकारकी अस्पष्टता होती है, कुछ मेघाच्छन्न-सा, वहींपर कुहरे जैसा, और तब तुम वहां ऐसे होते हो मानों सपनेमें हो। तुम उसे पानेके लिये आगे बढ़ते हो परंतु ऐसा लगता है मानों रुईके फाहोंमें आगे बढ़ रहे हो, तुम्हें वहां स्पष्ट दिखायी नहीं देता इसलिये कुछ नहीं आता। तुम घंटों इसी अवस्थामें रह सकते हो।

एकाग्रता ठीक इस बादलको हटाना है। तुम अपनी बुद्धिके सभी तत्त्वोंको इकट्ठा करके एक बिंदुपर जमा देते हो और तब सक्रिय रूपसे चीजको पानेकी कोशिश भी नहीं करते। तुम सिर्फ इतना करते हो कि इस प्रकार एकाग्र हो सको कि केवल प्रश्न ही दिखायी दे — केवल सतह-पर ही न दिखायी दे, बल्कि अपनी गहराईमें दिखायी दे, जो उसमें छिपा है वह दिखायी दे। अगर तुम अपनी सभी मानसिक ऊर्जाओंको इकट्ठा कर सको, उन्हें एक निश्चित बिंदुपर लाकर समस्याके हलके लिये जमाए रख सको और वहीं बंधे रहो मानों तुम किसी दीवारमें छेद करनेवाले हो तो अचानक हल आ जायगा। और यही एक तरीका है। अगर तुम कोशिश करो, क्या यह रास्ता है, क्या वह है? . . . तो तुम्हें कुछ न मिलेगा या तुम्हें घंटों लग जायंगे। तुम्हें अपनी मानसिक शक्तियोंको एक बिंदुपर ला सकना चाहिये, इतनी शक्तिके साथ जो शब्दोंको छेदकर उनके पीछेकी चीजपर पहुंच सके। वही पाने लायक चीज है, उसपर झपट पड़ो।

और हमेशा, उन्हीं दिनों जब तुम जरा अस्पष्ट-से होते हो, यह काम ज्यादा मुश्किल हो जाता है। तुम अस्पष्ट होते हो, मानों तुम किसी चीजको पकड़ना चाहते हो और वह तुमसे बच निकलती है।

स्वभावतः, यदि भौतिक रूपसे यह असंभव हो — तुम्हें दानवोंके साथ काम नहीं पड़ता है! मेरा ख्याल है कि तुम्हारे अध्यापक काफी समझदार हैं। अगर तुम उनसे जाकर कहो : "मैं इसे न कर सका। मेरे पास समय नहीं था, मैं जो कर सकता था किया, पर मेरे पास समय नहीं था।" तो वे तुम्हें नहीं डांटेंगे। मुझे नहीं लगता। पर यहां सौमेंसे निन्नानवे बार मनकी जड़ताका एक प्रकार ही तुम्हें यह विचार देता है कि तुम्हारे पास बहुत अधिक काम है। अगर तुम अपना निरीक्षण करो तो तुम देखोगे कि हमेशा तुम्हें एक चीज इस ओर खींचती है और दूसरी चीज उस ओर खींचती है, और फिर इस तरहकी अस्पष्टता मानों तुम रुईके फाहोंमें रह रहे हो, बादलोंमें रह रहे हो, कुछ भी स्पष्ट नहीं है।

कामका उपयोग इसके सिवाय कुछ नहीं है : वह तुम्हारी मानसिक शक्तियोंको निश्चित रूप देता है। क्योंकि, तुम जो कुछ सीखते हो (अगर तुम उसे किसी कम या अधिक गहरे अध्ययनद्वारा व्यवहारमें न लाओ), तो जो कुछ तुमने सीखा है उसका कम-से-कम आधा भाग तो समयके साथ उड़ जायगा। लेकिन वह एक चीज अपने पीछे छोड़ जायगा। अपने विचारको निश्चित रूप देनेकी क्षमता, उसमेंसे कोई सुनिश्चित, यथार्थ और संगठित चीज बनानेकी क्षमता और कामका सच्चा उपयोग यही है, तुम्हारे मस्तिष्ककी क्षमताको व्यवस्थित करना। अगर तुम अपनी बादलों जैसी तरलतामें, अपनी अस्पष्ट-सी गति-विधिमें लगे रहते हो तो, चाहे बरसों परिश्रम किये चले जाओ, वह तुम्हारे लिये निरर्थक होगा। तुमने जब उसमें प्रवेश किया था, उसमेंसे निकलते समय उससे ज्यादा समझदार न होगे; लेकिन अगर तुम आधे घंटेके लिये भी ऐसी चीजोंपर ध्यान केंद्रित कर सको जो तुम्हें रुचिकर नहीं लगतीं, उदाहरणके लिये, व्याकरणके नियम (मैं जिन शुष्क विषयोंके बारेमें कह रही थी उनमें व्याकरणके नियम भी हैं, इनसे भी बहुत अधिक शुष्क विषय हैं, पर वास्तवमें व्याकरणके नियम काफी शुष्क हैं); अगर तुम उनमेंसे एकको लेकर समझना शुरू करो, रटना नहीं, और रटी हुई चीजका यांत्रिक रूपमें व्यवहार करना भी नहीं, इससे तुम्हें कोई फायदा नहीं होगा — बल्कि शब्दोंके पीछेके विचारको समझनेकी कोशिश करो : "यह नियम इस रूपमें क्यों बनाया गया ?" और उस चीजके लिये अपना ही सूत्र बनानेकी कोशिश करो; तो यह बहुत रुचिकर होगा। "जिन सज्जनने यह नियम बनाया है उन्होंने इसे इस तरह क्यों लिखा होगा ? मैं अध्ययन कर रहा हूं। समझनेकी कोशिश कर रहा हूं कि उन्होंने ऐसा क्यों किया। उन्होंने यह शब्द उसके बाद और वह शब्द उस दूसरे शब्दके बाद क्यों रखा और नियमको इस तरह क्यों व्यक्त किया ? क्योंकि उन्होंने समझा कि यही इस बातको कहनेका अधिक-से-अधिक पूर्ण और अधिक-से-अधिक स्पष्ट तरीका है।" तो तुम्हें उस चीजका पता लगाना चाहिये और जब तुम्हें पता लग जाय तो तुम अचानक कह उठते हो : "इसका यह अर्थ है। इसे यूं देखना चाहिये। तब यह बहुत स्पष्ट हो जाता है।"

मैं तुम्हें समझाती हूं : जब तुम चीजको समझ जाते हो तो वह तुम्हारे अंदर एक स्फटिक-सा बनाती है, एक चमकदार, छोटा-सा बिंदु। और जब तुम ऐसे बहुत, बहुत, बहुत बिंदु पा लेते हो तब तुम समझदार होने लगते हो। कामका यह उपयोग है, बेकार चीजोंके ढेरसे दिमागको भर लेना नहीं।

यह कैसे होता है कि वैज्ञानिक कामोंमें लगे हुए लोगोंमें कला-पूर्ण कल्पनाका अभाव होता है? क्या ये दोनों चीजें एक-दूसरेसे उलटी हैं?

जरूरी नहीं है।

सामान्यतः?

वे एक ही क्षेत्रकी नहीं हैं। यह ठीक ऐसे है मानों तुम्हारे सिरमें एक मशाल हो, अवलोकनके स्थानपर एक छोटी-सी बीकन लाइट। जो वैज्ञानिक अमुक काम करना चाहते हैं वे बीकनको एक खास दिशामें मोड़ लेते हैं। वे उसे वहीं रखते हैं और वह उसी तरह रहती है। वे उसे पदार्थ-की ओर, भौतिक पदार्थके ब्योरेकी ओर मोड़े रहते हैं, लेकिन कल्पना-शील लोग उसे ऊपरकी ओर मोड़ देते हैं, क्योंकि वहां, ऊपर, सब कुछ है, सभी कलात्मक और साहित्यिक चीजोंकी प्रेरणा: यह एक और ही क्षेत्रसे आती है। यह बहुत अधिक सूक्ष्म, भौतिककी अपेक्षा बहुत सूक्ष्म क्षेत्रसे आती है। ये लोग उसे ऊपरकी ओर मोड़ देते हैं और ऊपरसे प्रकाश पाना चाहते हैं। परंतु यंत्र वही है। दूसरे लोग उसे नीचेकी ओर मोड़ देते हैं और यह जिमनास्टिककी क्षमताका अभाव है। यंत्र वही है। प्रकाश-मान किरणकी वही शक्ति किसीपर पड़ती है, लेकिन चूंकि व्यक्तिने उसे एक विशेष दिशामें केंद्रित करनेकी आदत कर ली है, वह लचीला नहीं रहा, इसलिये किसी और तरह करनेकी आदत छूट गयी है।

लेकिन तुम किसी भी समय दोनों चीजें कर सकते हो। जब तुम विज्ञान कर रहे हो तो तुम उसे एक दिशामें घुमाते हो और जब तुम साहित्य या कला करते हो तो उसे दूसरी दिशामें घुमाते हो, लेकिन यंत्र वही है। सब कुछ निर्भर है दिशा देनेपर। अगर तुम्हारे अंदर एकाग्रता है तो तुम एकाग्रताकी इस क्षमताको एक स्थानसे दूसरे स्थानकी ओर मोड़ सकते हो और हर दिशामें वह प्रभावकारी होगी। अगर तुम विज्ञानमें लगे हो तो तुम उसका उपयोग वैज्ञानिक तरीकेसे करते हो और अगर तुम कलामें लगना चाहो तो उसे कलात्मक ढंगसे काममें ला सकते हो। लेकिन यह एक ही यंत्र है और वही एकाग्रताकी शक्ति है। लेकिन सिर्फ इसलिये कि लोग इस बातको नहीं जानते, वे अपने-आपको सीमित कर लेते हैं। तब कब्जोंमें जंग लग जाता है, वे फिर घूम नहीं सकते। अन्यथा, अगर तुम उन्हें घुमाते रहनेकी आदत बनाए रखो तो वे घूमते

रहते हैं। और फिर साधारण दृष्टिसे भी; ऐसे वैज्ञानिक बहुत विरल नहीं होते जो मन बहलावके लिये कोई कलात्मक कार्य अपनाते हैं — और इसके विपरीत भी। यह इसलिये क्योंकि उन्होंने देखा है कि एकसे दूसरेको हानि नहीं पहुंचती, और वही क्षमता दोनोंमें उपयोगी हो सकती है।

तत्त्वतः, सामान्य दृष्टि-बिंदुसे और विशेषकर बौद्धिक दृष्टि-बिंदुसे, सबसे अधिक आवश्यक चीज है मनोयोग और एकाग्रताकी क्षमता। इसीपर प्रयास करके इसे विकसित करना चाहिये। क्रियाके दृष्टि-बिंदुसे (भौतिक क्रिया) सबसे महत्त्वपूर्ण है संकल्प। तुम्हें प्रयास करके एक अटल संकल्प-शक्ति गढ़नी चाहिये। बौद्धिक दृष्टि-बिंदुसे तुम्हें एकाग्रताकी एक ऐसी शक्तिपर लगकर उसका निर्माण करना चाहिये जिसे कोई चीज हिला न सके। और अगर तुम्हारे अंदर दोनों हों, एकाग्रता और संकल्प, तो तुम प्रतिभाशाली होगे और कोई चीज तुम्हारा प्रतिरोध न करेगी।

१ जुलाई, १९५३

"मानव सत्ता अपने भौतिक शरीरमें, मानों अपने घरमें सुरक्षित होती है। कुछ लोगोंको अपने शरीरके लिये बहुत घृणा होती है और वे सोचते हैं कि मृत्युके बाद, शरीरके बिना स्थिति ज्यादा अच्छी और सरल होगी। लेकिन वास्तवमें शरीर तुम्हारा दुर्ग और तुम्हारा आश्रय है। जब तुम इसमें होते हो तो विरोधी जगत्की शक्तियोंके लिये तुम्हें सीधी पकड़में लेना कठिन होता है :..। जैसे ही तुम इस जगत् (प्राण)-के किसी क्षेत्रमें प्रवेश करते हो कि वहांकी सत्ताएं तुम्हारे चारों ओर इकट्ठी हो जाती हैं ताकि तुम्हारे पास जो कुछ है वह सब तुमसे ले सकें, जो कुछ खींच सकें खींच लें और उसे अपना भोजन और शिकार बनाएं। अगर तुम्हारे अंदरसे कोई तेज प्रकाश या शक्ति विकीरित नहीं होती तो तुम वहां शरीरके बिना इस तरह विचरते हो मानों शीत, कठोर वातावरणमें तुम्हारी रक्षाके लिये कोई कोट तक न हो, तुम्हें आसरा देनेके लिये कोई घर न हो, तुम्हारे शरीरपर त्वचातक न हो और तुम्हारी स्नायुएं खुली हुई, नंगी हों। ऐसे लोग

हैं जो कहते हैं: 'मैं इस शरीरमें कितना दुःखी हूं,' और वे मृत्युको एक छुटकारा मानते हैं! लेकिन मृत्युके बाद तुम्हारे चारों ओर वही परिस्थितियां होती हैं और उन्हीं शक्तियोंसे खतरा होता है जो इस जीवनमें तुम्हारी दुर्दशाका कारण हैं...।

"यहां धरतीपर, इसी शरीरमें तुम्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, एक संपूर्ण और समग्र शक्तिका उपयोग करना सीखना चाहिये। जब इतना कर लोगे तभी तुम दूसरे लोकोंमें पूरी सुरक्षाके साथ घूमने-फिरनेके लिये आजाद होगे।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१२ मई)

(एक बालक) मृत्युके बाद लोग प्राणमय लोकमें प्रवेश करते हैं, लेकिन जो अच्छे काम करते हैं वे स्वर्ग जाते हैं?

तुम्हारा स्वर्ग कहां है? यह तुम्हें किसने सिखाया? उन्होंने तुम्हें स्वर्ग, नरक और शोधन स्थानके बारेमें बताया है?... नहीं? इस सबके बारेमें नहीं? तुमने स्वर्गका विचार कहांसे पाया? किस पुस्तकसे?

मैंने इस विषयमें सुना है।

लेकिन किससे?

मुझे इस समय याद नहीं है।

साधारणतः, धार्मिक पंडित लोगोंको अच्छे कामोंके लिये प्रोत्साहित करनेके लिये ये बातें कहते हैं। क्योंकि यह तो जानी हुई कुख्यात बात है कि जीवन बुरोंकी अपेक्षा भलोंके लिये ज्यादा सरल नहीं होता। साधारणतः बात उलटी होती है। भलोंकी अपेक्षा बुरे ज्यादा सफल होते हैं! इसलिये जो लोग बहुत आध्यात्मिक नहीं हैं वे अपने-आपसे कहते हैं: "मैं अच्छा बननेका कष्ट क्यों करूं? बुरा होना और आरामका जीवन बिताना ज्यादा अच्छा है।" उन्हें यह समझाना मुश्किल होता है कि "भले" के बहुत प्रकार होते हैं और कभी शायद भला होना तकलीफ उठाने योग्य होता है। इसलिये कम-से-कम बुद्धि वालेको भी समझानेके लिये यह कहा जाता है: "चीज बहुत सीधी-सादी है। अगर तुम आज्ञाकारी, बहुत अच्छे, बिलकुल निस्स्वार्थ रहो, अगर हमेशा अच्छे काम करो, अगर हमारे सिखाए हुए

सिद्धांतोंको मानो, तो, जब तुम मरोगे तो भगवान् तुम्हें स्वर्ग भेजेंगे। अगर तुम्हारे अंदर कभी सद्भावना रहती है, कभी दुर्भावना, अगर तुम कभी-कभी अच्छे काम करते हो और कभी-कभी नहीं करते और अगर तुम अपने बारेमें बहुत अधिक सोचते हो और दूसरोंके बारेमें बहुत कम, तो जब तुम मरोगे तो तुम्हें एक और अनुभवके लिये शोधन स्थानपर भेजा जायगा। और फिर अगर तुम पूरी तरह दुष्ट हो, अगर तुम हमेशा दूसरोंका बुरा करते रहते हो, हर तरहकी बुरी चीजें करते हो और किसी औरके भलेके बारेमें नहीं सोचते और, विशेष रूपसे, अगर तुम हमारे सिखाए हुए धर्म-सिद्धांतपर विश्वास नहीं करते तो तुम हमेशाके लिये सीधे नरक जाओगे।"

मैंने जिन आविष्कारोंके बारेमें सुना है यह उनमें सबसे सुंदर आविष्कारों-मेंसे एक है। उन्होंने शाश्वत नरकका आविष्कार किया है। मतलब यह कि एक बार तुम नरकमें पहुंच जाओ, तो बस, हमेशा वहीं रहोगे...। तुम इस "हमेशाके लिये" का अर्थ समझते हो? तुम्हें यातनाएं दी जायंगी और जलाया जायगा (गरम देशोंमें तुम्हें जलाया जाता है और ठंडे देशोंमें तुम्हें जमाया जाता है), और वह हमेशाके लिये। चीज ऐसी है। तो मुझे नहीं मालूम, तुम्हें यह सुंदर बातें किसने सिखायीं। लेकिन ये सिर्फ आविष्कार हैं लोगोंको आज्ञाकारी बनानेके लिये, उन्हें अधिकारमें रखनेके लिये।

ऐसी शिक्षाएं हैं जो इस प्रकारकी नहीं हैं। ऐसे धर्म हैं जो इस तरह-के नहीं हैं। फिर भी व्यक्ति एक काव्यमय, चित्रमय, वर्णनात्मक भाषा-में स्वर्गके बारेमें कह सकता है; क्योंकि इस स्वर्गका अर्थ होगा एक अद्भुत स्थान जहां अधिक-से-अधिक हर्ष, सुख और आराम हैं...। फिर भी यह इस बातपर निर्भर है कि तुम किस धर्मके हो। क्योंकि ऐसे स्वर्ग हैं जहां तुम भगवान्की स्तुति गाते हुए सारा समय बिताते हो, और कुछ नहीं करते — लेकिन अंतमें यह कुछ-कुछ उबाऊ होता होगा! फिर भी तुम वहां सारे समय भगवान्की प्रशंसामें गाते-बजाते समय बिताते हो। इसके विपरीत, ऐसे स्वर्ग हैं जहां तुम हमेशा आनंद-मग्न ध्यानमें रहते हो — लेकिन जिन लोगोंको ध्यानमें विशेष रस नहीं है उनके लिये यह थकानेवाला होगा। तुम जानते हो, यह सब निर्भर है, उन लोगोंने तरह-तरहके आविष्कार किये हैं ताकि लोग सचमुच बुद्धिमान् होना चाहें और दिये गये नियमोंका पालन करें।

और मनुष्यकी कल्पना इतनी सृजनशील है, ऐसे रूप देनेवाली है कि सचमुच संसारमें इन स्वर्गोंके जैसे स्थान हैं। ऐसे स्थान भी हैं जो इन नरकोंके जैसे हैं, ऐसे स्थान भी हैं जो इन शोधन स्थानों जैसे हैं। मनुष्य

शून्यमेंसे ऐसी चीजें उत्पन्न कर लेता है जिनकी वह कल्पना करता है। अगर तुम्हारी चेतना ज्योतिर्मय हो उठे तो तुम इन स्थानोंमेंसे खींचकर निकाले जा सकते हो, अन्यथा तुम इन्हींमें बंद रहते हो, तुम अपनी जीवित अवस्थाके विश्वासोंके बंदी होते हो। तुम कहोगे कि तब तो यह एक जीवनके बराबर ही है, परंतु यह जीवन बिलकुल भ्रांतिमय और बहुत सीमित होता है। यह उन्हींके लिये सच्चा है जो ऐसा सोचते हैं। तुमने जरा इधर-उधर सोचा नहीं कि तुम्हारे लिये इसका अस्तित्व ही नहीं रह जाता, तुम उसमेंसे बाहर निकल सकते हो। तुम व्यक्तिको इन स्थानोंमेंसे बाहर निकाल सकते हो और वह तुरंत यह देख लेगा कि वह अपनी ही रचनाका बंदी था।

मनुष्यमें एक असाधारण सृजनशक्ति होती है। उसने अपने ही प्रतिरूप ऐसे देवोंकी श्रेणी बना रखी है जिनमें वही दोष होते हैं जो उसमें हैं। जो कुछ वह करता है, यह देवता उसीको बड़े पैमानेपर करते हैं। इन सत्ताओंका सापेक्ष जीवन होता है, फिर भी यह एक स्वतंत्र जीवन तो होता ही है, ठीक तुम्हारे विचारोंकी तरह। जब तुम्हें एक विचार आता है, एक भली-भांति निर्मित मानसिक रचना जो तुमसे बाहर निकल जाती है, तो वह एक स्वतंत्र सत्ता बन जाती है और अपने रास्ते चलती रहती है और वही करती है जिसके लिये उसे बनाया गया था। वह तुमसे एकदम स्वतंत्र होकर काम किये जाती है। इसलिये तुम्हें हमेशा सतर्क रहना चाहिये। अगर तुमने इस प्रकारका रूप बनाया है और वह तुमसे बाहर चला गया है, वह अपना काम करने चला गया है; और कुछ समय बाद तुम्हें लगे शायद इस तरह सोचना बहुत उचित नहीं था और यह रूप बहुत लाभदायक नहीं है: लेकिन अब जब कि यह बाहर जा चुका है, तुम्हारे लिये उसको फिरसे पकड़ पाना बहुत कठिन है। तुम्हारे अंदर काफी अधिक गूढ़ ज्ञान होना चाहिये। वह बाहर चला गया है और अपने रास्तेपर बढ़ रहा है...। मान लो, बहुत गुस्सेकी हालतमें (मैं यह नहीं कहती कि तुम ऐसा करते हो, फिर भी), जब तुम किसीसे बहुत सख्त नाराज थे, तुमने कह दिया: "आह, क्या इसपर कोई विपदा नहीं आ सकती?" तुम्हारी रचना चली गयी, वह बाहर निकल गयी और अब तुम्हें उसपर कोई अधिकार नहीं और वह जाकर किसी-न-किसी दुर्भाग्य या मुसीबतकी व्यवस्था कर देती है। वह अपना काम करती रहेगी। सौभाग्यवश, साधारणतः तुम्हें इतना ज्ञान नहीं होता कि तुम अपने-आपसे कह सको: "ओह! इसके लिये तो मैं ही जिम्मेवार हूं" — पर यह है सत्य।

ध्यान दो, अगर कोई ठीक तरहसे उपयोग करना जाने तो रूप देनेकी इस शक्तिके बहुत लाभ हैं। तुम अच्छे रूप बना सकते हो और अगर तुम उन्हें ठीक तरहसे बनाओ तो वे भी उसी तरह काम करेंगे जैसे दूसरे काम करते हैं। तुम अपने कमरेमें बैठे-बिठाये लोगोंका बहुत भला कर सकते हो, शायद बाहरी तौरपर बहुत सारी तकलीफ उठाकर जितना किया जाता उससे भी अधिक। अगर तुम ठीक तरहसे सोचना जानो, शक्ति, बुद्धिमत्ता और सहृदयताके साथ, अगर तुम किसीसे प्रेम करते हो और बहुत निष्कपट भावसे, गहराईसे, अपने पूरे हृदयके साथ उसका भला चाहो तो इससे उसका बहुत भला हो सकता है, तुम जितना समझते हो उससे बहुत ज्यादा निश्चित रूपसे। मैंने यह बात बहुत बार कही है। उदाहरणके लिये, जो लोग यहां हैं, जिन्हें पता लगता है कि उनके परिवारमें कोई बहुत बीमार है, तो उनके अंदर यह बचकाना आवेग पैदा होता है कि दौड़कर वहां जा पहुंचें और रोगीकी देखभाल करें। मैं तुमसे कहती हूं, जबतक कि कोई अपवादरूप स्थिति न हो जहां रोगीकी देखभाल करनेके लिये कोई भी न हो (और कभी-कभी ऐसी स्थितिमें भी), अगर तुम ठीक मनोवृत्ति रखना जानो और प्रेम और सद्भावनाके साथ रोगी-पर एकाग्र हो सको, अगर तुम उसके लिये प्रार्थना करना और सहायक रचनाएं बनाना जानो तो तुम उस स्थितिकी अपेक्षा बहुत ज्यादा भला कर सकोगे जब तुम वहां जाकर उसकी सेवा-सुश्रूषा करो, उसे खिलाओ-पिलाओ, नहाने-धोनेमें सहायता करो और ऐसे सब काम करो जो हर एक कर सकता है। बीमारकी परिचर्या कोई भी कर सकता है, लेकिन हर एक अच्छी रचनाएं नहीं बना सकता और ऐसी शक्तियां नहीं भेज सकता जो उसे अच्छा करनेके लिये काम करें।

बहरहाल, अपने स्वर्गकी ओर चलें। यह एक बचकानी विकृति है — अज्ञान-भरी या राजनीतिक — किसी ऐसी चीजकी जो एक अर्थमें ठीक है लेकिन बिल्कुल ऐसी नहीं है . . .। मैंने तुमसे कई बार कहा है, और चाहे जितनी बार कहूं कम है, कि आदमी किसी एक टुकड़ेसे नहीं बना है। हमारे अंदर सत्ताकी बहुत-सी स्थितियां हैं और सत्ताकी हर स्थिति-का अपना निजी जीवन है। इन सबको एक शरीरमें रख दिया गया है, जबतक तुम्हारा शरीर रहता है ये उस एक शरीरके द्वारा काम करती हैं; इससे तुम्हें लगता है कि यह एक ही व्यक्ति है, एक ही सत्ता है। लेकिन बहुत-सी सत्ताएं हैं, विशेषकर भिन्न-भिन्न स्तरोंपर केंद्र हैं। जैसे तुम्हारी एक भौतिक सत्ता है, उसी तरह तुम्हारी एक प्राणिक सत्ता है, तुम्हारी एक मानसिक सत्ता है, तुम्हारी एक चैत्य सत्ता है, इसी प्रकार और

बहुत-सी हैं और सब प्रकारकी मध्यस्थ सत्ताएं हैं। लेकिन यह जरा पेचीदा है और शायद तुम न समझ सको। मान लो कि तुम इच्छा और आवेग-प्रवेगका जीवन जी रहे हो, तो तुम्हारे जीवनमें प्राणिक सत्ता प्रधान है। लेकिन अगर तुम आध्यात्मिक प्रयासके साथ, बड़ी सद्भावनाके साथ, चीजों-को अच्छी तरह, निष्काम भावसे करनेकी इच्छासे जीते हो, तुम्हारे अंदर प्रगतिका संकल्प है तो तुम्हारे अंदर चैत्य सत्ता प्रधान है। तब जब तुम शरीर छोड़नेको होते हो तो ये सब चीजें अलग होना शुरू करती हैं। अगर तुम काफी आगे बढ़े हुए योगी हो और अपनी सत्ताको भागवत केंद्रके चारों ओर एकत्र कर सके हो, तभी वह सत्ताएं आपसमें बंधी रह सकती हैं। अगर तुमने यह नहीं जाना कि अपने-आपको एक कैसे किया जाय तो मृत्युके समय सब बिखर जायगा, हर एक अपने-अपने क्षेत्रमें वापिस चला जायगा। उदाहरणके लिये, प्राण पुरुषको लो। तुम्हारी सभी भिन्न-भिन्न इच्छाएं अलग हो जायंगी और प्रत्येक अपने-आपको चरितार्थ करने-के लिये, बिलकुल स्वतंत्र रूपसे दौड़ पड़ेगी क्योंकि तब भौतिक सत्ता न होगी जो उन्हें एक साथ रख सके। लेकिन अगर तुमने अपनी चेतना-को चैत्य चेतनाकेसाथ एक कर लिया है तो जब तुम मरते हो तो तुम अपने चैत्यके बारेमें सचेतन रहते हो और तुम्हारी चैत्य सत्ता चैत्य लोक-में लौट जाती है जो आनंद और उल्लासका, शांति और प्रशांतिका, बढ़ते हुए ज्ञानका लोक है। इसलिये अगर तुम उसे स्वर्ग कहना चाहो तो ठीक है; क्योंकि वास्तवमें, जिस हदतक तुम अपने चैत्य पुरुषके साथ तदात्म हो उसी हदतक तुम उसके बारेमें सचेतन रहते हो, उसके साथ एक हो, और वह अमर है और पूर्णतः सुखी जीवन या विश्रामके लिये अपने अमर क्षेत्रमें जाता है। अगर तुम उसे स्वर्ग कहना चाहो तो वह स्वर्ग है। अगर तुम अच्छे हो, अगर तुम अपने चैत्य पुरुषके बारेमें सचेतन हो और उसकी चेतनामें निवास करते हो, तो, जब तुम्हारा शरीर मरता है तो तुम अपने चैत्य पुरुषके साथ एक आनंदमयी अवस्था-में, चैत्य चेतनामें विश्राम करनेके लिये जाओगे।

लेकिन अगर तुमने अपने प्राणमें उसके सारे आवेगोंके साथ निवास किया है तो हर आवेग अपने-आपको यहां या वहां चरितार्थ करनेकी कोशिश करेगा — उदाहरणके लिये, जब कोई कंजूस, जो अपने धनपर केंद्रित होता है, मरता है तो उसका जो भाग धनमें रस लेता था, वहीं फंसा रहेगा और उसपर निगरानी करता रहेगा ताकि कोई उसे ले न पाये। लोग उसे नहीं देखते, फिर भी वह मौजूद रहता है और अगर उसके मूल्यवान धनको कुछ हो जाय तो बहुत दुःखी होता है। मैं एक

स्त्रीके साथ अच्छी तरह परिचित थी जिसके पास काफी पैसा और बच्चे थे। उसके पांच बच्चे थे जिनमेंसे हर एक दूसरेसे ज्यादा खर्चीला था। उसने धन जुटानेमें जितना कष्ट उठाया था, उतनी ही लापरवाहीसे वे उसे इधर-उधर फेंकनेमें लगे थे। इसलिये, जब उस बेचारी स्त्रीका देहांत हुआ तो वह मेरे पास आयी और मुझसे बोली: "हाय! अब ये लोग मेरे धनको उड़ा देंगे।" और वह बहुत दुःखी थी। मैंने उसे कुछ दिलासा दिया, लेकिन धनको उड़ाये जानेसे बचानेके लिये उसकी निगरानी करते रहनेसे उसे रोकनेमें मुझे बहुत कठिनाई हुई।

अगर तुम पूरी तरह अपनी भौतिक चेतनामें ही रहते हो (यह कठिन है, क्योंकि आखिर तुम्हारे अंदर भावनाएं और विचार तो हैं ही), लेकिन अगर तुम शुद्ध रूपसे भौतिक चेतनामें रहते हो तो जब भौतिक शरीर गायब हो उसके साथ ही तुम भी गायब हो जाते हो; यह समाप्त हो जाता है...। एक रूप या आकारकी आत्मा होती है: तुम्हारे आकारकी एक आत्मा होती है जो तुम्हारी मौतके बाद सात दिन रहती है। डाक्टरोंने घोषणा कर दी कि तुम मर गये, लेकिन तुम्हारे आकारकी आत्मा जिंदा रहती है, केवल जिंदा ही नहीं रहती, अधिकतर उदाहरणोंमें सचेतन रहती है। लेकिन वह सात-आठ दिन रहती है और फिर विलीन हो जाती है। मैं योगियोंकी बात नहीं कह रही, साधारण लोगोंकी बात कर रही हूं। योगियोंके लिये कोई नियम नहीं होते। उनकी बात ही अलग है, उनके लिये जगत् ही निराला होता है। मैं तुमसे साधारण लोगोंकी बात कह रही हूं जो साधारण जीवन बिताते हैं। इनके लिये ऐसा ही होता है।

इसलिये निष्कर्ष यह है कि यदि तुम अपनी चेतनाको सुरक्षित रखना चाहो तो ज्यादा अच्छा यह होगा कि उसे अपनी सत्ताके किसी ऐसे भागपर केंद्रित करो जो अमर हो; वरना वह ऐसे गायब हो जायगी जैसे हवामें ज्वाला। और यह बड़े भाग्यकी बात है, अगर बात कुछ और होती तो शायद ऐसे देवता या उच्च कोटिके मनुष्य होते जो ऐसे ही स्वर्ग-नरक बना लेते जैसोंकी उन्होंने भौतिक कल्पनामें रचना की है। वे तुम्हें वहां बंदी बना देते; तुम स्वर्गमें या नरकमें बंदी बनाये जाते, यह इसपर निर्भर होता कि तुमने उन्हें खुश किया है या नाराज। यह बड़ी संकटपूर्ण स्थिति होती सौभाग्यवश ऐसी है नहीं।

कहा जाता है कि मृत्युका देवता होता है। क्या यह सच है?

, मैं उसे "मृत्युकी आत्मा" कहती हूं। मैं उसे भली-भांति जानती हूं, ।र वह एक असाधारण संगठन है। तुम्हें मालूम नहीं कि यह किस दतक संगठित है।

मुझे लगता है कि ये मृत्युकी आत्माएं बहुत सारी हैं, मुझे लगता है कि सैकड़ों हैं। मैं कम-से-कम दो से तो मिली हूं। एकसे मैं फ्रांसमें मिली थी, दूसरीसे जापानमें और दोनों बहुत भिन्न थीं; इससे लगता है कि संभवतः मानसिक शिक्षण, शिक्षा, देश और विश्वासोंके अनुरूप ये आत्माएं अलग-अलग हैं। लेकिन प्रकृतिकी सभी अभिव्यक्तियोंकी आत्माएं हैं, आगकी आत्माएं, हवाकी आत्माएं, पानीकी आत्माएं, वर्षाकी आत्माएं, आंधीकी आत्माएं और मृत्युकी आत्माएं।

हर एक मृत्युकी आत्माका, चाहे वह कुछ क्यों न हो, हर रोज अमुक संख्याकी मौतोंपर अधिकार होता है। वास्तवमें यह बड़ा विचित्र संगठन है। यह एक प्रकारसे प्राणिक शक्तियों और प्रकृतिकी शक्तियोंमें एक प्रकारका सहयोग है। उदाहरणके लिये, यदि मृत्युकी आत्माने निश्चय किया है: "मुझे इतनी संख्यापर अधिकार है," मान लो, चार, पांच, छः या फिर एक-दो व्यक्तियोंपर, यह दिनपर निर्भर है; उसने निश्चय कर लिया है कि अमुक व्यक्तियोंको मरना चाहिये, वह सीधी जाकर उस आदमीके पास जम जाती है जो बस मरनेवाला है। लेकिन अगर तुम सचेतन हो (वह व्यक्ति नहीं), अगर तुम इस आत्माको जाते हुए देखो, और तुम नहीं चाहते कि वह मरे, तो यदि तुम्हारे अंदर अमुक गुह्य शक्ति है, तो तुम उससे कह सकते हो: "नहीं, मैं मना करता हूं।" यह ऐसी बात है जो हो चुकी है, एक बार नहीं, अनेक बार; जापानमें भी और यहां भी। लेकिन आत्मा एक ही नहीं थी। इसीलिये मैं कहती हूं कि वे बहुत-सी होंगी।

— मैं नहीं चाहती कि यह मरे।

— लेकिन मेरा एक मृत्युपर अधिकार है!

— जाओ और किसी ऐसे व्यक्तिको खोज लो जो मरनेके लिये तैयार है।

ऐसा मैंने कई उदाहरणोंमें देखा है: कभी-कभी एकके स्थानपर दूसरा पड़ोसी अचानक मर जाता है, कभी कोई परिचित व्यक्ति और कभी कोई शत्रु। स्वभावतः एक संबंध होता है, अच्छा या बुरा, पड़ोसका या कोई और संबंध जो बाहरसे देखनेमें संयोग मालूम होता है। लेकिन वह आत्मा अपने मुरदेको लेती है। उस आत्माका एक मृत्युपर अधिकार है और वह एक मृत्यु लेगी। तुम उससे कह सकते हो: "मैं इसे लेनेसे मना करता हूं," और तुम्हारे अंदर उसे लौटा देनेकी शक्ति

है तो वह आत्मा कुछ नहीं कर सकती, चली जाती है। लेकिन वह अपना देह नहीं छोड़ती और कहीं और चली जाती है। कहीं और एक मौत हो जाती है।

आगके साथ भी यही बात है। मैंने आगकी आत्मा देखी है, विशेषकर जापानमें, क्योंकि उस देशमें आग एक असाधारण चीज है। जब आग शुरू होती है तो लगभग अस्सी मकान, एक पूरा मोहल्ला जल जाता है। यह एक विलक्षण चीज होती है। वहांके मकान लकड़ीके बने होते हैं और दियासलाईकी डिबियोंकी तरह जलते हैं। तुम आग सुलगते देखते हो और अचानक पफ़...! तुमने कभी दियासलाईकी डिबियोंको जलते नहीं देखा? एक कौंध! उसी तरह, एक कौंध! एक, दो, तीन, दस, बीस मकान मेरी आंखोंके सामने जल गये!...तो, आगकी आत्मा होती है। एक दिन मैं बिस्तरमें थी, एकाग्र होकर लोगोंको देख रही थी। अचानक मैंने लपटोंके बादलको मकानके नजदीक आते देखा। मैंने ध्यानसे देखा, वह एक सचेतन सत्ता थी।

—ओ, तुम यहां किसलिये हो?

—मुझे मकान जला देनेका अधिकार है, आग शुरू करने

—यह संभव है, मैंने कहा, पर यहां नहीं।

और वह विरोध न कर सकी।

प्रश्न इसका है कि कौन ज्यादा बलवान् सिद्ध होता है। मैंने कहा: "नहीं, यहां नहीं जला सकती तुम, बस!" पांच मिनट बाद मैंने आवाजें सुनीं। दो-तीन मकानोंके बाद एक मकानमें आग लग गयी थी। चूंकि मैंने उसे अपना मकान जलानेसे रोक दिया था इसलिये वह उधर चली गयी थी। उसे एक मकानपर अधिकार था। यह ऐसे होता है।

कभी-कभी मरते समय लोगोंको पता होता है कि वे मरनेवाले हैं, तो उस समय वे मृत्युकी आत्माको चले जानेके लिये क्यों नहीं कह देते?

ओह! यह लोगोंपर निर्भर है। दो चीजें जरूरी हैं। सबसे पहले, तुम्हारी सत्तामें कोई चीज, तुम्हारी सत्ताका कोई भाग मरना न चाहता हो, यह बहुधा नहीं होता। तुम्हारे अंदर हमेशा कहीं-न-कहीं, एक पराजयवादी बैठा होता है, कोई ऐसी चीज जो थक गयी है, कोई ऐसी चीज जिसमें घृणा या जुगुप्साके कारण विरक्ति आ गयी है, कोई चीज जो कहती है: "बस, बहुत हो लिया," कोई चीज जो आलसी

है; कोई चीज जो संघर्ष नहीं करना चाहती और कहती है: "अच्छा, चलो, खतम करो, यह बहुत ज्यादा अच्छा होगा।" इतना काफी है और तुम मर जाते हो।

लेकिन यह तथ्य है, अगर तुम्हारे अंदर कोई चीज, कोई भी चीज मरना न चाहे, तो तुम नहीं मरोगे। मरनेवालेके लिये हमेशा एक सेकेंड, शायद सेकेंडका भी सौवां हिस्सा ऐसा होता है जब वह मौतके लिये अपनी स्वीकृति देता है। अगर निमिषमात्रकी यह स्वीकृति न हो तो वह नहीं मरता।

मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जिन्हें सचमुच सभी भौतिक और प्राणिक नियमोंके अनुसार मर जाना चाहिये था, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया, उन्होंने कहा: "नहीं, मैं न मरूंगा," और वे जीते रहे। दूसरे ऐसे होते हैं जिन्हें मरनेकी कोई जरूरत नहीं, परंतु वे उस प्रकारके हैं और कहते हैं: "हां, ठीक है, ज्यादा अच्छा है, किस्सा खतम," और वह खतम हो जाता है। उतना ही, उससे कुछ भी ज्यादा नहीं। तुम्हारे अंदर सतत इच्छाकी जरूरत नहीं, तुम्हें बस इतना ही कहना होगा: "बस, काफी हो गया!" और खतम हो जायगा। तो सचमुच ऐसा ही है। जैसा तुम कहते हो, मृत्यु तुम्हारे बिस्तरके पास खड़ी हो और तुम कह दो: "मैं तुम्हें नहीं चाहता, चली जाओ," और वह जानेके लिये बाधित होगी। लेकिन साधारणतः, आदमी हार मान लेता है। क्योंकि आदमीको संघर्ष करना चाहिये, क्योंकि आदमीको मजबूत होना चाहिये, क्योंकि आदमीको बहुत साहसी और सहनशील होना चाहिये, उसे जीवनकी आवश्यकतापर बहुत विश्वास होना चाहिये; उदाहरणके लिये, उस आदमीकी तरह जो बहुत जोरसे यह अनुभव करता है कि अभी उसे कोई काम करना है और यह कि उसे वह अवश्य करना ही है। लेकिन निश्चित रूपसे कौन कह सकता है कि उसमें पराजयवादीका लेश भी नहीं है, कहीं भी ऐसा कुछ नहीं है जो कहता है: "ठीक है"? ... यहीं है अपनी सारी सत्ताको एक करनेकी आवश्यकता।

हम चाहे जिस मार्गका अनुसरण करें, किसी भी विषयका अध्ययन करें, हम उसी परिणामपर आते हैं। व्यक्तिके लिये सबसे महत्त्वपूर्ण बात है अपने भागवत केंद्रके चारों ओर अपने-आपको एक करना; इस तरह वह सच्चा व्यक्ति बन जाता है और अपनी नियतिका और अपने-आपका स्वामी होता है, अन्यथा वह शक्तियोंका खिलौना रहता है जो उसे नदीमें पड़े कॉर्कके टुकड़ेकी तरह इधर-उधर उछालती हैं। वह जहां नहीं जाना चाहता वहां जाता है, वह जो नहीं करना चाहता वही उससे करवाया जाता है और अंतमें वह अपने-आपको एक छिद्रमें खो देता है जहांसे बचनेके लिये उसमें शक्ति नहीं होती। लेकिन अगर तुम सचेतन रूपसे संगठित हो, भागवत

केंद्रके चारों ओर एकीकृत हो, वही तुमपर शासन और तुम्हारा निर्देशन करता है तो तुम अपनी नियतिके स्वामी हो। यह प्रयास कष्ट उठाने योग्य है। ...बहरहाल, मुझे दास होनेकी अपेक्षा स्वामी होना ज्यादा पसंद है। यह एक बड़ा ही अप्रिय वेदन है कि तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हें रस्सियोंसे खींचा जा रहा है, तुम्हें कुछ करनेके लिये बाधित किया जा रहा है, यह बात असंगत है कि तुम करना चाहते हो या नहीं चाहते, लेकिन कोई चीज तुम्हें रस्सियोंसे खींच रही है, कोई ऐसी चीज जिसे तुम देख भी नहीं पाते, और तुम्हें कुछ करनेके लिये बाधित करती है। यही बहुत क्षुब्ध करनेवाली चीज है। फिर भी, मुझे मालूम नहीं, जब मैं बहुत छोटी बच्ची थी तब भी मुझे यह चीज बहुत क्षुब्ध करनेवाली लगती थी। पांच वर्षकी अवस्थामें ही यह मुझे असह्य प्रतीत होने लगी और मैंने ऐसी तरकीब सोची जिससे वह और तरहकी हो सके, लोगोंको मुझे डांट-फटकार करनेका मौका मिले बिना ही और तरहकी हो सके। क्योंकि मैं ऐसे किसी व्यक्तिको न जानती थी जो मेरी सहायता कर सकता। मुझे वह अवसर प्राप्त न था जो तुम्हें प्राप्त है, कोई ऐसा व्यक्ति जो कह सके: "तुम्हें यह करना चाहिये!" ऐसा कोई न था जो मुझे यह बता सकता। मुझे अपने-आप ही पता लगाना था और मैंने पता लगा लिया, मैंने पांच वर्षकी अवस्थामें शुरू किया था। और तुम, तुम तो बहुत पहले पांच वर्षके थे...।

तो बस।

८ जुलाई, १९५३

"मन क्रिया और आकार देनेका यंत्र है, ज्ञानका यंत्र नहीं; वह हर क्षण आकार बनाता रहता है। विचार आकार हैं और उनका जीवन होता है, रचयितासे स्वतंत्र; उन्हें वह जगत्‌में भेज देता है और वे अपने जीवनके उद्देश्यको चरितार्थ करनेकी दिशामें चलते रहते हैं। जब तुम किसीके बारेमें सोचते हो, तो तुम्हारा विचार एक आकार लेकर उसकी खोजमें चल पड़ता है; और अगर तुम्हारे विचारका किसी इच्छा-शक्तिके साथ संबंध है जो उसके पीछे है, तो विचार-रूप जो तुमसे

बाहर निकला है अपने-आपको चरितार्थ करनेकी कोशिश करता है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)

क्या विचारोंकी तरह प्रार्थनाएं और अभीप्साएं भी रूप ग्रहण करती हैं?

हां, कभी-कभी वे उस व्यक्तिका रूप भी धारण कर लेती हैं जो अभीप्सा या प्रार्थना कर रहा है — प्रायः ही। यह निर्भर है। कभी-कभी अभीप्साएं उसका रूप ले लेती हैं जिसके प्रति अभीप्साकी जाती है; लेकिन बहुधा, विशेष रूपसे प्रार्थनाएं, उसका रूप लेती हैं जो प्रार्थना कर रहा है।

अभीप्सा और प्रार्थनामें क्या फर्क है?

यह मैंने कहीं लिखा है। प्रार्थनाके कई प्रकार होते हैं।

एक पूरी तरह यांत्रिक प्रार्थना होती है जिसमें कुछ शब्द सीखकर यांत्रिक रूपसे दोहराये जाते हैं। इसका कोई बहुत अर्थ नहीं होता। और साधारणतः उसका एक ही परिणाम होता है और वह है प्रार्थना करनेवालेको जड़ शांत कर देना। अगर व्यक्ति बहुत बार एक प्रार्थना दोहराये तो शब्द उसे अंतमें शांत कर देते हैं।

एक प्रार्थना सहज सूत्रके रूपमें होती है जो ठीक-ठीक रूपमें वही प्रकट करता है जो व्यक्ति मांगना चाहता है। व्यक्ति इस चीज या उस चीजके लिये प्रार्थना करता है, वह किसी आदमीके लिये, किसी परिस्थितिके लिये या स्वयं अपने लिये प्रार्थना कर सकता है।

एक ऐसा बिंदु है जहां प्रार्थना और अभीप्सा मिल जाते हैं, क्योंकि ऐसी प्रार्थनाएं हैं जो जिये हुए अनुभवका सहज सूत्रीकरण हैं। ये सत्ताके अंदरसे तैयार होकर फूट निकलती हैं। उस चीजकी तरह जो गहरी अनुभूतिकी अभिव्यक्ति हो और जो उस अनुभूतिके लिये कृतज्ञता प्रकट करती हो या उसे जारी रखना चाहती हो या उसकी व्याख्या भी चाहती हो; यह बिलकुल अभीप्साके निकट है। लेकिन अभीप्साके लिये जरूरी नहीं है कि वह शब्दोंमें सूत्रबद्ध हो; और यदि वह शब्दोंमें सूत्रबद्ध हो भी तो वह आवाहनकी एक क्रिया होती है। तुम अमुक स्थितिके लिये अभीप्सा करते हो; उदाहरणके लिये, तुमने अपने अंदर कोई ऐसी चीज देखी है जो आदर्शके साथ मेल नहीं खाती, अंधकार और अज्ञानकी एक क्रिया, शायद दुर्भावनाकी भी

—कोई ऐसी चीज जो उस चीजके साथ ताल-मेलमें नहीं है जिसे तुम चरितार्थ करना चाहते हो; तो यह शब्दोंमें सूत्रबद्ध नहीं होगी। वह एक उछलती हुई लपटकी तरह होगी, एक जीवंत अनुभूतिकी आहुति जैसी होगी, जो ज्यादा बड़ी होना चाहती है, आकर्षित होना चाहती है, ज्यादा स्पष्ट और यथार्थ होना चाहती है। अगर व्यक्ति अपनी अनुभूतिको याद करके उसे लिखनेकी कोशिश करे तो यह सब बादमें शब्दोंमें लिखा जा सकता है। लेकिन अभीप्सा हमेशा ज्वालाकी तरह लपकती है, ऊपर उठती है और अपने अंदर उस चीजको लिये होती है जो व्यक्ति बनना चाहता है, या जो करना चाहता है या पाना चाहता है। मैंने यहां "चाहना" शब्दका प्रयोग किया है, लेकिन यहां सचमुच "अभीप्सा करना" होना चाहिये क्योंकि उसमें चाहने, यानी, इच्छा करनेका गुण या रूप नहीं होता।

यह सचमुच इच्छा-शक्ति या संकल्पकी एक पावन ज्वालाके समान होती है और उसके बीचोंबीच वह चीज होती है जिसे वह चरितार्थ करना चाहती है।

उदाहरणके लिये, अगर तुमने कोई ऐसी चीज की है जिसे करनेपर तुम्हें पछतावा है, अगर उसके अप्रिय परिणाम हों जो चीजोंको अस्त-व्यस्त करते हों, जिसमें बहुत-से लोग उलझे हुए हों। तुम दूसरोंकी प्रतिक्रिया नहीं जानते, लेकिन अपने-आपमें तुम चाहते हो कि जो कुछ हुआ है वह अच्छे-से-अच्छा रूप ले ले और अगर कोई भूल हुई है तो वह समझमें आ जाय, और वह चाहे कैसी भी भूल हो, वह तुम्हारे लिये अधिक प्रगतिका अवसर बन जाय, एक अधिक बड़ी साधना, भगवान्‌की ओर एक नयी चढ़ाई बन जाय, भविष्यकी ओर एक नया द्वार खुल जाय। तुम चाहते हो कि यह भविष्य अधिक स्पष्ट, अधिक सत्य और अधिक तीव्र हो, तो यह सब यहां इकट्ठा हो जाता है (हृदयकी ओर संकेत करते हुए) और तब ऊपरकी ओर उमड़ता है, आरोहणकी बड़ी गतिके रूपमें ऊपर चढ़ता है और कभी-कभी सूत्रीकरणकी छायाके भी बिना, शब्दोंके बिना, अभिव्यक्तिके बिना, ज्वालाकी तरह उछलता-लपकता हुआ चढ़ता है।

वास्तवमें, यह सच्ची अभीप्सा है। यदि व्यक्ति ऐसी अवस्थामें हो जिसमें वह सतत प्रगति करना चाहता है और भागवत संकल्प हमसे जो करवाना चाहता है, उसके साथ अधिक सत्य और अधिक पूर्ण सामंजस्यमें रहना चाहता है तो यह चीज दिनमें सैकड़ों, हजारों बार हो सकती है।

प्रार्थना बहुत अधिक बाहरी चीज है, साधारणतः एक यथार्थ तथ्यके बारेमें सूत्रबद्ध होती है क्योंकि सूत्र ही तो प्रार्थनाको रूप देता है। तुम्हारे अंदर अभीप्सा हो सकती है और तुम उसे प्रार्थनाके रूपमें लिख सकते हो,

लेकिन अभीप्सा हर तरहसे प्रार्थनाके पार जाती है। यह बहुत अधिक नजदीक है और मानों अपने-आपको बहुत ज्यादा भूलकर केवल उसी चीजके लिये जीती है जो व्यक्ति बनना या करना चाहता है। और व्यक्ति जो कुछ करना चाहता है अभीप्सा उस सारेका भगवान्‌के प्रति अर्पण है। तुम कुछ पानेके लिये प्रार्थना कर सकते हो, तुम भगवान्‌ने तुम्हें जो कुछ दिया है उसके लिये कृतज्ञता प्रकाशित करनेके लिये भी प्रार्थना कर सकते हो और यह ज्यादा बड़ी प्रार्थना है। उसे कृतज्ञता-प्रकाशनकी क्रिया कह सकते हैं। भगवान्‌ने तुमपर जो दया की है, उन्होंने तुम्हारे लिये जो कुछ किया है, तुम उनके अंदर जो देखते हो, इन सबके लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करनेके लिये, उनकी स्तुति करनेके लिये तुम प्रार्थना कर सकते हो। यह सब प्रार्थनाका रूप ले सकता है। निश्चित रूपसे यह सबसे ऊंची प्रार्थना है क्योंकि यह ऐकांतिक रूपसे अपने अंदर ही नहीं व्यस्त होती, वह अहंकारमय प्रार्थना नहीं है।

निश्चय ही आदमी सभी क्षेत्रोंमें अभीप्सा कर सकता है, लेकिन अभीप्साका सच्चा केंद्र चैत्य पुरुषमें है जब कि व्यक्ति सभी क्षेत्रोंमें प्रार्थना कर सकता है और प्रार्थना उसी क्षेत्रकी होती है जिसमें की जाती है। तुम शुद्ध रूपसे भौतिक प्रार्थना, दैहिक प्रार्थना, प्राणिक प्रार्थना, मानसिक प्रार्थना, चैत्य प्रार्थना, आध्यात्मिक प्रार्थनाएं कर सकते हो, हर एककी अपनी विशेषता होती है, हर एकका अपना विशेष मूल्य होता है।

एक तरहकी प्रार्थना सहज और निस्स्वार्थ होती है, एक बहुत बड़ी पुकारकी नाईं जो साधारणतः व्यक्तिगत रूपसे अपने लिये न होकर भगवान्‌की मध्यस्थताके लिये निवेदन रूप कही जा सकती है। यह बहुत शक्तिशाली होती है। मैंने ऐसे अनगिनत उदाहरण देखे हैं जिनमें इस प्रकारकी प्रार्थनाके कारण चीजें तुरंत चरितार्थ हुई हैं। इसमें बहुत ज्यादा श्रद्धा, बहुत उत्साह, बहुत सचाई और निष्कपटता और हृदयकी बहुत अधिक सरलता होनी चाहिये; ऐसी चीज होनी चाहिये जो लेखा-जोखा नहीं करती, योजना नहीं बनाती, मोल-भाव नहीं करती और जब देती है तो बदलेमें कुछ पानेके विचारसे नहीं। क्योंकि अधिकतर लोग एक हाथसे देते हैं और दूसरा हाथ बदलेमें कुछ पानेके लिये फैलाए रखते हैं, प्रार्थनाओंकी सबसे अधिक संख्या इसी तरह की होती है। लेकिन और तरहकी प्रार्थना भी होती है, जैसा मैंने कहा, कृतज्ञता-प्रकाशनकी, एक प्रकारके भजन, और ये प्रार्थनाएं बहुत अच्छी होती हैं।

तो यह है स्थिति। मुझे मालूम नहीं कि मैं अपनी बात स्पष्ट कर पायी हूं या नहीं पर चीज ऐसी ही है।

ज्यादा स्पष्ट करनेके लिये हम कह सकते हैं कि प्रार्थना हमेशा शब्दोंमें सूत्रबद्ध होती है; परंतु वे किस स्थितिमें सूत्रबद्ध किये गये हैं इसके अनुसार उन शब्दोंका मूल्य अलग-अलग हो सकता है। प्रार्थना सूत्रबद्ध चीज है। व्यक्ति अभीप्सा कर सकता है। किसीसे निवेदन किये बिना प्रार्थना करना कठिन है। उदाहरणके लिये, जिन लोगोंमें एक ऐसे विश्वकी धारणा है जिसमेंसे न्यूनाधिक रूपमें भगवान्‌के विचारको खदेड़ दिया गया है (इस प्रकारके बहुत-से लोग हैं: यह विचार उन्हें कष्ट देता है—यह विचार कि कोई ऐसा है जो सब कुछ जानता है, जो सब कुछ कर सकता है, जो उनसे इतना अधिक बड़ा है कि कोई तुलना ही नहीं हो सकती: यह विचार जरा कष्टदायक है उनके आत्म-सम्मानके लिये, इसलिये वे एक ऐसा जगत् बनानेकी कोशिश करते हैं जिसमें भगवान् न हों), ये लोग, स्पष्ट है, प्रार्थना नहीं कर सकते। वे किससे प्रार्थना करेंगे? एक ही उपाय है, वे अपने-आपसे प्रार्थना करें, लेकिन इसका रिवाज नहीं है! लेकिन भगवान्‌पर श्रद्धा हुए बिना भी आदमी किसी चीजके लिये अभीप्सा कर सकता है। ऐसे लोग हैं जिन्हें भगवान्‌के अस्तित्वपर विश्वास नहीं है पर वे प्रगतिपर विश्वास करते हैं। उनकी धारणा है कि जगत् हमेशा प्रगति करता रहता है और यह प्रगति बिना रुके, अनिश्चित रूपमें अधिकाधिक सुधारकी ओर हमेशा चलती चली जायगी। तो, इन लोगोंमें प्रगतिके लिये बहुत अभीप्सा हो सकती है और इसके लिये उन्हें किसी दिव्य सत्ताकी धारणाकी जरूरत नहीं होती। अभीप्सामें निश्चित रूपसे श्रद्धाकी जरूरत तो होती है पर यह जरूरी नहीं है कि वह श्रद्धा किसी भागवत सत्ताके लिये ही हो; जब कि प्रार्थना किसी भागवत सत्ताको संबोधित किये बिना हो ही नहीं सकती। और प्रार्थना किससे की जाय? तुम किसी ऐसी चीजसे प्रार्थना नहीं कर सकते जिसका व्यक्तित्व ही न हो! हम उसीसे प्रार्थना कर सकते हैं जो हमारी प्रार्थना सुने। अगर सुननेवाला कोई नहीं है तो प्रार्थना किससे और कैसे की जाय? इसलिये अगर कोई प्रार्थना करता है, सुनवाई होनेके लिये प्रार्थना करता है तो इसका अर्थ है कि स्वीकार न करते हुए भी व्यक्तिको अपनेसे बहुत अधिक ऊंची, बहुत अधिक शक्तिशाली सत्तापर विश्वास है जो हमारी नियतिको बदल सकती है, और हमें भी। यह मुख्य भेद है।

इसलिये ज्यादा बौद्धिक लोग अभीप्साको स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि प्रार्थना ज्यादा नीची चीज है। रहस्यवादी तुमसे कहते हैं कि अभीप्सा बहुत ठीक है लेकिन अगर तुम चाहते हो कि सचमुच तुम्हारी बात सुनी जाय, और चाहते हो कि भगवान् तुम्हारी बात सुनें तो तुम्हें

प्रार्थना करनी चाहिये और एक बालककी सरलताके साथ, पूर्ण निष्कपटता-के साथ, यानी, पूरे विश्वासके साथ प्रार्थना करनी चाहिये: "मुझे इस या उस चीजकी जरूरत है (वह चाहे नैतिक जरूरत हो या भौतिक या दैहिक आवश्यकता हो), तो, मैं तुमसे मांगता हूं, मुझे दो।" या फिर "मैंने जो मांगा था वह तुमने दे दिया। तुमने मुझे मूर्त रूपमें वे अनुभूतियां प्रदान कीं जो मेरे लिये अजानी थीं और अब ऐसी अद्भुत चीजें बन गयी हैं जिन्हें मैं चाहनेपर ही पा सकता हूं; हां, मैं अत्यधिक कृतज्ञ हूं। मैं कृतज्ञता-भरी प्रार्थना निवेदित करता हूं। स्तुतिके गान करता हूं और तुम्हारे हस्तक्षेपके लिये तुम्हें धन्यवाद देता हूं।" यह ऐसे होती है। अभीप्साके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह किसीके प्रति, किसीकी ओर निर्दिष्ट हो। तुम्हारे अंदर सत्ताकी किसी दशाके लिये, ज्ञानके लिये, उपलब्धिके लिये, चेतनाकी किसी अवस्थाके लिये अभीप्सा हो सकती है; तुम किसी चीजके लिये अभीप्सा कर सकते हो; यह आवश्यक रूपसे प्रार्थना नहीं होती; प्रार्थना कुछ अतिरिक्त चीज होती है।

प्रार्थना व्यक्तिगत चीज है और व्यक्ति-रूप सत्तासे की जाती है, यानी, किसी ऐसी चीजसे — शक्ति या सत्तासे — जो तुम्हारी बात सुन सकती और तुम्हें उत्तर दे सकती है। अन्यथा तुम कुछ मांग नहीं सकते। समझे?

जब किसी व्यक्तिमें किसीके प्रति दुर्भावना होती है तो यह भावना उसपर किस तरह क्रिया करती है?

यह भी वही चीज है, एक रचनाके द्वारा, मानसिक रचनाके द्वारा। जब किसीमें बहुत दुर्भावना हो और वह तुम्हें हानि पहुंचाना चाहता हो तो उसकी इच्छा न्यूनाधिक रूपमें प्रकट होती है; कभी-कभी वह इस बात-को स्वयं अपने सामने भी नहीं स्वीकारना चाहता क्योंकि इससे उसे लज्जा आयेगी, लेकिन वह सहज रूपसे आ सकती है। या फिर, जैसा कि दुर्भावनापूर्ण लोगोंके साथ होता है, कोई चीज चेतनामें बहुत गहरी दबी पड़ी हो, सारे समय रहे, इस तरहसे विद्वेषको हिलाती रहे, और फिर उग्र लोग होते हैं जो यह चाहते हैं कि जिन लोगोंने उन्हें तथा-कथित हानि पहुंचायी है, या जिन्होंने उन्हें किसी-न-किसी कारणसे नाखुश किया है, उनपर कोई गाज गिरे... । यह रचनाके क्षेत्रकी चीज है; और यह इतनी प्रबल होती है कि अगर तुम किसी प्रकट दुर्भावनावाले

व्यक्तिके पाससे गुजर जाओ तो तुम्हें अचानक बेचैनीका अनुभव होगा। अब, यदि तुम्हारे अंदर जरा-सा ज्ञान और चेतना है तो तुम कारणके बारेमें सचेत हो सकते हो और कारण मालूम हो जाय तो बस, करनेके लिये एक ही चीज रह जाती है, बस यूं (संकेत) जैसे कोई मक्खी उड़ाता है। मक्खियां बहुत तंग करती हैं और बार-बार आती हैं, और अशुभ चीजाएं, सावधान! इनकी आदत भी मक्खियों जैसी होती है। तुम मक्खियोंको उड़ा दो, वे वापस आ जाती हैं, तुम उन्हें फिरसे उड़ा दो, वे फिर लौट आती हैं। वे समझती हैं यह एक खेल है। क्या तुमने कभी नहीं देखा कि मक्खियां इसे खेलके रूपमें लेती हैं? सचमुच, जब उन्हें भगा दिया जाय तो वे लौट आती हैं। सिर्फ तभी, जब तुम नाराज हो जाओ, तुम्हें गुस्सा आ जाय और यूं करो (संकेत), तुम भले उसे छुओ भी नहीं, तो भी मक्खी वापिस न आयेगी। वह उसे अनुभव कर सकती है। करके देखो, तुम्हें पता लगेगा।

लेकिन बुरा विचार बुरा कार्य है। ऐसे लोग हैं जो यह नहीं जानते, लेकिन सचमुच बुरा विचार बुरा काम होता है। अगर कोई किसीको हानि पहुँचानेकी सोचता या इच्छा करता है तो उस आदमीपर आनेवाली मुसीबतोंके लिये उसकी उतनी ही जिम्मेदारी है मानों उसने क्रियाद्वारा हानि पहुंचायी हो। परंतु दुर्भाग्यकी बात यह है कि यह जानी-मानी बात नहीं है और कोई दूसरे लोगोंके बुरे विचारोंमें हस्तक्षेप नहीं करता...। ऐसे लोग भी हैं जो दूसरोंमें बुरे विचार उकसानेमें बहुत मजा लेते हैं। मैंने ऐसे बहुत-से लोग देखे हैं (दुर्भाग्यवश बहुत अधिक), जब उन्हें किसीसे कुछ अप्रिय बात कहनी हो तो वे उससे यह कहनेका कोई मौका नहीं चूकते: "जानते हो, फलाना तुम्हारे बारेमें यूं कह रहा था," और "जानते हो, फलानेने तुम्हारे बारेमें यह कहा है," और वे इससे भरसक नुकसान कर बैठते हैं और कई बार तो यह चीज अपनी मूर्खताके कारण, और बहुत बार मिथ्या अभिमानके कारण करते हैं, केवल यह दिखानेके लिये कि वे कुछ जानते हैं। लेकिन चेतनाकी तलीमें अनिष्टकर चीजें होती हैं — कोई ऐसी चीज जो अव्यवस्था, गलत-फहमी, लोगोंमें झगड़े, अप्रिय स्थिति पैदा करनेमें मजा लेती है और इन चीजोंके बीच आराम अनुभव करती है। कुछ लोगोंकी जीभ बहुत तेज होती है। इसे फ्रेंचमें सांप जैसी जीभ कहते हैं। यह उनका बड़ा आमोद होता है। और वे बहुत, बहुत, बहुत हानि पहुंचाते हैं। लेकिन बोले बिना भी अगर तुम्हारा विचार शक्तिशाली है और तुम दूसरोंका बुरा सोचते हो तो तुम कुकर्म करते हो।

दुर्भावना क्यों होती है?

मेरे बच्चो, यह तो ऐसा ही है जैसे तुम मुझसे पूछो कि प्रकृतिमें निश्चेतना, अज्ञान और अंधकार क्यों हैं! यह तो तुम संसारका क्यों पूछ रहे हो! संसार ऐसा क्यों है, और तरहका क्यों नहीं? लोगोंने इस विषयपर पोथियां लिख डाली हैं। और हर एक अपने तरीकेसे व्याख्या करता है और इससे तथ्यमें कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम मुझसे पूछ सकते हो, दुर्भावना क्यों है? अज्ञान क्यों है? मूर्खता क्यों है? दुष्टता क्यों है? यह सब अशुभ क्यों है? संसार एक बहुत मनोहर स्थान क्यों नहीं है?... सभी दार्शनिक तुम्हें अपने-अपने ढंगसे यह चीज समझायंगे। जड़वादी अपने ढंगसे व्याख्या करते हैं, वैज्ञानिक अपने तरीकेसे समझाते हैं, लेकिन इनमेंसे कोई भी इससे पिंड छुड़ानेका तरीका नहीं पा सकता। और आखिर, एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज होगी (तुम पूछते हो: दुर्भावना क्यों है?) ऐसा रास्ता खोजना जिससे दुर्भावना और न रहने पाये। वह कष्ट उठाने लायक बात होगी; अगर तुम मुझसे कहो: दुःख क्यों है, दरिद्रता क्यों है?... तो इससे तुम्हारा क्या बनेगा? इस क्योंसे क्या होगा, जबतक कि वह कोई उपाय बतानेका साधन न हो? मुझे नहीं लगता कि इससे कुछ लाभ होगा क्योंकि (हम यहां यह बात कर चुके हैं), अगर तुम क्यों की खोज करो तो तुम अपने अंदर सब तरहकी व्याख्याएं पा लोगे जो न्यूनाधिक रूपमें बेकार होंगी और उनसे कुछ न बनेगा?

तथ्य तो यह है कि बात ऐसी है, है न? और दूसरा तथ्य है कि हम ऐसा नहीं चाहते और तीसरी चीज है ऐसे उपाय ढूंढना जिससे ऐसा न रहने पाये। यह हमारी समस्या है। दुनिया वैसी नहीं है जैसी कि हम सोचते हैं कि होनी चाहिये, दुनियामें बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें हम पसंद नहीं करते। हां, संसारमें ऐसे लोग हैं जिन्हें वह चीज बहुत पसंद है जिसे वे "ज्ञान" कहते हैं और वे यह जाननेकी कोशिश शुरू कर देते हैं कि ऐसा क्यों है। एक तरहसे यह बहुत अच्छा है, लेकिन जैसा कि मैंने कहा, यह जानना कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होगा कि क्या किया जाय जिससे चीज और तरहकी हो जाय। यही समस्या है जो बुद्धने अपने सामने रखी थी। कहा जाता है कि वे पेड़के नीचे बैठ गये और जबतक समाधान न मिल गया बैठे रहे। लेकिन उनका समाधान बहुत अच्छा नहीं है; जब तुम मुझसे कहते हो: "संसार बहुत बुरा है," तो उनका समाधान है: "संसारको ही समाप्त कर दो।" — जैसा कि श्रीअरविंदने कहीं लिखा है: "किसके लाभके लिये?" तब संसार बुरा नहीं रहेगा क्यों-

कि उसका अस्तित्व ही न होगा? लेकिन तब फिर बुरा न रहनेका अर्थ ही क्या है जब उसका अस्तित्व ही न रहे! यह बहुत साधारण-सा तर्क है। यह उन लोगोंकी तरह है जो चाहते हैं कि समस्त संसार अपने 'मूल' की ओर लौट जाये; तो श्रीअरविंद उत्तर देते हैं: "तुम किसी ऐसी चीजके सर्वशक्तिमान स्वामी होगे जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं रहा, साम्राज्यके बिना सम्राट्, राज्यहीन राजा।" बस, यही है...। यह एक समाधान है। लेकिन इससे अच्छे और समाधान भी हैं। मेरा ख्याल है, हमने ज्यादा अच्छे समाधान पाये हैं।

कुछका कहना है कि दुर्भावना अज्ञानसे आती है (बुद्ध भी ठीक इसी बातका दावा करते थे); और अगर अज्ञान नायब हो जाय तो कोई दुर्भावना न बाकी रहेगी। दूसरे हैं जो कहते हैं कि दुर्भावना विभाजनसे, अलगावसे आती है, कि यदि विश्व अपने मूलसे कट न गया होता तो कोई दुर्भावना न होती। कुछ दूसरे हैं जो कहते हैं कि दुर्भावना ही हर चीजका कारण है, विभाजनका भी और अज्ञानका भी; तो, अब यह समस्या उठती है: यह दुर्भावना आती कहांसे है? अगर वह हर चीजके आरंभमें थी तो इसका मतलब होगा कि वह हर चीजके मूलमें थी। और तब, मेरे बच्चो, हम एकदम खो-से जाते हैं! हम बरसों अंदाजे लगा सकते हैं, पर कभी उससे बाहर न हो पायंगे। इसलिये जो लोग तुम्हें इतनी दूरतक खींच ले जाते हैं वे अंतमें कहते हैं: दुर्भावना है ही नहीं, यह भ्रांति है। और यह इसलिये कि वे अपने तर्कके बीचमें ही अटक जाते हैं; अगर वे जरा और आगे बढ़ते तो कह सकते थे: शायद यह, दुर्भावना, मनुष्यकी खोज है...। यह संभव है!

पशुओंमें दुर्भावना नहीं होती, होती है क्या?

मुझे नहीं लगता। मैं पूरे पक्के तौरपर नहीं कह सकती क्योंकि मैं पशुओंकी सभी जातियोंको नहीं जानती! परंतु मैंने ऐसी चीजें सुनी हैं जो हमें अति विरूपता मालूम होती हैं, लेकिन दुर्भावनाके उदाहरण बिलकुल नहीं हैं। उदाहरणके लिये, कीट जगत्को ले लो। सभी पशु जातियोंमेंसे इसीके अंदर वह चीज सबसे ज्यादा होती है जिसे हम दुष्टता कहते हैं — या जिसे दुर्भावना कहा जा सकता है; यह भली-भांति हो सकता है कि यह हमारी ही चेतना हो जो उनकी चेतनापर लागू होकर दुष्टता और दुर्भावनाकी गति देखती है...। ऐसे कीड़े हैं जिनके डिंभक केवल जीवित वस्तुओंपर ही जी सकते हैं। वे जीवित प्राणीको ही खा

सकते हैं। मृत मांससे उनका पोषण नहीं होता। इसलिये जो कीड़ा अंडे देनेवाला होता है (जो अंडे डिमकमें बदल जायंगे), वह किसी दूसरे कीड़े या ज्यादा निचले प्राणीको डंक मारकर सुन्न कर देता है और उसके बाद बहुत धीमे उसके अंदर अंडे इस तरह दे देता है कि जब अंडे फूटें तो डिमक उस सुन्न परंतु जीवित जानवरको खा सकें। यह माकिआवेली की-सी बात है, है न? यह तो स्पष्ट ही है कि यह तर्कणाका परिणाम नहीं है। यह सहज-बोध है। क्या इसे दुर्भावना कहा जा सकता है? क्या यह दुर्भावना है? ...यह केवल प्रजननका सहज-बोध है।

शायद, अगर हम यह कहें कि इन कीड़ोंका संचालन इनकी जातीय आत्मा करती है जो अपने-आपमें सचेतन है, जिसमें सचेतन इच्छा-शक्ति होती है, तो हम कह सकते हैं कि ये सब कल्पनाएं (मैं तुम्हें यह एक उदाहरण दे रही हूं, लेकिन ऐसे अनगिनत उदाहरण मिल सकते हैं, ऐसे ही भयंकर और मानव चेतनाकी दृष्टिसे ऐसे ही विरूप), ये सब सत्ताएं, ये सब गढ़नेवाले जिन्होंने इन कीड़ोंकी रचना की, बहुत ही भयंकर सत्ताएं होंगे। तुम्हें नहीं लगता? उनमें बहुत ही भ्रष्ट और पैशाचिक कल्पना होती है। यह बिलकुल संभव है, वास्तवमें कहा जाता है कि कीट जातिका मूल प्राणिक स्रोतमें है, यानी, ऐसी सत्ताएं जो जगत्‌में दुर्भावनाका प्रतीक ही नहीं हैं बल्कि प्रतिनिधि भी हैं, और जगत्‌की दुर्भावनापर ही जीती हैं। ये अपनी दुर्भावनाके बारेमें बहुत सचेतन होती हैं और यह जान-बूझकर की जाती हैं। मनुष्योंकी दुर्भावना साधारणतः प्राण जगत्‌की सत्ताओंकी दुर्भावनाकी छाया — एक नकल या छाया — होती है। उनकी भावना स्पष्ट रूपसे सृष्टिके विरुद्ध होती है, वह चीजोंको कष्टदायक, कुरूप, दुःखपूर्ण और जितना हो सके उतना विरूप बनाना चाहती है। कहा जाता है कि उन्हीं सत्ताओंने कीड़ोंको बनाया है। इसलिये शायद कीट जाति...। लेकिन वे जान-बूझकर अशुभका प्रतिनिधित्व नहीं करते, समझे, वे जान-बूझकर अशुभ नहीं करते। वे इसलिये करते हैं क्योंकि यह उनकी प्रकृतिमें है। मैं जिसे दुर्भावना कहती हूं वह सचमुच अशुभ करनेके लिये अशुभ करनेकी इच्छा है, नष्ट करनेके लिये नष्ट करना, तकलीफ पहुंचानेके लिये तकलीफ पहुंचाना और बुरा करनेमें मजा लेना। यह वास्तवमें दुर्भावना है। मुझे लगता है कि अहंकार मनके जन्मके साथ शुरू होता है (लेकिन मैं निश्चयके साथ नहीं कह सकती क्योंकि हमेशा नयी-नयी चीजोंकी खोज हो रही है)। लेकिन मैंने जानवरोंमें जो देखा है, विशेषकर उच्चतर

जानवरोंमें, वह शायद सुरक्षाका सहज-बोध हो, हो सकता है उग्रता हो या अंधकारमय पाशविक प्रति क्रियाएं हों — क्या वह सचमुच वह है जिसे दुर्भावना कहा जाता है? . . . संभव है। अगर कोई मुझे ऐसी कहानी सुनाये जो स्वयं उसने देखी है और जो इससे उलटी बात सिद्ध करती है तो मैं उसे स्वीकार करनेको तैयार हूं, लेकिन अभीतक तो मैंने ऐसी चीज नहीं देखी। मैं पशुओंके बारेमें जो जानती हूं वह इतना ही है कि उनका सहज-बोध उन्हें क्रिया करनेके लिये प्रेरित करता है, लेकिन उनमें वह विकृति नहीं होती जो मानव मनमें है। मुझे लगता है कि मनुष्य इस प्रकारके मनकी क्रियाके आरंभ होनेसे और प्राणके सीधे प्रभावमें आकर ही दुर्भावनापूर्ण सत्ता बना है। दानव दुर्भावनापूर्ण सत्ताएं हैं, परंतु दानव प्राण लोककी ऐसी सत्ताएं हैं जो प्रकृतिकी शक्तियोंमें प्रकट होती हैं। दानव बुरा करनेके रसके लिये बुरा करते हैं, नष्ट करनेका मजा लेनेके लिये नष्ट करते हैं।

मनुष्य प्रायः बिल्लियोंकी दुष्टताकी बात करते हैं, उदाहरणके लिये, वह चूहेको खानेसे पहले उसके साथ खेलती है; बच्चोंको यह उदाहरण दिया जाता है। लेकिन मैंने बिल्लियां देखी हैं। मैं जानती हूं कि वे क्या करती हैं। यह बात बिलकुल सच्ची नहीं है। वे यह चीज दुर्भावनाके साथ बिलकुल नहीं करतीं। साधारणतः चीज इस तरह होती है : मां-बिल्ली अपने बच्चोंके लिये शिकार करती है और एक चूहा पकड़ती है। अगर वह चूहा बच्चोंको यूं ही पकड़ा दे तो वे उसे न खा सकेंगे क्योंकि वह सख्त और कड़ा होता है और वे इतना सख्त, कड़ा मांस नहीं खा सकते। और उस समय यह मांस अच्छा नहीं होता। इसलिये बिल्ली उससे खेलती है, जो खेलनेके जैसा लगता है, उसे उठाती, पटकती, बेलती है, उसे दौड़ने देती है, उसके पीछे दौड़ती है जबतक कि वह बिलकुल नरम न हो जाय। जब मांस अच्छी तरह गुंध जाता है, खानेलायक तैयार हो जाता है तब वह छोटे बच्चोंको दे देती है जो उसे खा सकते हैं। निश्चय ही बिल्लियां यह सब खेल खेलनेके आनंदके लिये नहीं खेलतीं! देखो, पहले वे शिकार करती हैं और फिर भोजन तैयार करती हैं। उनके पास न तो चूल्हा होता है, न आग जिसपर पकाकर मांसको नरम बनाया जा सके। उन्हें उसे तैयार करना और खानेलायक बनाना होता है।

लेकिन यह भी कहा जाता है कि जीवित प्राणियोंमें प्रेमकी पहली अभिव्यक्ति हड़प लेनेकी इच्छामें होती है जिसमें विगल जानेकी, आत्मसात् करनेकी इच्छा होती है। एक उदाहरण है जिससे यह प्रमाणित होता हुआ लगता है कि यह बात एकदम गलत नहीं है। जब शेर अपने

शिकारको या सांप अपने शिकारको पकड़ता है तो शेर और सांप दोनोंके शिकार अपने-आपको एक प्रकारके खाये जानेके आनंदमें छोड़ देते हैं। एक आदमीका अनुभव सुनाया जाता है जो अपने साथियोंके साथ जंगलमें गया था। वह पीछे रह गया। उसे एक मद-मक्षी शेरने पकड़ लिया। और लोग लौट आये। लौटकर उन्होंने देखा कि वह वहां नहीं आया तो वे उसकी तलाशमें दौड़े। पैरोंके निशान देखते हुए वे ठीक समयपर ही जा पहुंचे और उसे शेरके द्वारा खाये जानेसे बचा लिया। जब वह जरा होशमें आया तो उन्होंने कहा : "तुम्हें तो बड़ा ही भयानक अनुभव हुआ है!" उसने कहा : "नहीं, जरा कल्पना करो, मालूम नहीं मुझे क्या हुआ, जैसे ही शेरने मुझे पकड़ा, और जब वह मुझे घसीट रहा था तो मेरे अंदर उसके लिये तीव्र प्रेम पैदा हो गया और बहुत जोरकी इच्छा हुई कि मैं खा लिया जाऊं!"

यह बिलकुल सच है। यह मनगढ़ंत नहीं है, सच्ची कहानी है।

और हां, मैंने अपनी आंखोंसे देखा है....। मुझे लगता है कि शायद मैं तुम्हें पहले ही सुना चुकी हूं — एक छोटे-से खरगोशकी कहानी जिसे अजगरके पिंजरेमें छोड़ा गया था। यह पैरिसके जार्दे द प्लांत के पिंजरेमें था। वह नाश्तेका दिन था। मैं अचानक वहां थी। पिंजरा खोला गया और छोटा-सा सफेद खरगोश अंदर घुसा दिया गया। वह छोटा-सा, सुंदर, सफेद खरगोश था और वह एकदम भागकर पिंजरेके दूसरे छोरपर पहुंच गया। वह बुरी तरह कांप रहा था। यह बड़ा भयानक दृश्य था, क्योंकि वह खरगोश भली-भांति जानता था कि क्या हो रहा है। उसे लगा कि सांप है, वह बहुत अच्छी तरह जान गया। सांप अपनी चटाईपर कुंडल मारे बैठा था। ऐसा लगता था कि वह सो रहा है। चुपचाप उसने अपनी गरदन लंबाई, सिर आगे किया और फिर खरगोशकी ओर ताकना शुरू किया। वह बिना हिले-डुले ताकता गया; केवल ताकता गया। मैंने खरगोशको देखा। पहले उससे कांपना बंद कर दिया। अब उसे डर न था। वह बिलकुल दोहरा हो गया था, अब ठीक होने लगा। और तब मैंने देखा उसने अपना सिर उठाया, आंखें पूरी-पूरी खोलीं और सांपकी ओर देखना शुरू किया। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ता गया, बढ़ता गया, यहांतक कि वह ठीक दूरीपर था। अब सांपने बिना हलचलके, कुंडली खोले बिना, जहां था वहींसे, जैसे रहे हो न, एक लपकमें उसे ले लिया। और तब उसे खेलना शुरू किया, भोजनके लिये उसे तैयार करना शुरू किया। यही उससे खेलनेके लिये न था, यह उसे तैयार करनेके लिये था। उसने सारी हड्डियां अच्छी

तरह पीस डाली। उन्हें चटकाया, फिर उसपर गोंद-सी चीज लपेट दी ताकि वह बिलकुल आसानीसे फिसल सके। और जब वह पूरी तरह तैयार हो गया तो धीरे-धीरे, आरामसे निगलना शुरू किया . . . लेकिन उसे अपने-आपको बेचैन करनेकी जरूरत नहीं पड़ी, उसे जरा भी गति नहीं करनी पड़ी, सिवाय उस अंतिम झपकके जब वह ठीक सामने था। दूसरा प्राणी ही उसके पास आया था।

तो यूं होता है। वास्तवमें, प्रकृतिमें बहुत-सी चीजें हैं। यह चीज है, शायद यह दुर्भावना भी हो। मुझे पूरा निश्चय नहीं है कि यह मनुष्य-की मानसिक गतिविधियोंका उपहार नहीं है। . . जैसे ही मनुष्य अपने सहज-बोधसे जुदा हुआ और उसने स्वतंत्र रूपसे काम करना चाहा . . .।

सहज-बोध ठीक-ठीक क्या है?

यह प्रकृतिकी चेतना है। प्रकृति अपनी क्रियाके प्रति सचेतन है, लेकिन यह व्यक्तिगत चेतना नहीं है, एक जातिगत सहज-बोध होता है। कुछ-ने कहा है कि "हर जातिकी एक आत्मा" भी होती है; हर जातिकी सचेतन सत्ताएं। सहज-बोध इस बातपर निर्भर है कि प्रकृति कैसे काम करती है। प्रकृति एक सचेतन शक्ति है जो जानती है कि वह क्या चाहती है, अपने ही ढंगसे काम करती है, वह जानती है कि वह कहां जा रही है और उसके कौन-से रास्ते हैं। वह अपने-आप ही उन्हें चुनती है। मनुष्यके लिये यह असंगत-सी चीज लगती है क्योंकि स्वयं उसकी चेतना बहुत संकरी है (वह समग्रको भली-भांति नहीं देख सकता; और जब व्यक्ति केवल छोटे-मोटे ब्योरे देखता है या छोटे टुकड़े देखता है तो वह कुछ नहीं समझ सकता); लेकिन प्रकृतिकी एक योजना है, उसमें सचेतन-इच्छा-शक्ति है, पूरी तरह सचेतन अस्तित्व है जिसे हम सत्ता नहीं कह सकते। क्योंकि यह उसी अनुपातमें नहीं है। जब हम अपनी मानव चेतनाके साथ सत्ताकी बात करते हैं तो तुरंत मानव सत्ताकी कल्पना कर लेते हैं, शायद कुछ बड़ी या बहुत अधिक बड़ी, फिर भी ठीक उसी तरह काम करती हुई। इसीलिये मैं उसे सत्ता नहीं कह रही लेकिन यह एक सचेतन अस्तित्व है, एक सचेतन संकल्प है जो सचेतन रूपसे जान-बूझकर काम करता है और उसके अधिकारमें दुर्जेय शक्तियां होती हैं।

यह भी कहा जाता है कि प्रकृतिकी शक्तियां अंधी और उग्र होती हैं। लेकिन बात ऐसी बिलकुल नहीं है। मनुष्य अपने सापेक्ष अनुपातोंके आधारपर प्रकृतिके बारेमें ऐसा निर्णय कर बैठता है। जरा ठहरो, एक

उदाहरणके लिये। जब भूकंप आता है तो बहुत-से टापू पानीमें डूब जाते हैं और लाखों आदमी मर जाते हैं। लोग कहते हैं : "यह प्रकृति दैत्य है।" मानव दृष्टिसे यह प्रकृति निर्दय और दुष्टात्मा है। उसने किया क्या? वह एक जिनीपिका ले आयी। लेकिन जरा देखो, जरा कूदने या दौड़ने या ऐसा ही कुछ करनेमें जब तुम्हें अच्छी चोट लग जाय तो तुम काले, नीले हो उठते हो। हमारे कोषाणुओंके लिये यह ऐसी ही चीज है जैसे भूकंप। तुम बहुत सारे कोषाणुओंको नष्ट कर देते हो। यह अनुपातका प्रश्न है। हमारे लिये, हमारी छोटी-सी चेतनाके लिये, बहुत ही छोटी चेतनाके लिये यह बहुत भयानक चीज मालूम होती है, लेकिन आखिर तो यह धरतीपर (विश्वमें भी नहीं), किसी जगह अस्त-व्यस्तता है। हम केवल धरतीकी बात कर रहे हैं, वह क्या है? कुछ भी नहीं, विश्वके अंदर एक जरा-सा खिलौना। और अगर हम इस विश्वकी बात करें तो लोकोंका गायब हो जाना भी क्या है? — बस, जरा-सी अस्तव्यस्तता। वह कुछ भी नहीं है।

अगर हो सके तो हमें अपनी चेतनाको विस्तृत बनाना चाहिये।

मेरी जान-पहचानका एक आदमी था जो अपनी चेतनाको विस्तृत करना चाहता था। उसने एक तरकीब खोज निकाली थी। वह रातको, सुलेमें लेट जाता था और तारोंको देखा करता था, उनके साथ तादात्म्य साधनेकी कोशिश करता था और विशाल जगत्की गहराईमें चला जाता था और इस तरह अनुपातका भाव पूरी तरह खो देता था। वह धरती और उसकी सभी छोटी-मोटी चीजोंको भूलकर आकाशके जैसा विशाल बन जाता था — तुम इसे विश्वके जैसा विशाल नहीं कह सकते क्योंकि हम विश्वके एक छोटे-से टुकड़ेको ही देखते हैं, लेकिन वह तारों-भरे आकाश जैसा विशाल बन जाता था। और तब, तुम समझ सकते हो, सामयिक रूपमें सभी छोटी-मोटी अपवित्रताएं झड़ जाती हैं और तुम चीजोंको एक बड़े पैमानेपर समझ सकते हो।

यह एक बड़ी अच्छी कसरत है।

दोनों बहुत अच्छी कसरतें हैं। दोनोंमें तुलना करनेकी कोशिश करो तब तुम देखोगे कि तुम एक सड़कपर चल रहे हो। चींटियोंकी एक सेना एक बिलसे दूसरे बिलकी ओर जा रही है। (तुम किसीसे बातें कर रहे हो और नीचे नहीं देखते) : बड़ी लापरवाहीसे तुम एक पैर रखते हो, फिर दूसरा और तुम जाने बिना ही सैकड़ों चींटियोंको मार डालती हो। अगर तुम चींटी होते तो कहते : "कैसा ही दुष्ट और पाशविक शक्ति है यह!" तुम बिल्कुल ठीक कह रहे हो, तुमने ध्यान नहीं दिया। और मान लो, ऐसी सत्ताएं हैं जिनके लिये

हम केवल छोटी-छोटी चींटियोंके समान हैं! वे एक पांव रखती हैं, फिर दूसरा, और लाखों आदमी मर जाते हैं। उन्हें इसकी खबर भी नहीं होती! उन्होंने यह जानकर, इच्छासे नहीं किया है। वे बस चल रही थीं। बस, इतना ही। तुम इनमें शायद इतना ही भेद कर सकते हो (लेकिन मुझे इस बातका पूरा विश्वास नहीं), मनुष्य और चींटीमें यही फर्क है कि मनुष्य सोच सकता है कि उसे क्या हो रहा है और शायद चींटी इस बारेमें सचेतन नहीं होती। मुझे बिलकुल नहीं मालूम। मैं इस बातका विश्वास नहीं दिलाती। लो, बस।

१५ जुलाई, १९५३

> "हर आदमीकी कोई-न-कोई सनक या कोई दकियानूसी मान्यता होती है; हर एक यही सोचता है कि मैं इस या उस पक्षपातसे मुक्त हूं जिसमें दूसरे फंसे हुए हैं और वह उनकी धारणाओंको गलत माननेके लिये तैयार रहता है; लेकिन वह यह नहीं जानता है कि उसकी अपनी बात वैसी नहीं है; उसके लिये तो वह सत्य है, वास्तविक सत्य। मनके किसी नियमके साथ बंधन कहींपर छिपे अंधेपनका संकेत है।"
>
> प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)

क्या अंधविश्वास मानसिक नियम है?

नहीं, नियम नहीं, मानसिक रचनाएं। साधारणतः अंधविश्वास किसी अनुभूतिमें जन्म लेता है। उदाहरणके लिये यूरोपमें एक अंधविश्वास है। तुमसे कहा जाता है: "नसैनीके नीचे होकर कभी मत चलो। इससे दुर्भाग्य आता है।" हो सकता है कि कभी कोई नसैनीके नीचे चला हो और नसैनी उसपर गिर पड़ी और वहांसे यह कहानी बन गयी। यह भी हो सकता है कि यह अनुभव बार-बार हुआ हो क्योंकि अगर नसैनी बुरी तरहसे रखी गयी हो और तुम उसके नीचेसे निकलो तो वह उसी क्षण गिर पड़े। यह उससे आया हुआ दुर्भाग्य हो गया। ऐसे अगणित अंधविश्वास हैं। ये देशपर निर्भर हैं, ये चीजें प्रायः स्थानीय होती

है और हो सकता है कि तुम विभिन्न देशोंमें परस्पर विरोधी अंधविश्वास पाओ। कुछ देशोंमें काली बिल्लीको देखना विपत्तिके आनेका सूचक होता है। और किन्हीं अन्य देशोंमें अगर तुम काली बिल्ली देखो तो यह अच्छा शकुन होता है! अगर तुम सब चीजोंको इकट्ठा करो तो इस निष्कर्षपर आओगे कि तुम्हें कुछ नहीं होगा। बस, ऐसा ही होता है। प्रायः सभी अंधविश्वास किसी ऐसे अनुभवके परिणाम होते हैं जो स्थानीय, सामयिक और अपवादस्वरूप होता है और जिसे किसी मानसिक सिद्धांतका रूप दे दिया जाता है। यह मानसिक रचना है, नियम नहीं।

अब, कुछ और उदाहरण हैं, जैसे बहुत-से धार्मिक नियम शुद्ध रूपसे स्वास्थ्यवृत्तिके नियमोंपर, चिकित्सा-शास्त्रके ज्ञानपर आधारित होते हैं। उन्हें धार्मिक स्तरतक उठा दिया गया क्योंकि इसी रूपमें लोगोंसे उनका पालन कराया जा सकता था। अगर तुमसे यह न कहा जाय कि भगवान् तुमसे ऐसा या वैसा करवाना चाहते हैं तो तुम उसे न करोगे, अधिकतर लोग नहीं करते। उदाहरणके लिये, साधारण-सी चीज ले लो: खानेसे पहले हाथ धोना। जिन देशोंकी सभ्यता पूरी तरह वैज्ञानिक नहीं है वहां लोगोंने यह खोज की कि सचमुच खानेसे पहले हाथ धोना ज्यादा स्वास्थ्यकर है। अगर उन्होंने इसे धार्मिक नियम न बना दिया होता, अगर उन्होंने यह न कहा होता कि भगवान् चाहते हैं कि मनुष्य खानेसे पहले हाथ धोये अन्यथा यह उनके विरुद्ध अपराध होगा, तो लोग कहते: "ऐं, क्यों? नहीं, नहीं, आज नहीं, कल। मेरे पास समय नहीं है, मैं जल्दीमें हूं।" लेकिन इस तरीकेसे उनके मनके पिछवाड़ेमें कहीं यह डर सदा बैठा रहता है कि भगवान्के नाराज हो जानेसे कुछ बुरा होगा। यह भी एक अंधविश्वास है, बड़ा अंधविश्वास।

लोग कुछ चीजें करते हैं क्योंकि उनसे करनेके लिये कहा जाता है। कई मजहब — उदाहरणके लिये, केल्डियन मजहब — कहते हैं कि सूअरका मांस खाना मना है। उनका कहना है कि वह बिलकुल अपवित्र होता है और अगर तुम उसे खाओगे तो तुम भी अपवित्र हो जाओगे। सच बात तो यह है कि इन देशोंमें (वे गरम देश हैं) सूअरका मांस कीड़ोंसे भरा रहता है जो पकाये जानेपर भी पेटमें चले जाते हैं। उन कीड़ोंको मारनेके लिये उसे बहुत ज्यादा समयतक पकाना चाहिये। इसलिये ये छोटे-छोटे कीड़े साधारण तौरपर मांस पकाये जानेके बाद भी जिंदा रहते हैं, और तुम्हारे पेट या अंतड़ियोंमें जम जाते हैं, और वहीं पनपते रहते हैं। कभी-कभी तो वे तुम्हारा खात्मा ही कर डालते हैं, या हर हालतमें तुम्हें बीमार तो कर ही देते हैं। ये कीड़े इस प्रकारके

मांसमें पनपते हैं। लोगोंको ये सब बातें बतलायी जायं तो वे नहीं समझते। उनके अंदर कोई चिकित्सा-संबंधी, स्वास्थ्य-संबंधी या वैज्ञानिक विचार नहीं होते और इन बातोंमें उन्हें रस नहीं आता। "लेकिन यह मांस महंगा नहीं है, यह सस्ता मिल जाता है। देखेंगे क्या होता है।" होगा क्या? कुछ समय बाद उनकी आंतोंमें जोरका दर्द होगा और वे दुबले होते जायंगे और इसके लिये ज्यादा, और ज्यादा खायेंगे, लेकिन बिलकुल बेकार। उन्हें पता न लगेगा कि क्या हुआ है, और कीड़े उन्हें खा जायंगे। लेकिन अगर उनसे कहा जाय : "यह मत करो, भगवान् नाराज हो जायंगे और तुम्हें दंड देंगे," तो यह काफी होगा, वे ऐसा न करेंगे।

और प्रश्न?

> "किसीने कहा है कि अगर तुम योगका द्वार खोलो तो बहुत-सी बाधाएं तुम्हारा सामना करती हैं। क्या यह सच है?
>
> "यह कोई निरपेक्ष नियम नहीं है; और बहुत कुछ आदमीपर निर्भर है। बहुतोंके लिये विरोधी परिस्थितियां उनकी प्रकृतिके कमजोर स्थानोंकी कसौटी करने आती हैं। योगका अनिवार्य आधार है धीरज और समचित्तता; तुम योगमार्गपर स्वतन्त्र रूपसे चल सको इससे पहले इनकी स्थापना भली-भांति हो जानी चाहिये। स्वभावतः उस दृष्टिकोणसे सभी कठिनाइयां ऐसी कसौटियां हैं जिनपर तुम्हें खरा उतरना होगा। साथ ही ये उन सीमाओंको तोड़नेके लिये भी जरूरी हैं जिन्हें तुम्हारी मानसिक रचना तुम्हारे चारों ओर बना देती है, जो तुम्हें ज्योति और सत्यकी ओर खुलनेसे रोकती हैं।"
>
> प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)

> जब हम अभीप्साके साथ आध्यात्मिक जीवनके लिये आते हैं, तो क्या विरोधी शक्तियां हमपर आक्रमण कर सकती हैं?

बिना अपवादके सबपर।

> चाहे वे बहुत अच्छी दीखती हों?

कभी-कभी, हां। कभी-कभी ये सबसे ज्यादा भयंकर होती हैं।

हम कैसे जान सकते हैं?

ओह! सबसे आसान तरीका यह है कि अगर तुम्हारे गुरु हैं तो उनसे जाकर पूछो। यह सबके बसकी बात है। अपने गुरुपर श्रद्धा होना काफी है, जाकर उन्हें खोजो और उनसे पूछ लो। वे तुम्हें बतलायेंगे क्योंकि वे वास्तवमें जानते हैं।

अगर तुम्हारे गुरु नहीं हैं, तो यह ज्यादा कठिन है क्योंकि, ये शक्तियां बहुत चतुर होती हैं। वे विभीषिका, दुर्गति, कुण्ठता आदिका भाव लेकर नहीं आतीं, क्योंकि तब तो तुम उन्हें तुरंत पहचान लोगे और उनके झांसेमें नहीं आओगे। साधारणतः वे मित्रके रूपमें आती हैं। अगर तुम बहुत सच्चे और निष्कपट हो तो तुम शीघ्र ही कुछ छोटे संकेत देख सकोगे, कुछ ऐसे सुझाव जो तुम्हारे मिथ्याभिमानको संतुष्ट करते हैं या तुम्हारे अंदर संदेह जगाते हैं या अपने ठीक कर्तव्य कर्मकी ओरसे जरा अचेतन कर देते हैं — बहुत छोटी-छोटी बातें। अगर तुम सच्चे हो तो उनके आर-पार देख सकते हो, विशेषकर यदि तुम इतने सतर्क हो कि अपने-आपको प्रशंसाद्वारा या अपने स्वमानकी संतुष्टिको प्रोत्साहित करनेवाले प्रयासोंद्वारा धोखेमें डाले जानेसे रोक सको। ऐसी चीजें जो तुम्हारे मिथ्याभिमानको जरा-सा प्रोत्साहन देती हैं — यह सबसे बढ़कर निश्चित चिह्न है; कोई ऐसी चीज जो तुम्हारे अंदर यह विचार लाती है: "आखिर मैं इतना बुरा नहीं हूं। मैं जो कुछ करता हूं, भली-भांति करता हूं। मेरा प्रयास प्रशंसनीय है, मेरी सचाई बेदाग है," आदि। तुम अधिकाधिक आत्म-तुष्ट हो जाते हो और तब तुम निश्चित हो सकते हो। लेकिन वहां भी हमेशा चीजें ऐसा ही रूप नहीं लेतीं। ये चीजें व्यक्तियोंपर निर्भर होती हैं। कुछ लोगोंके लिये इस तरह होता है, दूसरोंमें ये बड़प्पनका भाव जगा सकती हैं: "अगर मैं इस तरह चलता चलूं तो मैं एक बड़ा योगी बन जाऊंगा। मेरे पास शक्तियां होंगी। मैं बहुत अच्छा काम करूंगा। मैं भगवान्‌की कैसी अच्छी सेवा करूंगा, वे मुझसे कितने प्रसन्न होंगे!" यह बहुत खतरनाक है। इससे ठीक उलटी चीज भी हो सकती है: "आखिर, शायद मैं किसी कामका नहीं हूं। क्या मेरे प्रयास करनेका कोई मूल्य है? क्या मैं आध्यात्मिक जीवनके योग्य हूं? शायद मैं कभी कुछ न करूंगा। मैं आकाश कुसुमके लोभमें हाथमें आयी चीज छोड़े दे रहा हूं! और आखिर मैं हूं क्या? धूलका एक कण। क्या मेरे भगवान्‌को पानेका प्रयास किसी कामका है? संभवतः मैं कुछ भी न पा सकूंगा और मेरा प्रयास बेकार होगा।" यह

और भी अधिक खतरनाक है। मैं इस तरहके सैकड़ों उदाहरण दे सकती हूं।

केवल एक चीज है जो तुम्हें बचा सकती है और वह है अपने चैत्य पुरुषके साथ संपर्क, चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो; और उस संपर्क-की दृढ़ताका अनुभव। तब तुम्हारे पास इस व्यक्ति या उस परिस्थितिसे जो भी आये उसे तुम उसके आगे रख दो और फिर देखो कि वह ठीक है या नहीं। अगर तुम संतुष्ट भी हो, हर तरहसे, अगर तुम अपने-आपसे कहो: "आखिर मैंने वह मित्र पा लिया है जिसे मैं चाहता था। मैं अपने जीवनकी अच्छी-से-अच्छी स्थितिमें हूं . . ." तब भी इसे चैत्यके साथ जो तुम्हारा छोटा-सा संपर्क है उसके सामने रखो, तब देखो कि यह अपने चटकीले रंग रख सकता है या उसमें अचानक जरा-सी बेचैनी आ जाती है, बहुत नहीं, कोई शोर मचानेवाली चीज नहीं, बस जरा-सी बेचैनी। तब तुम्हें यह विश्वास नहीं बना रहता कि चीज वैसी ही है जैसी तुम सोच रहे थे। तब तुम जान लेते हो। हां, यह वही मंद स्वर है जिसे हमेशा सुनना चाहिये। वही सत्य है और वह दूसरी चीजें तुम्हें कष्ट न दे सकेंगी।

अगर तुम सच्ची अभीप्साके साथ आध्यात्मिक जीवनमें आओ तो कभी-कभी अप्रिय वस्तुओंकी हिमवर्षा होने लगती है। तुम अपने सबसे अच्छे मित्रोंके साथ लड़ पड़ते हो, तुम्हारा परिवार तुम्हें लात मारकर घरसे बाहर कर देता है, जहां तुम सोचते हो कि तुम्हें लाभ हुआ है वहीं हानि होती है . . .। मैं एक आदमीसे परिचित थी जो बड़ी अभीप्साके साथ, ज्ञान तथा योगके लिये लंबे प्रवासके बाद भारत आया था। यह बहुत पहलेकी बात है। उन दिनों लोग घड़ीकी जंजीर और छल्ले पहना करते थे। इस आदमीके पास एक सोनेकी पेंसिल थी जो उसकी दादीने दी थी। यह उसके साथ इतना अधिक आसक्त था मानों वह दुनिया-भरमें सबसे ज्यादा मूल्यवान वस्तु हो। वह उसकी जंजीरके साथ बंधी थी। जब वह भारत या लंकाके एक ऐसे बंदरगाहपर उतरा जहां जहाजसे बंदर-गाहतक जानेके लिये छोटी नौकामें बैठना पड़ता है, जैसे पांडिचेरी, हिंदुस्तानके कुछ और बंदरगाह या कोलंबो, शायद वह कोलंबो था, तो इस आदमीको जहाजकी सीढ़ीसे नौकामें कूदना पड़ा। उसका पांव चूक गया। उसने अपने-आपको तो संभाल लिया लेकिन उसके अचानक झटके-के कारण वह सोनेकी पेंसिल समुद्रमें गिरकर सीधी गहराइयोंमें चली गयी। पहले तो उसे बहुत दुःख हुआ, लेकिन फिर उसने अपने-आपको समझा लिया: "यह भारतका पहला प्रभाव है . . .। अब मैं बंधन-मुक्त

हो गया।" बहुत सच्चे लोगोंके लिये चीजें ऐसा रूप लेती हैं। कष्टोंकी हिमवर्षा हमेशा सच्चोंके लिये होती है। जो लोग सच्चे और निष्कपट नहीं हैं उनके पास चीजें उन्हें धोखा देनेके लिये बहुत तड़क-भड़कके साथ गहरे रंगोंमें आती हैं, पर अंतमें उन्हें यह मान करने योग्य बना देती हैं कि उनकी मृत्यु हो। लेकिन जब किसीपर बड़ी कठिनाई आती है तो यह इस बातका प्रमाण है कि उसने निष्कपटताकी अमुक अवस्था प्राप्त कर ली है।

> यहां आप कहती हैं: "जब तुम भगवान्‌के पास आओ तो तुम्हें सभी [illegible] छोड़ देनी चाहिये, पर यह करनेकी जगह तुम अपनी धारणाएं भगवान्‌पर आरोपित करते हो और चाहते हो कि भगवान् उनके अनुसार चलें।"
>
> प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)

हां, हर एक-के सारे समय निरंतर। बेशक भगवान् वैसे नहीं हैं जैसे तुम मानते हो तो वे भगवान् ही नहीं हैं। यदि भगवान् वह नहीं करते जो तुम चाहते हो, अगर वे उस तरहसे क्रिया नहीं करते जैसे तुम सोचते हो कि उन्हें करनी चाहिये, अगर उनमें वैसे गुण नहीं हैं जैसे तुम प्रदान करते हो तो वे भगवान् नहीं हैं। "मैं तुम्हें भगवान् मान लूंगा यदि तुम ठीक वही करो जो मैं तुमसे करवाना चाहता हूं।" स्वभावतः लोग इतने निष्कपट नहीं होते कि इस बातको स्वीकार कर लें, पर बात है ऐसी ही। मैं तुम्हें लाखों-करोड़ों उदाहरण दे सकती हूं — सैकड़ों नहीं, लाखों-करोड़ों! और तुममेंसे एक भी ऐसा नहीं है जो अचेतन रूपमें यह न करता हो। यह एक नियम है, समझे; आदमी चाहता है "मैं भगवान्‌के आगे समर्पण करनेको पूरी तरह तैयार हूं, उनकी इच्छाके अनुसार चलनेको, उनकी अभिव्यक्ति और उनकी क्रियाको स्वीकार करनेके लिये तैयार हूं बशर्ते कि वह ऐसी या वैसी हो कि वे इस तरह सोचें, अनुभव करें, क्रिया करें आदि।" पहले ही अवसरपर मैं तुम्हें ऐसा छोटा-सा उदाहरण दिखा दूंगी जो तुम्हारी आंखोंके आगे झूलता होगा। उसपर मूल न होगी। वह किसी दिन आ जायगा, बहुत जल्दी। तो बस।

> "धन-शक्ति अभी भागवलोककी शक्तियों और सत्ताओंके प्रभाव या हाथमें है। इसी प्रभावके कारण तुम धनको किसी बड़ी राशिको सत्यके कामके लिये जाते हुए नहीं देखते। वह प्रायः भटक जाती

है, क्योंकि वह आसुरिक शक्तियोंकी पकड़में है और धरतीको अपने अधिकारमें रखनेके लिये उनका एक मुख्य साधन है। धन-शक्तिपर विरोधी शक्तियोंकी पकड़ इतने सशक्त रूपमें, पूरी तरहसे, अच्छी तरहसे संगठित है कि उस ढेस संगठनमेंसे कुछ भी निकाल सकना बहुत ही कठिन काम है। हर बार जब तुम धनके वर्तमान अभिभावकोंके हाथसे थोड़ा-सा धन खींचना चाहते हो तो बड़ा युद्ध करना पड़ता है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१२ मई)

अब धनकी क्या अवस्था है? क्या आसुरिक इन सत्ताओंका धनपर बहुत अधिकार है?

हां, यह जारी है, जारी है। हालत किसी सूरतसे अच्छी नहीं है। इसके अतिरिक्त जो शर्तें पूरी करनी हैं वे पूरी नहीं हुई हैं।[1] इसलिये तुम आशा नहीं कर सकते कि स्थिति सुधरने जायगी। आज सवेरे ही मैं यह शिकायत कर रही थी ("मैं शिकायत कर रही थी"; यह तो कहनेका एक ढंग है ताकि तुम मेरी बात समझ सको)। मैं अपने-आपसे कह रही थी: हम जो करना चाहते हैं उसके लिये बहुत सारे धनकी जरूरत है — बहुत अधिक, समझे, थोड़ा-बहुत नहीं — और तब मैंने अपने-आपसे कहा: फिर भी, धनकी कमी नहीं है, संसारमें बहुत धन है। ऐसे लोग भी हैं जिन्हें पता नहीं कि अपने धनसे क्या करें। लेकिन उनके दिमागमें यह बात कभी नहीं आयेगी कि भगवान्‌के कामके लिये धन दें... वे यह नहीं कह सकते कि उन्हें मालूम नहीं है, क्योंकि अगर कोई जानना चाहे तो हमेशा जान सकता है। जब तुम्हारे अंदर यह विचार आता है: "मैं अपने धनका अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना चाहता हूं" (और सर्वोत्तम, इस सज्जन या उस महिलाके दृष्टिकोणसे उपयोगी नहीं), तो वह हमेशा जान सकता है। साधारणतः (अपवाद भी होते हैं), साधारणतः जिन लोगोंके पास बहुत पैसा है वे एक यह शर्त लगाते हैं कि इससे उन्हें कम-से-कम कुछ संतोष प्राप्त होना चाहिये — वे देते तो हैं लेकिन उन्हें कुछ मिलना भी चाहिये। अगर वे व्यापारी नहीं हैं और अर्थलाभके लिये

---

[1] १० मार्च, १९५१ की बातचीतमें माताजीने कहा था कि धनके ऊपर अधिकार पानेके लिये यह शर्त है कि मनुष्योंमें काम-वासनापर पूरी तरहसे प्रभुत्व पाया जाय।

नहीं देते, उदाहरणके लिये, यदि वे लोक हितैषी हैं जो अपना धन मानव प्रगतिके लिये देते हैं तो वे हमेशा चाहते हैं, न्यूनाधिक रूपसे सचेतन रूपमें (साधारणतः पूरी तरह जान-बूझकर), वे हमेशा यह चाहते हैं कि इससे उन्हें ख्याति मिले, एक प्रकारसे उनके आत्म-सम्मानको संतोष मिले। वे एक विद्यालय खोलनेके लिये धन देते हैं। विद्यालय-पर उनका नाम होगा। वे कहीं एक स्मारक बनवाते हैं, उसपर लिखा होना चाहिये कि अमुक महाशयने इसके लिये धन दिया था ... आदि-आदि। एक समय मैं गोलकुंड[1] बनवा रही थी; कुछ लोग मेरे पास आये और कुछने दूसरोंके द्वारा कहला भेजा कि हम इतना-इतना पैसा देनेके लिये तैयार हैं, लेकिन आप किसी कमरेमें एक संगमरमर लगवा दें जिसपर लिखा हो : "यह कमरा अमुक महाशयके दानसे बनवाया गया।" तो मैंने कहा : "मुझे खेद है, मैं आपके लिये संगमरमरके फलक बनवाने-के लिये तो तैयार हूं, लेकिन वे तहखानेके फर्शपर बिछाये जायंगे।" तो चीज ऐसी है।

इसमें अपवाद है, जैसे सभी नियमोंमें अपवाद होते हैं; फिर भी मैं यह नहीं कह सकती कि धन सहज रूपमें, खुले तौरपर बिना प्रयासके ऐसे स्थानोंपर जाता है जहां अधिकसे-अधिक उपयोगी चीजें की जा सकें। नहीं। अधिक-से-अधिक सद्भावना यह है कि धन ऐसे कामोंमें दिया जाय जिन्हें तुम भली-भांति समझ सकते हो (और इसे समझना भी आसान है), जैसे अस्पताल बनाना या शिशु-सदन खोलना। ये सब सद्भावनाके ऐसे काम हैं जिन्हें आदमी अच्छी तरह समझ सकते हैं। लेकिन अगर उनसे कहा जाय कि हम मानव चेतनाको बदलना चाहते हैं, हम एक नये संसारका निर्माण करना चाहते हैं तो, ओहो! उनका पहला उत्तर होगा : "क्षमा कीजिये, भगवान्‌की बात न कीजिये। अगर भगवान् कोम कर रहे हैं तो स्वयं भगवान् ही उसके लिये साधन भी देंगे और आपको हमारी सहायताकी कोई जरूरत नहीं।" मैंने लोगोंको यह कहते सुना है : "अगर आप धरतीपर भगवान्‌का प्रतिनिधित्व कर रही हैं तो आप जो चाहें कर सकती हैं; हमें आपको कुछ भी देनेकी जरूरत नहीं है।" और तुममेंसे कितने इस विचारसे (या इस विचारके प्रभावसे) मुक्त हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं इसलिये भगवान् जो चाहें कर सकते हैं।

यह पहली युक्ति है, यह पहला सिद्धांत है। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वे जो चाहें कर सकते हैं; इसलिये उन्हें किसीकी मददकी जरूरत

---

[1] आश्रमकी एक अतिथिशाला।

नहीं। और अगर तुम इस विचारको काफी आगे ले जाओ तो देखोगे कि अगर सचमुच भगवान् इस जगत्में सर्वशक्तिमान् हैं और जो चाहते हैं, हमेशा वही करते हैं, तो मैं कहती हूं कि वे विश्व-भरमें सबसे बड़े दानव हैं! क्योंकि जो सर्वशक्तिमान् है और इस तरहकी दुनिया बनाता है जैसी कि यह है, और कष्ट पाते हुए दरिद्री लोगोंको देख-देखकर मुस्कराता है और इसे ठीक समझता है, उसे मैं दानव ही कहूंगी। जब मैं पांच वर्षकी थी तो ऐसी बातें ही सोचा करती थी। मैं अपने-आपसे कहा करती थी: "नहीं, यह संभव नहीं है, यहां जो सिखाया जाता है वह सत्य नहीं है!" तुम्हें जरा ज्यादा दार्शनिकका मन प्राप्त है इसलिये मैं तुम्हें सिखाऊंगी कि इस कठिनाईमेंसे कैसे बाहर निकला जाय। लेकिन सबसे पहले तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि यह विचार बचकाना विचार है। मैं तुम्हारी सामान्य बुद्धिसे अपील करती हूं। तुम अपने भगवान्को एक व्यक्ति बना लेते हो (क्योंकि इस तरह तुम उन्हें ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो)। तुम उन्हें व्यक्ति बनाते हो। फिर इस व्यक्तिने किसी चीजका संगठन किया है (पृथ्वी, यह शायद बहुत बड़ी है, इसे समझना कठिन है, कोई और चीज ले लो)। अब भगवान्ने इस चीजका संगठन अपनी मरजी मुताबिक सब कुछ कर सकने-की पूरी शक्तिके साथ किया है। और इस चीजमें — जिसे उसने अपनी इच्छाके अनुसार सब कुछ कर सकनेकी शक्तिके साथ बनाया है — अज्ञान, मूर्खता, दुर्भावना, भय, ईर्ष्या, घमंड, धूर्तता तथा तकलीफें, बीमारी, सब तरहके दर्द, दुःख आदि हैं; और लोगोंकी एक श्रेणी ऐसी है जो यह नहीं कह सकती कि उसे सारे दिनमें कुछ मिनटोंसे अधिक सुख मिला होगा, और बाकी समय एक उदासीन दशा रहती है — एक मुरदे-जैसी — और तुम इसे सृष्टि कहते हो! मैं तो इसे नरक-जैसी चीज कहती हूं! और जो ऐसी चीजको जान-बूझकर बनाये और सिर्फ बनाये ही नहीं, बल्कि उसे देखकर कहे: "हां, यह बहुत अच्छी है," जैसा कि कुछ धार्मिक पुस्तकोंमें लिखा है कि जब भगवान्ने सृष्टिकी रचना कर ली, जैसी कि वह है, तो सातवें दिन उसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने कामसे संतुष्ट होकर आराम करने लगा.... हां, यह तो हर्गिज नहीं! मैं उसे भगवान् नहीं कहूंगी। अन्यथा अनातोल फ्रांसका अनुसरण करते हुए कहूंगी कि भगवान् एक सृष्टिकर्ता है और सभी सत्ताओंमें सबसे ज्यादा भयंकर।

लेकिन इस कठिनाईसे बाहर आनेका एक रास्ता है। (एक बालकसे) तुम जानते हो? तुम? हां, हां, तुम उसे जानते हो! तुम देखोगे कि

यह सब धारणाएं और यह विचार एक चीजपर आधारित हैं — एक सत्ता जिसे तुम भगवान् कहते हो और एक जगत् जिसे तुम उसकी सृष्टि कहते हो। और तुम यह मानते हो कि यह दोनों अलग-अलग चीजें हैं। एकने दूसरीको बनाया है और दूसरी पहलीके अधीन है, वह, पहलीने जो कुछ बनाया, उसकी अभिव्यक्ति है। तो यही प्रारंभिक भूल है। अगर तुम गहराईमें अनुभव कर सको उस चीजमें जिसे तुम भगवान् कहते हो और इस कुछ चीजमें जिसे तुम उसकी सृष्टि कहते हो, कोई विभाजन नहीं है; अगर तुम कहो: "यह बिलकुल एक ही चीज है", और अगर तुम यह अनुभव कर सको कि जिसे तुम भगवान् कहते हो (शायद यह एक शब्द ही है), जब तुम्हें पीड़ा होती है तो उस भगवान्को भी पीड़ा होती है, जब तुम नहीं जानते तब वह भी नहीं जानता; और वह अपनी सृष्टिके द्वारा ही थोड़ा-थोड़ा, कदम-कदम करके अपने-आपको फिरसे पाता है, अपने ही साथ एक होता है, अपने-आपको चरितार्थ कर रहा है, अभिव्यक्त कर रहा है, यह ऐसी चीज बिलकुल नहीं है जिसे उसने मनमाने ढंगसे चाहा था या जिसे एक स्वेच्छाचारीके रूपमें बना डाला, बल्कि यह अपने-आपको मूर्तरूप देनेवाली चेतनाकी बढ़ती हुई अभिव्यक्ति है जो अधिकाधिक विकसित हो रही है...। तब, अधिक समग्र उपलब्धिकी ओर बढ़ती हुई सामूहिक प्रगतिके संवेदनको छोड़कर कोई और चीज नहीं है, ज्ञान-चेतनाका आत्म-ज्ञान — और कोई चीज नहीं, बस वही, समग्र ऐक्यमें ज्ञान-चेतनाका बढ़ता हुआ आत्म-ज्ञान जो पूर्ण रूपसे 'प्रथम चेतना' को फिरसे उत्पन्न करेगा।

यह बात सारी समस्याको बदल देती है।

हां, इसे समझना जरा कठिन है और व्यक्तिको जरा ज्यादा प्रगति करनी पड़ती है। उस छोटे बच्चेकी तरह होनेकी जगह जो घुटने टेककर, हाथ जोड़कर कहता है: "मेरे भगवान्, मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं, मुझे अच्छा बच्चा बनाओ, मैं कभी अपनी मांको चोट न पहुंचाऊं...।" वह बहुत सरल है और वास्तवमें मैं यह नहीं कह सकती कि यह बुरा है। यह बहुत अच्छा है। हां, लेकिन ऐसे बच्चे भी हैं जिनके साथ ये बातें न चलेंगी, क्योंकि वे कहेंगे: "मैं तुमसे यह क्यों कहूं कि तुम मुझे अच्छा बना दो? मेरी मांगके बिना ही तुम्हें मुझे अच्छा बनाना चाहिये; अन्यथा तुम अच्छे नहीं हो!" जब किसीका हृदय बहुत सरल हो और वह सोचता न हो तब यह बहुत अच्छी बात है, लेकिन जब कोई सोचना शुरू करता है तो बा धिक कठिन हो जाती है। लेकिन अगर तुम्हारे साथ ही कोई क्ति हो जो कहे: उसकी जगह, मोमबत्ती

जलाने, घुटने टेकने और हाथ जोड़नेकी जगह, अपने हृदयमें ज्योति जगाओ और उसकी ओर अभीप्सा करो जो "अधिक सुन्दर, अधिक सत्य, अधिक उदात्त, जो कुछ मैं जानता हूं उससे अधिक अच्छा है। मैं याचना करता हूं कि कलसे मैं इन सब चीजोंको जानना शुरू करूं, मैं जिन चीजोंको नहीं कर सकता उन सबको करना शुरू करूं, और हर रोज कुछ अधिक।" और तब यदि तुम अपने-आपको जरा बाहर निकालो, अगर किसी-न-किसी कारण, तुम संसारमें बहुत अधिक दुःख-दारिद्रयके आगे खड़े कर दिये जाओ, अगर तुम्हारे मित्र दुःखी हों या मां-बाप कष्टमें हों या तुम्हें किसी तरहकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा हो, कुछ भी, तो तुम यह मांगो कि समग्र चेतना, सबको मिलाकर, उस पूर्णताकी ओर उठा दी जाय जिसकी अभिव्यक्ति आवश्यक है, और यह सारा अज्ञान, जिसने जगत्को इतना दुःखी बना दिया है, आलोकमय ज्ञानमें बदल जाय और सारा अशुभ ज्योतिर्मय होकर शुभ चितामें बदल जाये। और फिर जहांतक कर सको, जहांतक समझ सको, अपने सारे हृदयसे चाहो; और वास्तवमें वह प्रार्थनाका रूप ले सकता है और तुम याचना कर सकते हो — किससे याचना? — उससे याचना जो जानता है, उससे याचना जो कर सकता है, उस समस्तसे याचना जो तुमसे अधिक बड़ा और अधिक बलवान् है, उससे याचना करो कि ऐसा हो सके। और ये प्रार्थनाएं कितनी सुंदर होंगी।

मेरे बच्चो, पांच वर्षमें मैं तुम्हें आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन करवाऊंगी। मैं तुम्हें पांच वर्ष देती हूं ताकि तुम अपने-आपको तैयार कर लो। मैं तुमसे जो कह रही हूं वह ऐसा ही है जैसे कोई प्रकाश क्या है इसका ख्याल देनेके लिये एक छोटी-सी मोमबत्ती जलाये। लेकिन मैं चाहती हूं कि तुम इसका ध्यान रखो कि हम बार-बार वही न दोहराते रहें और वही बेवकूफीकी बात न कहते चलें जो, जब कभी हम साधारण जीवनसे हटकर किसी और विषयके बारेमें बोलना चाहें तो कही जाती है। जैसे मैंने यहां इस पुस्तकमें आध्यात्मिक जीवन और संन्यासवादके बारेमें की गयी गड़बड़के बारेमें बताया है,[1] उसी तरह एक दिन, जिसे देव कहा जाता है और जिसे मैं भगवान् कहती हूं उनके बीच जो उलझन पैदा की जाती है, उसके बारेमें बताऊंगी। यह बादमें होगा।

---

[1] उदाहरणके लिये, उस सार्वजनिक अंधविश्वासको ले लो, जो समस्त जगत्में फैला हुआ है कि वैरागी-जीवन और योग एक ही है। यदि तुम किसीका योगी अथवा योगिनी कहकर वर्णन करो तो तुरत उस व्यक्तिके

अब नौ बजकर बीस मिनट हो गये हैं — खतम करनेका समय है।

अगली बार जब हम स्वास्थ्य और रोगके बारेमें बात करेंगे तो मैं उन सबको चकरा दूंगी जो अपनी बीमारीके साथ लोहेकी जंजीरोंसे बंधे हैं और उसे नहीं जाने देना चाहते! मैं उन्हें जंजीरें काटनेके लिये कैंची दूंगी।

२२ जुलाई, १९५३

"इस विषयमें (बीमारीके कारण) दो बातोंपर विचार करना चाहिये। एक वह चीज जो बाहरसे आती है और दूसरी वह जो तुम्हारी आंतरिक अवस्थासे आती है। तुम्हारी आंतरिक अवस्था रोगका कारण तब बनती है जब उसमें कोई प्रतिरोध या विद्रोह हो अथवा जब तुम्हारे अंदर कोई ऐसा भाग हो जो भागवत संरक्षणको प्रत्युत्तर नहीं देता; अथवा उसमें कोई ऐसी

बारेमें लोग यही कल्पना करने लगेंगे कि वह कोई ऐसा व्यक्ति होगा जो खाता नहीं अथवा सारे दिन एक आसनपर बिना डुले बैठा रहता है, किसी कुटियामें अत्यंत दरिद्रतापूर्वक रहता है, जिसने अपना सब कुछ दे दिया है और अपने लिये कुछ भी नहीं रखता। जब किसी आध्यात्मिक मनुष्यके संबंधमें किसीसे कुछ कहा जाता है तो सौमें निन्यानबे आदमियोंके मनमें उस व्यक्तिके संबंधमें इसी प्रकारका चित्र खिंच जाता है, इनके लिये आध्यात्मिकताका एकमात्र सबूत है दरिद्रता तथा सुखद या आरामदेह चीजोंसे परहेज। यह एक मानसिक रचना है और यदि तुम आध्यात्मिक सत्यका साक्षात्कार और अनुसरण करनेके लिये स्वतंत्र होना चाहते हो तो इसे नष्ट करना होगा...। यह धारणा चली जाय तो तुम्हें कुछ ऐसी चीज प्राप्त होगी जो तुम्हारे वैराग्यके संकीर्ण सिद्धांतसे बहुत श्रेष्ठ है, तुम्हारा पूर्ण आत्मोद्घाटन हो सकेगा जिसके फलस्वरूप तुम्हारी सत्ता मुक्त रहेगी। यदि कोई चीज प्राप्त होती हो तो उसे स्वीकार करो और यदि इस चीजको छोड़ देना हो तो उसी तत्परताके साथ छोड़ दो। अगर चीजें आयें तो उन्हें स्वीकार करो और अगर चली जायं तो जाने दो और लेते और छोड़ते समय समताकी वही मुस्कान बनी रहे।

चीज भी हो सकती है जो इच्छापूर्वक जान-बूझकर विरोधी शक्तियोंको अंदर बुलाती है। तुम्हारे अंदर इस प्रकारकी कोई मामूली-सी गति हो तो वह भी पर्याप्त है; विरोधी शक्तियां तुरंत तुमपर चढ़ आती हैं और उनका आक्रमण बहुधा रोगका रूप धारण करता है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)

"तुम्हारे अंदर कोई ऐसा भाग हो जो भागवत संरक्षणको प्रत्युत्तर नहीं देता।" इसका क्या अर्थ है, माताजी?

मैं यह पहले ही समझा चुकी हूं। तुम इसमें क्या नहीं समझे?

मैं शब्दोंका भाव तो समझ गया हूं, लेकिन मैं यह नहीं समझ पाया कि ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि मैंने कहा था "सत्ताका कोई भाग"? तुम भली-भांति समझते हो, है न, कि "संरक्षणके अंदर" होनेका क्या मतलब है? "संरक्षणके बाहर चले जाने" का अर्थ भी तुम जानते हो? यदि तुम कोई उल्टी चीज करो, उदाहरणके लिये, अगर तुम भगवान्‌के संरक्षणमें हो और एक क्षणके लिये तुम्हारे अंदर संदेह या दुर्भावना या विद्रोहका विचार आये तो तुम तुरंत संरक्षणके बाहर चले जाते हो। संरक्षण तुम्हारे चारों ओर कार्य करता है ताकि विरोधी शक्तियां न आने पायं, कोई दुर्घटना न होने पाये, यानी, अगर तुम चेतना खो भी दो तो संरक्षणके कारण चेतनाका अभाव तुरंत बुरे परिणाम न लायेगा। लेकिन अगर तुम संरक्षणके बाहर चले जाओ और सारे समय जागरूक न रहो तो तुमपर विरोधी शक्तियोंका आक्रमण होगा या कोई दुर्घटना हो जायगी।

लेकिन जो सचेतन नहीं है?

जो सचेतन नहीं है? वहां भी, मैंने बताया है न, कि मैं साधारण लोगोंकी बात नहीं कर रही थी। मैं साधारण लोगोंकी बात नहीं कर रही, वे विशेष संरक्षणमें नहीं होते। साधारण लोग साधारण स्थितिमें होते हैं। उनपर नजर रखनेवाला विशेष संरक्षण नहीं होता। मैं यह बात उनके लिये नहीं कह रही। वे जीवनके सभी सामान्य नियमोंके अनु-

सार चलते हैं। तुम ये बातें उन्हें इसी तरहसे नहीं समझा सकते... तुम सब लोगोंकी बात सोच रहे थे, कि यह चीज सब लोगोंके लिये है? यह बात सिर्फ उनके लिये है जो योग करते हैं; यह सबके लिये नहीं है।

क्या कोई डरके कारण बीमार हो सकता है?

हां। मैं एक आदमीको जानती थी जो इतना अधिक डरा हुआ था कि उसे हैजा हो गया! उसके पड़ोसमें हैजा था। वह इतना अधिक डर गया कि बिना किसी और कारणके वह बीमार हो गया। उसे हैजा होनेका कोई और कारण न था। उसे केवल भयके कारण हैजा हुआ था और यह बहुत आम बात है; किसी महामारीमें अधिकतर रोगियोंके साथ ऐसा ही होता है। भयके कारण द्वार खुल जाता है और तुम्हें बीमारी लग जाती है। जिनमें भय नहीं है वे आजादीसे घूम-फिर सकते हैं और साधारणतः उन्हें कुछ नहीं होता। फिर जैसा कि मैंने वहां कहा है, हो सकता कि तुम्हारे मनमें भय न हो, तुम्हारे प्राणमें भी कोई भय न हो, लेकिन ऐसा कौन है जिसके शरीरमें भय न हो?... बहुत ही कम शरीरको भयसे मुक्त करनेके लिये कड़ी साधनाकी जरूरत होती है। कोशाणु स्वयं कांपते हैं। केवल साधनाके द्वारा, योगके द्वारा तुम इस भयको जीत सकते हो। लेकिन यह एक तथ्य है कि भयके कारण तुम किसी भी रोगको पकड़ सकते हो, दुर्घटनाको भी बुला सकते हो। और फिर देखो, एक दृष्टिसे हर चीज छूतसे आ सकती है। मैंने एक आदमीको देखा था जिसके किसी औरका घाव देखकर डरके मारे घाव हो गया। उसके सचमुच हो गया।

मानसिक, प्राणिक और शारीरिक भयमें क्या भेद है?

अगर तुम अपने मनकी गति-विधि, अपने प्राणकी गति-विधि और अपने शरीरकी गति-विधिसे परिचित हो तो तुम उसे जान सकते हो।

मानसिक बहुत आसान है: यह है विचार। तुम सोचना शुरू करते हो: उदाहरणके लिये, तुम सोचते हो, यह बीमारी है और यह बीमारी बहुत छुतहा है, शायद मुझे हो जाय, और अगर मुझे हो गयी तो बड़ी मुसी-

---

'प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)।

बस होगी। यह न होने पाये, इसके लिये क्या करना चाहिये? ... तो, मन कांपना शुरू करता है: न जाने कल क्या होगा? आदि।

प्राणिक भयमें तुम्हें लगता है। तुम्हें अपने संवेदनोंमें लगता है। सहसा तुम्हें गर्मी लगती है, तुम्हें ठंडी लगती है, पसीना छूटने लगता है, सब तरहकी अप्रिय चीजें होती हैं। और तब तुम्हें लगता है कि तुम्हारा दिल जोरसे धड़क रहा है। तुम्हें अचानक ज्वर हो आता है और रक्त संचार रुक जाता है और तुम ठंडे पड़ जाते हो।

भौतिक, हां...। जब वह दोनों भय न हों तो तुम भौतिक भयके बारेमें अवगत हो सकते हो। साधारणतः, दूसरे दोनों बहुत ज्यादा सचेत होते हैं। वह तुम्हारी आंखसे भौतिक भयको ओझल कर देते हैं। लेकिन जब तुम्हारे अंदर मानसिक या प्राणिक भय न रहें तब तुम भौतिक भयके बारेमें जान सकते हो। यह एक अजीब-सा, छोटा-सा स्पंदन होता है जो तुम्हारे कोषाणुओंमें घुस जाता है और वे उस तरहसे कांपने लगते हैं। लेकिन कोषाणु हृदयकी तरह नहीं होते जो बहुत तेजीसे धड़कता है। स्वयं कोषाणु बस जरा-सी सिहरनके साथ कांप उठते हैं। और इसे वशमें करना बहुत कठिन है। फिर भी वशमें किया जा सकता है।

मुझे विश्वास है कि तुममेंसे अधिकतरने इसका अनुभव किया है; उदाहरणके लिये, जब तुम कोई ऐसी कसरत करते हो जो साधारणतः नहीं की जाती या जिसे तुम पहली बार कर रहे हो, तो उस समय बहुत सारे छोटे-छोटे स्पंदन तुम्हें सभी कोषाणुओंमें पकड़ लेते हैं। और तब स्वभावतः, तुम अपनी गतिपर पूरा अधिकार खो बैठते हो। तब शरीर शक्तिको प्रत्युत्तर नहीं दे पाता। जब तुम कुछ करनेके लिये अपनी इच्छा-शक्ति लगाना चाहते हो तो यह भय एक प्रकारका प्रतिरोध और शरीरमें अक्षमता लाता है। हां, तुम्हें उसका पता नहीं लगता क्योंकि तुम्हारा ध्यान मानसिक आशंका या उस प्रकारकी प्राणिक झिझककी ओर रहता है जो चेतनामें बहुत स्पष्ट होती है। जब कि शरीरमें पैदा होनेवाले प्रतिरोधके बारेमें तुम इतने सचेतन नहीं होते। साधारणतः सभी खेलोंमें (एथलेटिक्स और सभी प्रतियोगिताओंमें), कोई घटना होती है: तुमने अपने मित्रोंमें देखा होगा कि कुछ लोग साधारणसे बहुत ज्यादा अच्छा करते हैं और दूसरे जो साधारणतः अच्छा करते हैं उस समयके लिये लगभग अक्षम हो जाते हैं। वह बहुत ज्यादा खराब करते हैं। यह उन छोटे-छोटे स्पंदनोंपर निर्भर है। क्योंकि तुम अपना पूरा अधिकार खो बैठते हो। तब तुम्हारी इच्छा-शक्तिका तुम्हारे शरीरपर

पूरा अधिकार नहीं रहता, क्योंकि वह स्पंदित होता है और तुमसे अलग कुछ और ही शक्तियोंको प्रत्युत्तर देता है...। स्वभावतः मैं उनकी बात नहीं कर रही जिनका सिर चकराता रहता है या जिनका प्राण बहुत अधिक परेशान हो। इनके साथ कुछ नहीं किया जा सकता, ज्यादा अच्छा यही है कि वे प्रयास न करें। मेरा मतलब उनसे है जिन्हें अपने ऊपर कुछ अधिकार हो, जो निश्चय ही प्रशिक्षण तो पाते हैं, पर प्रतियोगिताके समय साधारणके जितना अच्छा भी नहीं कर सकते; यह शरीरकी ग्रहणशीलताके अभावपर निर्भर है जिसके कोषाणुओंमें जरा-सी सिहरन होती है जिसके बारेमें तुम सचेतन नहीं होते, पर वह रुकावट डालती है...। यह उस 'शक्ति'को पूरी तरह पानेसे रोकती है।

क्या बीमारियां योगमें कसौटियां होती हैं?

कसौटियां? बिलकुल नहीं।

तुमसे प्रगति करवानेके लिये, जान-बूझकर तुम्हें बीमारी दी जाती है? निश्चय ही चीज ऐसी नहीं है। यानी, तुम चीजको उलटकर कह सकते हो कि ऐसे लोग होते हैं जिनमें इतनी सतत अभीप्सा रहती है, जिनमें सद्भावना इतनी पूर्ण होती है कि उन्हें चाहे कुछ क्यों न हो, वे उसे प्रगति करनेके लिये मार्गकी कसौटी मान लेते हैं। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो बीमार होनेपर, उसे भगवान्‌की कृपाका प्रमाण मान लेते हैं जो उन्हें प्रगति करनेमें सहायता देती है। उन्होंने अपने-आपसे कहा: यह एक अच्छा लक्षण है, मैं अपनी बीमारीका कारण ढूंढ लूंगा और आवश्यक प्रगति करूंगा। मैं ऐसे कुछ लोगोंको जानती थी और वे खासे बढ़ते जाते थे। इसके विपरीत कुछ ऐसे होते हैं जो इस चीजका लाभ उठाना तो दूर रहा, जमीनपर एकदम चित लेट जाते हैं। यह है उनका दुर्भाग्य। लेकिन जब आदमी बीमार हो तो सच्ची मनोवृत्ति है यह कहना: "कोई चीज ठीक नहीं है; मैं देखने जा रहा हूं कि वह क्या है।" तुम्हें यह कभी न सोचना चाहिये कि भगवान्‌ने जान-बूझकर बीमारी भेजी है, क्योंकि तब तो वह बहुत ही अवांछनीय भगवान् होगा!

फिर भी, पानीमें कीटाणु तो होते ही हैं?

ये लोग ऐसी मानसिक, प्राणिक और भौतिक स्थितिमें होते हैं कि, मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, वे पानी पिये बिना भी बीमारी पकड़ लेंगे!

उनकी सारी सत्ता एक सतत असामंजस्य होती है, उनकी सारी भौतिक सत्ता। मेरा मतलब आंतरिक दृष्टिसे नहीं है, वे शायद वहां ठीक हों लेकिन जो एकदम ठीक होते हैं वे हर चीजका सामना कर सकते हैं।

और मैंने ठीक विपरीत चीज देखी है। मैंने इस देशमें, यहां ऐसे ग्रामीणोंको देखा है जिनके पास सिर्फ ऐसा पानी था जो पीने लायक पानी न रहा था, केवल कीचड़। मैंने उसे अपनी आंखोंसे देखा है। वह पीला-सा कीचड़ था जिसमें गौओंने स्नान किया था और बाकी सब कुछ किया था और रास्ता चलते लोग उसमेंसे होकर गुजरे थे। उन्होंने उसमें कूड़ा-कचरा फेंका था और वह सब कुछ उसमें था। और फिर मैंने इन लोगोंको देखा। वे उसमें घुसे, जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूं, पीला कीचड़ था और उस ओर, परले सिरेपर जरा-सा पानी था — वह पानी नहीं था, वह पीले-से रंगका था, जरा सुनो — वे जरा झुके, इस पानीको अपनी अंजलिमें लिया और पी गये। और कुछने तो इसे नितरनेका समय भी नहीं दिया। कुछ लोग जानते थे कि इसे नितारनेके लिये कौन-सी जड़ी-बूटी डालनी चाहिये, थोड़ी देर खड़े रहनेपर सब कुछ नीचे बैठ जाय तो यह पानी कुछ साफ हो जाता है। लेकिन कुछ ऐसे लोग थे जिन्हें कुछ भी नहीं मालूम था और वे इसे यूं ही पी जाते थे। तभी मुझे पता लगा कि उन्हीं दिनों वहां आस-पास हैजा फैला हुआ था। मैंने कहा, "और वहांके लोग उस तरहका पानी पीकर अब भी जिंदा हैं?" मुझे बताया गया: "हमारे यहां हैजेकी एक भी वारदात नहीं हुई...।" वे असंक्राम्य हो गये हैं, उनपर बीमारीका असर नहीं हो सकता, उन्हें आदत हो गयी है। लेकिन अगर अचानक उनमेंसे किसी एकको भी हैजा हो जाता तो सब-के-सब मर जाते; क्योंकि तब सभीके अंदर डर बैठ जाता और डरके आते ही प्रतिरोध न रहता, क्योंकि वे बेचारे दयनीय दरिद्र लोग थे। परंतु इन लोगोंकी भौतिक परिस्थितियों-की अपेक्षा नैतिक परिस्थितियां ज्यादा खराब हैं — नैतिक परिस्थितियां।

ऐसे साधु हैं, तुम जानते हो, जो अपने साधुपनेके कारण गंदे जीवनकी अवस्था स्वीकार करते हैं। वे कभी स्नान नहीं करते और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे जो चीजें जरूरी हैं उनमेंसे कोई चीज उनके पास नहीं होती। वे सचमुच गंदी स्थितिमें रहते हैं — और वे सब बीमारियोंसे अछूते रहते हैं। शायद इसलिये कि उनमें श्रद्धा होती है और वे जान-बूझकर ऐसा करते हैं। उनकी मनोदशा बहुत अच्छी होती है...। मैं निष्कपट लोगोंकी बात कर रही हूं, ढोंगियोंकी नहीं। उनमें श्रद्धा होती है और वे

अपने शरीरके बारेमें नहीं सोचते, वे अपनी अंतरात्माके जीवनके बारेमें ही सोचा करते हैं। उन्हें कोई बीमारी नहीं होती। उनमेंसे कुछ ऐसी स्थितिमें पहुंच जाते हैं जिसमें एक भुजा या एक पैर या शरीरका कोई और भाग उनकी तपस्याके कारण बिलकुल कड़ा हो जाता है। वे उसे बिलकुल हिलातक नहीं सकते; कोई और हो तो ऐसी स्थितिमें मर जाय; परंतु वे जीते रहते हैं, क्योंकि उनमें श्रद्धा होती है और वे यह किसी प्रयोजनसे करते हैं। यह ऐसी चीज है जो उन्होंने अपने ऊपर लगायी है।

इसलिये नैतिक अवस्था भौतिक अवस्थासे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। अगर तुम ऐसे वातावरणमें हो जहां सभी साफ-सुथरे रहते हैं और वहां तुम तीन दिन भी बिना नहाये रहो तो बीमार पड़ जाओगे। कहनेका मतलब यह नहीं कि तुम्हें नहाना नहीं चाहिये। हम साधु नहीं होना चाहते, हम योगी होना चाहते हैं। और ये दोनों चीजें एक ही नहीं हैं। और हम चाहते हैं कि शरीर भी योगमें भाग ले। इसलिये उसे स्वस्थ रखनेके लिये जो कुछ जरूरी है, वह हमें करना चाहिये। फिर भी, यह सब तुम्हें यह बतानेके लिये है कि नैतिक अवस्था भौतिक अवस्थासे बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त, ये लोग अपनी तपस्याके द्वारा अपना शरीर बिगाड़ लेते हैं, अपने-आपको यंत्रणाएं देते हैं। लेकिन कोई और यही चीजें करता तो लोग चीखते-चिल्लाते, विरोध करते और यह घोषणा कर देते कि वह राक्षस है। लेकिन इसे लोग अपनी पसंदसे करते हैं। और इसे बहुत आसानीसे सहा जा सकता है क्योंकि यह अपने-आप लगाया गया अनुशासन है और इसमें आदमी एक प्रकारकी महिमाका अनुभव करता है कि उसने कोई "विलक्षण" चीज कर ली है और की है मानवत जीवन प्राप्त करनेकी अभीप्साके साथ।

कोई और प्रश्न?

हां तो, मैंने तुमसे उस दिन कहा था कि मैं तुम्हें बीमारीके बारेमें बताऊंगी; मैंने आज ही उसके लिये सोचा था और कुछ टिप्पणियां तैयार की थीं। तुम कह सकते हो कि चीटाणु हैं, और फिर ऐसे लोग भी होते हैं जिन्हें बीमारीका ख्याल भी नहीं होती फिर भी बीमार हो जाते हैं। लेकिन किसी सूरतमें सोचना एकमात्र कारण नहीं है। फिर भी, अब मैंने टिप्पणियां तैयार की हैं, उन्हें समझानेकी कोशिश करूंगी। (माताजी एक आलेख देखती हैं।)

मैंने तुम्हें बताया है कि सभी रोग — बिना अपवादके — संतुलन भंग-

की अभिव्यक्ति होते हैं। लेकिन संतुलन-भंग कई प्रकारके होते हैं। अभी पहले, मैं केवल शरीरकी बात कर रही हूं, मैं स्नायविक रोगोंकी या प्राण और मनके रोगोंकी बात नहीं कर रही, उनकी बात हम पीछे देखेंगे। यहां हम इस बेचारे छोटे-से शरीरकी बात कर रहे हैं। और मैं कहती हूं, सभी रोग, चाहे कुछ क्यों न हो (मैं दुर्घटनाएं भी जोड़ दूं), संतुलन-भंगसे आते हैं। यानी, अगर तुम्हारे सभी अवयव, तुम्हारे शरीरके सभी भाग, सभी सदस्य, एक-दूसरेके साथ सामंजस्यमें हैं तो तुम पूर्ण स्वस्थ हो। लेकिन अगर कहीं जरा-सा भी असंतुलन है तो तुम तुरंत जरा-से अस्वस्थ या काफी बीमार हो सकते हो या बहुत बीमार हो सकते हो या कोई दुर्घटना भी हो सकती है। जब कभी आंतरिक असंतुलन होता है तो यह हमेशा होता है।

लेकिन फिर शरीरके संतुलनके साथ तुम्हें मन और प्राणका संतुलन भी जोड़ देना चाहिये। सब कुछ असंकाम्य रूपमें, बिना किसी दुर्घटना-के कर सकनेके लिये तुम्हारे अंदर सिहरा संतुलन होना चाहिये — मानसिक, प्राणिक और शारीरिक — केवल तीनों भागोंमें नहीं, बल्कि उन तीनों-के आपसी संबंधमें भी . . .। अगर तुमने थोड़ा-बहुत गणित सीखा है तो तुम्हें बताया गया होगा कि इसके कितने प्रकारके संचय हो सकते हैं और यह कितना कठिन काम है! समस्याकी चाबी इसीमें है। चूंकि संचय अनगिनत हो सकते हैं इसलिये रोगोंके कारण भी अगणित हैं। दुर्घटनाओंके कारण भी अनगिनत हैं। फिर भी, हम उनका वर्गीकरण करनेकी कोशिश करेंगे ताकि हम समझ सकें।

सबसे पहले, शरीरकी दृष्टिसे — केवल शरीरकी — दो प्रकारके असं-तुलन हैं: क्रियागत और कायिक। मुझे नहीं मालूम कि तुम इनका फर्क जानते हो या नहीं; तुम्हारे अवयव हैं और तुम्हारे शरीरके सभी भाग हैं: स्नायु, मांसपेशियां, हड्डियां और बाकी सब। अब, अगर कोई अवयव अपने-आपमें असंतुलित हो तो यह कायिक या अवयवगत असंतुलन है और तुमसे कहा जाता है कि अवयव बीमार है या वह बुरी तरह निर्मित है, या वह सहज-स्थितिमें नहीं है, उसके साथ कोई दुर्घटना हो गयी है। फिर भी वह अवयव अस्वस्थ है; लेकिन अवयव बिलकुल ठीक हालतमें हो सकता है, सभी अवयव बहुत अच्छी हालतमें हो सकते हैं, फिर भी बीमारी आ सकती है क्योंकि वे ठीक तरह काम नहीं कर रहे: क्रियामें असंतुलन है। तुम्हारा आमाशय बिलकुल ठीक हो सकता है; लेकिन अचा-नक उसे कुछ हो जाता है और वह ठीक तरह काम नहीं करता; या शरीर भी स्वस्थ हो सकता है, पर अचानक उसे कुछ हो जाता है और वह अच्छी-

भांति काम नहीं करता। ऐसी हालतमें कायिक नहीं, क्रियागत असंतुलन होता है।

साधारणतः, क्रियागत असंतुलनके कारण होनेवाले रोग ज्यादा आसानीसे और ज्यादा जल्दी ठीक हो सकते हैं। दूसरे रोग जरा ज्यादा गंभीर होते हैं। कभी-कभी वे बहुत गंभीर हो जाते हैं। तो अब देखनेके लिये दो क्षेत्र हो गये, लेकिन अगर तुम्हें अपने शरीरका थोड़ा-सा ज्ञान है, और इसके कामोंका अवलोकन करनेकी आदत है तो तुम जान सकते हो कि तुम्हारा असंतुलन किस तरहका है।

बहुधा जब तुम युवा हो और सामान्य जीवन बिता रहे हो तो शुद्ध रूपसे क्रियागत असंतुलन होता है। कुछ थोड़े-से बेचारे ऐसे होते हैं जिनके पैदा होनेसे पहले कोई दुर्घटना हो जाती है या कोई असंतुलन हो जाता है। ये लोग अपने साथ कुछ ऐसी चीज लाते हैं जिसे ठीक करना बहुत अधिक कठिन होता है (वह असाध्य नहीं होती, सिद्धांत रूपसे कोई भी चीज असाध्य नहीं है), वह अधिक कठिन होती है।

अच्छा। अब इस असंतुलनके, वह चाहे जैसा हो, कारण क्या हैं? जैसा कि मैंने तुम्हें अभी बताया, कारण अनगिनत होते हैं, क्योंकि, पहले तो सब आंतरिक कारण; यानी, जो तुम्हारे व्यक्तिगत हैं, और फिर सब बाहरी कारण, वे जो तुम्हारे पास बाहरसे आते हैं। यह दो विभाग हुए।

आंतरिक कारण :

हमने कहा है : तुम्हारे मस्तिष्क, फुफ्फुस, हृदय, आमाशय, यकृत आदि हैं। और हर एक सामान्य रीतिसे काम करता रहे और अगर सब मिलकर सामंजस्यके साथ निश्चित समयपर यथार्थ मार्गपर चलें (ध्यान रहे कि अगर तुम्हें इन सबके बारेमें सोचना पड़े तो यह बहुत जटिल हो जायगा और मुझे भय है कि तब चीजें सब समय ठीक तरह न चलेंगी। सौभाग्यवश, इसके लिये हमारे सचेतन विचारकी जरूरत नहीं होती), यह समझते हुए कि उनका आपसमें अच्छा संबंध है, वे अच्छे मित्र हैं जिनमें सूझ-समझ है और हर एक अपना काम ठीक तरहसे करता है, हर क्रिया ठीक समयपर होती है, सबके साथ ताल-मेलमें, न बहुत जल्दी न बहुत देरमें, न बहुत तेज न बहुत धीमे, वास्तवमें हर एक ठीक-ठीक चलता रहे तो तुम अद्भुत रूपसे स्वस्थ रहते हो! अब मान लो, उनमेंसे एक किसी-न-किसी कारणसे तुनक उठता है : वह अपना काम आवश्यक अंशके साथ नहीं करता, जरूरतके समय कुछ देरके लिये हड़ताल कर देता है। यह न समझो कि वह अकेला ही बीमार पड़ेगा : सारा शरीर ही गड़बड़ा जायगा और तुम पूरी तरह अस्वस्थ अनुभव करोगे। और अगर,

दुर्भाग्यवश, प्राणिक असंतुलन हो, कोई निराशा, कोई उग्र भावना, बहुत प्रबल आवेग या कोई ऐसी चीज हो जो तुम्हारे प्राणको उलट-पुलट देती है तो यह ऊपरसे और बढ़ जाता है। और इसपर यदि तुम्हारे विचार घूमते फिरें और तुम्हारे अंदर अंधेरी धारणाएं उठने लगें और तुम भयानक चीजोंकी रचना करने लगो, अनर्थकर रचनाएं बनाने लगो, तो इसके बाद तुम्हारा पूरी तरहसे बीमार पड़ना निश्चित है। तुम यह जटिलता देखते हो, देखते हो न, एक छोटी-सी चीज गलत रास्तेपर जा सकती है और आंतरिक छूतके कारण बहुत गंभीर परिणाम ला सकती है। इसलिये चीजोंको तुरंत वशमें करना अत्यंत आवश्यक है। तुम्हें सचेतन होना चाहिये, अपने अवयवोंकी कार्य-प्रणालीके बारेमें सचेतन होना चाहिये, उसके बारेमें जानकारी होनी चाहिये, जो ठीक व्यवहार नहीं कर रहा, उससे तुरंत यह कहना चाहिये कि अपने-आपको ठीक कर लो। जिस चीजकी जरूरत है (मैं तुम्हें पीछे समझाऊंगी) वह है उन्हें पाठ सिखाना, जैसे तुम बच्चोंको सिखाते हो। जब वे अस्वस्थ तरंगोंमें रस लेने लगें (सचमुच यही कहनेका समय है), तो तुम्हें उनसे कहना चाहिये : "नहीं, तुम इस तरह काम नहीं कर सकते, दूसरी तरहसे करो।" मान लो, तुम्हारा हृदय पागलकी तरह धड़कने लगे तो तुम्हें उसे शांत करना चाहिये। तुम उससे कहो कि काम करनेका तरीका यह नहीं है और (सिर्फ उसकी सहायता करनेके लिये), लंबी-लंबी लयबद्ध सांस लेना शुरू करो। यानी, फेफड़ा दिलका परामर्शदाता बन जाय और उसे ठीक तरह काम सिखाये। इसी तरह और भी। मैं तुम्हें अनगिनत उदाहरण दे सकती हूं।

ठीक है। तो हम कहते हैं कि सत्ताके विभिन्न भागोंमें असंतुलन है, उनकी क्रियाओंमें असामंजस्य है। मैंने अभी यही कहा है। और फिर आंतरिक संघर्ष होते हैं। ये झगड़े हैं। तुम्हारे अपने अलग-अलग भागोंमें आंतरिक झगड़े। मान लो, एक अवयव (यह प्रायः होता है) को आरामकी जरूरत होती है और दूसरा कार्य चाहता है और दोनों एक ही साथ। तुम इसे कैसे संभालोगे? वे दोनों झगड़ने लगते हैं। अगर तुम एकका चाहा करो तो दूसरा विरोध करता है। उनमें सामंजस्य लानेके लिये तुम्हें कोई बीचका रास्ता ढूंढना पड़ता है। और तब, कभी-कभी तुम भौतिकके साथ प्राणिक और मानसिकको भी जोड़ दो (मैं चिंतनशील मन या स्वतंत्र प्राणकी बात नहीं कह रही, मैं शरीरके मानसिक और प्राणिक भागकी बात कह रही हूं, क्योंकि भौतिक प्राण और भौतिक मन भी होता है। एक भौतिक मन होता है और भौतिक मन सबसे बुरा होता है। वही हमेशा चलता रहता है और उसे रोकनेमें तुम्हें बहुत

अधिक कष्ट होता है: वह चलता, चलता जाता है); हां, अगर मन, प्राण और शरीरमें आपसमें झगड़ा हो तो तुम्हारे अंदर युद्ध-क्षेत्र बन जाता है और यह युद्ध-क्षेत्र सभी संभव बीमारियोंका कारण बन सकता है। उनमें भयानक युद्ध होता है। एक कुछ चाहता है, दूसरा नहीं चाहता, वे झगड़ते हैं और तुम एक प्रकारके आंतरिक बवंडरमें आ जाते हो। इससे तुम्हें ज्वर आ सकता है — प्रायः आ जाता है — या एक आंतरिक कंपकंपी होती है जिसे तुम रोक नहीं सकते। सभी बीमारियोंके लिये सबसे महत्त्वपूर्ण कारण है शरीरका बेचैन होना; शरीर कांपता है और कंपकंपी बढ़ती जाती है, और अधिक बढ़ती है और तुम्हें लगता है अब कभी संतुलन न आ सकेगा। वह तुमसे कतरा रहा है। उस दशामें तुम्हें जानना चाहिये कि झगड़ा किस बारेमें है, झगड़ेका कारण क्या है और तब अपने अंदरके लोगोंमें मेल-मिलाप करानेकी कोशिश करो।

ये सब क्रियागत अव्यवस्थाएं असंतुलन हैं।

दूसरी तरहके असंतुलन हैं जो न्यूनाधिक रूपमें उसके मार्ग हैं जिसकी तुम अभी बात कर रहे थे। तुम्हारे अंदर एक अभीप्सा है (अब मैं उन लोगोंकी बात कर रही हूं जो योग करते हैं या यह जानते हैं कि आध्यात्मिक जीवन क्या है और उस पथपर चलनेकी कोशिश करते हैं), तुम्हारे अंदर एक भाग है — या तो मनके अंदर या प्राणके अंदर या कभी-कभी शरीरके अंदर — जो अच्छी तरह समझ गया है, जिसमें बहुत अभीप्सा है, जिसमें विशेष अभिरुचि है, जो शक्तिको अच्छी तरह ग्रहण करता है और बड़ी प्रगति करता है। फिर दूसरे हैं जो कर ही नहीं सकते, चाहते ही नहीं (यह बहुत खराब है), कुछ और हैं जो चाहते तो हैं बहुत, पर कर नहीं सकते, जिनमें क्षमता नहीं है, जो तैयार नहीं हैं। अतः कुछ चीज़ उठती है और कुछ अपने स्थानसे हिलतीतक नहीं। इससे एक भयानक असंतुलन पैदा हो जाता है और साधारणतः यह अपने-आपको किसी-न-किसी बीमारीमें अनूदित कर लेता है क्योंकि तुम आंतरिक तनावकी ऐसी अवस्थामें होते हो जिसमें एक चीज कर नहीं सकती, अड़ जाती है, जो हिलना ही नहीं चाहती और दूसरी गति करना चाहती है। इससे एक भयंकर बेचैनी पैदा हो जाती है और साधारणतः उसका परिणाम होता है बीमारी।

अब इससे उलटी या लगभग उलटी स्थिति है, यानी, सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है, प्रगति होती है, बढ़ते हुए संतुलनके साथ आगे बढ़ते हो, और असाधारण प्रगति होती है। तुम्हें लगता है कि तुम बहुत अधिक अनुकूल स्थितिमें हो; सब कुछ ठीक चलता है, तुम अपने-अपको बड़ी

ज्ञानके साथ मार्गपर बढ़ा हुआ देखते हो ... । धमाका ! और तुम बीमार हो जाते हो। अब तुम कहते हो: "यह कैसे ? मैं इतनी अच्छी स्थिति-में था, और यह लो, बीमार पड़ गया। यह ठीक नहीं है।" लेकिन इसका कारण यह है कि तुम पूरी तरह सचेतन न थे। तुम्हारी सत्ताका एक छोटा-सा भाग हिलना नहीं चाहता था। साधारणतः यह प्राणकी कोई चीज होती है; कभी-कभी यह कोई छोटी-सी मानसिक रचना होती है जो साथ देनेसे इंनकार करती है; कभी-कभी यह केवल शरीरकी ही कोई चीज होती है जो बहुत अधिक तामसिक है, जिसका जरा भी हिलनेका इरादा नहीं है, जो चाहती है कि चीजें वैसी ही बनी रहें जैसी कि वे चली आ रही हैं। यह चीज पीछे खींचती है, यह स्वेच्छासे अलग हो जाती है, और स्वभावतः वह कितनी भी छोटी क्यों न हो, वह सत्ता-में एक ऐसा असंतुलन पैदा कर देती है कि तुम बीमार पड़ जाते हो। और फिर तुम अपने-आपसे कहते हो: "यह सचमुच बड़े दुःखकी बात है, मैं इतनी अच्छी तरह चल रहा था, यह ठीक बात नहीं है ! सचमुच भग-वान् अच्छे नहीं हैं ...! जब मैं इतनी प्रगति कर रहा हूं तो उन्हें मुझे बीमार होनेसे बचाना चाहिये था!" .... बात ऐसी है।

अब, और भी चीजें हैं। तुम अपनी क्षमताके अनुपातमें योग करते हो। तुमसे कहा गया है: "तुम अपने-आपको खोलो, तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी।" तुमसे कहा गया है: "श्रद्धा और सद्भावनाकी स्थितिमें रहो तो तुम प्रगति करोगे।" और तुम सचमुच चेतनामें नहाते हो, तुम शक्तिमें नहाते हो, संरक्षणमें नहाते हो और तुम्हारे अंदर जितनी श्रद्धा होगी, तुम जितने खुलोगे उसी अनुपातमें तुम्हें यह सब मिलेगा और इस-से तुम्हें ठीक रहनेमें सहायता मिलेगी। तुम छोटे-मोटे आंतरिक असंतुलन-को अस्वीकार कर सकोगे और वह आ भी जाय तो तुम फिर से व्यवस्था स्थापित कर सकोगे और तुम छोटे-मोटे आक्रमणों या आ सकने-वाली दुर्घटनाओंसे सुरक्षित रहोगे। लेकिन अगर तुम्हारी सत्ताके किसी भागमें — तुम्हारे शरीरमें या तुम्हारे प्राणमें या मनमें भी, कई भागोंमें या केवल एकमें ही — उतरती हुई शक्तिको ग्रहण करनेकी अक्षमता है तो वह मशीनमें रेतका काम देगी। तुम जानते हो; एक सुन्दर-सी मशीन जो अच्छी तरह चलती है, सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है, तुम उसमें जरा-सी रेत डाल दो (कुछ नहीं, बस रेतका एक कण), अचानक सब कुछ बिगड़ जाता है और मशीन रुक जाती है। हां, तो ग्रहणशीलताका कहीं-पर जरा-सा अभाव, कोई ऐसी चीज जो शक्तिको ग्रहण न कर सके, जो इस तरह पूरी-पूरी बंद हो (देखनेपर वह कहीं एक छोटे-से काले बिंदु

जैसी हो जाती है, एक छोटी-सी, पत्थर जैसी सख्त चीज जिसे शक्ति भेद नहीं सकती, वह उसे ग्रहण करनेसे इनकार करती है — या तो वह कर नहीं सकती या करना नहीं चाहती), और तुरंत इससे एक बड़ा असंतुलन पैदा हो जाता है। और वह चीज जो उठ रही थी, है न, जो इतनी अच्छी तरह खिल रही थी, बीमार हो जाती है, और कभी-कभी ठीक ऐसे समय जब तुम पूरे संतुलनमें थे, सब कुछ ठीक चल रहा था और शिकायतका कोई मौका न था। एक दिन जब तुम कोई नया विचार ग्रहण पाये हो, जब तुम्हें कोई नयी प्रेरणा मिली है, तुम्हारे अंदर बड़ी अभीप्सा जागी है और महान् शक्ति प्राप्त हुई है, जब तुम्हें एक अद्भुत अनुभूति हुई है, एक ऐसी सुन्दर अनुभूति जो तुम्हारे अंदरके द्वार खोल देती है, जो तुम्हें ऐसा ज्ञान देती है जो पहले प्राप्त न था, तभी जब तुम्हें विश्वास है कि सब कुछ ठीक चल रहा है...। दूसरे ही दिन तुम बीमार पड़ जाते हो। तब तुम कहते हो: "फिरसे यह? यह असंभव है! यह तो नहीं होना चाहिये।" लेकिन यह बस वही चीज है जिसे मैंने "रेतका कण" बतलाया है। कोई ऐसी चीज थी जो ग्रहण न कर सकती थी; तुरंत उसने असंतुलन पैदा कर दिया। बहुत ही छोटी-सी चीज भी काफी होती है, और तुम बीमार पड़ जाते हो।

तो तुम देखते हो यहां कारण थे! — बहुत-से कारण, अनगिनत कारण। क्योंकि ये सब चीजें एक असाधारण जटिलतामें इकट्ठी हो जाती हैं। और इसे जाननेके लिये, बीमारीको ठीक करनेके लिये तुम्हें उसका कारण जानना चाहिये, उसका कीटाणु नहीं। क्योंकि देखा यह जाता है (क्षमा करना, मैं आशा करती हूं कि यहां कोई डाक्टर नहीं है), देखा यह जाता है कि जब कीटाणु मिल जाते हैं तो उन कीटाणुओंको मारनेके लिये बड़ी अच्छी-अच्छी दवाइयोंका आविष्कार किया जाता है, लेकिन ये औषधियां कुछ लोगोंको तो स्वस्थ बना देती हैं और कुछ को और अधिक बीमार कर देती हैं। कोई नहीं जानता कि क्यों...। शायद मैं जानती हूं कि क्यों। क्योंकि रोगका शुद्ध भौतिक कारणके अतिरिक्त कोई और कारण था। वह कोई और कारण था। यह किसी और अव्यवस्थाकी बाह्य अभिव्यक्ति थी। जबतक तुम उसे न छू सको, जबतक तुम उस अव्यवस्थाको न खोज सको तबतक तुम उस बीमारीको सिर उठानेसे कभी न रोक सकोगे और उस अव्यवस्थाको जाननेके लिये तुम्हारे अंदर गहरा गुह्य ज्ञान होना चाहिये और हर एकके सभी आंतरिक कार्योंका विशाल ज्ञान होना चाहिये।

हां, तो हमने बहुत संक्षेपमें, बहुत तेजीसे, सभी आंतरिक कारण देख

लिये। अब कुछ बाहरी कारण भी हैं जो चीजको ज्यादा जटिल बना देते हैं।

अगर तुम किसी पूरी तरह सामंजस्यपूर्ण वातावरणमें होते जहां सब कुछ पूर्ण रूपसे सद्भावनासे भरा होता, तो स्वभावतः तुम अपने अंदर वही लेते। परंतु जो कठिनाई अंदर है वही बाहर भी है। तुम एक हदतक, आंतरिक संतुलन स्थापित कर सकते हो, लेकिन तुम एक ऐसे वातावरणमें रहते हो जो असंतुलनसे भरा है। जबतक कि तुम एकदम अलग-थलग, एकांतवासमें न हो (जो सिर्फ कठिन ही नहीं, हमेशा बहुत वांछनीय भी नहीं होता), तबतक तुम बाहरसे आनेवाली चीजोंको लेनेके लिये बाधित हो। तुम देते हो और तुम लेते हो; तुम सांस लेते हो और आत्मसात् करते हो। इससे एक मिश्रण तैयार हो जाता है। इसीसे हम कह सकते हैं कि हर चीज छुतहा है, क्योंकि तुम सतत स्पंदनकी अवस्थामें रहते हो। तुम अपने स्पंदन पैदा करते हो और दूसरोंके स्पंदन ग्रहण करते हो। और ये स्पंदन बहुत जटिल प्रकारके होते हैं। और फिर (हम भाषाकी सरलताके लिये कह लें) मानसिक स्पंदन हैं, प्राणिक स्पंदन हैं, भौतिक स्पंदन हैं और ऐसे ही और बहुत-से हैं। तुम देते हो और तुम लेते हो, तुम देते हो और तुम लेते हो। यह खेल निरंतर चलता रहता है। अगर यह मान भी लिया जाय कि दुर्भावना नहीं है तो भी आवश्यक रूपसे छूत तो है ही। और जैसा कि मैंने अभी कहा है, हर चीज छुतहा है, सब कुछ। तुम किसी दुर्घटनाका परिणाम देखते हो। तुम कुछ स्पंदन अपने अंदर सोख लेते हो। और अगर तुम बहुत ज्यादा संवेदनशील हो, और इस मामलेमें तुम भयभीत हो गये या तुम्हारे अंदर जुगुप्सा पैदा हुई (दोनों एक ही हैं, जुगुप्सा भौतिक भयकी नैतिक अभिव्यक्ति है), तो दुर्घटना तुम्हारे शरीरमें भौतिक रूपमें अनूदित हो सकती है। स्वभावतः, तुमसे कहा जायगा कि ये स्नायविक असंतुलन-वाले लोगोंकी प्रतिक्रियाएं हैं। लेकिन बात ठीक ऐसी नहीं है। ये ऐसे लोग हैं जिनका प्राण कहींपर बहुत अधिक संवेदनशील है, बस। और इसके विपरीत यह हमेशा हीनताका प्रमाण नहीं होता! क्योंकि, आदमी आध्यात्मिक दृष्टिसे जितनी प्रगति करता है, उसी हिसाबसे उसकी स्नायुओं-में कुछ अधिक संवेदनशीलता पैदा हो जाती है और अगर साथ-ही-साथ स्नायुओंपर तुम्हारा अधिकार भी न बढ़े तो नाना प्रकारकी अप्रिय चीजें हो सकती हैं।

लेकिन केवल वही बात नहीं है।

लेकिन दुर्भाग्यवश दुनियामें बहुत सारी दुर्भावनाएं हैं। इनमेंसे छोटी-

छोटी अज्ञान और मूर्खतासे आती हैं, फिर बड़ी हैं जो शरारतसे आती हैं और भयंकर हैं जो भगवान्-विरोधी शक्तियोंका परिणाम होती हैं। यह सब वातावरणमें रहता है, (मैं तुम्हें यह बातें इसलिये नहीं बता रही कि तुम डर जाओ, यह तो जानी हुई बात है कि तुम्हें किसी चीजसे नहीं डरना चाहिये — फिर भी स्थिति ऐसी है), और ये चीजें तुम्हारे ऊपर आक्रमण करती हैं, कभी-कभी जान-बूझकर, स्वेच्छासे और कभी अनजाने, अनिच्छासे। अनिच्छासे, यह दूसरोंके द्वारा होता है : दूसरोंपर आक्रमण होता है, उन्हें पता नहीं होता और वे उसे जाने-देखे बिना आगे चला देते हैं। वे पहले शिकार होते हैं। वे बीमारीको दूसरेतक पहुंचा देते हैं, लेकिन स्वेच्छासे, जान-बूझकर किये गये आक्रमण होते हैं। उस दिन हम लोग मानसिक रचनाओंकी और दुष्ट लोगोंकी बात कर रहे थे जो तुम्हें तकलीफ पहुंचानेके लिये मानसिक रचनाएं बनाते हैं, जो उन्हें जान-बूझकर, स्वेच्छासे बुरा करनेके लिये ही बनाते हैं। और फिर ऐसे भी हैं जो इन-से भी एक कदम आगे हैं।

एक विकृत और भ्रष्ट गुह्य ज्ञान है जिसे लोग काला जादू कहते हैं। यह ऐसी चीज है जिसे तुम्हें कभी न छूना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्यवश, ऐसे लोग हैं जो इसे शरारतके लिये ही हस्तगत करते हैं। यह न सोचो कि यह एक भ्रम है, एक अंधविश्वास है : यह एक सच्ची चीज है। ऐसे लोग हैं जिन्हें जादू करना आता है और वे अपने जादूके द्वारा बिलकुल घृणित परिणाम लाते हैं ...। यह जानी हुई बात है कि जब तुम्हारे अंदर भय न हो, यदि तुम संरक्षणमें रहो तो तुम सुरक्षित रहते हो। लेकिन प्रश्न "जब" का है, यह एक शर्त है और अगर तुम इसे पूरा न करो तो बहुत अप्रिय चीजें हो सकती हैं। जब तुम अपनी शक्ति और पवित्रताकी स्थितिमें होते हो — यानी, अजेय स्थितिमें होते हो — उस समय अगर कोई तुम्हारे विरुद्ध कुछ करे तो वह अनायास ही उसीके ऊपर जा गिरेगी, जैसे जब तुम टेनिसकी गेंद दीवारसे मारो तो वह तुम्हारे पास वापस आती है। यह चीज ठीक उसी तरह वापिस आती है, कभी-कभी ज्यादा जोरके साथ। और उन्हें उसीसे दंड मिल जाता है जिसके विरुद्ध उन्होंने अपराध किया। लेकिन यह उसपर निर्भर है जिसके विरुद्ध जादू किया गया है, उसकी शक्ति और आंतरिक पवित्रतापर निर्भर है ...। ये ऐसी चीजें हैं जिनके बारेमें मैं कह चुकी हूं। इस प्रकार-के बहुत-से उदाहरण हैं। और इसका प्रतिरोध करनेके लिये, जैसा कि मैंने कहा, तुम्हें प्राण लोकका सैनिक होना चाहिये, यानी, प्राणमें आध्या-त्मिक सैनिक होना चाहिये। उन सबको जो निष्कपट-भावसे योग करते

हैं, यह बन जाना चाहिये और वे सैनिक बन जायं तो पूरी तरह सुरक्षित होंगे। लेकिन यह बननेकी शर्तोंमेंसे एक है — औरोंके प्रति कभी कोई दुर्भावना या बुरा विचार न होना। क्योंकि यदि तुम्हारे अंदर कोई बुरा भाव या दुर्भावना या बुरा विचार हो तो तुम अपने-आपको उन्हींके धरातलपर रख देते हो और जब अपने-आपको उन्हींके धरातलपर रख दो तो, तुम उनके प्रहार भी पा सकते हो।

अब, इस हदतक गये बिना, भौतिक वातावरणमें, पृथ्वीके वातावरणमें, छोटी-छोटी बहुत-सी सत्ताएं हैं जिन्हें तुम नहीं देखते, क्योंकि तुम्हारी दृष्टि बहुत सीमित है, लेकिन वे तुम्हारे वातावरणमें डोलती फिरती हैं। उनमें ऐसी भी हैं जो बहुत अच्छी हैं और ऐसी भी हैं जो बहुत दुष्ट हैं। साधारणतः ये छोटी-छोटी सत्ताएं प्राणिक सत्ताओंके विघटनसे पैदा होती हैं — ये गंदा करती हैं — ये काफी अप्रिय चीजोंका ढेर लगा देती हैं। ऐसी सत्ताएं भी होती हैं जो बहुत अच्छी चीजें करती हैं। मेरा ख्याल है कि मैं उन छोटी सत्ताओंकी कहानी सुना चुकी हूं जिन्होंने मेरी साड़ी खींचकर यह बताया था कि दूधमें उफान आनेको है और उसे उफन जानेसे बचानेके लिये मुझे जाकर देखना चाहिये। लेकिन ये सब सत्ताएं इतनी अच्छी नहीं होतीं। ऐसी भी होती हैं जो छोटे-मोटे धूर्ततां-भरे प्रहसन करती हैं, शरारत-भरे प्रहसन करती हैं। और बहुत बार ये दुर्घटनाके पीछे होती हैं। इन्हें छोटी दुर्घटनाएं बहुत अच्छी लगती हैं। इन्हें वह कोलाहल पसंद होता है जो दुर्घटनाके साथ आता है: बहुत लोग इकट्ठे हो जाते हैं और इनका मनोरंजन होता है! और फिर इससे उन्हें पोषण मिलता है, क्योंकि असलमें ये आवेग और उत्तेजनामें बाहर निकली हुई मानव ऊर्जाका ही भोजन करती हैं। इसलिये ये कहती हैं: एक छोटी-सी दुर्घटना, बहुत अच्छा, बहुत सारी दुर्घटनाएं! ...

और फिर इन्हीं छोटी सत्ताओंका एक दल होता है, वे आपसमें झगड़ सकती हैं, इनका आपसका जीवन बहुत शांतिमय नहीं होता: ये लड़ती-झगड़ती हैं, नष्ट-भ्रष्ट करती हैं। उखाड़ फेंकती हैं और यही कीटाणुओंका मूल है। वे विघटनकी शक्तियां हैं। लेकिन वे अपने विविध रूपोंमें जीवित रहती हैं और यही कृमियों और कीटाणुओंका मूल है। अधिकतर कीटाणुओंके पीछे दुर्भावना होती है और यही उन्हें इतना भयंकर बना देती है। और जबतक तुम इस दुर्भावनाके प्रकारको और गुणोंको न जान लो और उनपर क्रिया न कर सको, तबतक निन्यानवे प्रतिशत संभावना यही है कि तुम उसकी सच्ची और संपूर्ण चिकित्सा न खोज पाओगे। कीटाणु सूक्ष्म भौतिक जगत्‌की किसी जीवंत चीजकी स्थूल

भौतिक अभिव्यक्ति हैं। इसीलिये, जैसा कि मैंने यहां कहा है,[1] वही कीटाणु वर्षों तुम्हारे चारों ओर, तुम्हारे अंदर बने रहते हैं और तुम्हें बीमार नहीं करते। और फिर अचानक तुम्हें बीमार कर देते हैं।

एक और कारण भी है, जब विसंगति होती है, विरोधी शक्तियोंके प्रति ग्रहणशीलता होती है, जो कीटाणुओंका मूल और आश्रय है। मैं तुम्हें एक कहानी सुनाती हूं। पता नहीं मैंने पहले सुनायी है या नहीं। अभी इसलिये सुनाती हूं कि इससे तुम्हें एक दृष्टांत मिलेगा।

मैं जापानमें थी। यह १९१९ की जनवरीके शुरूकी बात है। सारे जापानमें भयंकर इनफ्लुएंजा फैला हुआ था; उससे लाखों आदमी मर रहे थे। यह एक विरल महामारी थी। टोकियोमें रोज ही सैंकड़ों नयी वारदातें होती थीं। बीमारी इस रूपमें आती थी: वह प्रायः तीन दिन रहती थी और तीसरे दिन मौत आ जाती थी। लोग इस तरह मर रहे थे कि उन्हें जलाना भी असंभव था — इतने अधिक थे। और अगर रोगी तीसरे दिन न मरता तो सातवें दिन ठीक हो जाता था। जरा-सी थकान रहती, लेकिन बाकी सब ठीक हो जाता। सारे शहरमें त्रास फैला हुआ था, क्योंकि जापानमें महामारियां बहुत ही कम आती हैं। वे बहुत साफ-सुथरे, बहुत गंभीर और साहसी लोग हैं। उनके यहां बीमारियां बहुत कम ही आती हैं। लेकिन अब यह विभीषिका आ गयी थी। एक भयानक भय छा गया था। उदाहरणके लिये, लोग सड़कपर चलते समय नाकपर नकाब-सी पहने रहते थे ताकि वे जिस हवामें सांस लें वह कीटाणुओंसे भरी न हो। एक व्यापक भय फैला हुआ था...। हां, मैं जिनके साथ रहती थी वे यह पूछते न थकते थे: "आखिर यह बीमारी है क्या? इसके पीछे क्या है?" लेकिन मैंने क्या किया, मैंने अपने-आपको अपनी शक्तिसे, अपने संरक्षणसे ढक लिया ताकि मुझे रोग न होने पाये और इससे अधिक उसके बारेमें कुछ न सोचती थी, अपने काम-में लगी रहती थी। मुझे कुछ नहीं हुआ और मैंने उसके बारेमें सोचा भी नहीं। लेकिन वह व्यक्ति बार-बार कहता: "यह क्या है? मैं जानना चाहूंगा कि इस बीमारीके पीछे क्या है। क्या आप मुझे बता सकती हैं कि यह बीमारी क्या है, यह बीमारी क्यों है?..." आदि। एक दिन एक परिचित युवतीने मुझे अपने घर बुलाया। वह शहर-के दूसरे छोरपर रहती थी। वह मुझे अपने कुछ मित्रोंसे मिलाना चाहती थी और कुछ चीजें दिखाना चाहती थी (अब मुझे ठीक याद नहीं है कि

---

[1] प्रश्न और उत्तर १९२९ (१९ मई)

क्या बात थी। मुझे उस दिन ट्रामसे सारे शहरको पार करना पड़ा)। मैं ट्राममें बैठी देख रही थी कि सभी अपनी-अपनी नाकपर नकाब लगाये बैठे हैं और वायुमंडलमें एक निरंतर भय भरा है। उस समय यह विचार आया; मैंने अपने-आपसे पूछना शुरू किया: "आखिर, यह बीमारी है क्या? इस बीमारीके पीछे क्या है? इस बीमारीमें कौन-सी शक्तियां काम कर रही हैं? ..." मैं उसके घर पहुंची और घंटा-भर रहकर लौट आयी। और मैं बहुत तेज बुखारके साथ घर लौटी। मैं रोगकी पकड़में थी। यह इसी तरह, बिना तैयारीके, अचानक आता था। बीमारियां, साधारण कृमियों और कीटाणुओंकी बीमारियां शरीरमें कुछ दिन रहती हैं: वे आती हैं, शरीरमें छोटा-मोटा आंतरिक युद्ध होता है; तुम्हारी जीत होती है या हार होती है, तुम हार जाओ तो बीमारीकी पकड़में आ जाते हो, वह पेचीदा नहीं होता। लेकिन यहां, तुम्हारे पास एक चिट्ठी आती है, तुम लिफाफा खोलते हो और लो! फड़ाकसे, अगले ही क्षण तुम्हें बुखार हो जाता है। हां, तो शामको मुझे भयानक बुखार था। डाक्टर बुलाया गया (मैंने नहीं बुलाया था उसे), डाक्टर बुलाया गया और उसने मुझसे कहा: "यह एकदम जरूरी है कि मैं आपको अमुक दवाई दूं।" यह बुखारकी सबसे अच्छी दवाइयोंमेंसे थी और अब बहुत ही कम बच रही थी। उसके पास यह दवाई समाप्त हो चली थी क्योंकि सभी इसे खा रहे थे। उसने कहा: "मेरे पास कुछ पुड़ियां बची हैं जो मैं आपको दूंगा।" —"मेहरबानी करके यह दवाई मुझे मत दीजिये। मैं उसे न लूंगी। उसे किसी ऐसेके लिये रख लीजिये जिसे इसपर विश्वास हो और जो इसे ले।" वह बहुत नाराज हो गया और बोला: "तो मेरे यहां आनेका कोई लाभ नहीं" मैंने कहा: "शायद कोई लाभ नहीं!" और मैं अपने बिस्तरपर पड़ी रही। मुझे बुखार था, बहुत तेज बुखार। सारे समय मैं अपने-आपसे पूछती रही: "यह बीमारी है क्या? यह बीमारी क्यों है? इसके पीछे क्या है? ..." दूसरे दिनके अंतमें, मैं अकेली लेटी हुई थी। मैंने स्पष्ट रूपसे एक सत्ताको देखा जिसके सिरका कुछ भाग कटा हुआ था। वह फौजी वर्दीमें था (या फौजी वर्दीके बचे-खुचे भागमें), वह एकदम मेरी छातीपर आ गिरा, इसी तरह, आधे सिरके साथ ही आ गिरा और मेरी शक्ति चूसने लगा। मैंने अच्छी तरह देखा, फिर मुझे ऐसा लगा मानों मैं मरनेकी तैयारीमें हूं। वह मेरी सारी जीवन-शक्तिको खींच रहा था (मुझे तुम्हें यह बता देना चाहिये कि लोग तीसरे दिन निमोनियासे मर जाया करते थे)। मैं बिना हिले-डुले बिस्तरके साथ चिपकी रही। मैं गहरी समाधिमें थी। मैं हिल

भी न सकती थी और वह खींच रहा था। मैंने सोचा : बस, अब अंत है। मैंने अपनी गुह्य शक्तिको लगाया और उसका अच्छी तरह सामना किया, मैं उसे पीछे धकेल सकी ताकि वह वहां न रह सके। और मैं जाग गयी।

लेकिन मैंने काफी देख लिया, मैंने समझ लिया कि यह बीमारी उन सत्ताओंसे आ रही है जो शरीरसे निकाल फेंकी गयी हैं।

मैंने इस बातको पहले महायुद्धके समय देखा था, पहले महायुद्धके लगभग अंतमें जब लोग खंदकोंमें रहते थे और बमबारीसे मर जाते थे। वे स्वस्थ होते थे, बिल्कुल ठीक होते थे और क्षण-भरमें अपने शरीरसे अलग कर दिये जाते थे। वे नहीं जानते थे कि वे मर गये हैं, वे नहीं जानते थे कि अब उनका शरीर नहीं रहा। वे जिस जीवनको अपने अंदर नहीं पा सकते थे उसे दूसरोंमें खोजनेकी कोशिश करते थे। दूसरे शब्दोंमें, वे अनगिनत प्रेतोंमें बदल गये थे। वे दूसरोंका खून चूसते थे। और इसके अतिरिक्त जो लोग बीमार होकर मर गये थे उनकी प्राणिक शक्तियोंकी सड़न भी थी। वे प्रेत एक प्रकारके चिपचिपे, घने कोहरेमें निवास करते थे जो इस सबसे बना था। वे सब जो इस कोहरेको अपने अंदर लेते बीमार पड़ जाते थे और सामान्यतया ठीक भी हो जाते थे, किंतु जिन लोगोंपर इस प्रकारकी सत्ता आक्रमण करती, वे निश्चित ही मर जाते; वे प्रतिरोध नहीं कर सकते थे। मैं जानती थी कि उनका प्रतिरोध करनेके लिये कितने अधिक ज्ञान और शक्तिकी आवश्यकता मुझे पड़ेगी। उनका प्रतिरोध करना असंभव-सा था। क्योंकि जब कोई सत्ता, जो इन बुरी शक्तियोंके बवंडरका केंद्र होती, उनपर आक्रमण करती तो वे मर ही जाते थे; और अवश्य ही ऐसी सत्ताओंकी बहुत, बहुत बड़ी संख्या वहां रही होगी। मैंने यह सब देखा और समझ लिया था।

जब कोई मुझे देखनेके लिये आता तो मैं उससे कहती कि मुझे अकेला छोड़ दो। मैं चुपचाप अपने बिस्तरपर लेटी रहती और दो-तीन दिन मैंने पूर्ण शांतिमें, एकाग्रतामें अपनी चेतनाके साथ गुजारे। इसके बाद हमारा एक मित्र (एक जापानी, हमारा बड़ा अच्छा मित्र) आया और उसने मुझसे कहा : "ओह! आप बीमार थीं? जो मैंने सोचा था वह ठीक निकला . . .। देखो तो, पिछले दो-तीन दिनसे शहरमें कोई भी व्यक्ति इस रोगसे ग्रस्त नहीं हुआ, और जो लोग बीमार थे उनमेंसे अधिकांश अच्छे हो गये हैं और मृतकोंकी संख्या भी नहींके बराबर हो गयी है, और अब यह सब समाप्त हो गया है। रोग पूरी तरहसे नियंत्रणमें आ

गया है।" और तब मैंने उसे वह सब बताया जो कुछ मेरे साथ घटा था, उसने जाकर यह बात सबको बता दी; बल्कि उन्होंने अखबारोंमें भी इस विषयपर कई लेख निकाले।

हां, तो निश्चय ही, चेतना औषधिकी पुड़ियोंसे अधिक फलप्रद है न! अवस्था बड़ी शोचनीय थी। जरा कल्पना करो, ऐसे पूरे-के-पूरे गांव थे, जहां सब-के-सब मर गये थे। जापानमें एक गांव था, बहुत बड़ा तो नहीं, फिर भी कुछ सौ लोग तो वहां रहते ही थे। एक बार ऐसा हुआ कि वहां किसीकी चिट्ठी आयी, कुछ विशेष बात थी (डाकिया वहां केवल तभी जाता था जब कि उसे किसीकी चिट्ठी देनी होती थी; सचमुच ही वह गांव काफी दूर, अंदरकी ओर था); वह डाकिया वहां गया। उन दिनों वहां बर्फ पड़ रही थी। समूचा गांव ही बर्फमें दबा पड़ा था... एक भी प्राणी वहां जीवित नहीं था! यहां भी स्थिति ठीक ऐसी ही थी। यह महामारी भी ठीक इसी प्रकारकी थी। और टोकियोकी भी यही अवस्था थी; किंतु क्योंकि वह एक बड़ा शहर था, वहां बिलकुल ऐसा ही नहीं हुआ। इस प्रकार इस महामारीका अंत हुआ। यही है मेरी कहानी।

इस सबसे हम अब स्वभावतः इलाजपर आ जाते हैं। यह सब बड़ा अच्छा है, अब हमें ज्ञात हो गया है; पहले तो यह कि रोगोंको होनेसे कैसे रोका जाय, और जब वह हो ही जाय तो उसे दूर कैसे किया जाय?

व्यक्ति साधारण इलाज कर सकता है और कई बार इसमें सफलता मिल भी जाती है। पर ऐसा सामान्यतया तभी होता है जब शरीरको यह पूरा विश्वास हो जाता है कि उसे ऐसी अवस्थाएं प्रदान कर दी गयी हैं जिनमें उसे स्वस्थ हो जाना चाहिये। और वह निश्चय कर लेता है कि उसे अब ठीक होना है, इस प्रकार वह ठीक हो जाता है। किंतु यदि तुम्हारे शरीरमें संकल्प नहीं है, ठीक होनेका निश्चय नहीं बना, तो तुम चाहे जो भी प्रयत्न करो, रोग दूर नहीं होगा। यह भी मैं अनुभवसे देख चुकी हूं। क्योंकि मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जिन्हें पांच मिनटमें रोगमुक्त किया जा सकता था, रोग उनका चाहे कितना ही गंभीर क्यों न रहा हो, इसके विपरीत, मैं ऐसे लोगोंको भी जानती थी जिन्हें कोई घातक रोग नहीं था, पर वे उसे इतने लंबे समयतक पोसते रहे कि वह अंतमें घातक ही सिद्ध हुआ। उनके शरीरको इसके लिये मना सकना असंभव था कि वे रोगमुक्त हो जायें।

अब यहीं व्यक्तिको सावधान रहनेकी जरूरत है, उसे अपने-आपको विवेकशील दृष्टिसे देखने और अपने अंदर उस छोटे-से भागकी खोज

करनेकी जरूरत है जो — कैसे कहा जाय? — बीमार होनेमें सुख मानता है। उफ! कारण कितने ही हैं। कुछ ऐसे लोग हैं जो ईर्ष्या-वश बीमार पड़ते हैं, कुछ घृणावश बीमार पड़ते हैं और कुछ निराशावश, कुछ ...। और ये कोई बहुत बड़ी क्रियाएं नहीं होतीं: यह सत्तामें एक बहुत छोटी-सी क्रिया होती है: तुम चिढ़ उठते हो और कहते हो: "तुम देखोगे कि अब क्या होता है, उसने जो कुछ मेरे साथ किया है उसका परिणाम अब तुम देखोगे, इसे आने दो! मैं अब बीमार पड़ूंगा।" तुम यह सब प्रकट रूपमें नहीं करते, क्योंकि वैसा होनेपर तुम अपनेको फटकारोगे, किंतु कहीं कोई ऐसी वस्तु होती है जो इस प्रकार सोचती है।

जब तुम अपने अंदरकी असंगतिको ढूंढ निकालते हो, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, तो तुम्हें दो कार्य करने होते हैं। पहला, हम कह चुके हैं कि यह असंगति भौतिक सत्तामें, शरीरमें, एक प्रकारका कंपन और शांतिका अभाव पैदा करती है। यह एक प्रकारका ज्वर ही है। सामान्य रूपमें यह ज्वर न भी हो, सीमित या स्थानगत ज्वर तो यह होता ही है। कुछ लोग इससे व्यग्र हो उठते हैं। तो करने योग्य पहला कार्य है अपने-आपको उद्वेग-रहित करना, फिर इस छोटे-से कोनेमें (जरूरी नहीं है कि सारे शरीरमें) शांति, स्थिरता, शरीरमें ढीलापन और पूरा-पूरा आत्म-विश्वास स्थापित करना। इसके बाद तुम्हें उस अस्तव्यस्तताका कारण ढूंढना चाहिये। तुम देखते हो कि कारण तो वैसे कई होते हैं, पर तुम इस अस्तव्यस्तताका निकट-से-निकट कारण ढूंढनेका प्रयत्न करो, और प्रकाशके दबाव, ज्ञान और आध्यात्मिक शक्तिसे अपने अंदर समस्वरता और उचित क्रिया-कलापको फिरसे स्थापित करो। और यदि अस्वस्थ भाग ग्रहणशील होगा और हठपूर्वक प्रतिरोध नहीं करेगा, तो तुम उसे कुछ सेकंडोंमें ही स्वस्थ कर लोगे।

पर सदा ऐसा नहीं होता। कभी-कभी जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूं, वहां दुर्भावना होती है: कम या अधिक रूपमें तुम हड़ताल किये होते हो और अंततः तुम चाहते हो कि रोग अपने परिणाम दिखाये। तब बीमारी जरा अधिक समय लेती है। फिर भी यदि तुममें कोई विशेष रूपसे बहुत बुरी भावना न हो तो कुछ समयके बाद 'शक्ति' अपना कार्य करती है: तुम कुछ मिनट, कुछ घंटे या अधिक-से-अधिक कुछ दिनोंमें ठीक हो जाते हो।

अब, विरोधी शक्तियोंके खास आक्रमणकी स्थितिमें बात जरा अधिक जटिल हो जाती है, क्योंकि तुम्हें केवल शरीरकी इच्छा-शक्तिके साथ ही व्यवहार नहीं करना पड़ता (एक बात जान लो, मैं उन लोगोंके तर्कको

नहीं मानती जो कहते हैं : "किंतु जहांतक मेरी बात है मैं तो बीमार होना नहीं चाहता।" कारण, तुम्हारी चेतना तो सदा यही कहती है कि वह बीमार पड़ना नहीं चाहती, केवल अर्ध-पागल व्यक्ति ही कह सकता है : "मैं बीमार पड़ना चाहता हूं," किंतु यह तुम्हारी चेतना नहीं है जो बीमार पड़ना चाहती है, बल्कि यह तुम्हारे शरीरका कोई भाग होता है या अधिक-से-अधिक प्राणका कोई अंश होता है जो गलत रास्तेपर पड़ जाता है और बीमार पड़ना चाहता है, और जबतक तुम पर्याप्त सावधानीके साथ निरीक्षण नहीं करते तुम इसे देख नहीं पाते)। किंतु मेरा कहना है कि स्थिति तब और जटिल हो जाती है जब इस सबके पीछे विरोधी शक्तियोंका, जो सचमुचमें तुम्हें हानि पहुंचाना चाहती हैं, आक्रमण या दबाव काम कर रहा हो। हो सकता है कि तुमने किसी आध्यात्मिक भ्रांतिमें आकर द्वार खोल दिया हो, या अहंकार, क्रोध, घृणा या उग्रताकी क्रियाके वश ऐसा किया हो। किंतु यदि यह केवल इतनी-सी क्रिया भी हो जो आयी और चली गयी तो भी वह द्वार खोल सकती है। ऐसे जीवाणु वहां सदा होते हैं जो ताकमें और अवसरकी प्रतीक्षामें रहते हैं। यही कारण है कि व्यक्तिको बड़ा सावधान रहना चाहिये। खैर, किसी भी कारणसे हो, बुरा प्रभाव जब रक्षाके आवरणको भेदकर अंदर घुस आता है तो वहां रोगको अधिक-से-अधिक गंभीर रूप धारण करनेके लिये उकसाता है। ऐसी दशामें पहला उपाय पूर्ण रूपसे पर्याप्त नहीं है। कुछ और भी करना होगा। आध्यात्मिक पवित्रीकरणकी शक्ति का सहारा लेना होगा, यह एक सर्वथा पूर्ण रचनात्मक शक्ति है, इसके आगे ऐसी कोई भी वस्तु जीवित नहीं रह सकती जो थोड़ी भी विनाशक हो। अगर यह शक्ति तुम्हारे अधिकारमें हो या तुम उसे पुकारकर प्राप्त कर सको तो साधारणतया इसे उस स्थानपर भेजते ही विरोधी शक्ति तुरंत भाग जायगी। क्योंकि अगर वह इस "शक्ति" के बीचमें पड़ जाय तो विलीन हो जाती है, गायब हो जाती है; क्योंकि विघटनकी कोई शक्ति इस शक्तिमें बची नहीं रह सकती; इसलिये विघटन गायब हो जाता है और वह शक्ति भी गायब हो जाती है। यह शक्ति रचनात्मक शक्तिमें भी परिवर्तित हो सकती है और ऐसा होना संभव है, या फिर ऐसा हो सकता है कि उसका विघटन हो जाय और वह विलीन हो जाय। और साथ ही उससे (आध्यात्मिक शक्तिके प्रयोगसे) न केवल रोग ठीक हो जाता है प्रत्युत उसके लौटनेकी सारी संभावना भी समाप्त हो जाती है। तुम हमेशाके लिये रोगमुक्त हो जाते हो, वह फिर कभी लौटकर नहीं आता। बस, बात इतनी ही है।

यह सब विषयकी सामान्य रूपरेखा है। व्योरोंके बारेमें पुस्तकों-पर-पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। मैंने केवल सामान्य व्याख्या ही प्रस्तुत की है!

आपने कारणोंके बारेमें जो बताया है उससे तो व्यक्तिको हमेशा बीमार ही रहना चाहिये।

किंतु साधारण जीवनमें तो अधिकतर लोग प्रायः सदा ही बीमार रहते हैं। केवल कुछ ही इससे बच पाते हैं, इसके कारण बिलकुल ही विभिन्न प्रकारके होते हैं जिन्हें हम किसी और दिन समझायेंगे। ऐसे बहुत कम लोग हैं जो सदा ही थोड़ा-बहुत बीमार न रहते हों। किंतु साधारण जीवनमें भी, यदि तुममें आत्म-विश्वाससे भरी सद्भावना है, एक प्रकारकी निश्चयता है, ऐसा आत्म-विश्वास है, ओह! जैसा कि संभवतः बहुत-से बच्चोंमें होता है (मुझे पता नहीं, क्योंकि जिन्हें हम यहां देखते हैं वे कुछ असाधारण प्रकारके हैं), किंतु उनके जीवनमें एक विश्वास होता है। वे छोटे हैं और उनमें ऐसा भाव होता है कि सारा जीवन उनके सामने है। पीछे तो बहुत थोड़ा-सा है, सब कुछ आगे-ही-आगे है। यह भाव उन्हें एक प्रकारका आत्म-विश्वास प्रदान करता है जो उन्हें पार कर देता है।

अन्यथा, पता नहीं, साधारण जीवनमें मैं बहुत कम लोगोंको ही जानती हूं, जो किसी ऐसे शारीरिक रोगकी शिकायत न करते हों, जो सदा उनके साथ लगा रहा है। ज्यूल रोमेंके नाटक 'डाक्टर नॉक' के बारेमें शायद तुम जानते होगे, इसमें वह कहता है कि स्वस्थ व्यक्ति एक ऐसा बीमार आदमी है जो अपने विषयमें नहीं जानता। सामान्यतया यह बात सच है। जब तुम इतने अधिक कार्य-संलग्न रहते हो कि सब समय अपनेमें ही व्यस्त रहना तुम्हारे लिये संभव नहीं होता तो तुम्हें इसका पता नहीं चलता। पर वह वहां होता अवश्य है।

२९ जुलाई, १९५३

मधुर मां, आपने एक दिन हमसे कहा था कि हमें जो कुछ होता है, वह पहलेसे ही नियत होता है। यह क्या है?

यह कहनेका एक ढंग है। क्योंकि कोई चीज प्रकट करनेके लिये मैं सभी शब्द एक साथ नहीं बोल सकती, है न? मैं एकके बाद दूसरा शब्द बोलनेके लिये बाधित हूं। अन्यथा, अगर कोई सभी शब्द एक साथ बोले तो बहुत शोर मचेगा और कोई कुछ न समझ सकेगा! हां, तो जब हम विश्वकी व्याख्या करना शुरू करते हैं तो उसी तरह करते हैं जैसे हम बोलते हैं। एकके बाद एक चीज कहते हैं, लेकिन सत्य कहनेके लिये, हमें सब कुछ एक साथ कहना चाहिये। तो फिर क्या किया जाय?... चूंकि तुमने मेरी बात दोहरायी है इसलिये हो सकता है कि मैंने यह बात कही है...। लेकिन मैंने इससे उलटी बात भी कही होगी। लेकिन अगर तुम यूं कहते हो कि जो कुछ होनेवाला है वह पहलेसे ही निश्चित है तो तुम्हारी कालकी चेतनामें ऐसी बात है मानों तुम कहो: बीते कल यह निश्चत हो गया था कि आज क्या होगा, इस वर्ष यह निश्चय हो गया है कि अगले वर्ष क्या होगा। यह चीज तुम्हारी चेतनामें इसी तरह अनूदित होती है — स्वभावतः, क्योंकि हम इसी तरह देखते हैं, इसी तरह सोचते हैं, इसी तरह समझते हैं और सबसे बढ़कर इसी तरह बोलते हैं, अपने-आपको अभिव्यक्त करते हैं। लेकिन चीज ऐसी नहीं है।

कुछ लोगोंने इस अवास्तविकताको देखा है, इतने जोरसे महसूस किया है कि उन्हें लगता है कि कोई कारण नहीं कि भविष्यमें बढ़नेकी जगह भूतमें पीछे न हटा जा सके, क्योंकि भूत, भविष्य और वर्तमान हमारे व्यक्त करनेके तरीके हैं लेकिन ये सब एक ही काल हैं। ये अलग-अलग स्तरोंपर हैं। अगर मैं तुमसे कहूं: "जो तुमको होनेवाला है वह पहलेसे ही निश्चित है," तो मैं यह भी कह सकती हूं: "जो यहां आनेवाला है वह कहीं और पहले ही आ चुका है," तो यह समान रूपसे सत्य और असत्य होगा, क्योंकि इसे शब्दोंके द्वारा अभिव्यक्त करना असंभव है।

मैं एक उदाहरण देती हूं, जिससे शायद तुम समझ जाओगे। मुझे ठीक याद नहीं कि कबकी बात है, शायद १९२० की होनी चाहिये (शायद पहलेकी, १९१४-१५ की, लेकिन मुझे नहीं लगता; यह १९२० में किसी समयकी बात होगी)। एक दिन — मैं हर रोज श्रीअरविंदके

साथ ध्यान किया करती थी : वे बरामदेमें मेजके एक ओर बैठते थे और मैं दूसरी ओर बैठती थी — एक दिन इसी तरह, ध्यानमें, मैं बहुत अंदर (कैसे कहा जाय ? . . .), मैं बहुत ऊपर चली गयी थी, बहुत गहराईमें प्रवेश कर गयी थी या अपनेसे बाहर निकल गयी थी (बहुत अच्छा, तुम जो कहना चाहो कहो, जो कुछ हुआ था उसे इनमेंसे कोई शब्द भी व्यक्त नहीं कर सकता, पर ये सब कहनेके तरीके हैं), मैं एक स्थानपर या चेतनाकी एक अवस्थामें जा पहुंची जहांसे मैंने श्रीअरविंदसे बिलकुल सहज-भावसे कहा : "भारत स्वतंत्र है।" यह १९२० की बात है। उन्होंने मुझसे पूछा : "कैसे ?" मैंने उन्हें उत्तर दिया : "बिना झगड़ेके, बिना युद्धके, बिना क्रांतिके। अंग्रेज अपने-आप चले जायंगे, क्योंकि संसारकी अवस्था ऐसी होगी कि जानेके सिवा कुछ और कर ही न सकेंगे।"

यह एक तथ्य था। जब उन्होंने मुझसे सवाल पूछा तब मैंने भविष्यमें उत्तर दिया। लेकिन मैंने जो देखा था उसके लिये कहा, "भारत स्वतंत्र है," यह एक तथ्य था। लेकिन उस समय भारत स्वतंत्र न था। यह १९२० की बात है। फिर भी वह था, वह एक तथ्य था। और स्वाधीनता आयी १९४७ में। यानी, बाहरी भौतिक दृष्टिसे मैंने उसे २७ वर्ष पहले देखा था। और यह एक तथ्य था।

क्या आपने पाकिस्तान देखा था ?

नहीं, क्योंकि स्वाधीनता पाकिस्तान बनाये बिना आ सकती थी। अगर श्रीअरविंदकी बात मान ली जाती तो पाकिस्तान न बनता।

हां, बाहरी रूपमें तो इसमें समय लगा, लेकिन वास्तवमें यह इस तरह था।

मधुर मां, यदि आप किसी आनेवाली विपत्तिको देखें तो क्या आप कोशिश करके उसे बदल सकती हैं ?

यह घटनाके स्वरूपपर निर्भर है। बहुत-सी चीजें हैं . . . और यह इस बातपर भी निर्भर है कि तुम उसे किस स्तरपर देखते हो। एक ऐसा स्तर है जहां सब प्रकारकी संभावनाएं हैं, और उस स्तरपर, चूंकि सब प्रकारकी संभावनाएं हैं इसलिये इन संभावनाओंको बदलनेकी संभावना भी है। और उस स्तरपर यदि कोई अनर्थ देखता है तो उसके अंदर उसे रोकनेकी शक्ति भी हो सकती है। और दूसरी हालतमें, यह भी हो

सकता है कि आदमी घटनाको पहलेसे देख ले पर उसपर उसका कोई बस न चले। और यहां भी, इसपर यह निर्भर है कि तुम किस स्तरपर देखते हो।

मुझे इस तरहकी एक घटना सुनायी गयी थी जिसमें पहलेसे मिली हुई जानकारीने दुर्घटनाको रोक दिया था। एक अमरीकन महाशय एक ऐसे बड़े होटलमें ठहरे थे जहां चढ़ने-उतरनेके लिये जीनेका उपयोग नहीं, लिफ्टका उपयोग होता है। सबेरे-ही-सबेरे उठनेसे पहले उन्होंने एक स्वप्न देखा जो अच्छी तरह याद रहा। उन्होंने लिफ्टके लड़केकी जैसी पोशाक पहने हुए एक लड़का देखा और वह ठीक वैसे ही संकेत कर रहा था जैसे लिफ्ट-पर चढ़ानेके लिये किया करता था। वह वहां था। लेकिन संकेत लिफ्ट-की ओर न होकर अर्थीकी ओर था! — यानी, एक प्रकारकी गाड़ी जो कभी-कभी यहां भी दिखायी देती है जिसमें रखकर मुर्देको श्मशान पहुंचाया जाता है। जब मुर्दा जलाया नहीं जाता तो उसे इस गाड़ीपर कफन और काले कपड़के साथ ले जाया जाता है। तो वहां इस प्रकारकी एक गाड़ी थी, मुर्देको ले जानेवाली गाड़ी। उस लड़केने इन्हें इशारा किया कि गाड़ीमें चढ़ जायं। जब यह महाशय कमरेसे बाहर निकले तो इन्हें नीचे ले जानेके लिये एक लड़का लिफ्टके पास था: ठीक वही लड़का, वैसी ही शकल, वही वेश-भूषा और वही संकेत। उन्हें अर्थीकी याद हो आयी और वे लिफ्टमें नहीं चढ़े। उन्होंने कहा: "नहीं, नहीं!" और वे पैदल ही नीचे उतर गये। वे जमीनपर पहुंचे-पहुंचे कि एक बहुत जोरकी भयंकर आवाज सुनायी दी। लिफ्ट जमीनपर टूटा पड़ा था और उसमें जो लोग उतर रहे थे वे सब-के-सब मर गये। स्वप्नके कारण ही यह उसपर न चढ़े थे, वह उसे समझ गये थे।

फलस्वरूप, इस तरहकी घटनाओंमें अंतर्दृष्टि हो तो व्यक्ति महा विपत्ति-को रोक सकता है।

जैसा कि मैंने कहा, कुछ दूसरे उदाहरण ऐसे हैं जिनमें तुम्हें केवल पहलेसे सूचना मिल जाती है। तुम्हें पहले पता लग जाता है। मूलतः, यह जो होनेवाला है उसके लिये तुम्हें आंतरिक रूपमें तैयार करनेके लिये होता है ताकि तुम इस घटनाके लिये उचित आंतरिक मनोवृत्ति अपना सको। यह एक प्रकारका पाठ है जो तुमसे कहता है: "इससे तुम्हें यह सीखना चाहिये।" तुम चीजोंको नहीं बदल सकते, पर अपनी मनोवृत्ति और आंतरिक प्रतिक्रियाको बदल सकते हो। इस अनुभूतिके प्रति बुरी प्रतिक्रिया करने या बुरी मनोवृत्ति अपनानेकी जगह, जो होनेवाला है उसके प्रति अच्छी वृत्ति और प्रतिक्रियाद्वारा तुम यथासंभव लाभ उठा सकते हो।

दोनों उदाहरणोंमें बात पूरी तरह उस स्तरपर निर्भर है जहां से तुम देखते हो। जब तुम्हें अपनी रातोंपर अधिकार हो और तुम अपनी नींद और अपने स्वप्नोंके बारेमें या फिर अपने अंतर्दृश्योंके बारेमें सचेतन हो तो तुम दोनोंमें फर्क भी देख सकते हो; तुम दोनोंका फर्क निर्धारित कर सकते हो: एक तो ऐसे जो तुम्हें हस्तक्षेप करनेके लिये सूचनाके तौरपर दिये गये हैं, दूसरे वह जो तुम्हें आनेवाली घटनाकी सूचना देनेके लिये दिये गये हैं ताकि तुम उसके प्रति समुचित मनोभाव तैयार कर सको। यह हमेशा एक पाठ होता है; पर हमेशा वही पाठ नहीं। कभी तुम अपने संकल्पद्वारा क्रिया कर सकते हो; कभी वह चीज सीखनी होती है जिसे सिखानेके लिये अमुक घटना आती है ताकि घटनाका अनुकूल परिणाम लानेके लिये तुम तैयार हो सको। लोग जो कुछ देखते हैं, सबके लिये एक ही बात है। अंतर्दर्शनों और स्वप्नोंके सैकड़ों प्रकार होते हैं और उनमेंसे हर एक तुम्हारे लिये वह पाठ या सीख लाता है जो तुम्हारे लिये जरूरी हो।

उदाहरणके लिये, जब लोग बीमार हों या उनपर कोई दुर्घटना आनेवाली हो। अच्छा, मैं अपने-आप देखूं या मुझे बाहरी तौरपर सूचना मिले क्योंकि किसी औरने मुझसे कहा है, इन सब उदाहरणोंमें एक ही बात नहीं होती। ऐसे उदाहरण हैं जहां मैंने पहलेसे देख लिया है, मैं देखती हूं कि यह हस्तक्षेपके लिये है और मेरे अंदर परिणामको बदलनेकी, यानी, रोगीको अच्छा करनेकी भरपूर क्षमता है। दूसरे उदाहरण ऐसे होते हैं जहां मैं देखती हूं कि यहां हस्तक्षेप न होना चाहिये। उदाहरणके लिये, ऐसा क्षण है जब उस मनुष्यको देह त्याग देनी चाहिये: वह देह त्याग देगा। यह जानते हुए भी इस व्यक्तिके लिये और उसके कुटुम्बके लिये कुछ करना पड़ता है जिससे अधिक-से-अधिक अच्छा परिणाम हो या कम-से-कम बुरा परिणाम हो — यह परिस्थितियोंपर निर्भर है।

कुछ ऐसी घटनाएं होती हैं जिनका संबंध किसी वैश्व आवश्यकताके साथ होता है और उन्हें नहीं बदला जा सकता। कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो अभीतक लटक रही हैं, जो इस ओर या उस ओर हो सकती हैं। असली बात है दृष्टि, केवल सूक्ष्म दृष्टि ही नहीं, यह भी जरूरी है कि वह पूरी तरह निष्पक्ष और निर्वैयक्तिक हो। उसमें पसंदकी छायातक न हो। हां, तो जब तुम संपूर्ण स्थितिमें हो — इसे तटस्थता नहीं कहा जा सकता, यह तटस्थता नहीं है: यह दर्पण जैसी अचल चेतना है — तब व्यक्ति उसमें आनेवाली चीजका गुण देख सकता है, उन चीजोंको

देख सकता है जिनका निर्णय हो गया है, जिन्हें बदला नहीं जा सकता और जो चीजें ऐसी हैं जो अभीतक अधरमें लटक रही हैं, जिन्हें बदला जा सकता है। सच्ची बात तो यह है कि हर घटनाके लिये स्थिति भिन्न होती है। कुछ ऐसी होती हैं जिन्हें पूरी तरह बदला जा सकता है, एकदम उलटा जा सकता है: कुछ ऐसी हैं जिनमें काफी कुछ बदला जा सकता है; और कुछ ऐसी हैं जो बस थोड़ा-बहुत परिवर्तन ही सह सकती हैं — बहुत थोड़ा-सा संशोधन, लेकिन ऐसा जिसका काफी बड़ा परिणाम हो सकता है; और फिर कुछ ऐसी जिनसे बच निकलना संभव नहीं है। वे ऐसी हैं क्योंकि वे ऐसी हैं; अगर तुम उनका विरोध करना चाहो तो यह दीवारसे सिर टकराने जैसा होगा, जिससे कुछ काम न बनेगा। सारी चीज है इस बोधका होना, यह जानना कि घटना किस क्षेत्रकी है और जो चीज होनी ही चाहिये उसके सिवा और किसी चीजके लिये संकल्प न करना।

मैं तुम्हें भिन्न-भिन्न प्रकारके सैंकड़ों दृष्टांत दे सकती हूं।

ऐसा मालूम होता है कि एक चीज बिलकुल निश्चित है: वह बस इस तरह होनेवाली है। लेकिन तुम्हारे अंदर एक इच्छा उमड़ती है, एक ज्योति जगती है, एक ऐसी अभीप्सा जिसका उच्चतर 'इच्छा' के साथ सामंजस्य है। तुम उसे इस घटनापर लगा देते हो। तब एक प्रकारका संयोग पैदा होता है: जो होनेको था वह होगा, लेकिन उसके साथ ही कोई और चीज आ जाती है और पहली चीजकी प्रकृतिको बदल देती है। जो घटनाएं धरतीके लिये महत्त्वपूर्ण हैं, उनमें यह चीज बहुधा होती है। उदाहरणके लिये, जब गति-विधियों, परिस्थितियों और शक्तियोंके संयोग युद्धकी आवश्यकताको अनिवार्य बना देते हैं तो उस समय तुम एक और शक्तिका आवाहन करके उसके विस्तार और परिणामोंको बदल सकते हो, कभी-कभी युद्धकी प्रकृतिको भी बदल सकते हो, पर उसे एकदम बंद नहीं कर सकते। मैं तुम्हें इस प्रकारके बहुत सामान्य प्रकृतिवाले दृष्टांत दे सकती हूं।

मैंने उस दिन तुमसे मृत्युकी "आत्मा" के बारेमें कहा था, मैंने बताया था कि आंतरिक क्रियाके द्वारा 'मृत्यु' को किसीके घर आनेसे रोका जा सकता है; परंतु फिर वह किसी औरके घर चली जाती है। तुम 'मृत्यु'-को उसके प्राप्यसे वंचित नहीं कर सकते। मैं यह बात तुम्हें समझा चुकी हूं। दूसरे उदाहरण ऐसे हैं जिनमें तुम बचकाने तरीकेसे कह सकते हो: "मृत्युको अभीतक सूचना नहीं दी गयी थी," इसलिये तुम बिना किसी परिणामके उसकी लूटमेंसे कुछ ले सकते हो। लेकिन यह हमेशा नहीं

होता। ऐसे उदाहरण हैं जब व्यक्ति यह करता है। परंतु इस तरह कहनेसे यह बात बचकानी, परियोंकी कहानी जैसी लगती है। लेकिन फिर भी परिस्थितियोंके विन्यासमें किसी चीजके साथ यह बात मेल खाती है: यह इसपर निर्भर है कि परिस्थितियां कैसे गति करती हैं।

मैं जो बात तुम्हें समझाना चाहती हूं वह यह है कि समस्या बहुत अधिक जटिल और सूक्ष्म है। कभी-कभी गतिकी दिशाको जरा-सा बदला जा सकता है; कभी गतिको पलटा जा सकता है; और कभी केवल गतिके परिणाम और उसके प्रति आंतरिक मनोभावको ही बदला जा सकता है। स्वभावतः लोग इन सब चीजोंको बहुत ही सीधे, सरल किये हुए रूपमें देखते हैं और इस सारेको भगवान्‌के प्रति की गयी अपनी प्रार्थनामें अनूदित कर लेते हैं: वे एक मामलेमें कहते हैं: "मैंने भगवान्‌से जो मांगा था वह उन्होंने मुझे दे दिया," दूसरेमें वे कहते हैं: "उन्होंने मेरी बात अस्वीकार कर दी है।" तो बात ऐसी है। वे इसी तरह समझते हैं और यह निरी मूर्खता है। यह जाननेके लिये कि यह कैसे होता है तुम्हारे अंदर व्यापक, सामूहिक चेतना होनी चाहिये, कम-से-कम पृथ्वीके बराबर विस्तृत। और यह तो कम-से-कम है। सचमुच समझनेके लिये तो तुम्हारे अंदर विश्व-चेतना होनी चाहिये। तब तुम समझ सकते हो। आज मैं जो पढ़ रही थी उसमें कहींपर मैंने कहा है कि सभी चीजें परस्पर आश्रित हैं और न कहीं "आरंभ" है और न कहीं "अंत"। तुम आरंभ कहां रखते हो ?[1] ... उसे समझनेके लिये तुम्हें पृथ्वीसे बंधी चेतनाके परे जाना होगा, तुम्हें विश्व-चेतनामें प्रवेश करना होगा। तब तुम समझ सकोगे।

---

[1] "अगर तुम चेतनाके एक स्तरसे देखो तो तुम्हें ऐसा लगेगा कि व्यक्ति केवल एक यंत्र या अभिलेखी न होकर स्रष्टा है। लेकिन दूसरी ओरसे, चेतनाके ज्यादा ऊंचे स्तरसे, चीजोंको ज्यादा विस्तृत दृष्टिसे देखो, तो तुम देखोगे कि यह केवल आभास है। विश्व कार्यमें जो कुछ होता है वह उसका परिणाम है जो पहले हो चुका है। तुम एक सत्ताको अभिव्यक्ति-की समग्र लीलासे या एक गतिको समस्त गति पुंजसे अलग कैसे कर सकते हो? तुम किसी चीजका मूल या आदि कहां रखोगे? सारी लीला कठोरतासे संबद्ध लड़ी है; एक कड़ी अदृश्य रूपमें दूसरीके साथ जुड़ी है। किसी भी चीजको लड़ीसे अलग करके अपने-आपमें इस तरह नहीं समझाया जा सकता है मानों वह अपने-आप ही अपना स्रोत और अपना आरंभ हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२६ मई)

लेकिन हम बाधित हैं — मैं वही दोहरा रही हूं जो मैंने पहले कहा था — हम चीजोंको एक-दूसरेके बाद कहनेके लिये बाधित हैं। हम कहते हैं: "जब विश्व शुरू हुआ ...। जब सृष्टि शुरू हुई ...। यह इस तरह शुरू होता है ...।' यह हुआ और फिर यह हुआ, तब यह घटना घटी और तब यह हुआ ...।" हम एकके बाद एक बात कहते हैं, लेकिन सच कहा जाय तो बात वास्तवमें ऐसी बिलकुल नहीं है। एक दृष्टिसे यह मूर्खतापूर्ण है, लेकिन हम कुछ और नहीं कर सकते। मैं सभी शब्द एक साथ नहीं बोल सकती। तो जो बातें परम ज्ञानकी दृष्टिसे मूर्खतापूर्ण हैं उन्हें कहनेके लिये हमारी चेतनाकी अवस्था और अपने-आपको व्यक्त कर सकनेके हमारे साधन हमें बाधित करते हैं। लेकिन यह सादृश्य या मोटा-मोटा तरीका है। हमारी मूर्खता भी सादृश्य है और जब हम यह जान जायं कि यह इसलिये होता है क्योंकि हम अपने-आपको और तरह व्यक्त नहीं कर सकते, तो यह जरा कम मूर्खता रह जाती है। हम एकके बाद एक चीज कहनेके लिये बाधित हैं, परंतु वे एक समग्र हैं।

और अधिकतर लोगोंके लिये यह केवल कहनेकी नहीं, जाननेकी बात है। वे चीजोंको एकके बाद एक ही जानते हैं, इससे भी बढ़कर ऐसा अनुभव करते हैं और उससे भी बढ़कर इस तरह जीते हैं। लेकिन एक चेतना है जिसमें व्यक्ति समग्रको एक साथ जानता है, समग्रको एक साथ समझता है, समग्रको एक साथ व्यक्त कर सकता है और एक ही समयमें समग्र रूपसे जी सकता है। लेकिन यह कैसे किया जाय? यहां तो यह ऐसा नहीं है!

तो, तुम देखते हो, आदमी दो प्रकारकी चेतनाको एक-दूसरेके जितने नजदीक हो उतने नजदीक लानेकी कोशिश करता है, ताकि बाहरी रूपसे उसी तरह रहते हुए, जैसे रहनेके लिये हम बाधित हैं (क्योंकि भौतिक जगत् ऐसा ही है और हमारी भौतिक चेतना ऐसी ही है), साथ-ही-साथ हम उस दूसरी चेतना के साथ भी इस तरहसे जुड़ जायं कि भौतिक रीतिसे भौतिक विधानके अनुसार काम करते हुए हम अपनी चेतनामें इस तथ्यको न भूल सकें कि यह एक सादृश्य है, मोटा-मोटा अनुवाद है, यह असली 'चीज' नहीं है।

मां, यहां जो प्रश्न किया गया है, मैं उसे नहीं समझ पाया: "अगर हमारी इच्छा केवल विश्व 'इच्छा' की अभिव्यक्ति या प्रतिध्वनिमात्र है तो व्यक्तिगत उपक्रमका स्थान ही कहां है?

क्या व्यक्ति वैश्व गतियोंका अभिलेखी यंत्र-भर है? क्या उसमें सर्जन या प्रारंभ करनेकी कोई शक्ति नहीं है?"

आह! और मैं भी नहीं समझ पायी। जब ये प्रश्न मुझसे पूछे गये थे तो इनका उत्तर देनेमें मुझे बहुत अधिक कठिनाई हुई थी क्योंकि ये वस्तुओं-की मेरी समझके एकदम बाहर थे। अभी जब मैंने यह प्रश्न पढ़ा तो मेरी कहनेकी इच्छा हुई: "मुझे खेद है, जिसने यह प्रश्न किया था उसकी चेतना और उसके विचार, दोनों बहुत उलझे हुए थे। वह सब चीजोंमें घपला कर रही थी।" क्योंकि यहां तीन चीजें मिला दी गयी हैं।

सबसे पहले, न मालूम उससे यह किसने कहा कि हमारी इच्छा विश्व 'इच्छा' की अभिव्यक्ति या प्रतिध्वनिमात्र है ...। शायद मैंने पहले कहीं कहा था कि केवल एक ही 'इच्छा' है और वह व्यक्तिगत चेतनामें अनू-दित या विकृत होती है और आदमी इसी 'इच्छा' को अपनी इच्छा मान लेता है। मैंने शायद कुछ ऐसा कहा होगा कि हमारी इच्छा सचमुच इस तथ्यसे हमारी बनती है कि वह अपने-आपको प्रारंभिक वैश्व 'इच्छा'-से अलग कर लेती है, वह इतनी विकृत हो जाती है कि वह भागवत इच्छासे जरा भी मेल नहीं खाती। यह बात उसके सिरमें घूमती रही होगी और उसने पूछ लिया कि क्या हमारी इच्छा वैश्व 'इच्छा' की अभि-व्यक्ति या प्रतिध्वनिमात्र है।

तब वैयक्तिक उपक्रमका स्थान ही कहां रहता है... यानी, व्यक्ति क्या कर सकता है? क्या वह कह सकता है: "इसका फैसला मैंने किया है, यह मैंने, मैंने फैसला किया है?" तब दूसरा प्रश्न; किंतु इसे मैं बिल-कुल नहीं समझ पाती: "क्या व्यक्ति केवल वैश्व गतियोंका अभिलेखी यंत्र मात्र है?" इसका मतलब क्या है? मैं ठीक तरह नहीं समझ पायी कि वह क्या कहना चाहता है। एक अभिलेखी यंत्र? शायद ग्रामोफोन, हां, विश्व गतियोंका अभिलेखन करनेके लिये ...। पहली बात तो यह है कि ऐसे लोग बहुत ही कम हैं जो वैश्व गतियोंका अभिलेखन कर सकते हैं। साधारणतः, वे अपने छोटे-से परिवेशकी गतियोंका अभिलेखन कर सकते हैं, सिर्फ अपनी और अपने चारों ओरकी गतियोंका। और फिर, एक तीसरा विचार भी जोड़ दिया गया है: "क्या उसमें सृजनकी कोई शक्ति नहीं है?" यह एक और ही चीज है। लेकिन मैंने उत्तर दे दिया (शायद तब मैं उसके कहनेका मतलब आजकी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह समझ पायी थी!), मैंने उत्तर दिया, क्योंकि मैं आगे चलकर तीन चीजों-

की बात कहती हूं। मैंने कहा कि व्यक्ति केवल तभी सर्जक बन सकता है जब वह अपनी चेतनामें उच्चतम 'चेतना' तक पहुंचता है जो सभी चीज़ोंका मूल है। यानी, अगर वह सर्जनशील चेतनाके साथ एक हो जाय तो वह स्वभावतः वह है, वह सर्जनशील 'चेतना' बन जाता है। अगर वह तादात्म्य स्थापित करता है तो तादात्म्य हो जाता है।[1]

तो, इस प्रश्नमें कौन-सी बात तुम्हें परेशान कर रही थी? तुम क्या नहीं समझे थे?

सारा प्रश्न ही।

सारा प्रश्न? और अब समझ गये? ...पूरी तरह नहीं? मैंने कहा था कि तुम इसलिये नहीं समझे क्योंकि यह खिचड़ी है; एक ही प्रश्नमें तीन अलग-अलग विचार घुसा दिये गये हैं और इससे स्वभावतः गड़बड़ी पैदा हो गयी। लेकिन इन्हें अलग-अलग लिया जाय तो ये वही हैं जो मैंने अभी बतलाये हैं, अधिक संभव यही है। यानी, व्यक्तिके अंदर यह बिलकुल अज्ञानमय और विपरीत चेतना होती है और उसे विश्वास होता है कि वह स्वयं अपना कारण और कार्य, मूल और परिणाम है, दूसरोंसे अलग है। वह अलग है और उसमें दूसरोंपर क्रिया करनेकी सीमित शक्ति है और दूसरोंकी गतिसे चालित होनेकी, दूसरेके प्रभावपर प्रतिक्रिया करनेकी जरा अधिक क्षमता है। साधारणतः लोग ऐसा ही सोचते हैं, कुछ-कुछ इसी तरह, है न? तुम्हें कैसा लगता है, तुम? तुम्हारा अपने ऊपर क्या प्रभाव होता है? और तुम? और तुम?...

तुमने इस विषयमें कभी नहीं सोचा? तुमने कभी अपने अंदर यह देखनेके लिये नजर नहीं डाली कि तुम्हारा अपने ऊपर क्या प्रभाव होता है? कभी सोचा नहीं इस बारेमें? नहीं? तुम्हें कैसा लगता है?...कोई नहीं बतलाएगा? चलो, तुम बताओ। कभी जाननेकी कोशिश नहीं की कि कैसा लगता है? हां? नहीं? क्या अजीब है! उदाहरणके लिये, तुमने कभी यह जाननेकी कोशिश ही नहीं की कि तुम्हारे अंदर फैसले

---

[1] "अगर कोई व्यक्ति इस तरीकेसे एक विचार या एक संवेदन या एक क्रिया या किसी भी चीजकी सृष्टि कर सके तो वह सारी सृष्टिका स्रष्टा बन जायगा...। वह सचेतन 'शक्ति' के साथ तादात्म्य करके ही, जो सभी गतियोंका अंतिम उद्गम है, किसी गतिका आरंभ कर सकता है।"
प्रश्न और उत्तर १९२९ (२६ मई)

किस तरह किये जाते हैं? वह कौन-सी चीज है जो तुमसे एककी जगह दूसरा फैसला करवाती है? और तुम्हारे फैसले और तुम्हारी क्रियामें क्या संबंध है? और एक या दूसरी चीजके बीच चुनाव करनेकी तुम्हें कितनी आजादी है? और तुम्हें किस हदतक यह लगता है कि तुम यह या वह करनेके लिये या कुछ न करनेके लिये आजाद हो? ... तुमने इसपर विचार किया है? हां? क्या विद्यार्थियों-में कोई ऐसा है जिसने इस बारेमें सोचा हो? नहीं? किसीने भी अपने-आपसे यह प्रश्न नहीं पूछा? तुम? तुम? ...

अगर कोई सोचता भी है तो संभवतः वह उत्तर नहीं दे सकता।

समझा नहीं सकता?

नहीं।

यह समझाना कठिन है? यह सरल-सी बात अपनी चेतनामें देखो, कौन-सी इच्छा-शक्तियां बाहरसे आती हैं और तुम्हारी इच्छा-शक्तिसे मिलती हैं (जिसे तुम अपनी इच्छा कह सको, जो अंदरसे आती हो), किस जगह दोनों मिलती हैं और किस हदतक बाहरसे आनेवाली भीतरीपर क्रिया करती है और भीतरी बाहरीपर क्रिया करती है? तुमने कभी पता लगानेकी कोशिश नहीं की? तुम्हें यह बात कभी असह्य नहीं लगी कि कोई इच्छा बाहरसे आये और तुम्हारी इच्छापर क्रिया करे? नहीं?

मुझे पता नहीं।

ओह! मैं बड़ी कठिन समस्याएं रख रही हूं। लेकिन, मेरे बच्चो, मैं इन बातोंमें तबसे लगी थी जब मैं पांच वर्षकी बच्ची थी! ... मैंने सोचा था कि तुम भी काफी समयसे इन बातोंमें लगे होगे।

हमारे अंदर ही परस्पर-विरोधी इच्छाएं होती हैं।

हां, बहुत-सी। यह सबसे पहली खोजोंमेंसे एक है। एक भाग चीजोंको

इस तरह चाहता है; और फिर अगले क्षण किसी और तरह, और तीसरी बार किसी और ही तरह। इसके अलावा, यह भी होता है : एक चीज कुछ चाहती है और दूसरी ना करती है। तो? लेकिन ठीक यही चीज है जिसका तुम्हें पता लगाना चाहिये अगर तुम अपने-आपको संगठित करने-की जरा भी इच्छा रखते हो। सिनेमाकी तरह अपने-आपको परदेपर प्रक्षिप्त क्यों न कर लो और फिर अपने-आपको उसपर चलते देखो? कैसा मजेदार है यह!

यह पहला कदम है।

तुम अपने-आपको परदेपर प्रक्षिप्त करो और फिर जो कुछ गतिशील है उसे देखो, वह कैसे गति करता है और क्या होता है। तुम एक छोटा-सा नक्शा बना लो, यह बहुत मजेदार हो जाता है। और तब, कुछ देर बाद, जब तुम देखनेके बिलकुल अभ्यस्त हो जाओ, तुम और एक कदम बढ़ सकते हो और एक निश्चय कर सकते हो। या इससे भी बड़ा कदम: तुम व्यवस्थित कर सकते हो — सजा सकते हो, हर चीजको लेकर, हर चीजको उसके स्थानपर रखो, इस तरह व्यवस्थित करो कि सीधी, सार्थक गति हो सके। तब तुम अपनी दिशाके बारेमें सचेतन होकर कह सकते हो: "बहुत अच्छा, ऐसा होगा; मेरा जीवन इस तरह विकसित होगा, क्योंकि यही मेरी सत्ताका तर्क है। अब, मैंने इस सबको अपने अंदर व्यवस्थित कर लिया है।' हर चीज अपने स्थानपर रख दी गयी है, इस-लिये स्वभावतः एक केंद्रीय स्थितिविन्यास हो रहा है। मैं इस स्थिति-विन्यासके अनुसार चल रहा हूं। एक कदम और, और मुझे पता होगा कि मुझे क्या होगा क्योंकि मैं ही उसका निश्चय कर रहा हूं . . .।" मैं नहीं जानती, मैं तुम्हें यह सब सुना रही हूं; मुझे यह सब बहुत ही ज्यादा मनोरंजक लगता था, संसारमें सबसे ज्यादा मनोरंजक। ऐसी कोई चीज न थी, कुछ भी न था, जो मेरे लिये इससे ज्यादा मजेदार हो।

यह मेरे साथ तब हुआ . . . मैं पांच या छः या सात वर्षकी थी (सातकी अवस्थामें यह चीज बहुत गंभीर हो गयी थी)। मेरे पिताजीको सरकस बहुत पसंद थी। उन्होंने आकर मुझसे कहा: "मेरे साथ चलो, मैं रविवारको सरकस देखने जा रहा हूं।" मैंने कहा: "नहीं, मैं सरकस देखनेकी अपेक्षा बहुत ज्यादा मजेदार काम कर रही हूं।" या फिर, मेरे छोटे मित्र किसी जगह मिलनेके लिये बुलाते जहां सब मिलकर खेलने और मौज करनेवाले थे और मैं कहती: "नहीं, मुझे यहां बहुत मजा आता है . . .।" और बात बहुत सच्ची थी। मैं बन न रही थी: मेरे लिये चीज ऐसी

ही थी, यह बिलकुल सच था। सारी दुनियामें इससे बढ़कर सुखद कुछ न था।

और मुझे विश्वास है कि जो भी उसी ताजगी और सचाईके साथ यह करेगा उसे आनंददायक परिणाम मिलेंगे...। इस सबको अपने सामने परदेपर रखना और जो कुछ हो रहा है उसका अवलोकन करना। और पहला कदम है, जो कुछ हो रहा है उसे जानना और तब तुम्हें यह कोशिश करनी चाहिये कि अगर कोई चीज तुम्हें अप्रिय लगती है तो उसके आगे आंखें बन्द न कर लो! तुम्हें आंखें पूरी तरह खुली रखना चाहिये और इस तरह, हर चीजको इसी तरह सामने परदेपर रखनी चाहिये। तब तुम एक मजेदार खोज करते हो। और तब अगला कदम है यह कहना: "चूंकि यह सब मेरे अंदर हो रहा है तो मैं इस चीजको इस तरह और उस चीजको उस तरह और फिर इस चीजको यूं क्यों न रखूं? क्या इस तरह मैं कुछ अधिक तर्कसंगत, सार्थक चीज न करूंगा? मैं उस चीजको हटा क्यों न दूं जो रास्ता रोक रही है, ये परस्पर-विरोधी इच्छाएं? क्यों? और सत्तामें इसका क्या अर्थ है? यह यहां क्यों है? अगर इसे वहां रखा जाय, क्या यह मुझे नुकसान पहुंचानेकी जगह फायदा न पहुंचायेगी?" और इसी तरह।

और थोड़ा-थोड़ा करके, थोड़ा-थोड़ा करके, तुम ज्यादा स्पष्ट देखते हो और तब तुम देखते हो कि तुम्हें इस तरह क्यों बनाया गया है, वह कौन-सी चीज है जो तुम्हें करनी है — जिसके लिये तुमने जन्म लिया है। और तब, बिलकुल स्वाभाविक रूपसे, चूंकि सब कुछ इस चीजके आनेके लिये व्यवस्थित किया गया है, रास्ता सीधा हो जाता है और तुम पहलेसे कह सकते हो: "यह इस तरह होगा।" और जब चीजें आकर इस सबको अस्तव्यस्त करना चाहती हैं तो तुम कह सकते हो: "नहीं, मैं इसे स्वीकार करता हूं, इससे सहायता मिलती है; मैं उसे अस्वीकार करता हूं, वह नुकसान पहुंचाती है।" और फिर, कुछ बरसोंके बाद तुम अपने-आपको उसी तरह वशमें कर सकते हो जैसे कोई घोड़ेको वशमें करता है: तुम जो चाहते हो करते हो और जैसे चाहो वैसे करते हो और जहां चाहते हो वहां जाते हो।

मुझे लगता है कि यह कष्ट उठाने लायक है। मेरा ख्याल है कि यह सबसे ज्यादा मनोरंजक है।

मां, यह छोटा पर्दा क्या है?

यह परदा? चैत्य चेतना।

और यह लीला ?[1]

लीला ? यह केंद्रीय चेतनाका खेल है। ठीक यही वह चेतना है जो चैत्य पुरुषके मूलमें है। और तब तुम्हें यह जाननेके लिये कि यह चैत्य चेतना उस परम 'चेतना'को किस तरह प्रतिबिंबित और अनूदित करे, तुम्हें एक छोटा-सा कदम और लेना पड़ता है। और मामला यहीं समाप्त हो जाता है। यह अंतिम चरण बहुत सरल हो जाता है।

लेकिन इस रहस्यकी खोज अंतमें होती है। और जब वह मिल जाय तो फिर और संघर्ष नहीं रहता, क्योंकि युद्ध पहले ही लड़ा जा चुका है और सब कुछ व्यवस्थित किया जा चुका है। इसलिये अब चीजें एक गतिमें, सरल रीतिसे जितना संभव है उतने सीधे और स्वाभाविक तरीकेसे होती हैं और कोई प्रतिक्रिया नहीं होती।

मेरा ख्याल है कि जब पुराने जमानेके मनीषी कहा करते थे : "अपने-आपको जानो," तो उनका यही मतलब होता था। और कुछ नहीं। लेकिन फिर, वहां मानों आंखोंपर पट्टी बांधकर, अपनी नाक या अपना सिर किसी कठोर चीजके साथ टकराकर यह जाननेकी जगह कि वह कठोर है या एक दीवार या बंद दरवाजा या कोई बाधा या कोई दुर्भावना है; इस सबके बजाय, इसमें बरसों परीक्षण करने, सब प्रकारकी मुसीबतों और न्यूनाधिक अप्रिय परिस्थितियोंमेंसे गुजरनेकी जरूरत नहीं है, अपने-आपको जानना सीखनेके लिये : तुम चुपचाप काम करो, जैसा कि मैंने बतलाया है।

जब मैंने यह किया था, तब सिनेमा नहीं था, इसलिये मैं जो कर रही थी उसकी तुलना सिनेमासे न की जा सकती थी — तबतक सिनेमा आया

---

[1] "विश्व लीलामें कुछ लोग, अधिकतर, ज्ञानरहित यंत्र हैं, वे ऐसे अभिनेता है जिन्हें कठपुतलियोंकी तरह नचाया जाता है, जो अपने-आप कुछ नहीं जानते। दूसरे ऐसे हैं जो सचेतन हैं और वे यह जानते हुए कि यह एक नाटक है अपनी भूमिका निभाते हैं। और कुछ ऐसे हैं जिन्हें वैश्व गतिका पूरा ज्ञान है, वे उसके साथ और एकमेव भागवत चेतनाके साथ एक हो चुके हैं, फिर भी इस तरह खेलना स्वीकार करते हैं मानों वे कोई अलग चीज हैं, समग्रका एक भाग। अज्ञान और इस पूर्ण ज्ञानके बीच बहुत-सी मध्यवर्ती अवस्थाएं हैं, लीलामें भाग लेनेके बहुत-से तरीके हैं।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२६ मई)

नहीं था, लेकिन यह है एकदम अंदरकी चीजको सिनेमाके परदेपर प्रक्षिप्त करनेकी तरह, उसे प्रकट करना है। और परदा भी एकदम सफेद और चिकना है जो किसी चीजको विकृत नहीं करता। अगर परदा चिकना और एकदम सफेद न हो तो तुम्हारा चित्र बिलकुल धुंधला होगा, तुम कुछ भी न देख पाओगे। यही चीज है। परदा बहुत सफेद, बिलकुल चिकना, बिलकुल साफ और बिलकुल शुद्ध होना चाहिये। तब तुम चीजोंको उस रूपमें देख सकते हो जैसी वे हैं।

तुम्हारे अंदर बहुत-सी सचाई, थोड़ा साहस और अध्यवसाय, एक प्रकारकी मानसिक उत्सुकता होनी चाहिये, समझे, तुम्हें उत्सुक, जाननेकी कोशिश करनेवाला, रस लेनेवाला और सीखनेके लिये इच्छुक होना चाहिये। तुम्हारी प्रकृतिमें सीखनेके लिये प्रेम होना चाहिये। बिलकुल अंधेरी, अस्पष्ट चीजके सामने खड़े होना तुम्हें सहन न करना चाहिये जिसमें कुछ भी स्पष्ट नहीं दिखायी देता, जो तुम्हें बिलकुल अप्रिय संवेदन देती है, क्योंकि तुम्हें पता नहीं लगता कि तुम कहांसे शुरू होते हो और कहां खतम, तुम्हारा क्या है और क्या तुम्हारा नहीं है, क्या निर्धारित हो चुका है और क्या निर्धारित नहीं हुआ—यह लुगदी जैसी चीज क्या है जिसे तुम अपना आपा कहते हो, जिसमें चीजें घुल-मिल जाती हैं और तुम्हारे जाने बिना एक-दूसरेपर क्रिया करती हैं? तुम अपने-आपसे पूछते हो : "लेकिन मैंने यह क्यों किया?" तुम्हें उसके बारेमें कुछ नहीं मालूम। "और मुझे ऐसा क्यों लगा?" तुम्हें यह भी नहीं मालूम। और तब, तुम बाहरकी दुनियामें फेंक दिये जाते हो जो केवल कुहासा है और तुम एक आंतरिक जगत्‌में फेंक दिये जाते हो, वह भी तुम्हारे लिये एक और तरहका कुहासा है, उसमें घुसना और भी अधिक कठिन है, उसमें तुम ऐसे रहते हो जैसे पानीमें फेंका हुआ काग, लहरें उसे बहा ले जाती हैं या हवामें उछाल देती हैं, वह गिरता है और फिर लुढ़कता-फिरता है। यह बहुत ही अप्रिय स्थिति है। मैं नहीं जानती, पर मुझे तो यह बहुत ही अप्रिय लगती है।

स्पष्ट देखना, अपना रास्ता देखना, तुम कहां जा रहे हो, वहां क्यों जा रहे हो, वहां कैसे जाया जाय, वहां जाकर क्या करना होगा और वहां औरोंके साथ कैसा संबंध होगा...। लेकिन यह इतने अद्‌भुत रूपसे मनोरंजक समस्या है — यह मनोरंजक है — और तुम हर क्षण नयी-नयी खोज कर सकते हो! तुम्हारा काम कभी खतम नहीं हो सकता।

एक ऐसा समय होता है, चेतनाकी एक प्रकारकी स्थितिमें तुम्हें लगता है कि उस स्थितिमें सारी दुनियाका भार तुम्हारे ऊपर लदा है, तुम आंखों-पर अंधेरी डाले जा रहे हो, तुम्हें पता नहीं तुम कहां जा रहे हो, लेकिन

कोई चीज है जो तुम्हें धकेल रही है। और वह सचमुच बहुत ही अप्रिय स्थिति है। एक और क्षण ऐसा होता है जब तुम अपने-आपको ऊपर खींच सकते हो, ऊपर जो कुछ है तुम उसे देख सकते हो और वह बन सकते हो। तब तुम जगत्‌को मानों बहुत ऊंचे पहाड़परसे देखते हो और नीचे जो कुछ हो रहा है उस सबको देख सकते हो। तब तुम अपना मार्ग चुन सकते और उसपर चल सकते हो। यह ज्यादा सुखद स्थिति है। तो यही सच्ची स्थिति है। निश्चय ही तुम धरतीपर इसीके लिये हो। सभी व्यक्तिगत सत्ताएं और चेतनाके छोटे-छोटे केंद्र इसी कामके लिये बनाये गये थे। जीवनका यही एक हेतु है : व्यक्तिगत सत्ताके प्रतीक रूप स्पंदनोंके अमुक योगके बारेमें पूरी तरह सचेतन होना, वहां एक व्यवस्था लाना, अपना मार्ग खोजना और उसका अनुसरण करना।

तो, चूंकि लोग इसे नहीं जानते और ऐसा नहीं करते, इसलिये जीवन आकर उनपर यहां आघात करता है: "अरे रे! चोट लगती है," और एक आघात वहां: "हाय! चोट लगती है मुझे।" और चीज यूं चलती चली जाती है, सारे समय ऐसा ही होता है। सारे समय उन्हें कहीं-न-कहीं दर्द होता है। वे कष्ट सहते हैं, वे चिल्लाते हैं, वे कराहते हैं। लेकिन इसका बस वही कारण है, कोई और नहीं : उन्होंने वह थोड़ा-सा काम नहीं किया। जब वे बहुत छोटे थे, तब यदि कोई ऐसा होता जो उन्हें यह काम करना सिखाता और वे समय खोये बिना उसे करते तो वे शानसे जीवन यापन करते और कष्ट सहन करनेकी जगह वे अपनी नियतिके सर्वशक्तिमान् स्वामी होते।

इसका यह मतलब नहीं है कि निश्चित रूपसे सभी चीजें प्रीतिकर हो जायंगी। ऐसी बात बिलकुल नहीं है। लेकिन चीजोंकी ओर तुम्हारी प्रतिक्रिया सच्ची प्रतिक्रिया बन जाती है। कष्ट सहन करनेकी जगह, तुम कुछ सीखते हो; दुःखी होनेकी जगह, तुम आगे बढ़ते और प्रगति करते हो।

आखिर, मेरा ख्याल है कि तुम यहांपर इसीलिये हो — ताकि कोई तुमसे कह सके: "हां तो, यह कर देखो। यह प्रयास करने योग्य है।" वास्तवमें, यह बात तब की जानी चाहिये जब बच्चे बहुत छोटे होते हैं क्योंकि यह चीज उनकी चेतनामें न जगायी जाय तो वे न समझ पायंगे। फिर भी यह बहुत ही छोटे मस्तिष्कके साथ की जा सकती है, पांच वर्षकी अवस्थामें तुम्हारा मस्तिष्क बहुत बड़ा नहीं होता। तुम्हें लगता है कि अंतराल हैं, कि बहुत-सी चीजें जानने योग्य हैं पर अजानी हैं। मस्तिष्क अभी बना नहीं है। उसमें एक चेतना है, पूरी तरह सचेतन, ज्योतिर्मय,

स्पष्टदर्शी, सब कुछ है; लेकिन उसमें अंतराल हैं और जब तुम उसमेंसे कुछ निकालना चाहते हो तो वह निकल नहीं पाती। जब तुम बहुत छोटे होते हो तो यही होता है। लेकिन अगर तुम थोड़ा-थोड़ा करके जारी रखो, थोड़ा-थोड़ा, तो जैसे-जैसे विचार आते हैं, वे व्यवस्थित होते जाते हैं और एक ऐसा जमघट बननेकी जगह जिसे पीछे व्यवस्थित करना पड़ेगा, पहलेसे ही व्यवस्थित रूप लेते हैं। यह एक बड़ा लाभ है।

बहरहाल, तुम अभी बहुत छोटे हो। तुम प्रयास कर सकते हो। हर रोज पांच मिनटके लिये प्रयास करो, अधिक नहीं। अपने-आपको देखो, देखो वहां, अंदर क्या हो रहा है। यह कितना मनोरंजक है!

५ अगस्त, १९५३

क्या चैत्य पुरुष हमेशा प्रगति करता है?

चैत्य पुरुषमें दो बहुत भिन्न प्रकारकी प्रगतियां होती हैं: एकमें रूप ग्रहण, निर्माण और संगठन है। क्योंकि चैत्य पुरुष सत्तामें छोटी-सी भागवत चिनगारीसे शुरू होता है और इस चिनगारीमेंसे उत्तरोत्तर एक स्वतंत्र, सचेतन सत्ता निकलती है जिसकी अपनी क्रिया और अपनी इच्छा-शक्ति होती है। अपने मूलमें चैत्य पुरुष भागवत चेतनाकी एक चिनगारी मात्र होता है और क्रमिक जीवनोंमें सचेतन व्यक्तित्वका निर्माण करता है। यह प्रगति बढ़ते हुए बच्चेकी प्रगति जैसी है। यह निर्मित होती हुई वस्तु है। बहुत समयतक, अधिकतम लोगोंमें यह निर्मित होती हुई सत्ता ही रहता है। यह पूरी तरह व्यक्ति बनी हुई, सचेतन सत्ता नहीं होता, यह अपना स्वामी नहीं होता। इसे अपना निर्माण करनेके लिये और पूरी तरह सचेतन होनेके लिये एकके बाद एक बहुत सारे जन्मोंकी जरूरत होती है।

लेकिन इस प्रकारकी प्रगतिका एक अंत होता है। एक ऐसा समय आता है जब सत्ता पूरी तरह विकसित हो जाती है, पूरी तरह व्यक्तित्व पा लेती है, अपने और अपनी नियतिपर प्रभुत्व पा लेती है। जब यह सत्ता या इस स्थितिका कोई चैत्य पुरुष मानव सत्तामें जन्म लेता है तो उससे बहुत फर्क पड़ता है: कहा जा सकता है कि वह मानव सत्ता स्वतंत्र रूपमें उत्पन्न हुई है। वह मनुष्य साधारण मनुष्योंकी तरह अपनी परिस्थितियोंसे, अपने

परिवेशसे, अपने मूल और गतानुगतिकतासे बंधा नहीं होता। वह धरती-पर कुछ करनेके उद्देश्यसे आता है, कोई काम करनेके लिये, कोई मिशन पूरा करनेके लिये। इस दृष्टिसे वृद्धिमें उसकी प्रगति पूरी हो चुकी है, यानी, उसके लिये फिरसे शरीर धारण करना जरूरी नहीं है। तबतक पुनर्जन्म आवश्यक है, क्योंकि पुनर्जन्मके द्वारा ही वृद्धि होती है; भौतिक जीवन और भौतिक शरीरमें ही वह धीरे-धीरे विकसित होता है और पूरी तरह सचेतन सत्ता बनता है। लेकिन एक बार पूरी तरह बन जाय तो वह स्वतंत्र होता है, इस अर्थमें कि वह अपनी इच्छाके अनुसार जन्म लेना चाहे तो ले, न लेना चाहे तो न ले। तो, एक प्रकारकी प्रगति यहां रुक जाती है।

लेकिन अगर यह पूर्णतः निर्मित सत्ता भगवान्‌के कर्मका यंत्र बनना चाहे, यदि चैत्य आनंदमें विश्राम करनेके लिये अपने ही क्षेत्रमें लौट जानेकी जगह, वह पृथ्वीपर भगवान्‌के कार्यकी पूर्तिके लिये कार्यकर्ता बनना चाहे, तो उसे एक नयी प्रगति करनी होती है, कार्यक्षमतामें प्रगति, कार्य संगठनमें और भगवान्‌की इच्छाको प्रकट कर सकनेमें प्रगति। तो एक समय ऐसा होता है जब चीज बदल जाती है। वह जबतक संसारमें रहेगा, वह जबतक भगवान्‌के लिये काम करना चाहेगा, वह प्रगति करता रहेगा। लेकिन अगर वह चैत्य लोकमें वापिस चला जाय और भागवत कार्यको जारी रखनेसे इनकार करे या उसे त्याग दे, तो वह प्रगतिसे बाहर अचल अवस्थामें रह सकता है, क्योंकि, जैसा मैंने कहा है, केवल यहां, धरतीपर ही प्रगति होती है, केवल भौतिक जगत्‌में, और कहीं नहीं होती। चैत्य लोकमें एक प्रकारकी आनंदमय विश्रांति है। तुम जो हो वही बने रहते हो, कोई गति नहीं होती।

लेकिन जो अपने चैत्यके बारेमें सचेतन नहीं हैं?

वे चाहें या न चाहें, प्रगति करनेके लिये बाधित होते हैं।

उनके अंदर चैत्य पुरुष अपने-आप प्रगति करता है और इसके बारेमें उन्हें पता नहीं होता। लेकिन वे अपने-आप भी प्रगति करनेके लिये बाधित होते हैं। कहनेका आशय यह कि वे एक घुमावका अनुसरण करते हैं। वे जीवनमें एक चढ़ाईका अनुसरण करते हैं। वे उसी तरह प्रगति करते हैं जैसे एक बढ़ता हुआ बच्चा। एक समय आता है कि वे अपनी प्रगतिकी चोटीपर जा पहुंचते हैं और तब यदि प्रगतिका स्तर न बदल जाय, शुद्ध रूपसे भौतिक प्रगति, मानसिक प्रगति, चैत्य प्रगति, आध्या-

त्मिक प्रगतिमें न बदल जाय, तो वह घुमावमें नीचेकी ओर चल पड़ता है और वहां विघटन होगा और उसका अस्तित्व ही न रहेगा।

चूंकि भौतिक जगत्में सतत, निरंतर प्रगति नहीं होती इसलिये वृद्धि, पराकाष्ठा, पतन और विघटन होते हैं। क्योंकि जो चीज आगे नहीं बढ़ती वह पीछे गिरती है, जो कुछ प्रगति नहीं करता उसकी अवनति होती है।

तो ठीक यही चीज भौतिक रूपमें होती है। भौतिक जगत्ने अनिश्चित रूपसे प्रगति करते रहना नहीं सीखा है; वह एक बिंदु-विशेषतक आती है, तब वह या तो प्रगतिसे ऊब जाता है या वर्तमान रूपमें प्रगति करनेमें अक्षम होता है, लेकिन हर हालतमें वह प्रगति करना बंद कर देता है और कुछ समय बाद विघटित हो जाता है। जो लोग विशुद्ध रूपसे भौतिक जीवन जीते हैं, वे अमुक चोटीतक पहुंच जाते हैं, फिर बहुत तेजीसे फिसल जाते हैं। लेकिन अब, मनुष्योंमें व्यापक सामूहिक प्रगतिके कारण, भौतिक प्रगतिके पीछे प्राणिक प्रगति और मानसिक प्रगति भी होती है। मानसिक प्रगति भौतिक प्रगतिके बंद हो जानेके बाद भी बहुत लंबे समयतक चलती रह सकती है, भौतिक प्रगति बन्द हो जानेके बहुत बाद भी व्यक्ति इस मानसिक प्रगतिके द्वारा एक प्रकारकी उन्नति जारी रखता है।

और फिर वे लोग हैं जो योग करते हैं, जो अपने चैत्य पुरुषके बारेमें सचेतन होते हैं, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं, उसके जीवनमें भाग लेते हैं; वास्तवमें ये लोग ही जीवनके अंतिम श्वासतक प्रगति करते हैं। वे मृत्युके बाद भी प्रगति जारी रखते हैं, जब वे अपना शरीर त्यागते हैं तो इस कारण कि शरीर और अधिक नहीं टिक सकता : वे प्रगति करना जारी रखते हैं।

अपने-आपको रूपांतरित कर सकनेमें, निरंतर प्रगति करनेमें शरीरकी असमर्थता ही अवनतिका कारण होती है और अंतमें शरीर अधिकाधिक आंतरिक असंतुलनकी ओर खुलता जाता है। एक दिन वह इतना बल पकड़ लेता है कि उससे पूर्ण असंतुलन आ जाता है और वह फिरसे संतुलन या स्वास्थ्य प्राप्त कर सकनेके योग्य नहीं रहता। इस बातको हम अगले सप्ताह देखेंगे। केवल शुद्ध आध्यात्मिक जीवनमें ही — जो सारे भौतिक, पार्थिव, और मानसिक अस्तित्वसे बाहर है — कोई प्रगति नहीं होती। तुम एक अचल स्थितिमें जा पहुंचते हो और प्रगतिकी सभी गतियोंके बाहर होते हो। लेकिन साथ ही तुम अभिव्यक्तिके भी बाहर होते हो। जब तुम उस स्थितिमें जा पहुंचो तो तुम अभिव्यक्तिके नहीं रहते, तुम अभिव्यक्त जगत्से बाहर निकल जाते हो। प्रगतिसे बाहर होनेके लिये तुम्हें

अभिव्यक्त जगत्‌से बाहर हो जाना चाहिये, क्योंकि ये दोनों एक ही हैं: अभिव्यक्तिका अर्थ है प्रगति और प्रगतिका अर्थ है अभिव्यक्ति।

बहुत-से लोग प्रेरणासे सोचते और लिखते हैं। वह कहांसे आती है?

बहुत-से! यह सचमुच एक विचित्र बात है। मैंने नहीं सोचा था कि इतने सारे होंगे ...। तो?

कवि, जब वे कविताएं लिखते हैं ...।

ओह! प्रेरणाएं बहुत सारे स्थानोंसे आती हैं। ऐसी प्रेरणाएं होती हैं जो बहुत अधिक स्थूल हो सकती हैं, प्राणिक प्रेरणाएं हो सकती हैं, ऐसी प्रेरणाएं होती हैं जो सब प्रकारके मानसिक स्तरोंसे आ सकती हैं और बहुत, बहुत विरल जो उच्चतर मन या उससे भी ऊंचे स्तरोंसे आती हैं। सभी प्रेरणाएं एक ही स्थानसे नहीं आतीं। अतः, प्रेरित या अनुप्राणित होनेका यह अर्थ नहीं है कि वह आवश्यक रूपसे उच्चतर व्यक्ति है ...। व्यक्ति बहुत सारी मूर्खतापूर्ण चीजें कहने और करनेके लिये भी प्रेरित हो सकता है।

"प्रेरित या अनुप्राणित"का अर्थ क्या है?

इसका अर्थ है कोई ऐसी चीज पाना जो तुमसे परे हो, जो तुम्हारे अंदर न हो; अपने-आपको अपनी व्यक्तिगत सचेतन सत्ताके बाहरके किसी प्रभाव-की ओर खोलना।

वास्तवमें, किसीको हत्या करनेकी प्रेरणा भी मिल सकती है! जिन देशोंमें हत्यारोंका शिरच्छेदन किया जाता है, उनका सिर काट दिया जाता है, इससे बड़ी क्रूरतापूर्ण मृत्यु होती है जो प्राण पुरुषको बाहर फेंक देती है, उसे शरीरसे बाहर निकलनेके लिये विघटित होनेका समय नहीं मिलता। प्राणिक सत्ता उग्र रूपमें शरीरसे निकालकर बाहर फेंक दी जाती है, उसके सारे आवेश उसके साथ होते हैं। साधारणतः वह जाकर वहांपर उपस्थित किसी व्यक्तिमें, जो आधा भयभीत और आधा अस्वस्थ कुतूहल-से भरा होता है, अपने-आपको जमा लेती है। लोगोंकी यह अवस्था दरवाजा खोल देती है और यह सत्ता उसमें घुस आती है। आकड़ोंसे

प्रमाणित होता है कि अधिकतर युवा हत्यारोंने यह स्वीकार किया है कि इसका आवेश उन्हें तब आया था जब वे किसी हत्यारेकी मृत्युके समय उपस्थित थे। यह एक "प्रेरणा" थी, पर घृणित प्रकारकी।

मूलतः यह किसी ऐसी चीजकी ओर उन्मीलनका समय है जो तुम्हारी व्यक्तिगत चेतनामें नहीं थी, जो बाहरसे आती है, तुम्हारे अंदर घुस पड़ती है और तुमसे कुछ करवाती है। यही सबसे अधिक व्यापक सूत्र दिया जा सकता है।

हां, तो जब लोग कहते हैं: "ओह! वह तो प्रेरणा पानेवाला कवि है," तो इसका मतलब होता है, वह कहीं ऊपरसे प्रेरणा पाता है और उसे विलक्षण रूपमें प्रकट करता है। लेकिन कहना यह चाहिये कि उसकी प्रेरणा उच्च स्तरकी है।

माताजी, जब हम चाहें तब प्रेरणा नहीं आती?

जब कभी चाहो? साधारणतः नहीं, क्योंकि व्यक्ति अपनी सत्ताकी यंत्र-रचना नहीं जानता और अपनी इच्छाके अनुसार दरवाजे नहीं खोल सकता।

यह ऐसी चीज है जो की जा सकती है। ये उन चीजोंमेंसे हैं जो योगमें सबसे पहले सिखायी जाती हैं: जब चाहो तब द्वार खोल सकना यह ध्यानका या एकाग्रताका या अभीप्साका परिणाम होता है: वहींपर द्वार खोलनेके लिये इन प्रक्रियाओंका अनुसरण किया जाता है।

और साधारणतः तुम उसे जिस किसी चीजकी ओर नहीं, उच्चतर चीज-की ओर ही खोलनेका प्रयत्न करते हो। क्योंकि दुर्भाग्यवश दूसरे प्रकारकी ग्रहणशीलता तो लोगोंमें हमेशा ही होती है...। एकदम एकांतमें बंद हो सकना बिलकुल असंभव है — और फिर, मेरा ख्याल है कि यह बहुत सहायक भी नहीं होता। अगर व्यक्ति अपने अंदर ही पूरी तरह बंद रहे तो प्रगति करना असंभव होगा। तब जो कुछ तुम्हारे अंदर है, तुम उसीको इधर-उधर पलट कर सजा सकोगे। जरा कल्पना करो, तुम एक गोलेकी तरह बंद हो, बिलकुल बंद, बाहरके साथ किसी तरहका कोई संबंध नहीं — तुम कुछ भी बाहर नहीं निकाल सकते, तुम कुछ भी नहीं पाते, तुम एकदम बंद हो — तुम्हारे अंदर चेतनाके कुछ तत्त्व हैं, गति और स्पंदन (तुम चाहे जो कह लो), और यह सब एक गोलेमें बंद है, तुम्हारी चेतनाके साथ। तुम्हारा बाहरकी चीजोंके साथ कोई संबंध नहीं, तुम केवल अपने बारेमें सचेतन हो। तुम क्या कर सकते हो? ...अपने

अंदरकी व्यवस्था बदल लो; यह तो तुम कर सकते हो। तुम इस व्यवस्थाको बदलकर बहुत कुछ कर सकते हो। लेकिन यह बस यहीं तक बंद है। यह एक प्रकारकी आंतरिक प्रगति है, लेकिन तुम्हारे बाहर जो शक्तियां हैं, उनके साथ संबंध रखनेवाली सच्ची प्रगति नहीं है। तुम कुछ समयके बाद अपने-आपको बहुत ही सीमित अनुभव करोगे, तुम अपने-आपसे ऊब जाओगे : बार-बार अंदरके तत्त्वोंको घुमाते, फिर घुमाते और फिर घुमाते थक जाओगे — यह बहुत सुखद नहीं है।

लेकिन सारे समय तुम अपने-आपको बाहर प्रकट करते हो और हर बार इस तरह प्रकट करनेसे तुम कुछ चीज अंदर ले आते हो। यह एक छिद्रिल वस्तुकी तरह है : एक शक्ति बाहर जाती है और फिर एक अंदर आती है। इस प्रकारके कंपन होते हैं। और इसीलिये अपने रहनेका वातावरण चुनना इतना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रायः, सारे समय तुम जो देते हो और तुम जो लेते हो उनमें एक विनिमय चलता रहता है। जो लोग अपने-आपको क्रिया-कलापमें ज्यादा बाहर फेंकते रहते हैं उन्हें मिलता भी अधिक है। लेकिन वे पाते उसी स्तरपर हैं, अपने क्रिया-कलापके स्तरपर। उदाहरणके लिये, बच्चे, जो अभी छोटे ही होते हैं, जो हमेशा घूमते-फिरते हैं, हमेशा शोर मचाते, दौड़ते और कूदते-फांदते रहते हैं (वे बहुत कम ही चुप बैठते हैं, शायद नींदका समय छोड़कर कभी नहीं, और शायद नींदमें भी नहीं), वे बहुत ज्यादा खर्च करते हैं। सामान्यतः, भौतिक और प्राणिक शक्ति खर्च की जाती है और वे भौतिक और प्राणिक शक्ति ही पाते हैं। वे जो खर्च करते हैं उसका बहुत बड़ा भाग दोबारा पा लेते हैं। इसलिये वहां, यह बहुत जरूरी है कि वे ऐसे पास-पड़ोसमें हों जहांसे वे अपनी शक्ति खर्च करते समय या खर्च कर चुकनेपर कम-से-कम उसी स्तरकी चीज पायं जो उनके बराबर की हो कम-से-कम घटिया तो न हो।

जब तुम्हारी गतिविधिमें यह उदारता नहीं रह जाती तब तुम बहुत कम पाते हो; और यह भी एक कारण है — मुख्य कारणोंमेंसे एक — कि भौतिक विकास रुक जाता है। क्योंकि तुम बचत करने लगते हो, तुम अपव्यय न करनेकी कोशिश करते हो। मन हस्तक्षेप करता है : "सावधान, अपने-आपको थकाओ मत, बहुत अधिक मत करो, आदि।" मन हस्तक्षेप करता है और भौतिक ग्रहणशीलता बहुत कम होने लगती है। और आखिर, तुम बिलकुल नहीं बढ़ते — समझदारीमें बढ़कर तुम बढ़ना बिलकुल बंद कर देते हो।

परंतु ग्रहणशीलता दूसरे स्तरोंपर खुल जाती है। जो कामनाओं और

आवेगोंके जगत्में रहते हैं, कभी-कभी उनकी ग्रहणशीलता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह स्वयं उनके लिये और उनके आस-पास वालोंके लिये अप्रिय हो उठती है। और फिर ऐसे लोग हैं जो मानसिक चेतनामें रहते हैं; उनकी मानसिक ग्रहणशीलता बहुत बढ़ जाती है। जो लोग मानसिक सृजन करते हैं, अध्ययन करते और मानसिक क्रिया-कलापमें रहते हैं, यदि मानसिक क्रिया निरंतर चलती रहे तो वे अनिश्चित कालतक प्रगति करते रह सकते हैं। मनुष्यका मन शारीरिक यंत्रके क्षीण होने पर भी काम करना बंद नहीं करता। हो सकता है कि वह भौतिक रूपसे समझदारीमें प्रकट न हो — उदाहरणके लिये, यदि दिमागमें कहीं चोट है —, पर अपने यंत्रसे स्वतंत्र, मनको प्रगति करनेसे, प्रगति करते रहनेसे कोई नहीं रोक सकता। यह सत्ता भौतिक सतासे अनंतगुना अधिक रहती है। जब व्यक्ति भौतिक दृष्टिसे बूढ़ा हो जाता है तब भी यह सत्ता जवान रहती है। केवल तब जब तुम दिमागको अच्छी स्थितिमें रखनेके लिये काफी सावधानी नहीं बरतते, यदि दुर्घटनाएं हों और वहांपर चोट लग जाय, तब तुम अपने-आपको व्यक्त नहीं कर सकते। लेकिन अपने-आपमें मन बढ़ता रहता है। और जिनमें काफी भौतिक संतुलन है, उदाहरणके लिये, जिन्होंने किसी प्रकारकी अति नहीं की है, जिन्होंने कभी अपने शरीरके साथ दुर्व्यवहार नहीं किया है, जिन्होंने अधिकतर लोगोंकी तरह अपने-आपको विष नहीं दिया है — जिन्होंने कभी सिगरेट, शराब आदिका उपयोग नहीं किया है — वे अपेक्षाकृत अपने मस्तिष्कको ज्यादा अच्छी स्थितिमें रख सकते हैं, वे अपनी अभिव्यक्तिमें भी जीवनके अंततक प्रगति करते रह सकते हैं। यदि वे अपने अंतिम वर्षोंमें एक प्रकारसे अपने-आपको अपने अंदर खींच लें तो वे व्यक्त करनेकी क्षमताको खो सकते हैं। लेकिन मन प्रगति करता जाता है।

प्राण स्वभावसे ही अमर है। लेकिन वह सुव्यवस्थित नहीं है और अपनी अवस्थामें बहुत अधिक उत्तेजित, विरोधी आवेशों और आवेगोंसे भरा रहता है और इस सबके द्वारा वह अपने-आपको नष्ट कर लेता है। अन्यथा तत्त्व जीते रहते हैं। कामना, आवेग बहुत ज्यादा सजीव वस्तुएं हैं और कामना बहुत ज्यादा लंबे समयतक उस व्यक्तिसे स्वतंत्र होकर भी जी सकती है जो... उन्हें झेलता है, मुझे कहना चाहिये, जो कामना और आवेगको पैदा नहीं करता, बल्कि झेलता है, क्योंकि ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें व्यक्ति झेलता है, जो बाहरसे उस तूफानकी तरह घुस आती हैं जो तुम्हें पकड़ लेता और उड़ा ले जाता है, जबतक कि तुम अपने-आपको इस तरह बिलकुल शांत, बिलकुल स्थिर, बिलकुल अचंचल न रख सको, मानों तुम अपनी

सत्तामें किसी अचंचल ठोस वस्तुसे चिपके हुए हो। जब तूफान आना शुरू करे तो उसे ऊपरसे चले जाने दो — वह आता है, लेकिन तुम हिलो भी मत, अपने-आपको हिलने-डुलने या कांपने मत दो, एकदम स्थिर बने रहो, यह जानते हुए कि ये गुजरते हुए तूफान हैं। और जब तूफान आकर चला जाय तब तुम गहरी सांस ले सकते हो और अपना साधारण संतुलन वापिस ला सकते हो। इसमें कम-से-कम हानि हुई है। इस प्रकारके मामलोंमें, साधारणतः, अंतमें चीजें अच्छा रूप ही लेती हैं।

लेकिन जो कॉर्कके उस टुकड़ेकी तरह हैं जो पानीपर इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं, जो अपना संतुलन फिरसे पा लेनेमें और अपना निरीक्षण करनेमें सफल नहीं होते, उन्हें कुछ भी हो सकता है। वे अचानक भंवरमें खिंच सकते हैं और चट निगल लिये जाते हैं। और कुछ भी नहीं बचता।

बस?

ऐसे लोग हैं जो मूर्खता-भरी चीजें करते हैं...।

हां।

और वे जानते हैं कि वे मूर्खता कर रहे हैं, लेकिन उनका मन उसे न्यायसंगत नहीं ठहराता, कोई सहारा नहीं देता, कोई बहाने नहीं बनाता, कोई सफाई नहीं देता, कोई तर्क नहीं करता। यह कौन-सी स्थिति है?

यह कौन-सी स्थिति है? जो लोग यह जानते हैं कि वे मूर्खता-भरी चीजें कर रहे हैं, जो सचेतन हैं, फिर भी उनसे बच नहीं सकते, क्योंकि उनके मनमें उन चीजोंको रोकनेका बल नहीं है?...

लेकिन मनमें उन्हें रोकनेके लिये काफी बल कभी नहीं होता। क्योंकि मन एक ऐसा यंत्र है जो सब तरहकी चीजोंको सब ओरसे देखनेके लिये बनाया गया है। तब तुम ऐसे प्रबल संकल्पकी आशा कैसे कर सकते हो जो आवेगका प्रतिरोध कर सके जबकि मन पहले इस ओरसे देखता है और फिर उस ओरसे देखता है? और फिर कहता है: "आखिर, बात ऐसी है, और ऐसी क्यों न हो?" तो फिर तुम्हारा संकल्प कहां है?...

जैसा कि मैंने यहां कहा है,[1] वह हमेशा हर चीजको समझानेके लिये,

---

[1] "इस भौतिक मनकी निम्न प्राणिक चेतना और उसकी गतियोंके साथ

हर चीजको न्यायसंगत ठहरानेके लिये रास्ता निकाल लेता है और हर चीजके लिये प्रशंसनीय कारण बतलाता है।

केवल चैत्य पुरुषमें ही हस्तक्षेप करनेकी शक्ति है। अगर तुम्हारे मनका चैत्यके साथ संपर्क है, अगर वह चैत्यके प्रभावको ग्रहण करता है तो वह प्रतिरोध संगठित करनेके लिये काफी बलवान् होता है। वह जानता है कि सच्ची चीज क्या है और मिथ्या क्या है; और यह जानते हुए कि सत्य क्या है, यदि उसमें सद्भावना हो तो वह प्रतिरोध संगठित करेगा और युद्ध करके विजय लाभ करेगा। लेकिन शर्त यही है: वह चैत्य पुरुषके संपर्कमें हो।

क्योंकि सबसे अधिक सुन्दर सिद्धांत भी, यदि तुम मानसिक रूपसे बहुत-सी चीजें जानते हो और तुम्हारे पास सराहनीय सिद्धांत हैं, इससे भी इतना बल नहीं आता कि आवेगका प्रतिरोध कर सको। एक बार जब तुम पूर्णतः कटिबद्ध हो, तुमने निश्चय कर लिया है कि चीज इस तरह होगी — उदाहरणके लिये, तुम अमुक चीज नहीं करोगे : यह तय हो गया कि तुम नहीं करोगे — तब फिर यह कैसे होता है कि अचानक (तुम्हें पता नहीं होता कि कैसे या क्यों या क्या हुआ), तुमने कुछ भी निश्चय नहीं किया! और तब तुरंत ऐसा करनेके लिये बड़े अच्छे कारण पा लेते हो...। और बहानोंके बीच, इस प्रकारका बहाना हमेशा बनाया जाता है: "हां, अगर मैं इस बार यह कर लूं तो कम-से-कम मुझे यह विश्वास हो जायगा कि यह बहुत बुरा है और इसके बाद मैं ऐसा कभी न करूंगा। यह आखिरी बार होगा।" यह सबसे सुंदर बहाना है जो तुम अपने-आपको हमेशा देते हो : "बस, यह आखिरी बार कर रहा हूं। इस बार यह पूरी तरह समझ लेनेके लिये कर रहा हूं कि यह बुरा है और इसे नहीं करना चाहिये और मैं इसे आगे कभी न करूंगा। बस, यह आखिरी बार है।" हर बार ही आखिरी बार होता है। और फिर, तुम फिरसे शुरू कर देते हो।

हां, कुछ ऐसे लोग हैं जिनके विचार कम स्पष्ट होते हैं, जो अपने-आपसे कहते हैं: "आखिर, मैं यह क्यों नहीं करना चाहता? ये परि-

---

एक प्रकारकी मैत्री होती है। जब निम्न प्राण किन्हीं कामनाओं और आवेगोंको प्रकट करता है तो अधिकतर भौतिक मन उसकी सहायताके लिये आता है, उन्हें सत्यका आभास देनेवाली व्याख्याओं, तर्कों और बहानोंके द्वारा न्यायसंगत ठहराता है और उनका समर्थन करता है।"

प्रश्न और उत्तर, १९२९ (२६ मई)

कल्पनाएं हैं, ये ऐसे सिद्धांत हैं जो सत्य नहीं भी हो सकते। अगर मेरे अंदर यह मनोवेग है तो कौन-सी चीज है जो मुझसे कहती है कि यह मनोवेग किसी परिकल्पनासे ज्यादा अच्छा नहीं है?..." यह उनके लिये आखिरी बार नहीं होता। ये इसे बिलकुल स्वाभाविक रूपमें स्वीकार करते हैं।

इन दो छोरोंके बीच सब प्रकारकी संभावनाएं हैं। लेकिन उनमें सबसे खतरनाक है यह कहना: "अच्छा, मैं इसे और एक बार कर रहा हूं, इससे यह चीज मेरे अंदरसे घुल जायगी। इसके बाद मैं इसे फिर कभी न करूंगा।" और यह शुद्धि कभी काफी नहीं होती।

यह काम होता तभी है जब तुम यह निश्चय कर लो: "अच्छा, इस बार, मैं इसे न करनेकी कोशिश करूंगा। मैं इसे न करूंगा। मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूंगा और इसे न करूंगा।" अगर तुम्हें जरा-सी सफलता भी मिले तो यह बहुत है। कोई बड़ी सफलता नहीं, बस जरा-सी सफलता, बहुत आंशिक सफलता : तुम जो करनेके लिये आते हो वह कर नहीं पाते; पर यह उत्कंठा, यह इच्छा, यह आवेग अब भी है। इससे तुम्हारे अंदर चक्कर पैदा होते हैं, लेकिन बाहर तुम प्रतिरोध करते हो: "मैं ऐसा नहीं करूंगा, मैं नहीं हिलूंगा; भले मुझे हाथ-पांव क्यों न बांध लेने पड़ें, मैं यह बिलकुल न करूंगा।" यह आंशिक सफलता है — लेकिन यह एक बड़ी विजय है, क्योंकि इसके कारण अगली बार तुम इससे कुछ ज्यादा कर पाओगे। अर्थात्, अपने उग्र आवेगोंको अपने अंदर बंद रखनेकी जगह, तुम उन्हें जरा शांत करना शुरू कर सकते हो; और पहले तुम उन्हें कठिनाईके साथ, धीरे-धीरे शांत कर सकोगे। वे बहुत समय तक रहेंगे, वे वापिस आ जायंगे, वे तुम्हें कष्ट देंगे, तंग करेंगे, तुम्हारे अंदर घृणा पैदा करेंगे। यह सब होगा, लेकिन तुम अच्छी तरह प्रतिरोध करो और कहो: "नहीं, मैं यह सब नहीं करूंगा; चाहे जो मूल्य चुकाना पड़े, मैं कुछ न करूंगा। मैं चट्टानकी तरह रहूंगा।" तब थोड़ा-थोड़ा करके, थोड़ा-थोड़ा करके वे चीजें कम होने लगेंगी, कम होने लगेंगी। तब दूसरा मनोभाव सीखनेका समय आयेगा: "अब मैं चाहता हूं कि मेरी चेतना इन चीजोंसे ऊपर रहे। अब भी बहुत-से युद्ध होंगे, लेकिन अगर मेरी चेतना इन सबसे ऊपर रहे तो आहिस्ता-आहिस्ता ऐसा समय आयेगा जब यह चीज फिरसे वापस न आयेगी।" और फिर, एक समय आता है जब तुम अनुभव करते हो कि तुम बिलकुल स्वतंत्र हो: तुम उसे देखतेतक नहीं, और तब मामला खतम। इसमें बहुत समय लग सकता है, यह स्थिति जल्दी भी आ सकती है : यह चरित्र-बल और

अभीप्साकी सचाईपर निर्भर है। लेकिन जिन लोगोंमें थोड़ी-सी सचाई है, वे भी यदि अपने-आपको इस पद्धतिके अधीन कर सकें तो सफल होते हैं। इसमें समय लगता है, वे पहली चीजमें सफल हो जाते हैं, यानी, इसे व्यक्त न करनेमें। धरतीपर सभी शक्तियां अपने-आपको प्रकट करनेकी ओर प्रवृत्त होती हैं। ये शक्तियां अपने-आपको व्यक्त करनेके उद्देश्यसे आती हैं और अगर तुम बीचमें एक बाधा खड़ी कर दो और प्रकट करनेसे इनकार कर दो तो वे कुछ समयतक रोगके विरुद्ध टक्करें लेनेकी कोशिश कर सकती हैं, पर अंतमें वे स्वयं थक जायंगी और अभिव्यक्त हुए बिना ही लौट जायंगी और तुम्हें चैनमें छोड़ जायंगी।

अतः तुम्हें यह कभी न कहना चाहिये : "पहले मैं अपने विचारकी शुद्धि करूंगा, अपने शरीरकी शुद्धि करूंगा, अपने प्राणकी शुद्धि करूंगा, और बादमें अपने कर्मोंकी शुद्धि करूंगा।" यह सामान्य क्रम है, पर यह कभी सफल नहीं होता। प्रभावशाली क्रम है बाहरसे शुरू करना : "सबसे पहली चीज है कि मैं यह न करूंगा और बादमें मैं इच्छा न करूंगा, और उसके बाद मैं अपने दरवाजे आवेगोंके लिये बिलकुल बंद कर दूंगा : मेरे लिये उनका अस्तित्व ही नहीं, अब मैं उनसे बाहर हूं।" यही सच्चा क्रम है, प्रभावशाली क्रम है। पहले, क्रिया मत करो। तब तुम इच्छा न करोगे। उसके बाद चीज तुम्हारी चेतनासे बिलकुल निकल जायगी।

जब चैत्य पुरुष संसारमें प्रवेश करनेको होता है तो क्या वह पहलेसे ही उस शरीरको चुन लेता है जिसे वह पानेवाला है?

यह एक मजेदार प्रश्न है। यह निर्भर है।

मैंने अभी कहा कि ऐसी चैत्य सत्ताएं होती हैं जिनका अभी निर्माण हो रहा है, जो प्रगतिके पथपर हैं; ये सामान्यतः, एकदम शुरूमें अधिक चुनाव नहीं कर सकतीं। लेकिन जब वे वृद्धि और चेतनाकी एक खास अवस्था-तक आ जाती हैं (साधारणतः जब वे अभी भौतिक शरीरमें ही होती हैं और कुछ मात्रामें अनुभव पा सकती हैं), तब वे निश्चय करती हैं कि उनके अनुभवका अगला क्षेत्र कैसा होगा।

मैं तुम्हें इसके कुछ बाहरी उदाहरण बतला सकती हूं। उदाहरणके लिये, एक चैत्य पुरुषको प्रभुत्वके, शक्तिके अनुभवकी जरूरत थी ताकि वह उसकी प्रतिक्रियाएं जान सके और देख सके कि इन सब गतियोंको भगवान्‌की ओर कैसे अभिमुख किया जा सकता है : यह सीखनेके लिये कि

शक्तिका जीवन क्या सिखा सकता है। उसने किती राजा या रानीमें जन्म लिया। उसने कुछ शक्तिका रस लिया और अपने अनुभव प्राप्त किये। वह अपने अनुभव-क्षेत्रके अंततक जा पहुंचा। अब, वह जो जानना चाहता था, जान गया। अब वह जानेको है, वह अब शरीर छोड़नेकी तैयारीमें है क्योंकि वह बेकार हो गया है और अब वह अगले अनुभवकी तैयारी करनेवाला है। हां, तो उस समय, जब चैत्य पुरुष अभी शरीरमें ही है और उसने जो कुछ सीखा है उसे अंकित कर लिया है, उस समय वह अगली बारके बारेमें निश्चय करता है। कभी-कभी यह क्रिया-प्रतिक्रियाकी गतियां होती हैं: चूंकि उसने एक पूरे क्षेत्रका अध्ययन कर लिया है, इसलिये अब उसे उसके विपरीत क्षेत्रका अध्ययन करनेकी जरूरत है। और बहुधा वह अपने पिछले जीवनकी अपेक्षा बहुत भिन्न प्रकारका जीवन चुनता है। तो पहला शरीर छोड़नेसे पहले वह कहता है: "अगली बार मैं अमुक क्षेत्रमें जन्म लूंगा . . .।" उदाहरणके लिये, मान लो, चैत्य ऐसी अवस्थामें पहुंच चुका है जब वह भौतिक शरीरपर काम करना चाहेगा, ऐसा अवसर चाहेगा कि उसे सचेतन रूपमें भगवान्‌के संपर्कमें लानेका और रूपांतरित करनेका अवसर पा सके। अब, वह उस शरीरको छोड़ने ही वाला है जिसमें, उस शरीरमें जिसका उपयोग उसने वृद्धिके लिये किया है, उसके पास अधिकार, शक्ति और सक्रियता थी। अब वह अपने-आपसे कहता है: "मैं अगली बार एक उदासीन वातावरणमें जन्म लूंगा, न ऊंचा, न नीचा, जहां (इसे कैसे कहा जाय?) बहुत ज्यादा बाहरी जीवनकी जरूरत पड़े, जहां न बहुत शक्ति होगी, न बहुत दरिद्रता —एकदम उदासीन, जैसा तुम जानते हो, बीचका जीवन।" यह उसे चुनता है। वह आवश्यक विश्रामके लिये, प्राप्त अनुभवको आत्मसात् करनेके लिये, भावी अनुभूतियोंकी तैयारी करनेके लिये अपने चैत्य लोकमें लौटता है। स्वभावतः उसे अपने चुनावकी याद होती है, अब, फिरसे नीचे आनेके पहले, आत्मसात् कर लेनेपर, जब नीचे लौटनेका, धरतीपर आनेका समय होता है, वह उस क्षेत्रसे भौतिक चीजोंको उस रूपमें नहीं देख सकता जिस रूपमें हम देखते हैं: वहांसे वे उसे एक और ही रूपमें दीखती हैं, समझे? फिर भी भेदोंको पहलेसे देखा जा सकता है। वातावरणका भेद, वातावरणमें क्रियाशीलताका भेद, स्पष्ट दिखायी देता है; वह पूरी तरह दृष्टिगोचर होता है। उसमें समग्र या सार्वभौम दृष्टि हो सकती है। वह चुनाव कर सकता है; जब वह अमुक प्रकारकी शिक्षा, सभ्यता, प्रभाव चाहता है तो वह पहलेसे ही देशका चुनाव करता है। कभी-कभी यह नहीं कर पाता, वह केवल वातावरण चुनता है और यह चुनता है कि

वह किस प्रकारका जीवन जीना चाहेगा। और फिर वहांसे, ऊपरसे, नीचे आनेके पहले, वह अपनी पसंदके स्पंदन खोजता है; वह उन्हें बहुत स्पष्ट देख सकता है। यह ऐसा होता है मानों वह उस जगहपर निशान लगा रहा हो जहां वह उतरना चाहता है। लेकिन यह एक प्रकारका मोटा सादृश्य ही रहता है क्योंकि एक और शर्त भी पूरी होनी चाहिये: केवल उसका चुनाव नहीं, नीचेसे ग्रहणशीलता और एक अभीप्सा भी चाहिये। उसने जो वातावरण चुना है उसमें कोई ऐसा होना चाहिये, साधारणतः मां (कभी-कभी मां-बाप दोनों, परंतु मां अनिवार्य है), जिसमें ग्रहणशीलता और अभीप्सा हो, कोई ऐसी चीज हो जो काफी अक्रिय रहते हुए खुले या जिसमें किसी उच्चतर वस्तुके लिये सचेतन अभीप्सा हो। वह चीज चैत्य पुरुषके लिये एक छोटी-सी ज्वाला जगा देती है। उस समस्त समूहमें जो उसके लिये उस वातावरणका प्रतिनिधि है जिसमें वह जन्म लेना चाहता है, स्वयं उसके प्रक्षिप्त संकल्पके प्रभावसे कोई छोटी-सी ज्योति जाग जाय तो वह जान लेता है कि उसे वहीं जाना चाहिये।

यह जरूरी है। यह चीज दिनों और महीनोंका फर्क पैदा करती है, शायद बरसोंमें इतना अधिक नहीं, और इसी कारण वह इसकी ठीक तारीख नहीं दे सकता: "मैं फलाने दिन, फलानी तारीखको, फलाने समय जन्म लूंगा।" उसे किसी ग्रहणशीलताकी जरूरत होती है। जब वह उसे देखता है तो नीचेकी ओर झपटता है। लेकिन जो होता है वह कुछ-कुछ बिबके जैसा होता है: वह ठीक यही नहीं होता, पर कुछ-कुछ इसके जैसा। वह अपने-आपको नीचे, निश्चेतनामें, फेंक देता है, क्योंकि भौतिक जगत्, मानव चेतनातक, चाहे वह कुछ क्यों न हो, चैत्य चेतनाकी तुलनामें बहुत ही निश्चेतन होता है। इसलिये चैत्य पुरुष निश्चेतनामें तेजीसे घुस पड़ता है, मानों सिरके बल गिरा हो। इससे वह अचेत-सा हो जाता है। और इसीलिये साधारणतः, कुछ बहुत, बहुत विरले अपवादोंको छोड़कर, बहुत लंबे समयतक वह कुछ नहीं जानता। उसे पता नहीं रहता कि वह कहां है, क्या कर रहा है या वहां क्यों है, वह कुछ नहीं जानता। उसे अपने-आपको अभिव्यक्त करनेमें बहुत कठिनाई होती है, विशेषकर एक ऐसे शिशुके द्वारा जिसमें कोई मस्तिष्क नहीं है। स्वभावतः शिशुमें ऐसे मस्तिष्कके अंकुर ही होते हैं जिसने अभी रूप नहींके बराबर लिया है, जिसमें अपने-आपको प्रकट करनेके तत्त्व नहीं होते। इसलिये बालकका अपने अंदर धारण किये हुए विशेष व्यक्तित्वको जल्दी अभिव्यक्त कर सकना बहुत, बहुत विरल होता है ...। यह होता है। हमने ऐसी बातोंका वर्णन सुना है। यह होता है, पर साधारणतः कुछ समयकी जरूरत

होती है। वह धीरे-धीरे ही अपने व्यामोहमेंसे जगता है और जान पाता है कि वह यहां किसी कारणसे और अपने ही चुनावसे आया है। और सामान्यतः यह उस समय होता है जब बहुत अधिक मानसिक शिक्षा दी जाती है जो चैत्य चेतनाको तुमसे बहुत अधिक दूर पूरी तरह अलग कर देती है। तो परिस्थितियोंकी राशि, सब प्रकारकी घटनाएं, भावनाएं, और सब प्रकारकी चीजें तुम्हारे आंतरिक द्वार खोलनेके लिये जरूरी हो जाती हैं ताकि तुम यह याद करना शुरू कर सको कि तुम किसी और लोकसे आये हो और किसी यथार्थ कारणसे आये हो।

अन्यथा, अगर सब कुछ ठीक-ठीक चले तो संबंध बहुत जल्दी जुड़ जाता, बहुत जल्दी। अगर भाग्यवश उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जिसे थोड़ा-सा ज्ञान है, और वह अज्ञानमय जगत्में गिरनेकी जगह, जरा-से ज्ञानमें जा पहुंचे तो सब कुछ बहुत जल्दी हो जायगा।

लेकिन चैत्य संकल्प और चैत्य वृद्धि मनुष्योंकी न्याय, पुरस्कार और दंडकी साधारण धारणाओंसे एकदम बाहर है। ऐसे धर्म हैं, ऐसे दर्शन हैं, जो तुम्हें नाना प्रकारकी कहानियां सुनाते हैं, जो शुद्ध रूपसे मानव न्यायकी धारणाको अदृश्य जगत्पर लागू करती हैं, और ये बिलकुल मूर्खतापूर्ण हैं। क्योंकि चीज ऐसी बिलकुल नहीं हैं; पुरस्कार और दंडकी धारणा, जैसा कि मनुष्य समझता है, एकदम वाहियात है। यह आंतरिक वास्तविकताओंपर लागू नहीं होती, बिलकुल नहीं होती। एक बार तुम आध्यात्मिक जगत्में प्रवेश पा लो तो ये सब चीजें वास्तवमें मूर्खता बन जाती हैं। क्योंकि चीजें ऐसी बिलकुल नहीं हैं।

बहुत-से लोग मुझसे आकर कहते हैं: "मैंने आखिर पिछले जीवनमें क्या किया था जो अब इतनी कठिन अवस्थामें पड़ा हूं, इतनी मुसीबतें आ रही हैं मुझपर?" और बहुधा मुझे यह कहना पड़ता है: "तुम देख नहीं सकते, यह तुम्हारे लिये आशीर्वाद है, भगवान्की कृपा है। और शायद पिछले जन्ममें तुमने इसकी मांग की थी ताकि तुम अधिक प्रगति कर सको...।" ये विचार बहुत प्रचलित हैं: "ओह, मैं बीमार हूं। हाय! मेरा शरीर बुरी अवस्थामें है, मैंने क्या किया है? मैंने पिछले जन्ममें कौन-सा अपराध किया था कि इस...।" यह बचकानी बातें हैं।

तो यह लो। पुनरागमनाय, मेरे बच्चो।

१२ अगस्त, १९५३

आप किसीकी आंखें देखकर उसका चरित्र कैसे जान लेती हैं?

केवल आंखें देखकर नहीं। मैं किसीका चरित्र उसके साथ तादात्म्यके द्वारा जानती हूं। और बाहरी रूपसे, अगर तुम चाहो तो, आंखें दरवाजों या खिड़कियों जैसी होती हैं: कुछ खुली होती हैं, उनमें तुम प्रवेश कर सकते हो, अंदर बहुत गहराईमें जा सकते हो और वहां होनेवाली हर चीज देख सकते हो। कुछ और आंखें अधखुली, अधमुंदी होती हैं; फिर कुछ पर एक आवरण, एक तरहका परदा होता है। और कुछ बंद, एकदम तालेमें जकड़ी हुई, दरवाजे इस तरह बंद होते हैं कि उन्हें खोला ही नहीं जा सकता। वास्तवमें, यह अपने-आप सूचक है। यह आंतरिक जीवनके बलके बारेमें, सचाई और पारदर्शकताके बारेमें संकेत देता है। इस तरह, खुले दरवाजोंके द्वारा मैं अंदर जाती हूं और अपने-आपको अंदरके व्यक्तिके साथ एक कर लेती हूं। मैं वही देखती हूं जो वह देखता है, वही समझती हूं जो वह समझता है, वही सोचती हूं जो वह सोचता है और वही कर सकती हूं जो वह करता है (लेकिन साधारणतः मैं इससे बचती हूं!) और इस तरह मैं जान पाती हूं कि लोग कैसे हैं। और इसके लिये बहुत समयकी जरूरत नहीं होती; यह बहुत तेजीसे होता है। यह फोटोके द्वारा भी हो सकता है, परंतु इतनी अच्छी तरह नहीं। फोटो केवल एक क्षणको पकड़ पाता है, किसीके एक मिनटको; अगर कई फोटो हों...। लेकिन फिर भी, फोटोसे भी जरा ज्यादा गहराईमें जाकर काफी स्पष्ट परिचय मिल सकता है। लेकिन सभी ज्ञान तादात्म्यसे आता है। अर्थात्, तुम्हें वह बन जाना चाहिये जो तुम जानना चाहते हो। तुम अनुमान कर सकते हो, कल्पना कर सकते हो, परिणाम निकाल सकते हो, तर्क कर सकते हो, पर जान नहीं सकते।

तो यह मनुष्योंके लिये कठिन चीज है?

नहीं, क्यों?

तुम तादात्म्य करना सीख सकते हो। तुम्हें सीखना चाहिये। अगर तुम अहंकारसे निकलना चाहो तो यह अनिवार्य है। क्योंकि जबतक तुम अहंमें बंद हो तबतक कोई प्रगति नहीं हो सकती।

यह कैसे किया जाय ?

इसकी बहुत-सी पद्धतियां हैं। मैं तुम्हें एक बतलाती हूं।

मैं पैरिसमें थी तो मैं बहुत-से स्थानोंपर जाया करती थी जहां सब प्रकारकी सभाएं होती थीं, लोग नाना प्रकारकी शोध करते थे, आध्यात्मिक (तथाकथित आध्यात्मिक) शोध, गुह्य शोध आदि। एक बार मुझे एक महिलासे मिलनेके लिये निमंत्रण मिला (शायद वह स्वीडनकी थी), जिसने ज्ञान-प्रणाली खोज ली थी, यथार्थ रूपमें सीखनेकी एक प्रक्रिया। और उसने हमारे आगे उसकी व्याख्या की। हम तीन-चार थे (उसकी फ्रेंच बहुत अच्छी न थी, पर उसे अपने ऊपर पूरा विश्वास था !); उसने कहा : "चीज ऐसी है, तुम एक वस्तुको ले लो या एक बोर्डपर कुछ निशान बना लो या एक आलेखन ले लो — इसका कोई महत्त्व नहीं है — तुम्हारे लिये जो सुविधाजनक हो लो। मैं तुम्हारे लिये एक आलेखन किये देती हूं . . . (उसके पास एक बोर्ड था) मैं एक आलेखन बनाये देती हूं।" उसने अर्ध ज्यामितिका-सा आलेखन किया। "अब तुम इस आलेखके सामने बैठो और अपना सारा ध्यान इसपर एकाग्र करो — इस आलेखपर जो यहां है। तुम अपने-आपको एकाग्र करते जाओ, एकाग्र करते जाओ, इसके सिवा किसी और चीजको अपनी चेतनामें न आने दो। तुम्हारी आंखें आलेखपर गड़ी हुई हैं और जरा भी नहीं हिलतीं। तुम मानों इस आलेखनसे सम्मोहित हो गये हो। तुम देखो (वह देखती हुई बैठ गयी), तुम देखते हो, देखते जाते हो . . .। मुझे पता नहीं, यह कम या अधिक समय लेता है, फिर भी जिन्हें अभ्यास है वे काफी तेजीसे कर सकते हैं। तुम देखते हो, देखते हो, देखते हो, तुम वही आलेखन बन जाते हो जिसे तुम देख रहे हो। सारी दुनियामें इस आलेखनको छोड़कर कुछ और नहीं रह जाता। और तब, अचानक, तुम दूसरी ओर जा पहुंचते हो; और जब तुम दूसरी ओर जा पहुंचते हो तो तुम एक नयी चेतनामें प्रवेश करते हो, और तुम जानते हो।"

वहां अच्छी हंसी हुई, क्योंकि बात मजेदार थी। लेकिन है यह बिलकुल सच। अभ्यास करनेके लिये यह एक अच्छा तरीका है। स्वभावतः, एक आलेखन या कोई वस्तु लेनेकी जगह, तुम, उदाहरणके लिये, कोई विचार या कुछ शब्द ले सकते हो। कोई समस्या तुम्हें पकड़े हुए है। तुम्हें उस समस्याका हल नहीं मालूम। अच्छा, तुम अपनी समस्याको अपने मनमें वस्तुनिष्ठ रूप दो, उसे यथासंभव अधिक-से-अधिक ठीक-ठीक, यथार्थ, संक्षिप्त रूपमें रखो, और फिर एकाग्र हो, एक प्रयास करो; तुम

केवल शब्दोंपर ही एकाग्र हो और हो सके तो उनके भावपर, अर्थात्, अपनी समस्यापर एकाग्र हो — एकाग्र होते चलो, एकाग्र होते चलो, एकाग्र होते चलो — यहांतक कि उसके सिवा और कुछ भी न बच रहे। और यह सच है, कि एकाएक, तुम्हें ऐसा लगता है कि कोई चीज खुल रही है और तुम दूसरी ओर हो जाते हो। लेकिन किस चीजके दूसरी ओर? ... इसका मतलब है कि तुमने अपनी चेतनाका एक दरवाजा खोल दिया है और तुम्हें तुरंत अपनी समस्याका हल मिल जाता है।

यह तादात्म्य "कैसे" किया जाय यह सीखनेका अच्छा तरीका है।

उदाहरणके लिये, तुम किसीके साथ हो। यह आदमी तुमसे कुछ बात कहता है। तुम उससे उलटी बात कहते हो (यह प्रायः विरोधकी भावनासे होता है), और तुम बहस करना शुरू कर देते हो। स्वभावतः, तुम कभी किसी एक बिंदुपर न पहुंच पाओगे, सिवा इसके कि यदि तुम बदमिजाज हो तो तुम झगड़ पड़ो। लेकिन यह करनेकी जगह, अपने ही विचारों और अपने ही शब्दोंमें रहनेकी जगह, अगर तुम अपने-आपसे कहो: "जरा ठहरो, मैं जरा कोशिश करके देखता हूं कि उसने मुझसे यह क्यों कहा। हां, उसने मुझसे यह क्यों कहा?" और तुम एकाग्र होते हो: "क्यों, क्यों, क्यों?" तुम वहीं खड़े रहते हो, बस उसी तरह, कोशिश करते हुए। दूसरा आदमी बोलना जारी रखता है, है न? — और वह बहुत प्रसन्न है कि अब तुम उसका विरोध नहीं करते! वह बहुत अधिक बोलता है और उसे विश्वास है कि उसने तुम्हें आश्वस्त कर दिया है। तब तुम धीरे-धीरे उस बातपर एकाग्र होते हो जो वह कह रहा है, और इस भावनाके साथ एकाग्र होते हो कि धीरे-धीरे उसके शब्दोंके द्वारा तुम उसके मनमें प्रवेश कर रहे हो। जब तुम उसके सिरमें प्रवेश करते हो तो अचानक तुम उसकी सोचनेकी पद्धतिमें प्रवेश करते हो और उसके बाद, जरा कल्पना करो, तुम समझ जाते हो कि वह तुम्हारे साथ इस तरह क्यों बोल रहा है! और फिर, यदि तुम्हारी समझ काफी तेज है और तुमने अभी जो चीज समझी है उसे तुम, जो पहले नहीं जानते थे, उसके साथ रखो तो तुम्हारे पास दोनों तरीके इकट्ठे हो जाते हैं। अतः तुम ऐसे सत्यको पा सकते हो जो दोनोंका समन्वय करता है। और यहां तुमने सचमुच प्रगति की है। अपने विचारोंको विस्तृत करनेका सबसे अच्छा तरीका यही है।

अगर तुम कोई विवाद शुरू कर रहे हो, एकदम, तुरंत चुप हो जाओ। तुम्हें बिलकुल चुप होना चाहिये, कुछ भी न बोलो, और तब चीजको उस तरह देखनेकी कोशिश करो जैसे दूसरा आदमी देखता है — इससे तुम देखनेका अपना तरीका न भूलोगे, — बिलकुल नहीं! लेकिन तुम दोनोंको

एक साथ रख सकोगे और तुम वास्तवमें प्रगति कर लोगे, वास्तविक प्रगति।

हर चीजके लिये यही बात है। जो कुछ तुम औरोंके साथ मिलकर करते हो उसमें यदि तुम औरोंके साथ सहमत नहीं हो तो इसे भगवान्‌की कृपा मानो, प्रगति करनेके लिये दिया गया एक अद्‌भुत अवसर मानो। और यह सरल है: इस ओर होनेकी जगह, तुम दूसरी ओर होओ; अपने-आपको देखनेकी जगह, तुम दूसरे व्यक्तिमें प्रवेश करके देखो। तुम्हारे अंदर जरा-सी कल्पना होनी चाहिये, अपने विचारों और अपनी गति-विधियोंपर जरा और अधिकार होना चाहिये। परंतु यह बहुत कठिन नहीं है। जब तुम इसका जरा परीक्षण कर लोगे तो थोड़ी देर बाद यह बहुत सरल होगा।

तुम्हें केवल देखकर ही अपने-आपसे यह कहते हुए: "यह ऐसा क्यों है और वैसा क्यों है? वह ऐसा क्यों करता है? ऐसा क्यों कहता है?" मानसिक प्रयास ही नहीं करना चाहिये। इससे तुम कभी कुछ न पा सकोगे। तुम समझ न पाओगे, तुम सब प्रकारकी सफाइयोंकी कल्पनाएं करोगे जो बेकार होंगी। तुम उनसे कुछ न सीखोगे, बस अपने-आपसे कहोगे: "वह व्यक्ति मूर्ख या दुष्ट है" — ऐसी बातें जिनका कोई लाभ नहीं। दूसरी ओर अगर तुम यह छोटी-सी गति करो, उसे अपनेसे भिन्न, एक परायी वस्तुके रूपमें देखनेकी जगह, तुम उसके अंदर प्रवेश करनेका यत्न करो, उसके अंदर प्रवेश करो, उस छोटे-से सिरमें जो तुम्हारे सामने है, और तब, अचानक, तुम अपने-आपको दूसरे पक्षमें पाते हो, तुम अपने-आपपर दृष्टि डालते हो और बड़ी अच्छी तरह समझ जाते हो कि वह क्या कह रहा है — हर बात स्पष्ट है, उसका क्यों, कैसे, कारण और सारी चीजकी पीछेकी भावना...। यह एक ऐसा परीक्षण है जिसे करनेके लिये दिनमें सौ-सौ बार अवसर मिलते हैं।

शुरू-शुरूमें तुम अच्छी तरह सफल न होओगे, लेकिन अगर तुम लगे रहो तो अंतमें बहुत अच्छी तरह सफल होओगे। यह जीवनमें बहुत रस बढ़ा देता है। इसके अतिरिक्त यह ऐसा काम है जो सचमुच तुमसे प्रगति करवाता है। यह तुम्हें अपने उस छोटे-से कवचमेंसे निकालता है जिसमें तुम अच्छी तरह बंद हो, जिसमें तुम हर चीजके साथ टकराते हो। तुमने पतिंगोंको रोशनीमें टकराते देखा है, देखा है न? ... हर एककी चेतना ऐसी ही है। वह इधर-उधर टकराती फिरती है, क्योंकि उसके लिये ये विजातीय चीजें हैं। लेकिन अगर टकरानेकी जगह, तुम उनमें प्रवेश करो तो वे तुम्हारा अपना अंश बनने लगती हैं। तुम अपने-आपको

विस्तृत करते हो, आजादीसे सांस लेते हो, तुम्हारे पास हिलने-डुलनेके लिये काफी जगह होती है, तुम किसीके साथ नहीं टकराते, तुम उसमें प्रवेश करते हो, उसमें व्याप्त हो जाते हो और समझते हो। और तुम एक ही समयमें अनेक स्थानोंमें रहते हो। यह बहुत मजेदार है। तुम इसे अपने-आप ही करते हो।

उदाहरणके लिये, जब तुम कोई पुस्तक पढ़ते हो जिसमें तुम्हें बहुत रस आता है, उत्तेजक, साहस-भरी बातोंसे भरा उपन्यास, जब तुम कहानीमें पूरी तरह रमे हो तो कभी-कभी तुम विद्यालयका समय या भोजन और शयनका समय भी भूल जाते हो। तुम जो पढ़ रहे हो उसमें पूरी तरह रम जाते हो। हां, तो यह तादात्म्यकी अवस्था है। और अगर तुम इसे कुछ पूर्णताके साथ करो तो तुम पहलेसे ही यह समझनेमें सफल हो सकते हो कि आगे क्या आनेवाला है। ऐसा समय होता है जब, कहानीमें पूरी तरह डूबकर, तुम बिना कोशिश किये यह जान सकते हो कि लेखक तुम्हें किधर लिये जा रहा है और वह इस कहानीकी परतोंको किस तरह खोलकर अपने निष्कर्षकी ओर कैसे ले आयगा। क्योंकि तुम अपने-आपको लेखकके सर्जनशील विचारके साथ एक कर लेते हो। तुम बिना जाने ही, लगभग पूरी तरह यह कर लेते हो, यह तादात्म्यके उदाहरण हैं।

पैरिसमें चौथे और पांचवें दरजेकी रंगशालाओंमें बहुत सनसनीदार नाटक किये जाते हैं। ये उपनगरकी रंगशालाएं होती हैं जो बुद्धि-प्रधान लोगोंके लिये नहीं, सामान्य लोगोंके लिये होती हैं। और वहांकी सब चीजें हमेशा बहुत अधिक नाटकीय और हृदयस्पर्शी होती हैं। जो लोग वहां जाते हैं वे अधिकतर सीधे-सादे लोग होते हैं और यह भूल जाते हैं कि वे रंगशालामें बैठे हैं। वे नाटकके साथ एक हो जाते हैं। और इस तरहकी चीजें होती हैं: मंचपर कोई द्रोही दरवाजेके पीछे छिपा है और इधरसे नायक आता है। स्वभावतः उसे यह नहीं मालूम होता कि द्रोही दरवाजेके पीछे छिपा है; उसकी हत्या होनेवाली है। इस तरफ नाटककी गैलरीमें बैठे हुए लोग चिल्ला पड़ते हैं: "देखो, देखो, वहां है!" (हंसी) यह बात एक-आध बार नहीं हुई है, सैकड़ों बार सहज रूपसे होती है। मैंने इस प्रकारका एक नाटक देखा था जिसका नाम था 'ल बोस्यू' (कुबड़ा)। मेरा ख्याल है कि वह बड़ा सनसनीदार नाटक था और 'तेआत्र द ला पौर्त सें-मार्तें'में हो रहा था। इस नाटकमें एक कमरा था। मंचपर एक बड़ा कमरा देखा जा सकता था, उसके साथ ही एक छोटा कमरा और ...। अब मुझे सारी कहानी तो याद नहीं है, लेकिन

छोटे कमरेमें एक बटन दबाया जा सकता था जिसे दबानेसे बड़े कमरेकी छत नीचे लायी जा सकती थी जिससे नीचेवाले बड़ी निर्दयतासे पिस जायं! . . . चेतावनी दी जा चुकी थी, लोग उसके बारेमें कह चुके थे, संदेश भेजा जा चुका था। और उस छोटे कमरेमें एक द्रोही छिपा था जो बटनका रहस्य जानता था, और उधर नायक था जो और लोगोंके साथ अंदर आया, दोनोंमें बहस शुरू हो गयी; और हर एक जानता था कि अब छत नीचे आनेवाली है . . .। मैंने कुछ नहीं कहा, मुझे याद था कि मैं रंगशालामें हूं। मैं जानना चाहती थी कि लेखक अपने नायकको बचानेके लिये इस स्थितिको कैसे पार करता है (क्योंकि यह तो स्पष्ट ही था कि वह उसे सबके सामने इस तरह मार नहीं सकता था!), लेकिन दूसरे इस स्थितिमें हर्गिज नहीं थे। हां, ऐसे दर्शक थे जो चिल्लाये, सचमुच चिल्लाये: "देखो, देखो, छतका ख्याल रखो!" तो यूं हुआ।

ये तादात्म्यकी घटनाएं हैं, लेकिन हैं बिना इच्छाके तादात्म्यकी। स्नायविक रोगोंको दूर करनेके लिये आजकल जो तरीके काममें लाये जाते हैं उनमेंसे यह भी एक है। जब किसीको नींद नहीं आती, वह आराम नहीं कर सकता क्योंकि वह बहुत ज्यादा उत्तेजित और व्याकुल है, उसकी स्नायुएं अत्यधिक उत्तेजनाके कारण दुर्बल या रुग्ण बन गयी हैं, तो उससे कहा जाता है, उदाहरणके लिये, एक मछलीघरके सामने बैठ जाओ, मछली-घर बहुत सुन्दर होता है, है न? — एक मछलीघरके सामने बैठ जाओ जिसमें छोटी-छोटी सुन्दर मछलियां हों, सुनहरी मछलियां। वहां बस बैठ जाओ, वहां एक आराम कुरसीपर बैठ जाओ और कुछ भी न सोचनेकी कोशिश करो, कम-से-कम अपनी कठिनाइयोंके बारेमें न सोचो, बस मछलियां देखो। तो वह मछलियोंको देखता है जो इधर-उधर घूमती हैं, आती हैं, जाती हैं, तैरती हैं, फिसलती हैं, मुड़ती हैं, मिलती हैं, एक-दूसरे-का रास्ता काटती हैं, अनिश्चित कालतक पीछा करती हैं, वह देखता है कि पानी मछलियोंके पाससे गुजरता है और मछलियां भी आती-जाती हैं। कुछ समयके बाद वह मछलीका जीवन जीने लगता है। वह आता-जाता है, तैरता, फिसलता, खेलता है। और एक घंटा समाप्त होनेपर उसकी स्नायुएं बिलकुल ठीक हालतमें होती हैं और वह पूरी तरह शांत होता है!

लेकिन शर्त यही है कि वह अपनी कठिनाइयोंके बारेमें न सोचे, बस मछलियोंको ताकता रहे।

क्या इसी पद्धतिसे भगवान्‌को पाया जा सकता है?

तुम जानते हो, भगवान्‌को जाननेका बस एक ही तरीका है — अपने-आपको उनके साथ एक कर लेना। और कोई तरीका नहीं है, केवल एक, एक ही तरीका है। फलस्वरूप एक बार तुम तादात्म्यके इस तरीकेपर अधिकार कर लो तो तुम इस तरह एकीकरण कर सकते हो। तुम तादात्म्यके लिये अपना विषय चुनते हो, तुम भगवान्‌के साथ एक होना चाहते हो। जबतक तुम एकीकरण करना नहीं जानते तबतक सैकड़ों चीजें तुम्हारे रास्तेमें आयंगी, तुम्हें इधर खींचेंगी, उधर खींचेंगी, तुम्हें बिखेर देंगी, तुम और उनके साथ तादात्म्य न पा सकोगे। लेकिन अगर तुमने तादात्म्य करना सीख लिया है तो तुम्हें तादात्म्यको बस दिशा देनी होगी। फिर तुम उसे जिस दिशामें चलाना चाहते हो उस ओर कर दो और फिर लगे रहो जबतक कि परिणाम न आ जाय। अगर तुम तादात्म्यकी क्षमतामें दक्ष हो तो परिणाम बहुत जल्दी आयेगा। हां, बहुत, बहुत जल्दी आयेगा। रामकृष्ण कहा करते थे कि समय तीन दिन, तीन घंटे, तीन मिनटके बीच बदल सकता है,। बहुत सुस्त लोगोंके लिये तीन दिन, तीन घंटे उनके लिये जो जरा तेज हैं, और जो अभ्यस्त हैं, उनके लिये तीन मिनट।

बहुत सुस्त लोगोंके लिये तीन दिन?

हां, बहुत सुस्त लोगोंके लिये। उनसे पूछा गया था: "भगवान्‌के साथ एक होनेमें कितना समय लगता है?" तब उन्होंने यह जवाब दिया था।

— इसका मतलब होगा और कुछ भी किये बिना तीन दिन?

नहीं, कुछ भी किये बिना नहीं! भगवान्‌के साथ तादात्म्य प्राप्त करनेके लिये कुछ भी न करना जरूरी नहीं है। यह तो स्पष्ट ही है कि तुम तीन दिनतक बिना हिले-डुले, कुछ भी किये बिना बैठे नहीं रह सकते। अगर तुम यह कर सको तो इसका मतलब होगा कि तुम पूर्णताकी एक असाधारण अवस्था प्राप्त कर चुके हो — अपनी सारी आवश्यकताओंको भूलकर तीन दिन बिना हिले-डुले रह सको। नहीं, उसका मतलब यह नहीं है; तुम्हारा विचार केवल भगवान्‌पर केंद्रित रहे। और उन्होंने यह प्रमाणित करनेके लिये कि वे जो कुछ कह रहे हैं वह सत्य है, उस आदमीके आगे यह कर दिखाया। इसमें उन्हें तीन मिनटसे ज्यादा नहीं लगे।

लेकिन, बस यही चीज है, अनुभूतिमें जो चीज बाधक होती है वह है एकाग्रताके अभ्यासका अभाव और एकाग्रताके उद्देश्यमें, संकल्पमें निष्कपटताका अभाव। तुम उसे एक मिनट, दो मिनट, चार मिनट, दस मिनट, पाव घंटे, एक घंटेके लिये चाहते हो, और उसके बाद तुम बहुत सारी और चीजें चाहते हो...। तुम उसके बारेमें कुछ क्षणोंके लिये "सोचते" हो और उसके बाद सैकड़ों दूसरी चीजोंके बारेमें सोचते हो। इस तरह स्वभावतः तुम्हें अनंत काल लग सकता है। क्योंकि वास्तवमें इसमें तुम जोड़ नहीं कर सकते; अगर इसे रेतके कणोंकी तरह इकट्ठा किया जा सकता, अगर जब कभी तुम भगवान्‌के बारेमें सोचो, उसी समय कहींपर रेतका एक कण जमा कर दो तो कुछ समयके बाद एक पहाड़ बन सकता है। लेकिन ऐसा नहीं होता, वह नहीं रहता। उसका कोई परिणाम नहीं आता। यह इकट्ठा नहीं होता, तुम जमा नहीं कर सकते, मात्राके हिसाबसे प्रगति नहीं करते — तुम तीव्रतामें प्रगति कर सकते हो, गुणमें प्रगति कर सकते हो। हां, तुम अपने अंदर यह सीख सकते हो कि इसे कैसे किया जाय; परन्तु जो तुमने किया है उसकी गिनती बस इसी तरह होती है। यह बालूके टीले पर रेतके कणोंकी तरह इकट्ठा नहीं हो सकता। अन्यथा इतना काफी होता कि तुम बहुत होशियार बनकर अपने-आपसे कहते: "मैं रोज कम-से-कम दस विचार भगवान्‌को दूंगा।" और फिर, इसी तरह ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ोंसे कुछ समयके बाद एक छोटी-सी पहाड़ी...।

हां तो, बच्चो, अब दस बजनेको हैं। लेकिन अगर किसीके पास कोई बहुत मजेदार प्रश्न हो...। तुम ? पूछो।

मुझे एक प्रश्न पूछना है ?

बहुत मजेदार ?

वह मेरे लिये मजेदार है। कहा जाता है कि कुछ बहुत बुद्धिमान् लोग हैं और कुछ मूर्ख। क्यों ?

क्यों ? लेकिन, मेरे बच्चे, प्रकृतिमें सब तरहकी चीजें हैं! कोई दो चीजें एक-सी नहीं होती। प्रकृतिमें सब संभावनाएं हैं। तुम जो कुछ कल्पना कर सकते हो वह सब, और उससे करोड़ों गुनी अधिक। तो तुम देखते हो कि बुद्धिमान् लोग हैं, फिर ऐसे हैं जो बुद्धिमान् नहीं हैं। और फिर ऐसे भी हैं जो असंतुलित हैं। और फिर, तुम्हारा अवलोकन

तो बहुत छोटे क्षेत्रतक सीमित है। लेकिन तुम अपने-आपसे कह सकते हो कि इस सबका अस्तित्व है और इससे करोड़ों गुनी अधिक चीजें भी हैं और कि संसारमें कोई दो चीजें एक-सी नहीं हैं। और मैं नहीं समझती कि तुम किसी ऐसी चीजकी कल्पना कर सकते हो जिसका कहीं-न-कहीं अस्तित्व न हो। यही चीज है जिसमें प्रकृतिको सबसे अधिक मजा आता है — वह सब प्रकारके परीक्षण करती है, सब कुछ करती है, सब कुछ बनाती है, सब कुछ बिगाड़ती है और वह सभी संभव संयोग बनाती है और उन्हें बदलती रहती है, उन्हें फिरसे बनाती है, अलग तरीकेसे व्यवहार करती है। यह सभी संभावनाओंकी एकके पीछे एक चलने, टकराने, मिलने, जुड़ने, अलग होनेकी निरंतर गति है। पार्थिव जीवनके कोई दो क्षण एक-से नहीं होते। और यह धरती कबसे चली आ रही है?.... बहुत अच्छे जानकार लोग शायद तुम्हें कुछ अंदाज दे सकें। और यह अभी और कबतक रहेगी? शायद वे तुम्हें यह भी बता दें: बहुत सारे शून्योंके साथ आंकड़े, इतने अधिक शून्य कि तुम उन्हें पढ़ भी न पाओगे। लेकिन कभी दो चीजें एक जैसी न होंगी, कोई दो क्षण समान न होंगे। अगर तुम्हें चीजें देखनेमें एक-सी लगें तो यह केवल अभ्यास है। कोई दो चीजें एक-सी नहीं हैं, कोई दो क्षण एक-से नहीं होते। और यह सब भूतकालमें इतनी दूरतक चला जाता है कि तुम गिन नहीं सकते। और यह सब भविष्यमें इतनी दूर चला जाता है कि तुम गिन नहीं सकते। और कोई चीज दोबारा वही नहीं होगी। अतः, तुम कुछसे यह नहीं पूछ सकते कि इसका अस्तित्व क्यों है और उसका अस्तित्व क्यों है!... तुम मुझसे पूछना चाहते थे क्यों? तुम जानते हो, प्रकृतिमें तुमसे बहुत ज्यादा कल्पना है। वह हमेशा नयी-नयी चीजोंकी कल्पना करती रहती है। ऐसा होना चाहिये क्योंकि वह हमेशा बदलती रहती है और सभी संयोग हमेशा नये रहते हैं। विश्वमें कोई दो सैकंड एक समान नहीं होते। उसमें बहुत ज्यादा कल्पना-शक्ति है। क्या तुमने इस बारेमें कभी नहीं सोचा?... क्या सचमुच तुम्हारे लिये कभी कोई दो क्षण एक-से होते हैं? नहीं। तुम भली-भांति जानते हो कि आज तुम वही नहीं हो जो कल थे और कल वही न रहोगे जो आज हो...। और अगर तुम केवल ...दस वर्ष पीछे जाओ तो तुम अपने-आपको बिलकुल न पहचान पाओगे। तुम यह भी नहीं जानते कि तब तुम क्या सोचा करते थे, यदि यह मान भी लिया जाय कि तुम किसी चीजके बारेमें सोचते थे!

अतः, कोई समस्या नहीं है। तुम जो कुछ कर सकते हो वह बस यही

है। तुम्हें जो अनुभूतिका क्षेत्र दिया गया है, जो बहुत ही सीमित है, उसकी सब संभावनाओंको देखनेके लिये उसीमें जाओ, परखो। और तुम उसे लिखना शुरू कर सकते हो; तुम देखोगे कि इससे, तुरंत ही, एक बड़ी-सी पोथी बन जायगी, केवल उस छोटे-से अनुभव-क्षेत्रमें जो तुम्हारा है।

और तुम हो ही क्या ? . . . 'शाश्वतकाल' में एक निमिष !

अच्छा !

१९ अगस्त, १९५३

"प्रेमकी क्रिया मनुष्योंतक ही सीमित नहीं है। शायद वह मनुष्योंकी अपेक्षा दूसरे जगतोंमें कम विकृत है। फूलों और पेड़ोंको देखो। जब सूर्यास्त होता है और सब कुछ शांत हो जाता है, उस समय क्षण-भरके लिये पेड़ोंके तले बैठ जाओ और अपने-आपको प्रकृतिके संपर्कमें लाओ। तुम्हें प्रतीत होगा कि धरतीसे, पेड़ोंकी जड़ोंके नीचेसे, उनके रेशोंद्वारा, उनकी फैली हुई शाखाओंतकसे एक उत्कंठा और उत्कट प्रेमकी अभीप्सा उठ रही है — किसी ऐसी चीजके लिये लालसा जो प्रकाश लाती है, सुख देती है, उस प्रकाशके लिये जो चला गया है और जिसे वे फिरसे पा लेना चाहते हैं। वह कृपाकी क्रियाकी तरह ऊपर उठती है जिसमें सबसे स्पन्दनशील कृतज्ञता सबसे तीव्र प्रार्थनाके साथ एक हो जाती है। एक ऐसी शुद्ध और तीव्र ललक जिसे अगर तुम पेड़ोंमें अनुभव कर सको तो तुम्हारी संस्था भी अभीतक अव्यक्त शांति और ज्योतिके लिये तीव्र प्रार्थनामें उठने लगेगी।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२ जून)

पेड़ प्रकाशके लिये अभीप्सा करते हैं। यह प्रकाश क्या है ?

सूर्य, मेरे बच्चे। क्या तुमने कभी नहीं देखा कि जब रात आती है, जैसे ही सूर्य क्षितिजमें डूबने लगता है वैसे ही पत्तियां बंद होने लगती हैं ?

क्या पेड़ किसी और चीजके लिये भी अभीप्सा कर सकते हैं?

"किसी और चीज" से क्या मतलब है? एक पेड़के लिये और कौन-से मार्ग खुले हैं?

आदमी बनना?

आदमी? लेकिन वे आदमीके बारेमें कुछ नहीं जानते। जैसे आदमी देवता बननेकी अभीप्सा करता है? ... मैंने ऐसे जानवर देखे हैं जो मनुष्य बनना चाहते थे, लेकिन वे मनुष्योंके साथ रहते थे। उदाहरणके लिये, कुत्ते-बिल्लियां जो मनुष्योंके ज्यादा निकट संपर्कमें थे, उनमें सचमुच मनुष्य बननेकी अभीप्सा थी। मेरे पास एक बिल्ली थी जो अपने बिल्ली होनेके कारण बहुत, बहुत दुःखी थी। वह मनुष्य बनना चाहती थी। उसकी असामयिक मृत्यु हो गयी। वह ध्यान किया करती थी, उसने निश्चय ही एक प्रकारकी अपनी साधना की, और जब वह चली गयी तो उसके प्राणके एक भाग-ने मनुष्यके रूपमें जन्म भी लिया। उसके अंदर जो थोड़ा-सा चैत्य-तत्त्व इसकी सत्ताके बीचमें था, वह सीधा मनुष्यमें गया। उस बिल्लीके प्राणका जो अंश सचेतन था वह भी मनुष्यमें गया, लेकिन ये उदाहरण अपवाद रूप होते हैं।

आप कहती हैं कि शायद पत्थर भी अभीप्सा करते हैं?[1]

यह संभव है।

क्या इसे जाना जा सकता है?

---

[1] "प्रेम शाश्वत और सार्वभौम है; यह हमेशा अपने-आपको व्यक्त करता रहता है और अपने तत्त्वमें एक ही है। और यह भागवत शक्ति है। हम इसके प्रत्यक्ष कामोंमें जो विकार देखते हैं वे यंत्रोंके हैं। प्रेम केवल मनुष्योंमें ही अभिव्यक्त नहीं होता; यह हर जगह है। इसकी गति-विधि पौधोंमें और शायद एकदम पत्थरोंमें भी है; जानवरोंमें तो इसकी उपस्थितिको पहचान सकना सरल है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२ जून)

तुम उसे अनुभव कर सकते हो। चेतनाकी एक विशेष स्थिति है जिसमें तुम भागवत प्रेमको, वह जहां कहीं भी हो, अनुभव कर सकते हो और तुम्हें जीवों और वस्तुओंमें इतना अधिक फर्क नहीं दिखायी देता जितना भौतिक रूपमें प्रतीत होता है। हम जिन चीजोंको निर्जीव कहते हैं उनमें हम जितना सोच सकते हैं उससे कहीं अधिक अभीप्सा है। कहीं अधिक। पत्थरोंमें भी एक प्रकारका सहज संवेदन होता है कि कौन-सी चीज ज्यादा उच्च, ज्यादा उदात्त, ज्यादा शुद्ध है। यद्यपि वे इसे किसी तरह अभिव्यक्त नहीं कर सकते, पर वे अनुभव करते हैं, और उनपर इसका भिन्न रीतिसे प्रभाव पड़ता है।

चीजोंमें भी, पदार्थोंमें भी, यहांतक कि पत्थरोंमें भी एक विचित्र ग्रहणशीलता होती है जो इस 'उपस्थिति' के कारण आती है। ऐसे पत्थर होते हैं जो — अगर तुम करना जानो — शक्तियोंको संचित कर सकते हैं। वे शक्तियां संचित कर सकते हैं, उन्हें रख सकते हैं और संचारित कर सकते हैं। तुम पत्थर ले सकते हो (जिन्हें कीमती पत्थर कहा जाता है) और उनमें शक्तियोंको केंद्रित कर सकते हो और वे उन्हें बनाये रखते हैं। और ये शक्तियां धीरे-धीरे किरणित होती हैं, बहुत धीरे। लेकिन अगर तुम करना जानते हो तो इतनी शक्ति संचित कर लोगे कि वह, हम कह सकते हैं, अनिश्चित कालतक चलती रहेगी।

और जब ये शक्तियां उन पत्थरोंमेंसे निकलती हैं तो क्या उनका कोई उपयोग हो सकता है?

निश्चित रूपसे, हां! पत्थर अनिश्चित कालतक शक्तियोंको संचित रख सकता है। ऐसे पत्थर हैं जो संपर्ककी कड़ीका काम दे सकते हैं, ऐसे पत्थर हैं जो बैटरीका काम दे सकते हैं। ऐसे पत्थर हैं जो किसी शक्तिको संरक्षणके लिये रख सकते हैं। मेरे बच्चे, वह सचमुच विलक्षण है। तुम पत्थरमें (विशेषकर एमेथिस्ट या जंबुमणिमें) संरक्षणकी शक्तिको संचित कर सकते हो और वह शक्ति सचमुच पहननेवालेकी रक्षा करती है। यह बहुत मजेदार है, मैंने इसका अनुभव किया है। मेरा एक आदमीसे परिचय था जिसके पास ऐसा पत्थर था जो संरक्षणकी शक्तिसे भरा था, और जब वह उसे पहनता था तो वह अद्भुत ...। ऐसे पत्थर होते हैं जो घटनाओंकी पूर्व-सूचना देनेके उपयोगमें आ सकते हैं। कुछ लोग इन पत्थरोंमें आनेवाली घटनाओंको पढ़ सकते हैं। पत्थर संदेश वहन कर सकते हैं। स्वभावतः, इसके लिये दोनों ओर योग्यता

होनी चाहिये — एक ओर एकाग्रताकी काफी प्रबल शक्ति और दूसरी ओर बहुत अधिक यथार्थ शब्दोंका उपयोग किये बिना भी सीधा देख और पढ़ सकनेकी क्षमता। फलतः, चूंकि वे बैटरीका काम दे सकते हैं अतः इसका मतलब यह हुआ कि वे अपने अंदर स्वयं-शक्तिका स्रोत लिये रहते हैं, अन्यथा वे ग्रहणशील न होते। इस प्रकारकी शक्ति ही स्फटिकीकरणके मूलमें होती है, उदाहरणके लिये, शैल स्फटिक ले लो जिनमें ऐसे सुन्दर और पूर्ण सामंजस्ययुक्त नमूने होते हैं। यह केवल एक ही चीजसे आ सकती है और वह है केंद्रमें 'उपस्थिति'। हां, तुम इसे नहीं देखते क्योंकि तुम्हारे अंदर आंतरिक संवेदन-शक्ति नहीं है। लेकिन एक बार तुम्हारे अंदर चीजोंके पीछे रहनेवाले प्रेमकी शक्तियोंको सीधा अनुभव करनेकी क्षमता आ जाय तो तुम देखोगे कि वे शक्तियां सब जगह समान हैं। निर्मित वस्तुओंमें भी तुम यह समझ सकते हो कि वे क्या कहती हैं।

कुछ और?

मां, जब फूल आपके पास लाये जाते हैं तो आप उन्हें किस तरह अर्थ प्रदान करती हैं?

फूलोंको? यह भी उसी तरहसे। फूलकी प्रकृतिके साथ, उसके आंतरिक सत्यके साथ संपर्क पैदा करके। तब यह मालूम होता है कि वह किसका प्रतीक है।

मां, आपने कहा था कि आप एक दिन यह बतलायेंगी कि जिसे हम "देव" कहते हैं और जिसे आप "भगवान्" कहती हैं, उन दोनोंमें क्या भेद है?

ओहो! लेकिन मैंने तुमसे कहा था कि यह बादमें होगा, कई वर्ष बाद। मैंने कहा था कि इसके लिये तुम्हें काफी वयस्क होना चाहिये। मैंने यह भी कहा कि कैसी अवस्था होनी चाहिये। अब मुझे याद नहीं है। लेकिन अस्तित्वको इसे समझनेके लिये जरा और तैयार होना चाहिये।

"इस महान् और दिव्य शक्तिके सभी विकार सीमित यंत्रके धुंधलेपन, अज्ञान और स्वार्थसे आते हैं। प्रेममें, जो शाश्वत शक्ति है, चिमगलेका भाव नहीं होता, कामना नहीं होती, अधिकार करनेकी भूख नहीं होती, स्वाभिमानपूर्ण आसक्ति नहीं होती। अपनी शुद्ध गतिमें वह आत्माकी परमात्माके साथ मिलनकी

खोज है, एक निरपेक्ष खोज जो और चीजोंकी परवाह नहीं करती। भागवत प्रेम अपने-आपको देता है और कुछ नहीं मांगता। मनुष्योंने उसका क्या कर डाला है, वह कहनेकी जरूरत नहीं। उन्होंने उसे एक भद्दी, घिनौनी चीज बना दिया है। लेकिन फिर भी, मनुष्योंमें भी, प्रेमका प्रथम संपर्क अपने शुद्ध तत्त्वका कुछ अंश लेकर आता है। वे क्षण-भरके लिये अपने-आपको भूल सकने योग्य बन जाते हैं। क्षण-भरके लिये उसका दिव्य स्पर्श सभी मनोहर और सुंदर तत्त्वोंको जगा देता है। लेकिन बादमें मानव स्वभाव ऊपरी सतहपर आ जाता है जिसमें अशुद्ध मांगें भरी हैं, जो बदलेमें कुछ मांगता है, जो देता है उसके बदले कुछ चाहता है, निम्न तुष्टियोंके लिये छटपटाता है और जो चीज दिव्य थी उसे बिगाड़ देता और गंदा कर देता है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२ जून)

मनुष्य हमेशा जो कुछ देते हैं उसके बदलेमें कुछ क्यों लेना चाहते हैं?

क्योंकि वे अपने-आपमें बंद रहते हैं।

वे अपनी सीमाओंको अनुभव करते हैं और सोचते हैं कि वृद्धि पानेके लिये, बढ़नेके लिये, बचे रहनेके लिये भी उनमें बाहरसे चीजें लेनी होंगी, क्योंकि वे अपनी व्यक्तिगत सीमाओंकी चेतनामें रहते हैं। इसलिये, उनकी दृष्टिमें, जब वे कुछ देते हैं तो उनके अंदर एक छेद हो जाता है, और यह छेद कुछ पाकर ही भरा जा सकता है! ... स्वभावतः यह एक भूल है। सच तो यह है कि अपने छोटे व्यक्तित्वकी अपनी संकुचित सीमाओंमें बंद रहनेकी जगहपर वे अपनी चेतनाको इतना विस्तृत कर सकें कि औरोंके साथ उनकी संकुचित सीमाओंमें एक हो सकें, इतना ही नहीं, बल्कि इन सीमाओंसे बाहर निकलकर उनके पार जाकर सब जगह फैल जायं, एकमेव चेतनाके साथ मिलकर एक हो जायं और सब चीजें बन जायं, तब, उस क्षण संकुचित सीमाएं गायब हो जायंगी, उससे पहले नहीं। और जबतक तुम्हें संकुचित सीमाओंका अनुभव होता है तबतक तुम लेना चाहते हो, क्योंकि तुम्हें खोनेका डर रहता है। व्यक्ति खर्च करता है तो फिर-से भरना चाहता है। मेरे बच्चो, यह इसी कारण है। क्योंकि अगर तुम सभी चीजोंमें फैले रहो, अगर आने और जानेवाले सभी स्पंदन सब

चीजोंमें मिल जानेकी, अपने-आपको विस्तृत करनेकी, अपनी सीमाओंमें बने रहकर बढ़नेकी नहीं, उन सीमाओंसे बाहर निकलकर बढ़नेकी और हर चीजके साथ एक हो जानेकी आवश्यकता व्यक्त करो तो तुम्हारे पास खोनेके लिये कुछ भी न होगा, क्योंकि सब कुछ तुम्हारे पास होगा। लेकिन आदमी यह नहीं जानता। और चूंकि वह नहीं जानता इसलिये कर भी नहीं सकता। आदमी लेना चाहता है, संचित, संचित, संचित करना चाहता है लेकिन यह असंभव है। तुम संचित नहीं कर सकते। तुम्हें तादात्म्य साधना चाहिये। और तब जो कुछ थोड़ा-बहुत तुम देते हो उसका बदला चाहते हो। तुम एक सद्भावना देते हो तो उसकी मान्यता चाहते हो, तुम थोड़ा-सा स्नेह देते हो और दूसरोंसे उसकी आशा करते हो . . . क्योंकि तुम्हारे अंदर यह क्षमता नहीं है कि हर एकके अंदर सद्भावना बन सको, तुम्हारे अंदर यह क्षमता नहीं है कि सबके अंदर स्नेह बन सको, सब चीजोंके अंदर सौम्य प्रेम बन सको। तुम्हें बस ऐसा ही प्रतीत होता है, सब कुछ कटा-कटा और सीमित और सब कुछ खोनेका डर लगता है, तुम्हारे पास जो कुछ है उसे खोनेका डर लगता है क्योंकि तब तुम कंगाल हो जाओगे। इसके विपरीत, यदि तुम तादात्म्य कर सको तो तुम्हें खींचनेकी जरूरत न रहेगी। तुम जितना अधिक फैलोगे उतना ही अधिक तुम्हारे पास होगा। तुम जितना अधिक तादात्म्य साधोगे उतने अधिक बन जाओगे। और तब लेनेकी जगह तुम दोगे। तुम जितना अधिक दोगे उतने ही अधिक बढ़ोगे।

लेकिन इसके लिये तुम्हें अपने छोटे-से अहंकारकी सीमाओंसे निकल आना चाहिये। तुम्हें अपने अहंके साथ एक होनेकी जगह दिव्य शक्तिके साथ तादात्म्य साधना चाहिये, दिव्य स्पंदनके साथ तादात्म्य साधना चाहिये।

यह बहुत कठिन है, लेकिन आदमी इसमें सफल हो सकता है।

यह क्यों कहा जाता है कि अच्छी चीजें करनेकी अपेक्षा बुरी चीजें करना ज्यादा आसान है?

यह कहा तो जाता है, पर हमेशा ठीक नहीं होता। यह लोगोंपर निर्भर है। मेरा ऐसे लोगोंसे परिचय था (बहुत नहीं, फिर भी . . .) जिनके लिये कुछ भी बुरा करना असंभव था। हानि पहुंचानेके विचारसे ही उनके अंदर हर चीज विद्रोह कर उठती थी; उनकी सहज गति इसके बिलकुल विपरीत थी। यह है तो विरल, फिर भी है जरूर।

यह इसलिये होता है क्योंकि अभीतक अपनी वर्तमान स्थितिमें संसार अधिकतर विरोधी शक्तियोंके प्रभावमें है, विशेषकर प्राणिक शक्तिके जो क्रियाशील है और साधारणतः तुमसे काम करवाती है। यह शक्ति अधिक भागमें विरोधी प्राणके प्रभावमें है, यानी, ऐसी शक्तियोंके प्रभावमें जो हानि पहुंचाती, नष्ट करती और तोड़-फोड़ करती है। उस प्रकारकी इच्छा जो चीजोंको बिगाड़ना चाहती है : जब कोई सुन्दर चीज दिखायी दे तो उसकी सराहना करने, उससे प्यार करने, खुश होने और यह चाहनेकी जगह कि वह बढ़े और प्रगति करे (जो सच्ची भागवत क्रिया है), व्यक्तिको एक तरहका गुस्सा आता है, वह आपेसे बाहर हो जाता है, वह तोड़ना-फोड़ना, नष्ट करना चाहता है। यह विरोधी शक्तियोंकी क्रिया है। दुर्भाग्यवश, यह बहुत-से लोगोंमें, यहांतक कि बच्चोंमें भी बहुत सहज है... यह नष्ट करने और बिगाड़नेका सहज बोध। तो, यह विरोधी शक्तियोंकी उपस्थिति है। और ये ऐसी शक्तियां हैं जो सीधी प्राण जगत्से आती हैं और धरतीपर मानव चेतनाके रूपमें प्रकट होती हैं, और कभी-कभी पाशविक चेतनाके रूपमें भी। यह सुन्दर चीजोंके प्रति, जो कुछ शुद्ध है, जो शुभ है, जो सत्य है उसके प्रति घृणा है। यह भागवत उपस्थितिके प्रति घृणा है। और स्वभावतः, इस घृणाके साथ आती है नष्ट करने, तोड़-फोड़ करने, बिगाड़ने, खराब करने, विकृत करने और बदसूरत बनानेकी इच्छा। एक पग और, तो यह कष्ट पहुंचानेकी सहज-वृत्ति हो जाती है। और वह सब विरोधी शक्तियोंका प्रभाव है जो निश्चेतना, अवचेतना और अर्द्ध-चेतनामें बिलकुल सहज रूपसे काम करती है। केवल शुद्ध और आलोकमय चेतना ही इसका विरोध कर सकती है और इसे अपनी क्रियासे रोक सकती है। लेकिन संसारकी स्थिति ऐसी है कि यह सतत युद्ध चलता रहता है। बहुत थोड़े लोग ही इस पकड़से बच सकते हैं। हर एकके अंदर एक छोटा-सा कोना होता है — कभी बहुत छोटा-सा, कभी बड़ा; कभी बिलकुल निश्चेतन, कभी थोड़ा-सा चेतन, कभी बड़ी शानसे पूरी तरह सचेतन भाग — जो नष्ट करना पसंद करता है, बिगाड़ना पसंद करता है। और जगत्की स्थिति ऐसी है कि जब तुम उसके आगे झुकते हो तो उसकी सहायता करनेके लिये ऐसी शक्तियोंकी बाढ़ आ जाती है जो अवसरकी ताकमें रहती हैं, जो उस क्षणकी प्रतीक्षा करती हैं जब वे प्रकट हो सकें, जिन्हें प्रकट होनेके लिये मानव सहयोगकी आवश्यकता होती है और वे उसकी तलाशमें रहती हैं। जैसे ही अवसर मिलता है वे दौड़ पड़ती हैं, भयानक रूपमें ऊर्जा डालती हैं। इसलिये जब मनुष्य अशुभ कार्य करने लगता है तो अपने-आपको ज्यादा मजबूत अनुभव करता

है। इसीलिये यह अधिक अच्छा है, जब कि यदि व्यक्ति इसके विरुद्ध क्रिया करना चाहे, इन शक्तियोंका यंत्र बननेसे इनकार करे तो उसे घोर संघर्ष करना पड़ता है, बहुत बलवान्, बहुत ऋजु, बहुत शुद्ध, बहुत निष्कपट होना पड़ता है और सबसे बढ़कर, अहंकारहीन होना पड़ता है। तुम्हें कभी पीठ न दिखानी चाहिये और कभी डरना न चाहिये। और यह आसान नहीं है। अर्थात्, जगत् ऐसी अवस्थामें है कि विरोधी शक्तियों-द्वारा — अंधकार, विनाश, दुष्टता, घृणाकी शक्तियोंद्वारा — कभी हांके न जानेके लिये तुम्हें वीर, सच्चा वीर होना चाहिये जो आघातोंसे नहीं डरता, किसी चीजसे नहीं डरता, जो कभी पीठ नहीं दिखाता और कभी नहीं डरता, जिसमें आत्म-दयाके जैसी घृणित चीज नहीं है। इसलिये... बुरा या अशुभ न करनेके लिये, बुरा न सोचने, बुरा न चाहनेके लिये, किसी भी अवस्थामें यह सब न करनेके लिये तुम्हें वीर होना चाहिये...। वीर होना हमेशा आसान नहीं होता। जिन दिनों व्यक्ति थका होता है, आराम चाहता है, वह फिसल जाता है और नीचे जा गिरता है। इसमें बहुत फिसलन है। यह बच्चोंकी बर्फ-गाड़ीसे भी ज्यादा फिसलनेवाली स्थिति होती है। आदमी फिसलता है, इस तरह नीचे, नीचे बगूलेकी तरहसे और एकदम नीचे तलीमें पहुंचनेके बाद ही उसे पता लगता है कि वह नीचे आ गया है। तब फिर वापिस चढ़ना पड़ता है और यह हमेशा बहुत सुविधाजनक नहीं होता।

लेकिन जिसे भागवत कृपामें श्रद्धा हो, उसके लिये 'ज्योति'की ओर लौटना आसान हो जाता है।'

२६ अगस्त, १९५२

"प्रेम एक परम शक्ति है जिसे 'शाश्वत चेतना' ने अपने अंदरसे घुंधले और अंधेरे जगत्में भेजा ताकि वह उस जगत् और उसकी सत्ताओंको भगवान्की ओर वापिस ला सके। भौतिक जगत् अंधकार और अज्ञानमें है। वह भगवान्को भूल गया है।

'यह अंतिम वाक्य माताजीने १९६९ सितंबरमें जोड़ा था जब यह वार्ता पहली बार छपी थी।

> प्रेम अंधकारमें आया; उसने अंधेरेमें जो कुछ सोया पड़ा था उस सबको जगाया, जो कान बंधे हुए थे उनमें फुसफुसाया : 'कोई चीज ऐसी है जिसके लिये जागा जाय, जिसके लिये जिया जाय; वह है प्रेम!' और प्रेमके प्रति जागरणके साथ संसारमें भगवान्‌की ओर लौटनेकी संभावना आयी, प्रेमके द्वारा सृष्टि ऊपरी भगवान्‌की ओर गति करती है और उसमें सृष्टिसे मिलनेके लिये उतरते हैं भागवत प्रेम और भागवत कृपा।"
>
> प्रश्न और उत्तर १९२९ (२ जून)

प्रेम कहांसे आता है?

प्रेम कहांसे आता है? विश्वके उद्गमसे।

और इसके अतिरिक्त, मैंने ऊपर यही कहा है। जो मैं कहती हूं वह यही है। मैं कहती हूं कि प्रेम परम शक्ति है जिसे 'शाश्वत चेतना' ने संसारमें भेजनेके लिये प्रकट किया है। प्रेम उसीसे आता है। (माताजी अगस्त १९५३ का बुलेटिन लेकर "चार तपस्याएं और चार मुक्तियां" मेंसे एक उद्धरण पढ़ती हैं।) यह प्रश्नका उत्तर देता है :

> "प्रेम, अपने सारतत्त्वमें, तादात्म्यका आनंद है। विश्वके आनंदमें ही वह अपनी परम अभिव्यक्ति पाता है। दोनोंके बीच वैश्व अभिव्यक्तिकी सब प्रकारकी अवस्थाएं हैं।"

पहले है तादात्म्यका आनंद। कोई चीज पहलेसे होनी चाहिये जो तादात्म्यके बारेमें सचेतन हो सके और यथार्थ रूपमें वही प्रेम है। तब आती है प्रेमकी अभिव्यक्ति। अपने चरम रूपमें, अर्थात्, जब वह अभिव्यक्तिकी सब अवस्थाओंको पार करता हुआ अपने 'उद्गम' तक पहुंचता है तो वह ऐक्यका आनंद बन जाता है। क्योंकि ऐक्यका भाव विच्छेदके भावके परिणामस्वरूप ही आता है। सारी अभिव्यक्ति विश्वकी यात्रा अपने उद्गमसे विच्छेदकी भावना देती है और 'उद्गम' तक वापस पहुंचना ऐक्यका आनंद है, यानी, जो दो चीजें अलग-अलग हो गयी थीं वे फिरसे एक हो गयीं। और वह 'प्रेम' ही है; यह अभिव्यक्तिके सारे चक्रके बाद 'प्रेम' ही है। जब वह अपने 'उद्गम' तक लौट आता है तो ऐक्यका आनंद बन जाता है। (माताजी "चार तपस्याएं और चार मुक्तियां" का उद्धरण पढ़ना जारी रखती हैं) :

"इस अभिव्यक्तिके आरंभमें, 'प्रेम' अपने मूलकी पवित्रतामें दो तरहकी गतियोंसे बना होता है। पूर्ण संयोजनकी ओर होने-वाले आवेगके लिये दो परस्पर पूरक छोरोंसे बनता है। एक ओर है आकर्षणकी परम शक्ति और दूसरी ओर है निरपेक्ष आत्म-दानकी अप्रतिरोध्य आवश्यकता। जब व्यक्तिगत सत्ताकी चेतना अपने उद्गमसे अलग होकर निश्चेतन बन गयी तब उसके अंदर जो खाई बनी थी उसपर पुल बनानेकी क्रिया इससे अच्छी तरह और कोई शक्ति नहीं कर सकती।

"जो देशमें निक्षिप्त हुआ था उसे इस तरहसे बनी हुई सृष्टिको नष्ट किये बिना अपने-आपमें वापिस लाना था। इसलिये 'प्रेम', ऐक्यकी अप्रतिरोध्य शक्ति, अचानक सामने आया।

"वह अंधकार और अज्ञानपर मंडराता रहा है, उसने अपने-आपको छितरा दिया है, अगाध-रात्रिके वक्षमें अपने-आपको पीस डाला है। और उस क्षणसे जागृति और आरोहणका, जड़द्रव्यकी मंद रचना और उसकी अनंत प्रगतिका आरंभ हुआ।"

तुम्हारे प्रश्नका यह उत्तर है। यानी, तुम चाहे जितने वापिस चढ़ते चले जाओ, 'उद्गम' में तुम्हें प्रेम ही दिखायी देगा, लेकिन वह नहीं जिसे लोग प्रेम कहते हैं।

मां, वह कौन-सा प्रेम है जो कहता है: "तुम मुझसे प्यार करो तो मैं भी तुमसे प्यार करूंगा"?

अगर तुम मुझसे प्यार करते हो तो मैं भी तुमसे प्यार करूंगा? मनुष्य ठीक इसी तरह बोलते हैं: "अगर तुम मुझसे प्यार करो तो मैं तुमसे प्यार करूंगा, अगर तुम मुझसे प्यार नहीं करते तो मैं भी तुमसे प्यार नहीं करता।" प्रेमकी मानव अभिव्यक्ति बस यही है और यह और भी आगे जाती है। वे इसे भगवान्‌के साथ संबंधपर भी लागू करते हैं। वे भगवान्‌से कहते हैं: "अगर तुम वही करो जो मैं चाहता हूं तो मैं कहूंगा कि तुम मुझसे प्यार करते हो और मैं भी तुमसे प्यार करूंगा। लेकिन अगर तुम वह न करो जो मैं चाहता हूं तो मैं बिलकुल न मानूंगा कि तुम मुझसे प्रेम करते हो और मैं भी, निश्चय ही, तुमसे प्रेम न करूंगा।"

बस, चीजें ऐसी ही हैं। इसका मतलब यह है कि यह व्यापार बन जाता है।

लेकिन "तुम भले मुझसे प्यार न करो, मैं तुमसे प्यार करूंगा" ?

यह ज्यादा अच्छा होने लगता है।

और जो इससे भी अच्छा है वह यह है कि अपने-आपसे यह न पूछो कि तुम्हें प्यार मिल रहा है या नहीं, तुम उसके बारेमें बिलकुल उदासीन रहो। और तब सच्चे प्रेमका आरंभ होता है : तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो, इसलिये बिलकुल नहीं कि तुम्हें अपने प्यारका उत्तर मिलता है या दूसरा व्यक्ति भी तुमसे प्यार करता है। ये सब शर्तें — प्रेम नहीं है। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम इससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकते। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो। तुम इसकी बिलकुल परवाह नहीं करते कि क्या होगा, तुम अपने प्रेमकी भावनासे ही संतुष्ट रहते हो। तुम प्यार करते हो क्योंकि तुम प्यार करते हो।

बाकी सब सौदाबाजी है, प्रेम नहीं है।

और फिर, एक बात निश्चित है। तुम जिस क्षण सच्चे प्रेममें प्रवेश करते हो तब तुम यह प्रश्न ही नहीं करते। यह प्रश्न बिलकुल बचकाना, बेतुका और तुच्छ मालूम होता है। जिस क्षण तुम सच्चे प्रेममें प्रवेश करते हो तुम्हें आनंद और उपलब्धिका बाहुल्य पूरी तरहसे प्राप्त हो जाता है और तुम्हें किसी उत्तरकी जरूरत नहीं रहती। तुम प्रेम होते हो, और बस। और तुम्हें प्रेमके संतोषकी प्रचुरता प्राप्त होती है। वहां किसी पारस्परिकताकी जरूरत नहीं रहती।

मैं तुमसे कहती हूं, जबतक मनमें या भावोंमें या संवेदनोंमें हिसाब-किताब रहता है, जबतक कोई हिसाब-किताब रहता है, कम या ज्यादा स्वीकृत हिसाब-किताब रहता है, तबतक यह प्रेम नहीं, सौदाबाजी है।

तुम नहीं समझ पाते ? . . . मैं आशा करती हूं कि एक दिन समझ पाओगे !

बाकी सब कुछ ठीक वही है जो लोगोंने प्रेमका बना दिया है। इसके अतिरिक्त यह बहुत सुन्दर नहीं है और यह ऐसी बहुत-सी चीजोंकी ओर ले जाता है जो और भी कम सुन्दर हैं, जैसे द्वेष या ईर्ष्या और उग्र प्रकृति-के लोगोंमें तो बात घृणातक जा पहुंचती है। छोटा-सा आरंभ यूं होता है : आवश्यकता, जब तुम प्यार करते हो, तो जिससे या जिस व्यक्तिसे प्यार करते हो उसे यह पता होना चाहिये कि उससे प्यार किया जा रहा है। लेकिन भगवान्‌के संबंधमें, तुम भगवान्‌से प्यार तो करते हो पर तुम्हें आग्रह होता है कि भगवान्‌को यह मालूम हो कि तुम उनसे

प्यार करते हो। पतनका यही आरंभ है। सच्ची चीज इसके बारेमें सोचतीतक नहीं है, वह मनको जरा छूतीतक नहीं।

तुम सोचते नहीं : प्यार करते हो और बस। तुम प्यार करते हो और प्रेमकी प्रचुरतामें रहते हो, प्रेमके तीव्र आनंदमें रहते हो और फिर, बस यही।

जिसे लोग "प्रेम" कहते हैं उससे यह सच्चा प्रेम बहुत, बहुत, बहुत दूर है — एक लंबा रास्ता है।

मैं यहां उन सब घिनौने रूपोंकी बात नहीं कर रही जो वह साधारण मानव चेतनामें लाता है। मैं सबसे अच्छी अवस्थाओंकी बात कह रही हूं, अपने सर्वोत्तम रूपमें सबसे अधिक निष्काम प्रेमकी बात कर रही हूं। मैं नहीं जानती, अगर तुम मनुष्योंसे पूछो, मैं उन लोगोंका प्रतिशत जरूर जानना चाहूंगी जो पारस्परिकताकी भी परवाह नहीं करते। बस, इतना ही। वे नहीं जो कहते हैं : "अगर तुम मुझसे प्यार करो तो मैं तुमसे प्यार करूंगा", और वास्तवमें वह तो सीढ़ीके बिलकुल नीचे, ठीक तलीमें, गढ़ेके अंदर है...। इससे भी एक निचला डंडा है : "मेरे साथ प्यार करो, फिर मैं देखूंगा कि मैं तुमसे प्यार करता हूं या नहीं।" यहां तुम्हें एकदम घृणित लोगोंसे काम पड़ता है। मैं केवल पारस्परिकताकी आवश्यकता-की बात कर रही हूं : यह उतरती हुई सीढ़ीमें पहला डंडा है।

फिर भी, एक दिन तुम यह समझ पाओगे। अभी तुम बहुत छोटे हो।

जानवरोंमें मनुष्योंके लिये कैसा प्रेम होता है?

यह लगभग वैसा ही होता है जैसा अबुद्धिवादी लोगोंमें भगवान्‌के लिये। यह सराहना, विश्वास और सुरक्षाकी भावनासे मिलकर बनता है। सराहना : वह तुम्हें सचमुच बहुत सुन्दर लगता है, और इसलिये कोई तर्क नहीं किया जाता, हृदयसे सराहना, कह सकते हैं, सहज। उदाहरणके लिये, यह चीज कुत्तोंमें बहुत अधिक होती है। और फिर विश्वास — स्वभावतः इस चीजमें कई बार और चीजें मिली होती हैं, कुछ आवश्यकताकी और निर्भरताकी भावना। क्योंकि जब मुझे भूख लगेगी तो यही व्यक्ति मुझे खाना देगा। जब मौसम खराब होगा तो यही मुझे आश्रय देगा, मेरी देखभाल करेगा। यह सबसे सुन्दर पक्ष नहीं है : और तब यह दुर्भाग्यवश एक प्रकारके भयसे मिल जाता है (मैं समझती हूं — मैं इसे पूरी तरह मनुष्यका दोष मानती हूं); निर्भरताकी भावना और अपनेसे

बहुत अधिक मजबूत, बहुत अधिक सचेतन, बहुत अधिक . . . का डर, जो तुम्हें नुकसान पहुंचा सकता है और तुम्हारे पास इतनी शक्ति नहीं है कि तुम उससे अपनी रक्षा कर सको। यह बात दयनीय है, पर है पूरी तरह मनुष्यका दोष।

परंतु यदि मनुष्य सचमुच पशुओंके प्रेमका अधिकारी हो तो वह प्रेम विस्मय और सुरक्षाके भावोंसे बना होगा। यह बहुत अच्छी चीज है: यह सुरक्षाका भाव: कोई ऐसी चीज जो तुम्हारी रक्षा कर सकती है, तुम्हें जिस चीजकी जरूरत हो वह तुम्हें दे सकती है और जिसके पास तुम हमेशा आश्रय पा सकते हो।

पशुओंमें एकदम प्रारंभिक मन होता है। मनुष्योंकी तरह उन्हें निरंतर विचार तंग नहीं किया करते। उदाहरणके लिये, तुम उनके साथ भलाई करो तो उनमें सहज कृतज्ञताका अनुभव होता है, जब कि मनुष्य सौमेंसे अट्ठानवे बार यह सोचने लगता है कि इस तरह भलाई करनेमें व्यक्तिका क्या स्वार्थ हो सकता है। यह मानसिक क्रियाकी दुर्दशाओंमेंसे एक है। पशु इससे मुक्त हैं, तुम उनसे भलाई करो तो वे सहज रूपमें कृतज्ञ होते हैं। और उन्हें विश्वास होता है। तो उनका प्रेम इन चीजोंसे बना होता है और वह बहुत प्रबल आसक्तिका रूप ले लेता है, तुम्हारे निकट रहनेकी अप्रतिरोध्य आवश्यकताके रूपमें।

कुछ और चीज भी है। अगर मालिक सचमुच अच्छा हो और जानवर वफादार हो तो उनमें चैत्य और प्राणिक शक्तियोंका आदान-प्रदान होता है जो जानवरके लिये एक अद्भुत चीज है और उसे बहुत तीव्र हर्ष प्राप्त होता है। जब वे इस तरहसे तुम्हारे बहुत नजदीक रहना चाहते हैं, जब तुम उन्हें अपने पास रखते हो तो अंदरसे वही स्पंदन होता है। तुम उन्हें जो शक्ति देते हो — स्नेहका बल, कोमल, संरक्षण आदि — उन्हें वे अनुभव करते हैं और इससे उनके अंदर गहरा स्नेह पैदा होता है। कुछ उच्चतर पशुओंमें, जैसे कुत्ते, हाथी और घोड़ेतकमें, यह बहुत आसानीसे भक्तिकी एक विलक्षण आवश्यकताको पैदा करता है (और वह मनके तर्क-वितर्कोंद्वारा और दलीलोंके द्वारा विकृत नहीं होता)। वह बहुत सहज और अपने तत्त्वमें बहुत शुद्ध होता है — बहुत ही सुन्दर।

मनकी क्रियाओंने अपने प्रारंभिक रूपमें, अपनी पहली अभिव्यक्तिमें बहुत-सी चीजें बिगाड़ दी हैं जो पहले बहुत अच्छी थीं।

स्वभावतः, यदि मनुष्य ज्यादा ऊंचे स्तरपर उठे और अपनी बुद्धिका सदुपयोग करे तो चीजें ज्यादा मूल्यवान् बन सकती हैं। लेकिन इन दोनोंके बीच एक मार्ग है जिसमें मनुष्य बुद्धिका बहुत ही गंवारू और निम्न

कोटिका उपयोग करता है। वह उसे हिसाब-किताबका, दूसरोंपर अधिकार जमानेका, छलनेका यंत्र बना लेता है और तब वह बहुत भद्दी बन जाती है। मैंने अपने जीवनमें ऐसे जानवरोंको देखा है जिन्हें मैंने बहुत-से मनुष्योंसे बहुत ऊंचा माना था, क्योंकि उनमें वह गंदा हिसाब-किताब, औरोंको धोखा देकर लाभ उठानेका भाव बिलकुल न था। कुछ जानकर ऐसे होते हैं जो इस चीजको पकड़ लेते हैं — मनुष्योंके संपर्कके कारण पकड़ते हैं — लेकिन ऐसे भी हैं जिनमें यह चीज होती ही नहीं।

निःस्वार्थ, निःस्वार्थ क्रिया संसारमें चैत्य चेतनाके सबसे सुन्दर रूपोंमेंसे है, लेकिन व्यक्ति मानसिक क्रिया-कलापकी सीढ़ीपर जितना ऊंचा उठता जाता है, यह क्रिया उतनी ही विरल होती जाती है। क्योंकि बुद्धिके साथ ही आते हैं कौशल और चालाकियां, भ्रष्टाचार और हिसाब-किताब। उदाहरणके लिये, जब एक गुलाब खिलता है तो वह सहज रूपमें खिलता है, केवल सुन्दर होनेके आनंदके लिये, सुगंध देने, जीवनके आनंदको अभिव्यक्त करनेके लिये खिलता है। वह हिसाब-किताब नहीं करता, उसे इस सबसे कोई लाभ नहीं उठाना होता। वह यह सब होनेके, जीनेके आनंदमें करता है। मनुष्यको लो, कुछ थोड़ेसे अपवादोंको छोड़कर, जैसे ही उसका मन सक्रिय होता है वह अपनी सुन्दरता और चालाकीसे लाभ उठाना चाहता है; वह उससे कुछ प्राप्त करना चाहता है, लोगोंकी प्रशंसा या इससे कहीं अधिक घिनौनी चीज पाना चाहता है। फलतः, चैत्य दृष्टिसे गुलाब मनुष्यसे ज्यादा अच्छा है।

हां, यदि तुम पौधेपर और ऊंचे चढ़ो और गुलाब जिस चीजको अचेतन अवस्थामें करता है, उसीको सचेतन रूपसे करो, तो यह बहुत ज्यादा सुन्दर होगा। लेकिन चीज वही होनी चाहिये : सौंदर्यका निष्काम, सहज रूपमें खिलना, शुद्ध रूपसे सत्ताके आनंदके लिये। कभी-कभी, हमेशा नहीं, यह चीज छोटे बच्चोंमें होती है। दुर्भाग्यवश माता-पिता और परिवारवाले बहुत छोटी अवस्थामें ही हिसाब करना, यानी, स्वार्थी होना सीख लेते हैं।

तुम्हारे पास जो है या तुम जो करते हो उसके बदले कुछ लाभ उठानेकी इच्छा संसारमें सबसे भद्दी चीजोंमेंसे है। और यह सबसे ज्यादा व्यापक है, यह इतनी व्यापक है कि मनुष्यके अंदर प्रायः सहज बन गयी है। इस तरह हिसाब-किताब करने और लाभ उठानेकी इच्छासे बढ़कर पतनवाले प्रेमसे पूरी राह मुंह मोड़ लेनेवाली चीज और कोई नहीं है।

क्या फूल प्रेम करते हैं?

यह उसके प्रेमका रूप है, इस तरह खिलना। निश्चय ही, जब तुम किसी गुलाबको सूर्यकी ओर खिलते देखते हो तो यह अपना सौंदर्य देनेकी आवश्यकताके समान है। लेकिन हमारे लिये इसे समझना लगभग असंभव है क्योंकि वे जो करते हैं उसके बारेमें सोचते नहीं। मनुष्य जो कुछ भी करता है उसमें हमेशा अपने-आपको करते हुए देखनेकी क्षमता जोड़ देता है। यानी, अपने बारेमें सोचता है। अपने काम करते हुए खुदके बारे-में सोचता है। आदमी जानता है कि वह कुछ कर रहा है। जानकर नहीं सोचते। यह प्रेमका वही रूप नहीं है। कहा जा सकता है कि फूल सचेतन नहीं है। यह एक सहज क्रिया होती है, सचेतन, यानी, अपने बारेमें सचेतन किया नहीं, बिलकुल नहीं। लेकिन इस सबके द्वारा एक महान् शक्ति काम करती है — महान् विश्व चेतना और विश्व प्रेम-की महान् शक्ति जो सभी चीजोंको सौंदर्यमें प्रस्फुटित करती है।

मैंने यही बात यहीं भी लिखी है (माताजी "चार तपस्याएं" पढ़ना शुरू करती हैं):

> "क्या यह प्रेम ही नहीं है, एक वस्तु और अंधेरे रूपमें प्रेम, जो भौतिक और प्राणिक प्रकृतिके सभी आवेगोंमें गति और हर समूहीकरणमें प्रेरणाके रूपमें संबद्ध है जो वनस्पति जगत्में भी काफी दिखायी देता है?"

तुम जानते हो जड़-पदार्थमें बिननेवाले स्फटिक भी प्रेमकी एक गतिके आधीन होते हैं, परंतु यह वनस्पति जगत्में पेड़-पौधोंमें बहुत अच्छी तरह दिखायी देता है। यह अधिक प्रकाश पानेके लिये बढ़नेकी आवश्यकता है। सभी पेड़ जो हमेशा ऊंचे उठते हैं हमेशा बढ़ते रहते हैं, छोटे-छोटे जो बड़ों को जा पकड़ना चाहते हैं, लंबे पेड़ जो और भी लंबा होना चाहते हैं। तुम दो पौधोंको साथ-साथ रखो। दोनों ही ऐसी दिशा लेना चाहते हैं जो अधिक-से-अधिक प्रकाश दे सके — यही अधिक हवा, अधिक प्रकाश, अधिक स्थान पानेके लिये बढ़नेकी आवश्यकता है। (माताजी पढ़ना जारी रखती हैं):

> "फूलोंमें यह सौंदर्य, सुगंध और स्नेहपूर्ण प्रस्फुटनका उपहार है। और पशुओंमें क्या यह भूख, प्यास, अपनाव, विस्तार, प्रजनन, संक्षेपमें चाहे तो हर सचेतन या अचेतन इच्छाके पीछे नहीं है? और उच्चतर श्रेणियोंमें मादाके अपने बच्चोंके लिये आत्म-त्याग-भरे अनुरागमें नहीं प्रकट होता?"

... यही मनुष्यमें मांकी ममता बन जाता है। फर्क बस यही है कि वह अपने बारेमें सचेतन होता है। पशुओंमें वह प्रायः ही मनुष्योंसे ज्यादा शुद्ध होता है। जानवरोंके अपने बच्चोंके लिये अनुराग, देखभाल, आत्म-विस्मरणके ऐसे-ऐसे उदाहरण हैं जो एकदम विलक्षण हैं। वहां यह सहज होता है, योजनाके अनुसार नहीं, जानवर यह सोचता नहीं कि क्या कर रहा है। मनुष्य सोचता है। कभी-कभी (कभी-कभी — अधिकतर) यह सोचना क्रियाको बिगाड़ देता है, कभी-कभी यह उसे उच्चतर मूल्य प्रदान करता है, पर यह विरल है। मनुष्यकी गतिविधिमें पशुकी अपेक्षा कम सहजता होती है।

मेरे पास एक बिल्ली थी। पहली बार जब उसने बच्चे दिये तो वह उस जगहसे हिलनातक न चाहती थी। उसने खाना न खाया, प्रकृतिकी किसी मांगको पूरा न किया। वह वहीं डटी रही, बच्चोंके साथ लगी रही, उनकी रक्षा करती रही, उनका पोषण करती रही। उसे भय था कि उन्हें कुछ हो न जाय। और यह योजनाके अनुसार नहीं, सहज था। वह हिलतीतक न थी। उसे इतना डर था कि उसके बच्चोंको कहीं कुछ हो न जाय — केवल सहज बोधका परिणाम था यह। और फिर, जब वे बड़े हो गये तो उसने उन्हें सिखानेमें जो कष्ट उठाया वह अद्भुत था। और क्या धैर्य था! और उसने उन्हें एक दीवारसे दूसरी दीवार-पर कूदना कैसे सिखाया, आहार पकड़ना, कैसे, कितनी सावधानीसे सिखाया। उसने एक बार, दस बार और जरूरत पड़नेपर सैकड़ों बार एक चीज दोहरायी। जबतक छोटा बच्चा, जो वह सिखाना चाहती थी, सीख नहीं गया तबतक वह सिखाते-सिखाते नहीं थकी। एक असाधारण शिक्षा! उसने उन्हें दीवारोंकी मुंडेरपर चलना, बिना गिरे चलना सिखाया और यह बताया कि जब एक दीवारसे दूसरी दीवारके बीच इतना अंतर हो तो उसे पार करनेके लिये क्या करना चाहिये। छोटे बच्चोंने जब वह अंतर देखा तो वे काफी घबरा गये और उन्होंने डरके मारे कूदनेसे इनकार कर दिया (वह उनके लिये अधिक दूरी न थी, पर अंतर तो था ही और उनकी हिम्मत न हो रही थी), तब मां कूद गयी। वह दूसरी ओर चली गयी। उसने उन्हें बुलाया: "आओ, चले आओ।" वे हिलेतक नहीं, वे कांप रहे थे। वह लौट आयी और उन्हें एक भाषण दे डाला, उसने उन्हें हल्के चपत लगाए और उन्हें चाटा। लेकिन वे फिर भी न हिले। वह फिर कूदी। मैं आधे घंटेसे ऊपर यह दृश्य देखती रही। आधे घंटेके बाद उसने देखा कि उन्होंने काफी कुछ सीख लिया था। उसमें जो सबसे अधिक तैयार और सबसे योग्य लगता था, वह उसके पीछे गयी

और उसे अपने सिरसे जोरका धक्का दिया। तब वह बिलौटा सहज बोध-के साथ कूद गया। वह एक बार कूद चुका तो बार-बार, बार-बार कूदता गया...।

कम ही माएं ऐसी होंगी जिनमें यह धीरज हो।

यह लो, मेरे बच्चो। बस खतम? और कुछ नहीं!...शुभ रात्रि।

२ सितम्बर, १९५३

"सभी धर्म एक ही कहानी सुनाते हैं। उनका जन्म किसी जगद्गुरुके आनेपर हुआ। वह आता है और प्रकट करता है। वह भागवत सत्यका अवतार होता है। मनुष्य उसे पकड़ लेते हैं, उससे व्यापार चलाते हैं और उसमेंसे एक राजनीतिक संगठन-सा खड़ा कर देते हैं। वे धर्ममें प्रशासन, विधान और नीति ले आते हैं, उसमें प्रतीतियां और अंधविश्वास होते हैं, उसके रीति-रिवाज होते हैं, नियम और नियंत्रण होते हैं और सब-के-सब, बिना अपवादके, पूरी-पूरी तरह सभी अनुयायियोंपर लागू होते हैं। उनका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। प्रशासनकी तरह धर्म भी वफादार लोगोंको पुरस्कार और विद्रोह करनेवालों या भटक जानेवालोंको, विधर्मी और विश्वास-घातीको दंड देता है।

"इन औपचारिक और संस्थापित धर्मोंका पहला नियम हमेशा यही होता है: 'मेरा ही परम सत्य, एकमात्र सत्य है, बाकी सब या तो मिथ्या है या घटिया है।'...

"धार्मिक मनके लिये यह मनोवृत्ति स्वाभाविक है, लेकिन यही चीज है जो धर्मको आध्यात्मिक जीवनके मार्गमें बाधा बना देती है। धर्मके विधि-विधान और सिद्धांत मनके बनाये हुए होते हैं और अगर तुम उनसे चिपके रहो और अपने-आपको अपने लिये बनाये गये जीवनके आचार-शास्त्रमें बंद कर लो तो तुम सभी सिद्धांतों और आचार-शास्त्रोंके परे फैले हुए विस्तृत और स्वतंत्र सत्यको नहीं जान सकते। अगर तुम किसी

धार्मिक सिद्धांतपर ही रुक जाओ और अपने-आपको उससे बांध लो, उसीको संसारका एकमात्र सत्य मान बैठो तो तुम अपनी आंतरिक अंतरात्माकी प्रगति और उसका विस्तार रोक देते हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (९ जून)

अगर कोई किसी धर्मका अनुसरण करता है और उसमें अच्छी क्षमता है तो क्या वह आगे बढ़ सकता और भगवान्‌के साथ तादात्म्यतक पहुंच सकता है?

यह असंभव है।

धर्म हमेशा आत्माके लिये सीमा-बंधन होता है।

अगर किसी आदमीमें अपनी मानसिक रचनाओंसे स्वतंत्र और वह जिन बंधी हुई सीमाओंमें रहता है उनके बावजूद एक आध्यात्मिक जीवन है तो हम कह सकते हैं कि उसका आध्यात्मिक जीवन उसे धार्मिक तत्त्वोंको पार कराकर किसी ज्यादा ऊंची चीजमें प्रवेश करा देता है। लेकिन उसका आत्म-निवेदन अंदरसे आना चाहिये, वह एकदम रीतिका या औपचारिक न हो। अगर वह केवल रूपसे ही बंधा होगा तो यह इतनी बड़ी सीमा होगी कि वह आगे न बढ़ सकेगा।

ऐसे लोग हैं जो अगर यह चाहते हों कि उन्हें अपनी प्रगतिमें रुकना न पड़े तो उन्हें अपने धर्मसे बाहर निकल आना होगा। लेकिन जो लोग ऐसे हैं जिनमें व्यावहारिक रूपसे कोई क्रिया नहीं होती, जो अपने-आपसे प्रश्न नहीं पूछते, जिनके हृदयमें तीव्र भक्ति और किसी अनंत रूपसे महान्‌के प्रति आत्म-निवेदनकी प्रेरणा होती है; ऐसे लोगोंके लिये धर्मके होने-न-होनेसे कोई फर्क नहीं पड़ता। सब एक ही है। लेकिन अगर कोई आकारों और विधि-विधानोंसे बंधा हो तो वह कभी आगे नहीं जा सकता।

जबतक मन स्वतंत्र न हो और प्रकाशमें निवास न करता हो तो दूर-तक जाना कठिन है। यह काफी हदतक अनिवार्य शर्त है (हां, एकदम अनिवार्य नहीं), फिर भी ऐसे लोग हैं जिनमें कोई मानसिक शक्ति नहीं है और वे किसी भी सिद्धांतको बिना बहस किये मान लेते हैं। वे मानते हैं कि कोई भी चीज उन्हें उस प्रेरणाको पानेसे नहीं रोक सकती जो उन्हें भगवान्‌के संपर्कमें ले आयेगी। लेकिन साधारणतः उनका कोई मानसिक जीवन नहीं होता: वह बहुत ही सीमित होता है।

क्या जात-पांतका आध्यात्मिक जीवनमें कोई महत्त्व नहीं है?

जात-पांत? उसका आध्यात्मिक जीवनसे क्या संबंध? बिलकुल नहीं। यह केवल एक सामाजिक संगठन है, और बस।

कहा जाता है कि ब्राह्मण भगवान्‌की सेवा करनेके लिये ज्यादा आगे बढ़े हुए हैं।

लोग बहुत सारी बातें कहते हैं।

आध्यात्मिक जीवन इन विचारोंपर निर्भर नहीं है, बिलकुल नहीं। कुछ सामाजिक गुण इसपर निर्भर हैं और केवल इस कारण कि अमुक प्रकारके परिवेशमें शिक्षाकी विशेष परिपाटी चली आती है और अमुक प्रकारकी शिक्षा अन्य प्रकारोंसे ज्यादा अच्छी होती है। लेकिन, बस इतना ही।

रहा रक्तके न मिलने देनेका प्रश्न, तो यह विवादास्पद विषय है। क्योंकि, उदाहरणके लिये, यदि तुम विभिन्न जातियोंके कुत्ते लो (क्षमा करना, मेरा मतलब अनुचित तुलनासे नहीं है), एक ही जातिके कुत्ते को लो, जब उसकी नस्लको शुद्ध रखनेकी, उसमें कोई मिलावट न होने देनेकी पूरी सावधानी रखी जाती है, तो वह ज्यादा-ज्यादा मूर्ख होता जाता है, जब कि गलीका कुत्ता जो मिली-जुली नस्लका परिणाम होता है, जो शरीरकी दृष्टिसे बीभत्स हो सकता है, वह एक जातिके दूसरी जातिके साथ मेलके कारण बीभत्स होता है — साधारणतः औरोंकी अपेक्षा समझदारीकी दृष्टिसे अधिक श्रेष्ठ होता है। इसलिये इन उदाहरणोंमें भी कुछ कहा नहीं जा सकता। जहां छोटी-छोटी जातियोंमें ब्याह होते हैं, जहां किसी प्रकारका मेल नहीं हो सकता, उन जातियोंमें धीरे-धीरे, क्रमशः बुद्धिका क्षय होने लगता है। यह चयन नहीं, उससे उलटा है। प्रगतिको व्यक्त करनेके लिये, नये प्ररूप तैयार करनेके लिये हमेशा नये मिश्रण जरूरी होते हैं....। सामाजिक दृष्टिकोणसे यह उचित है, सीधा-सादा और सरल है, यह ऐसे चौखटे तैयार कर देता है जिनके कारण व्यवस्था या संगठन करना आसान हो जाता है। लेकिन इसका बस यही मूल्य है।

लेकिन मेरा ख्याल है कि जातिके लिये भी वही बात है जो देशके लिये है। हर जातिको विश्वास है कि अधिक-से-अधिक प्रगति बस उसीके भागमें आयी है। तुम लोगोंको बात करते सुनो तो देखोगे कि जो अंत्यज हैं वे भी अपने-आपको श्रेष्ठ मानते हैं और दूसरोंके लिये तिरस्कारसे भरे हैं।

"जो किसी विशेष मतका अनुयायी है या जिसने कोई सत्य

पा लिया है, उसे ऐसा लगता है मानों केवल उसीने समग्र और संपूर्ण सत्य पाया है। यह मानव स्वभाव है! ऐसा लगता है कि आदमीको अपने पैरोंपर खड़े होने और अपने मार्गपर चलनेके लिये मिथ्यात्वका मिश्रण जरूरी है। अगर उन्हें अचानक सत्यका दर्शन हो जाय तो वे उसके भारके नीचे कुचल जायंगे।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (९ जून)

क्या मनुष्य भगवान्‌की ओर अधिकाधिक बढ़ रहे हैं?

कहना कठिन है। न्यायतः सारी सृष्टिको भगवान्‌की ओर अधिकाधिक बढ़ना ही चाहिये, क्योंकि वह अंतिम लक्ष्य है। लेकिन वस्तुतः यह एक विचित्र गति है। तुम तीन पग आगे बढ़ते हो और दो पग पीछे, तुम दो पग आगे बढ़ते हो और एक पग इधर-उधर। तो, लक्ष्यतक पहुंचते-पहुंचते बहुत अधिक समय लगेगा। ऐसा प्रतीत होता है।

सामान्य सिद्धांतमें, जो अपनी समग्रतामें युगोंमें वर्षोंका हिसाब किये बिना (वर्ष नहीं, मैं युगोंकी बात कह रही हूं, हजारों शताब्दियोंमें) देखा गया है और व्यावहारिक बातमें बहुत अंतर है। कहा जा सकता है कि समस्त सृष्टि अपने स्रष्टाकी ओर गति कर रही है, लेकिन यह एक तथ्य है कि पहले तो विकासकी गति कुंडलाकार गति है और इस कुंडलमें असंख्य बिंदु हैं और हर बिंदुपर खड़ी, ऊर्ध्वाधर प्रगति करनी है। और ठीक उसी बिंदु-पर, जरा ऊंचे स्तरपर पहुंचनेके लिये एक पूरा चक्कर लगाना पड़ता है...। इस तरह जब तुम और चीजें करनेमें, अन्य बिंदुओंपर पहुंचनेमें समय लगाते हो तो पहला बिंदु मानों भुला दिया जाता है। मानव इतिहासमें यह चीज ऐसा रूप लेती है:

एक अद्‌भुत सभ्यता है जिसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे, कलाकी दृष्टिसे, राजनीतिक, सामाजिक और संगठनकी दृष्टिसे भी सब प्रकारकी असाधारण चीजोंको पैदा किया गया था। बहुत सुंदर ऐसी सभ्यताएं थीं जो, उदाहरण-के लिये, ऐसे महाद्वीपकी गुप्त स्मृति छोड़ गयी हैं जो भारतको अफ्रीकासे मिलाता था, जिसके अब कहीं कोई चिह्न भी बाकी नहीं हैं (यदि कुछ मानव जातियां उस सभ्यतासे बच रही हों तो और बात है)। इस प्रकारकी सभ्यताएं अचानक लुप्त हो जाती हैं और तब पूरे-का-पूरा इतिहास सामने आता है, अंधकार, अचेतना, अज्ञानसे भरा हुआ, इस प्रकारकी एकदम आदिम जातियोंका इतिहास जो पशुओंके इतने अधिक नजदीक मालूम होती हैं कि

यह प्रश्न उठता है कि क्या वास्तवमें कोई फर्क है। और इस तरह अंधकारमें एक बहुत बड़ा छिद्र होता है और सब प्रकारकी अव्यवस्थाओंमेंसे गुजरना होता है। तब अचानक एक ज्यादा बड़ी उपलब्धि, अधिक गुणोंसे संपन्न, ज्यादा ऊंचाईतक उठ आती है...। मानों रातकी उन घड़ियोंने, अंधेरेमें कामकी घड़ियोंने द्रव्यको इस योग्य बना दिया था कि वह ज्यादा ऊंची चीजोंको प्रकट कर सके। और उसके बाद फिरसे अंधकार, विस्मृति: धरती फिरसे बर्बर, अंधकारमय, अज्ञान-भरी और कष्टदायक हो उठती है और फिर अचानक कुछ हजार वर्षोंके बाद एक नयी सभ्यता आती है...।

तो अगर तुम इसे नीचेसे देखो तो अपने-आपसे पूछते हो: "प्रगति कहां है?" क्योंकि वह हमेशा गायब हो जाती है, ढह जाती है, सड़ जाती है और पूरी तरह नष्ट हो जाती है — और भुला दी जाती है। और मानव जाति फिरसे बहुत साधारण, बेडौल और आधे अंधेरेमें मुंहके बल पड़े रहनेकी चीज बन जाती है। और उसके बाद फिरसे प्रकाश आता है। और जब व्यक्ति प्रकाशके बीचमें होता है तो वह कहता है: "अब हमें यह प्राप्त हो गया है, यही सच्ची चीज है, अब हमें फिरसे न गिरना चाहिये...।"

अभीतक तो हमेशा पुनःपतन हुआ है।

देखना चाहिये।

क्या फिरसे पतन होगा?

मेरे बच्चे, मैंने यह नहीं कहा। मैंने कुछ नहीं कहा। मैंने कहा: "हम देखेंगे।"

वास्तवमें, मेरा ख्याल है, यह हममेंसे हर एकपर और हमारी अभीप्सापर निर्भर है। अगर हर एक जो कुछ जरूरी है वह करे और भरसक अधिक-से-अधिक करे तो एक ऐसी स्थितितक पहुंच जाना संभव है जहांसे हमेशा ऊपरकी ओर ही गति होगी, जहां नये सिरेसे शुरू करनेके लिये कुछ नष्ट करनेकी जरूरत न होगी।

यह अनिवार्य नहीं है परंतु अभीतक हमेशा ऐसा ही हुआ है, और वास्तवमें, मुझे पता नहीं कि प्रकृति इसमें बहुत मजा लेती है या नहीं।...

स्थिति ऐसी है कि हम प्रकृतिने जो कुछ किया है उसका सहारा लेनेके लिये बाधित है, क्योंकि अभीतक वही काम करती आयी है। लेकिन साथ ही हम उसकी कार्य-प्रणालियोंको पसंद भी नहीं करते। इससे एक छोटी-सी आंतरिक अनबन पैदा हो जाती है (शायद इसे पारिवारिक अनबन कह सकते हैं।) लेकिन इससे चीजें कुछ कठिन बन जाती हैं, क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसके होनेके तरीकेमें बाधा डाली जाय। फिर भी

यदि व्यक्ति उसी तरह करता जाय जैसे वह चाहती है तो हमेशा वही कहानी बनी रहेगी। हमेशा इस तरह गायब होने और नये सिरेसे शुरू करनेकी जरूरत रहेगी क्योंकि यह उसका खेल है। इसलिये हमें उसे नष्ट करनेसे रोकनेमें सक्षम होना चाहिये। लेकिन अगर अकस्मात् एक अच्छा उपाय निकल आये जिससे उसमें रस पैदा किया जा सके और उसका सहयोग लिया जा सके तो उसके सहयोगके साथ सफल होना संभव होगा।

वास्तवमें जरूरी यह है कि उसे यह समझाया जाय कि चीजें उसके तरीकेसे अलग तरीकेसे भी की जा सकती हैं।

और तब चूंकि उसके पास अद्‌भुत प्रवीणता और विलक्षण कल्पना-शक्ति है (तुम देखते ही हो)...। तुम केवल जानवरोंपर नजर डालो या उनके फोटो खींचो। अगर तुम उसे देखो और छोटे-से चूहेकी जिराफसे या हाथीकी बिल्लीसे तुलना करो, वे सब पशु जो कभी रह चुके हैं और वे सब पशु जो अभीतक हैं, जिनके असाधारण और बेतुके आकार हैं— ओह! क्या कल्पना है, कैसी विस्मयकारी कल्पना है! अगर तुम्हें धरतीपर रहनेवाले सभी पशुओंकी रचना करनी पड़ती तो तुम्हें यह जरा कठिन ही लगता। लेकिन तुम उन्हें देखते हो तो तुम्हें यह बहुत स्वाभाविक लगता है...। मैंने अभी उस दिन एक चित्र देखा जिसमें एक जिराफ पेड़की ऊंचाईसे फल तोड़ रहा था। मैंने कहा: "इसे पानेके लिये कल्पना-शक्ति होनी चाहिये — एक ऐसा जानवर जिसकी गरदन इतनी लंबी हो कि वह पेड़की चोटीतक पहुंचकर फल खा सके!" यह अद्‌भुत है। और हर चीज ऐसी ही है। वह हमें बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होती है, क्योंकि हम उसके साथ रहते आये हैं। लेकिन सचमुच तुम्हारे अंदर प्रतिभा होनी चाहिये...।

तो जिसमें यह प्रतिभा है और साथ ही वह जिसकी कल्पना करे उसे चरितार्थ करनेकी शक्ति भी है तो उसे यह बहुत पसंद नहीं होगा कि लोग उसके मामलोंमें दखल दें। वह कहती है: "क्या तुम्हारे अंदर यह करनेकी क्षमता है जो मैं करती हूं?"

तुम्हें उसे विश्वास दिलाना होगा कि वह जो कुछ कर रही है तुम उसे अस्त-व्यस्त नहीं करना चाहते, तुम केवल एक और तत्त्व लाना चाहते हो। उसे विश्वास दिलानेका बस एक ही उपाय है: उसे करो। जबतक यह अभीप्सा ही रहे, वह मुस्कराती है, वह देखती है, वह कहती है: "चलो देखें, देखें, तुम क्या करनेवाले हो!"

लेकिन जब काम हो जायगा तब, मेरा ख्याल है, वह कहेगी: "यह ठीक है।"

तो एक ही तरीका है, उसे करो।

९ सितम्बर, १९५३

"हर बार जब भागवत सत्य और भागवत शक्तिका कोई अंश धरतीपर प्रकट होनेके लिये नीचे आता है तो धरतीके वातावरणमें कुछ परिवर्तन होता है। इस अवतरणके लिये जो लोग ग्रहणशील हैं वे उसकी किसी प्रेरणा, किसी स्पर्श, किसी दृष्टिके आरंभकी ओर खुल जाते हैं। अगर वे जो पाते हैं उसे धारण करने और व्यक्त करनेमें सक्षम हों तो वे कहेंगे: "एक महान् शक्ति नीचे उतरी है। मेरा उसके साथ संपर्क है और मैं उससे जो समझ पाया हूं वह तुम्हें बताऊंगा।" लेकिन उनमेंसे अधिकतर इसके योग्य नहीं होते, क्योंकि उनके मन छोटे होते हैं। वे आलोकित होते हैं और मानों अभिकृत हो जाते हैं और चिल्ला उठते हैं: 'मैंने भगवान्‌को पा लिया है। वह पूरी तरह, समग्र रूपसे मेरे अधिकारमें हैं...'

"यहां सभी सत्ताओंमें एक ही भागवत चेतना काम कर रही है। इन सभी अभिव्यक्तियोंमेंसे अपना रास्ता बना रही है। आज वह पहले किसी भी कालकी अपेक्षा अधिक सफल रूपमें काम कर रही है। कुछ लोग किसी प्रकार या कुछ अंशमें उसका स्पर्श पा लेते हैं; लेकिन वे जो पाते हैं उसे विकृत कर वे उसमेंसे कुछ अपनी ही चीज गढ़ लेते हैं। कुछ और लोग स्पर्शको अनुभव तो कर लेते हैं, पर उस शक्तिको सह नहीं सकते और उसके दबावसे पागल हो जाते हैं। लेकिन कुछ लोगोंमें उसे ग्रहण करने और सहन करनेकी क्षमता होती है, और यही लोग हैं जो पूर्ण ज्ञानके पात्र, चुने हुए यंत्र और प्रतिनिधि बनते हैं।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (९ जून)

भागवत शक्ति उस यंत्रको कैसे चुनती है जिसमें वह अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती है?

अनुरक्तिके द्वारा। क्योंकि भागवत क्षेत्रसे चेतनाका गुण और स्वभाव दिखायी देता है। उसमें एक विशेष प्रकाश और विशेष स्पंदन होता है

और इसे देखा जा सकता है। तो जहां अनुरक्ति (कभी-कभी केवल अनुरक्ति, और कभी तादात्म्य — सत्ताकी पूर्णताकी अवस्थाके अनुसार) होती है शक्ति वहीं जाती है। जो अभी रचनाकी प्रक्रियामें हैं, लेकिन जिनकी चैत्य सत्ता काफी विकसित है वे दिखायी देते हैं, उनके स्पंदन दिखायी देते हैं, वहांकी सत्ता दिखायी देती है और उसके अनुसार अभिव्यक्तिकी मात्रा निश्चित की जाती है, अभिव्यक्तिकी ठीक दिशा निश्चित की जाती है; अभिव्यक्तिका महत्त्व और उसकी अवस्थाका निर्णय किया जाता है। अंतर्दृष्टिमें यह सब आ जाता है।

लेकिन हो सकता है कि यंत्र न समझ सके, क्योंकि कभी-कभी जिस आदमीमें शक्तिका अवतरण होता है वह उसे धारण नहीं कर पाता और पागल हो जाता है।

यह हो सकता है। सब कुछ संभव है। परंतु साधारणतः... मैंने तुमसे अभी उस दिन कहा था, जब मैंने चैत्य सत्ताके पुनर्जन्मकी बात की थी, मैंने तुमसे कहा था वे अपने लोकसे अमुक स्पंदन, अमुक प्रकाश देखती हैं और जान लेती हैं कि उन्हें वहां जाना चाहिये। लेकिन जब वे नीचे गिरती हैं तो उनमेंसे अधिकतर अचेत हो जाती हैं और, कम-से-कम उस समयके लिये, अपनी क्षमताएं खो बैठती हैं। अंतमें वे अपने-आपमें आ जायंगी। लेकिन उन्हें ठीक होनेमें समय लगता है। जैसे-जैसे प्रगति होती है वैसे-वैसे उत्तरोत्तर प्रकाशके द्वारा वे अपने-आपमें आती हैं।

प्राणिक सत्ता और मानसिक सत्ताके बीच साधारणतः कौन-सी ज्यादा जल्दी प्रगति करती है?

यह लोगोंपर निर्भर है। जिनका प्राण अधिक मजबूत है उनमें प्राण और जिनका मन अधिक बलवान् है उनमें मन। तुम्हारा मतलब है एक ही व्यक्तिमें? यह पूरी तरह इसपर निर्भर है कि कौन-सी सत्ता ज्यादा सक्रिय और ज्यादा बलवान् है। किस तरह? हर एक व्यक्तिमें संयोजन अलग तरहका होता है। इसलिये कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता, यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह होना चाहिये। हम यह कह सकते हैं कि अमुक प्रकारके लोगोंमें इस प्रकार है और दूसरोंमें उस प्रकार।

लेकिन सच्ची बात तो यह है कि मैं नहीं मानती कि अगर दोनों साथ

न चलें, एक एक दिशामें खींचे और दूसरा दूसरीमें तो अधिक प्रगति हो सकती है। यह हमेशा कठिन होगा। और साधारणतः, यह ज्यादा अच्छा होता है कि मनका परिवर्तन पहले हो, क्योंकि मनके अंदर सत्ताके दूसरे भागोंको संगठित करनेकी शक्ति होनी चाहिये।

(माताजी अचानक रुकती हैं और शिष्योंपर नजर डालती हैं।) अभी यहांसे किसीने एक मानसिक रचना भेजी है जिसने... तुम कह सकते हो, एक नीले कागजका रूप लिया है, जिसपर कुछ लिखा हुआ है। वह तेजीसे चक्कर काटता हुआ तुममेंसे किसीपर गिरा है। तो मैं जानना चाहूंगी कि किसीके अंदर अचानक कोई सनसनीदार उत्तर आया है?... कोई नहीं?... मैं ठीक पकड़ नहीं सकी कि वह तुममेंसे कौन था, क्योंकि वह फिरकता हुआ गिरा था... (मौन) जाने भी दो। लेकिन वह तुममेंसे किसीपर गिरा था। वह नीला कागज था। उसने नीले कागजका रूप लिया था और उसपर कोई मजेदार उत्तर था। किसीको नहीं मिला? क्या अचानक कोई विचार तुम्हारे सिरमें घुसा? नहीं घुसा?

(कोई भी उत्तर नहीं देता।)

अगर प्राण परिवर्तित न हो और मनको विश्वास हो?

तो तुम सारा जीवन अपने-आपसे लड़ते हुए काटते हो! एक तुम्हें एक ओर खींचता है और दूसरा तुम्हारा अच्छा सलाहकार बनना चाहता है, परंतु तुम उसकी नहीं सुनते। अतः तुम्हें ऐसा लगता है मानों तुम सब ओरसे खींचे जा रहे हो। तुम जानते हो कि तुम्हें क्या नहीं करना चाहिये, पर करते हो और चूंकि तुम बेवकूफी-भरी चीजें करते हो इसलिये तुम दुःखी होते हो। इस तरह दो चीजें हैं, तुम दो कारणोंसे दुःखी रहते हो: पहले तो उन मूर्खता-भरी चीजोंके कारण जो तुमने की हैं और उनके कारण आनेवाले पछतावेकी वजहसे। यह कुछ दुःखद स्थिति है...।

क्या प्राणको बदला नहीं जा सकता?

प्राणको बदलना? जरूर, यह किया जा सकता है। यह एक कठिन काम है, लेकिन यह किया जा सकता है। अगर यह न किया जा सकता तो कोई आशा न रहती। लेकिन साधारणतः केवल मन काफी नहीं है।

मैंने ऐसे बहुत-से लोग देखे हैं जो बहुत स्पष्ट रूपसे देख सकते थे, अच्छी तरह समझ सकते थे, मानसिक रूपमें उन्हें पूरा विश्वास था, असाधारण चीजें कह सकते थे और उनका वर्णन कर सकते थे, दूसरोंको बहुत अच्छे पाठ पढ़ा सकते थे, परंतु उनका प्राण सब प्रकारकी बालाकियोंपर तुला रहता था और उनकी बातोंपर कभी कान न देता था। वह कहता था: "मेरे लिये सब बराबर है। तुम जो मरजी कह लो, जहांतक मेरा सवाल है, मैं अपनी राह चलूंगा!"

केवल तभी जब चैत्यके साथ संबंध स्थापित हो जाय, तभी वह सब कुछ बदल सकता है — बुरे-से-बुरे अपराधीको भी — क्षणमें बदल सकता है: ये ऐसी "ज्योतियां" हैं जो तुम्हें पकड़ लेती हैं और तुम्हें पूरी तरह उलट देती हैं। उसके बाद सब कुछ ठीक चलता है। समायोजनकी कुछ छोटी-मोटी कठिनाइयां हो सकती हैं, फिर भी सब कुछ ठीक चलता है।

लेकिन मन एक बड़ा उपदेशक है। उसका यह स्वभाव है, वह भाषण और उपदेश देता है जैसे गिरजाघरोंमें दिये जाते हैं। इससे प्राण धीरज छोड़ देता है और मनको उत्तर देता है (बहुत सभ्य तरीकेसे नहीं): "तुम एक मुसीबत हो, तुम जो कुछ कहते हो वह तुम्हारे लिये बहुत अच्छा है, लेकिन मेरे लिये... नहीं, उससे काम न चलेगा।" या ज्यादा अच्छी तरह, जब मन विशेष क्षमताओंसे संपन्न, प्रतिभाशाली हो और प्राण भी जरा ऊंचे स्तरका हो, वह कह सकता है: "ओह, यह कितना सुन्दर है जो तुम कर रहे हो (कभी-कभी ऐसा होता है)। लेकिन देखो, मैं यह करनेमें असमर्थ हूं। यह बहुत सुन्दर है, पर मेरी क्षमताके परे है।"

लेकिन यह प्राण एक विचित्र जीव है, यह आवेग, उत्साह और स्वभावतः कामनाका जीव है। लेकिन, उदाहरणके लिये, यह किसी सुन्दर चीजपर उत्साहसे मर सकता है, अपनेसे अधिक महान् और उदात्त वस्तुको देखकर उसकी सराहना कर सकता है। और अगर वास्तवमें सत्तामें कोई असाधारण मूल्यकी गति हो या क्रिया हो तो वह उत्साहमें आ सकता है। वह अपने-आपको पूर्ण निष्ठाके साथ दे सकता है — ऐसी उदारताके साथ, जो उदाहरणके लिये, मानसिक या भौतिक क्षेत्रमें नहीं पायी जाती। उसके अंदर क्रियाकी वह पूर्णता होती है जो उमंगमें आकर अपने-आपको पूरी तरह निःशेष भावसे, जो कुछ वह कर रहा है उसमें, डाल देनेसे आती है। वीर पुरुष हमेशा प्रबल प्राणवाले होते हैं। जब प्राण किसी बातपर उमंगमें आ जाये तो वह तर्क-बुद्धिका उपयोग करनेवाला न

रहकर योद्धा बन जाता है। वह पूरी तरह अपने काममें डूब जाता है और असाधारण चीजें कर सकता है, क्योंकि वह हिसाब-किताब नहीं करता, युक्ति नहीं करता, यह नहीं कहता : "इसमें सावधानी बरतनी चाहिये, हमें यह नहीं करना चाहिये, वह नहीं करना चाहिये।" वह समझदार नहीं होता, वह भड़क उठता है, जैसा कि लोग कहते हैं। वह अपने-आपको पूरी तरह दे डालता है। इसलिये अगर उसे ठीक मार्ग-दर्शन मिले तो वह शानदार चीजें कर सकता है।

परिवर्तित प्राण सर्वसमर्थ यंत्र है। और कभी-कभी वह किसी असाधारण रूपसे भौतिक या नैतिक सुन्दर चीजसे परिवर्तित हो जाता है। उदाहरणके लिये, जब वह पूर्ण आत्म-त्याग, निःस्वार्थ आत्म-निवेदनके दृश्य देखता है — ये उन चीजोंमेंसे हैं जो बहुत ही विरल हैं, पर हैं विस्मय-जनक रूपसे सुन्दर — तो वह बह जाता है। महत्त्वाकांक्षा भी उसे पकड़कर ऐसे ही काम करवा सकती है। वह शुरू होता है महत्त्वाकांक्षासे और उसका अंत होता है समर्पणमें।

केवल एक चीज है जिससे प्राण घृणा करता है, वह है मंद, एकरस, धूमिल, स्वादहीन, निर्जीव जीवन। वह सामने आ जाय तो इसे नींद आ जाती है, वह तममें जा गिरता है। उसे बहुत उग्र चीजें पसंद हैं, यह ठीक है; वह बहुत अधिक दुष्ट, बहुत अधिक क्रूर, बहुत अधिक उदार, बहुत अधिक अच्छा और बहुत अधिक वीर हो सकता है। वह हमेशा सीमा-तक जाता है, चाहे इस ओर हो या उस ओर, हां, जिधरकी हवा हो।

और यह प्राण, यदि तुम उसे बुरे वातावरणमें रख दो तो वह बड़ी उग्रताके साथ और बहुत बड़ी हदतक बुरे परिवेशकी नकल करेगा। अगर तुम उसे किसी अद्भुत रूपसे सुन्दर, उदार, महान्, उदात्त, दिव्य वस्तुके साथ रख दो वह उसमें बह जायगा। बाकी सबको भूलकर अपने-आपको समर्पित कर देगा। वह सत्ताके और किसी भी भागकी अपेक्षा ज्यादा पूर्ण रूपसे आत्म-समर्पण करता है, क्योंकि वह हिसाब-किताब नहीं करता। जब उसमें कामनाएं होती हैं तो उसकी कामनाएं उग्र, मनमानी होती हैं, वह दूसरोंके भले-बुरेका हिसाब नहीं करता, उसे जरा भी परवाह नहीं होती। लेकिन साथ ही जब वह अपने-आपको किसी सुन्दर चीजको देता है तब भी कोई हिसाब नहीं करता। वह अपने-आपको पूरी तरह दे देगा, यह जाने बिना दे देगा कि इससे उसका भला होगा या बुरा। यह एक मूल्यवान यंत्र है।

यह एक शुद्ध जातिके घोड़ेकी तरह है। अगर वह मार्गदर्शन करने दे तो वह सभी घुड़दौड़ोंमें जीतेगा, सभी जगह पहला आयेगा। अगर वह

अनसधा हो तो वह लोगोंको कुचल देगा, बरबादी कर डालेगा और अपने ही पैर या पीठ तोड़ लेगा! यह ऐसा है। जानने लायक बात यह होती है कि वह किस ओर मुड़ेगा। उसे विरल असाधारण चीजें प्रिय होती हैं —असाधारण रूपसे अच्छी या असाधारण रूपसे बुरी। उसे साधारण जीवन पसंद नहीं आता। वह मंद पड़ जाता है, वह आधा जड़ बन जाता है। और अगर उसे एक कोनेमें बंद कर दिया जाय और कहा जाय : "वहां चुप बैठे रहो," तो वह वहां बना रहेगा, और अधिकाधिक जीर्ण-शीर्ण होनेवाली चीजके जैसा हो जायगा और अंतमें केवल ममीके जैसा हो जायगा, उसमें कोई जान न रहेगी, वह सूख जायगा, और फिर व्यक्ति जो करना चाहता है वह करनेकी जान न रहेगी उसमें। व्यक्तिमें सुन्दर विचार होंगे, बहुत अच्छे इरादे होंगे, पर उन्हें कार्य रूप देनेकी शक्ति न होगी।

तो अगर तुम्हारा प्राण सबल है तो रोओ-धोओ मत, मजबूत लगाम रखो और उसे दृढ़तासे पकड़ो। तब चीजें ठीक चलेंगी।

क्या अवसाद प्राणसे आता है?

हां, तुम्हारे सभी कष्ट, अवसाद, निरुत्साह, क्रोध, सब, सब, सभी प्राणसे आते हैं। वही है जो प्रेमको घृणामें बदल देता है, वही है जो बदलेकी, विद्वेषकी भावना जगाता है, दुर्भावना पैदा करता है, हानि पहुंचाने और नष्ट करनेके लिये उत्तेजना देता है। जब चीजें कठिन हों, उसके मनकी न हों तो वही तुम्हें हतोत्साह करता है। और उसमें हड़ताल करनेकी असाधारण क्षमता है! जब वह संतुष्ट न हो, वह एक कोनेमें छिप जाता है और फिर हिलतातक नहीं। और तब तुम्हारे अंदर ऊर्जा नहीं रहती, बल नहीं रहता, साहस नहीं रहता। तुम्हारी इच्छा-शक्ति ...एक मुरझाते पौधे जैसी होती है। सारा रोष, घृणा, कोप, सारी निराशा, सारा दुःख और क्रोध, ये सब इन्हीं महाशयसे आनेवाली चीजें हैं, क्योंकि वह सक्रिय ऊर्जा है।

अतः यह इसपर निर्भर है कि वह कौन-सी दिशा लेता है। और मैं तुम्हें बतलाती हूं, उसे हड़ताल करनेकी बहुत जोरकी आदत है। यही उसका सबसे अधिक मजबूत अस्त्र है। "उफ! तुम वह नहीं कर रहे जो मैं चाहता हूं। अच्छा लो, मैं हिलूंगा भी नहीं, मैं मौतका स्वांग भरूंगा।" और वह जरा-से कारणके लिये यह करने लगेगा। उसका चरित्र बहुत खराब है। वह बहुत छुई-मुई होता है और बहुत द्वेषपूर्ण होता है। हां,

वह बहुत बदमिजाज होता है। क्योंकि, मुझे लगता है कि वह अपनी शक्तिके बारेमें बहुत सचेतन होता है और वह साफ तौरपर जानता है कि अगर वह अपने-आपको पूरी तरह दे दे तो ऐसी कोई चीज नहीं जो उसकी शक्तिके संवेगका प्रतिरोध कर सके। और उन सब लोगोंकी तरह जिनका पलड़ा भारी होता है, प्राण भी सौदा करता है: "मैं तुम्हें अपनी ऊर्जा दूंगा, लेकिन तुम्हें वह करना चाहिये जो मैं कहूं। अगर तुम वह नहीं देते जो मैं मांग रहा हूं, तो, अच्छा, मैं अपनी शक्ति वापिस लिये लेता हूं।" और तब तुम एकदम चपटे हो जाओगे। और यह सच्ची बात है। इसी तरह होता है।

उसे नियंत्रित करना कठिन है। फिर स्वभावतः, जब तुम उसे साधने-में सफल हो जाओ तो उपलब्धिके लिये तुम्हारे हाथमें एक प्रबल चीज आ जाती है। वही बड़ी-से-बड़ी बाधाओंको अपनी आंधीमें उड़ा सकता है। उसीमें यह क्षमता है कि किसी निपट मूर्खको समझदार आदमी बना दे — केवल वही यह सब कर सकता है। क्योंकि यदि तुम प्रगतिके लिये ललकते हो, और अगर प्राण यह ठान ले कि प्रगति करनी है तो बड़े-से-बड़ा मूर्ख भी अकलमंद बन सकता है! मैंने यह देखा है। मैं सुनी-सुनायी नहीं कह रही। मैंने यह देखा है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो बहुत ही मंद, मूढ़ और समझनेके अयोग्य थे, वे कुछ भी न समझते थे। तुम महीनों कोई चीज उन्हें समझाया करो, पर उनके दिमागमें कुछ घुसता ही नहीं, मानों तुम किसी लकड़ीके टुकड़ेको समझा रहे हो — और तब अचानक उनका प्राण किसी आवेगमें फंस गया। वे किसी व्यक्तिको प्रसन्न करना चाहते थे या कुछ पाना चाहते थे और उसके लिये समझना जरूरी था, जानना जरूरी था, यह सब जरूरी था। तो, उन्होंने सब कुछ हिला दिया, सीते हुए मनको झकझोर दिया, जिन कोनोंमें ऊर्जाका नाम भी न था वहां उन्होंने ऊर्जा उंडेली और वे समझने लगे, वे समझदार बन गये। मैं एक ऐसे व्यक्तिको जानती थी जो व्यावहारिक तौरपर कुछ भी नहीं जानता था, कुछ भी नहीं समझता था और वही आदमी, जब मनने क्रिया करना शुरू कर दिया, जब प्रगतिके आवेगने उसे पकड़ लिया तो अद्भुत चीजें लिखने लगा। वे मेरे पास हैं। और जब वह गति लौट गयी, जब प्राणने हड़-ताल कर दी (कुछ समयके लिये उसने हड़ताल कर दी और वापिस लौट गया), तो वह आदमी फिरसे निपट मूर्ख बन गया।

निस्संदेह, बाह्यतम भौतिक चेतना और चैत्य चेतनामें सतत संपर्क जमाये रखना बहुत कठिन है। और हां, भौतिक चेतनामें बहुत सद्भावना होती है। वह नियमित होती है, वह बहुत कोशिश करती है, लेकिन वह धीमी

और भारी है, उसे बहुत समय लगता है। उसे हिलाना मुश्किल है। वह थकती नहीं, लेकिन वह प्रयास भी नहीं करती। वह चुपचाप अपनी राह चलती है। वह बाह्य चेतनाका चैत्य चेतनाके साथ संपर्क करानेमें शताब्दियां ले सकती है। लेकिन किसी-न-किसी कारणसे प्राण इसमें हाथ डालता है। उसे एक आवेग पकड़ लेता है। वह किसी-न-किसी कारणसे, जो हमेशा आध्यात्मिक कारण नहीं होता, यह संपर्क चाहता है। वह अपनी पूरी ऊर्जा, पूरे बल और पूरे आवेगके साथ, पूरे उत्साहके साथ चाहता है और काम तीन महीनोंमें हो जाता है।

इसलिये इसका पूरी तरह ध्यान रखो, इसके साथ बड़े सम्मानपूर्वक व्यवहार करो, परंतु कभी उसकी अधीनता न स्वीकार करो। क्योंकि वह तुम्हें सब प्रकारके कष्टकर और अप्रिय परीक्षणोंमें खींचेगा और अगर तुम उसे किसी-न-किसी तरह विश्वास दिलानेमें सफल हो जाओ तो तुम मार्ग-पर बहुत बड़े-बड़े डगोंसे बढ़ोगे।

१६ सितम्बर, १९५३

"योग-साधना करनेवालोंमें जो शक्ति ऊपरसे उतरती है और उसके रूपांतरमें सहायता देती है, वह विभिन्न धाराओंमें काम करती है और उसके परिणाम उसे ग्रहण करनेवालोंके स्वभाव और किये जानेवाले कार्यके अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। सबसे पहले, जो सत्ता रूपांतरित होनेके लिये तैयार है, अगर वह मनमें खुली हुई और ग्रहणशील है तो योगशक्तिका स्पर्श पाकर मन तेजीसे प्रगति करने और बदलने लगता है। और अगर प्राणिक चेतना तैयार हो तो उसमें भी उसी तेजीसे परिवर्तन आ सकता है, यहांतक कि शरीरके लिये भी यही बात है। लेकिन शरीरमें योगकी रूपांतर करनेवाली शक्ति केवल एक हदतक ही काम करती है, क्योंकि शरीरकी ग्रहणशक्ति सीमित है। विश्वका सबसे अधिक भौतिक लोक अब भी ऐसी अवस्थामें है जिसमें ग्रहणशीलता प्रतिरोधकी बहुत बड़ी राशिके साथ मिली हुई है। लेकिन सत्ताके एक भागमें द्रुत प्रगति हो और साथ-ही-साथ दूसरे भागोंमें समान प्रगति न हो तो

प्रकृतिमें एक असमन्वय आ जाता है, कहींपर अव्यवस्था पैदा हो जाती है। और जहां कहीं और जब कभी वह अव्यवस्था आती है, वह अपने-आपको रोगमें अनूदित कर लेती है। रोग-की प्रकृति अव्यवस्थाकी प्रकृतिपर निर्भर है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१६ जून)

शरीरकी ग्रहणशीलता सीमित क्यों है?

क्योंकि, चीजें घुल-मिल न जायं इसके लिये जरूरी था कि भौतिक जगत् कुछ स्थिर और दृढ़ हो। उदाहरणके लिये, अगर तुम्हारा शरीर इतना सूक्ष्म और लोचदार होता कि किसी अन्य व्यक्तिकी उपस्थितिमें अचानक यूं ही पिघलने लग जाता तो यह काफी परेशान करनेवाली बात होती! या पास आते ही तुम दोनों घुल-मिल जाते तो बात कुछ अप्रिय-सी होती। तो इसलिये यहां ज्यादा घनता रखी गयी, एक व्यक्तित्वको दूसरेसे अलग रखनेके लिये (वास्तवमें अलग करनेके उद्देश्यसे ही), शक्तिमें एक प्रकारकी घनता रखी गयी। और यही स्थिरता शरीरको उतनी तेजीसे प्रगति करने-से रोकती है जितनी तेजीसे वह प्रगति कर सकता है और उसे करनी चाहिये। और जैसे ही मनुष्य अपनी सामान्य ऊंचाई और शरीर गठनतक पहुंचता है वह ज्यादा कठोर हो जाता है। बच्चोंमें वृद्धिका लोच होता है, वे सारे समय बदलते रहते हैं, बदलते दिखायी देते हैं, इसलिये जबतक वे बच्चे होते हैं, बढ़ते और विकसित होते रहते हैं, उनके अंदर कुछ नम-नीयता रहती है। लेकिन चालीसके ऊपर होते ही साधारण जीवनमें आदमी बैठकर सोचने लगता है कि वह अपने लक्ष्यतक पहुंच गया है और अब अपने परिश्रमका फल इकट्ठा करनेका समय है। इसके साथ ही वह सूख-कर लकड़ी जैसा कठोर हो जाता है, बल्कि अंतमें पथरा जाता है। और चूंकि शरीर अपने-आपको आंतरिक रूपांतरकी क्रियाके अनुकूल नहीं बना सकता, इसलिये वह घसिटता है, बूढ़ा होने लगता है, कदम नहीं मिला सकता और सूख जाता है।

क्या आंतरिक सत्ता मृत्युके बाद प्रगति करती रहती है?

यह पूरी तरह व्यक्तिपर निर्भर है। हर एकके लिये बात अलग है। ऐसे लोग हैं — उदाहरणके लिये, लेखक, संगीतज्ञ, कलाकार — ऐसे लोग जो बौद्धिक ऊंचाइयोंपर रहे हैं, जिन्हें लगता है कि उन्हें अभी कुछ और करना

है, कि उन्होंने जो काम शुरू किया था उसे अभीतक पूरा नहीं कर पाये हैं, कि वे अभीतक अपने निर्धारित लक्ष्यतक नहीं पहुंच पाये हैं। ऐसे लोग जबतक बन पड़े धरतीके वातावरणमें यथासंभव अधिक-से-अधिक लगावके साथ रहनेके लिये तैयार रहते हैं और वे अन्य मानव शरीरोंमें अभिव्यक्त होकर अपनी प्रगतिको जारी रखनेकी कोशिश करते हैं। मैंने ऐसे बहुत-से उदाहरण देखे हैं। मैंने एक संगीतज्ञका बहुत रोचक उदाहरण देखा है। वह बड़ा अच्छा पियानोवादक था। उसके हाथ कौशल; यथार्थता, बल, गतिकी तेजी आदिकी दृष्टिसे अद्‌भुत थे। यह आदमी अपेक्षाकृत छोटी अवस्थामें मर गया। वह यह भावना लिये मरा कि अगर वह और जीता तो वह अपने संगीतकी अभिव्यक्तिमें और भी प्रगति करता रहता। और उसकी अभीप्सा इतनी तीव्र थी कि उसके सूक्ष्म हाथोंने विलीन होनेकी जगह अपना रूप बनाये रखा। जब कभी उसे कोई अच्छा, ग्रहणशील और अचंचल संगीतज्ञ मिलता, उसके हाथ बजानेवाले हाथोंमें प्रवेश कर जाते और वह बजानेवाला जो सामान्यतः अच्छा तो बजा लेता था, पर साधारण अच्छा, वह उस समय बजाते हुए केवल प्रवीण ही नहीं, एक अद्‌भुत कलाकार बन जाता था। दूसरे कलाकारके हाथ उसका उपयोग करते थे। यह एक ऐसी घटना है जिसे मैं जानती हूं। मैंने यही चीज एक चित्रकारके साथ देखी है। यहां भी हाथोंका ही मामला था। यही बात कुछ लेखकोंके बारेमें है और इनमें मस्तिष्कमें अपना यथार्थ रूप रखा था और किसी पर्याप्त रूपसे ग्रहणशील मस्तिष्कमें जा घुसता था और अचानक उससे असाधारण चीजें लिखवाता था, वह जैसी चीजें पहले लिखता था उनसे कहीं अधिक सुंदर। मैंने उसे किसीको पकड़ते देखा है। यह एक संगीतकारकी बात है, बजानेवालेकी नहीं, संगीतकी रचना करनेवालेकी, जैसे बीठोवन, जैसे बाख, जैसे सीजर फ्रेंक (लेकिन फ्रेंक बजाता भी था)। संगीत रचना बहुत ज्यादा मस्तिष्ककी क्रिया है। हां, यहां भी एक महान् संगीतज्ञका मस्तिष्क एक ऐसे आदमीके संपर्कमें आया जो गीतिनाट्य आपेरा तैयार करनेमें लगा था। उस मस्तिष्कने इससे अद्‌भुत चीजें लिखवायीं और सभी भाग कागजपर व्यवस्थित कर दिये। वह आदमी गीतिनाट्य लिखनेमें लगा था; उसे कार्यान्वित करनेवालोंके लिये यह बहुत कठिन काम होता है। उन्हें रचना करनेवालेके विचारोंको संगीतमें उतारना होता है। जब उस आदमीको (मैं उसे जानती थी) यह रचना मिली तो उसके सामने एक कोरा कागज था और उसने लिखना शुरू किया। मैंने उसे लिखते हुए देखा था। वह एक बड़े-से, बहुत बड़े कागजपर लकीरें करता जाता था और फिर कुछ अंक लिखता था। जब वह कागजके नीचेतक पहुंचा तो

सारा पूर्व रंगका वृंदवाद्यकरण (overture), उदाहरणके लिये किसी विशेष अंकका पूर्वरंग समाप्त हो गया। वृंदवाद्यकरणका अर्थ है हर वाद्यके लिये संगीतकी कुछ पंक्तियां निर्धारित करना। और वह सारा काम केवल एक कागजपर अपनी अद्‌भुत मानसिक शक्तिके द्वारा कर रहा था। और वह शक्ति उसकी अपनी न थी। वह उसमें अवतरित किसी अन्य संगीतमय मनसे आ रही थी . . .। जब मैं वहां थी तो मैंने अपने सामने उसे इस तरहसे एक पृष्ठ लिखते देखा। उसे शायद आधा या पौना घंटा लगा होगा। और उसकी इतनी ख्याति फैल गयी कि बड़े-बड़े, विख्यात संगीतज्ञ भी अपनी कृतियां वृंदवाद्यकरणके लिये उसके पास लाया करते थे। वह सबसे ज्यादा अच्छी तरह कर सकता था, और बस यूं ही सीधा कागजपर। उसे कुछ भी सुननेकी जरूरत न होती थी। बादमें उसे बजाकर देखा जाता था और वह हमेशा अच्छा निकलता था। उसमें इतनी वायलिनें होती थीं, इतनी मंदवायलिनें, इतने उच्च स्वर, इतने अन्य वाद्य, कुछ एक साथ यह बजाते थे और कुछ वह बजाते थे और कुछ दूसरी ही चीज बजाते थे। कभी सब मिलकर, कभी एकके बाद एक (यह बहुत ही जटिल चीज है, आसान नहीं है), हां, तो बजाते समय, सुनते समय या पढ़ते समय (कभी-कभी वह स्वरलिपि लेकर पढ़ा करता था), उसे पता लग जाता था कि कौन-से स्वर किस वाद्यको देने चाहिये, कौन-से स्वर दूसरोंको देने चाहिये आदि-आदि। उसे यह स्पष्ट प्रतीति होती थी कि कोई चीज उसके अंदर प्रवेश करके उसकी सहायता करती है।

क्या ये सत्ताएं जो अपने-आपको अभिव्यक्त करना चाहती हैं फिरसे जन्म लेनेपर भी वही इच्छाएं रखती हैं?

नहीं, यह एक ही बात नहीं है। यह पूरी सत्ता नहीं होती। यह तो वह विशेष क्षमता होती है जो धरतीके वातावरणमें बनी रहती है, इसे छोड़कर चली नहीं जाती। वह अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये धरतीके वातावरणमें रहती है। लेकिन चैत्य पुरुष चैत्य लोकको लौट सकता है। उस दिन मैंने तुम्हें बताया था कि बहुधा शरीर छोड़नेसे पहले चैत्य पुरुष निश्चय कर लेता है कि उसका अगला जन्म कैसा होगा, वह कैसे वातावरणमें जन्म लेगा और वह क्या काम करेगा, क्योंकि उसे अपने अनुभवके लिये एक खास प्रकारके क्षेत्रकी जरूरत होती है। अतः यह हो सकता है कि बहुत बड़े लेखक और बहुत बड़े संगीतज्ञ अगली बार एकदम मूढ़ व्यक्तिका जन्म लें। और तुम कहते हो: "क्या? नहीं, यह संभव नहीं

है।" स्वभावतः हमेशा ऐसा नहीं होता, लेकिन ऐसा हो सकता है। एक ऐसा उदाहरण है जिसमें इससे उलटी बात हुई थी। एक वायलिन बजानेवाला था, अपनी शताब्दीका सबसे अच्छा वादक... (माताजी नाम याद करनेकी कोशिश करती हैं) जरा ठहरो, मुझे उसका नाम मालूम था पर वह चला गया — वह वापिस आया और फिर चला गया। उसका नाम क्या था?... यसाई! वह बेलजियमवासी वायलिनवादक था, सचमुच अपने समयका सबसे अद्भुत वादक। उस आदमीके अंदर बिलकुल निश्चित रूपसे बीठोवनने जन्म लिया था। शायद उसकी समस्त चैत्य सत्ताका जन्म न हो, लेकिन हर हालतमें उसकी संगीतकी क्षमता तो उसमें जन्मी ही थी। उसका दिखाव-बनाव, उसका सिर बीठोवन जैसा था। मैंने उसे देखा था, मैंने उसका संगीत सुना था (मैं उसे जानती न थी, मैं कुछ नहीं जानती थी, मैं पेरिसकी एक संगीत गोष्ठीमें थी जहां 'डी मेजर'में संगीत रचना सुनायी जा रही थी)। मैंने उसे बजानेके लिये मंचपर आते देखा, मैंने कहा: "आश्चर्य है! यह आदमी बीठोवनसे कितना मिलता है! यह तो बीठोवनकी पूरी अनुकृति है।" और संगीत शुरू हुआ। वायोलिनके गजके चलते ही, तीन, चार स्वरोंमें ही... यह चीज बदल गयी। सारा वातावरण बदल गया। सब कुछ पूर्णतया अद्भुत बन गया। तीन ही स्वरोंमें... इतनी शक्ति, इतनी महिमा, सब कुछ अद्भुत था। कोई हिलातक नहीं। सब स्तब्ध प्रतीक्षामें थे। और वह एक छोरसे दूसरे छोरतक ऐसे विलक्षण और अनोखे ढंगसे, ऐसी समझके साथ बजाता गया जैसी मैंने और किसीके अंदर नहीं देखी। और तब मैंने देखा कि बीठोवनकी संगीत-प्रतिभा उसमें थी...। लेकिन शायद बीठोवनके चैत्य पुरुषने कहीं किसी मोचीके यहां या किसी औरके यहां जन्म लिया हो — पता नहीं। वह किसी और प्रकारका अनुभव लेना चाहता था।

मैंने इस आदमीके अंदर जो चीज देखी वह पार्थिव लोककी थी, वह मानसिक प्राण था: और चूंकि बीठोवनने अपने समस्त मन, प्राण और शरीरको अपनी संगीत-प्रतिभाके चारों ओर गठित कर रखा था इसलिये यह अपने रूपमें बना रहा। वह एक जीवित वस्तुके रूपमें था और जैसा-का-तैसा इस मनुष्यमें पैदा हुआ था। यह जरूरी नहीं है कि बीठोवनका चैत्य भी आया हो। पहले जन्ममें बीठोवनके चैत्यने इन सब भागोंको संगीत-प्रतिभाके चारों ओर संगठित किया था, लेकिन उसकी मृत्युके बाद, यह नहीं कहा जा सकता कि चैत्य पुरुष वहां रहा या नहीं। वह सामान्य नियमके अनुसार चैत्य लोकको लौट गया होगा। लेकिन यह रचना जो बन गयी थी, उसका अपना जीवन था, वह स्वतंत्र रूपसे अपने-आपमें

जीवित थी। वह एक अमुक प्रकारकी अभिव्यक्तिके लिये बनी थी और वह अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये बनी रही और जैसे ही उसे कोई उपयुक्त यंत्र मिला, वह अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये उसमें प्रविष्ट हो गयी।

क्या एक चैत्य पुरुष दो शरीरोंमें जन्म ले सकता है?

यह इतना ज्यादा सरल नहीं है...। चैत्य पुरुष एक विकासक्रमका परिणाम है, यानी, उस दिव्य चेतनाके विकासक्रमका जो जड़-तत्त्वमें फैल गयी और धीरे-धीरे उसे उठाने लगी। उसे भगवान्तक लौटनेके लिये विकसित करने लगी। इस दिव्य केंद्रने बहुत सारे जन्मोंमें उत्तरोत्तर इस चैत्य पुरुषकी रचना की। एक समय आता है जब वह एक प्रकारकी पूर्णतातक जा पहुंचता है, अपनी वृद्धि और रचनाकी पूर्णतातक। तब बहुधा, चूंकि उसमें उपलब्धिके लिये अभीप्सा होती है, भगवान्को और ज्यादा अच्छी तरह अभिव्यक्त करनेके लिये अधिक पूर्णताकी अभीप्सा होती है, इसलिये साधारणतः वह अपनी ओर अंतर्लयनकी किसी सत्ताको खींच लेता है, अर्थात्, उन सत्ताओंमेंसे किसीको, श्रीअरविंद जिसे अधिमानस कहते हैं, वह सत्ता जन्म लेनेके लिये चैत्य पुरुषमें आती है। यह उस प्रकारकी सत्ताओंमेंसे हो सकती है जिन्हें मनुष्य देव कहते हैं, किसी प्रकारके देवता। और जब यह मेल होता है तो स्वभावतः चैत्य पुरुष बड़ा हो जाता है और अवतरित होनेवाली सत्ताके स्वभावका भागीदार बनता है और तब उसमें अपने अंदरसे निर्गम अंश पैदा करनेकी शक्ति होती है। इन सत्ताओंमें निर्गम अंश तैयार करनेकी क्षमता होती है, यानी, वे अपने अंदरसे अपना एक भाग प्रक्षिप्त कर सकती हैं जो स्वतंत्र होकर दूसरोंमें जन्म लेनेके लिये चला जाता है। तो इस तरह केवल दो नहीं, तीन, चार, पांच निर्गम अंश हो सकते हैं। यह उदाहरणोंपर निर्भर है, लेकिन इस तरह हो सकता है। अर्थात् उनका एक ही उद्गम हो सकता है। जिसे हम चैत्य-भागवत कह सकते हैं। और साधारणतः जब कई निर्गम अंश हों तो भिन्न-भिन्न व्यक्ति सकारण अपने-आपको वह व्यक्ति मानते हैं क्योंकि उनके अंदर उस देवका कुछ अंश होता है: यह ऐसा होता है मानों किसीके एक भागने अपने-आपको स्वयं अपने अंदरसे बाहर फेंका है और वह अन्य स्वतंत्र व्यक्ति बन गया है। यह अपने-आपको दोहराना नहीं है, बल्कि एक प्रकारका आत्म-निक्षेप है। (प्रश्न करनेवाली लड़की तारासे) दोहरानेमें कुछ ऐसा भाव आता है कि जिस चीजको दोहराया

गया है उसने अपनी क्षमताका कुछ अंश खो दिया। अगर तुम अपने शरीरको दो भागोंमें बांट दो तो उसका आधा हिस्सा ही "तुम" रहेगा, लेकिन अगर तुम्हारे अंदर यह क्षमता हो कि तुम अपनेमेंसे कुछ निर्गम कर सको तो तुम पूर्ण रहते हो, जैसे हो ठीक वैसे ही, और साथ ही एक और तारा बन जाती है जो एक और व्यक्ति है। आया समझ में? बात ऐसी है।

जब पियानोवादकके हाथ किसी दूसरेके हाथोंमें प्रविष्ट हो गये तो क्या जिसने अपने हाथ दिये हैं वह स्वयं भी बजा सकेगा?

मेरी समझमें नहीं आया! मृत पियानोवादकके हाथ ही तो पार्थिव वातावरणमें बच रहे थे। तो ये हाथ, जो पूर्ण रूपसे रचे गये थे, संचेतन, जीवित-जाग्रत्, स्वतंत्र सत्ताओंकी तरह हो गये। वे पियानो बजाना चाहते थे इसलिये तो वे मौतिक हाथोंमें प्रविष्ट हुए थे। लेकिन जब उन्होंने बजाया तो दूसरे आदमियोंके हाथोंसे ही बजाया। वह आदमी अच्छा पियानोवादक भले रहा हो, पर इन हाथोंके प्रविष्ट होनेसे वह विशेष प्रतिभाशाली बन गया।

मैंने सोचा था कि वह दूसरा आदमी जिंदा था!

दूसरा आदमी जिंदा था? कौन-सा दूसरा? पहला... नहीं, नहीं। (हंसी)

आपने कहा है: "सारा संसार उत्तरोत्तर रूपांतरकी प्रक्रियामें है।"[1] तब फिर लोग आपसमें झगड़ते क्यों हैं?

---

[1] "योगशक्तियोंकी क्रिया सत्ताके उन भागोंमें रूपांतरकी गतिको तेज कर देती है जो अपने ऊपर क्रिया करनेवाली शक्तिको ग्रहण करने और प्रत्युत्तर देनेके लिये तैयार हैं। इस तरह योग समयकी बचत करता है। सारा संसार उत्तरोत्तर रूपांतरकी प्रक्रियामें है। अगर तुम योग-साधना अपनाओ तो तुम अपने अंदर इस प्रक्रियाको तेज करते हो। जो काम साधारण रीतिसे बरसों ले लेता, वह दिनोंमें नहीं, बल्कि घंटोंमें हो जाता है।"
प्रश्न और उत्तर १९२९ (१६ जून)

शायद उनकी प्रगतिका यही तरीका है! (हंसी) तुम हमेशा ऊपरसे दीखनेवाले सामंजस्यमें ही प्रगति नहीं करते। योग करनेवाले सब लोग जानते हैं कि यह ऐसी चीज नहीं है जो हमेशा शांति और सामंजस्यमें ही हुआ करे, कभी-कभी आंतरिक युद्ध भी होते हैं। तुम्हारे अंदर जो शत्रु तुम्हें प्रगति करनेसे रोकते हैं उनके साथ लड़ाई करनी पड़ती है। इसका अर्थ है युद्ध। हां, जब सारी धरती ही प्रगति कर रही है, और ऐसी चीजें हैं जो प्रतिरोध करती हैं, जो हिलना नहीं चाहतीं तो कभी-कभी तुम्हें संग्राम करना पड़ता है और इसका अर्थ है युद्ध। तुम्हें यह न मान लेना चाहिये कि चुप बैठने और ध्यान करनेमें ही सारी प्रगति आ जाती है। ऐसी कठिनाइयां हैं जिनपर विजय पानी होती है। विजय पानेका क्या अर्थ हुआ?... किसी चीजके विरुद्ध लड़ना। जब तुम लड़ते हो तो उसका मतलब है युद्ध। छोटे युद्ध होते हैं और बड़े युद्ध होते हैं। यह मनुष्योंका युद्ध है क्या? अगर उन दानवोंकी दृष्टिसे देखा जाय जिनके लिये मनुष्य चींटीसे बढ़कर नहीं है...। जब तुम चींटियोंका युद्ध देखते हो तो वह तुम्हें बिलकुल स्वाभाविक लगता है। तुम उसे बड़े रसके साथ देख सकते हो और कह सकते हो: "देखो, चींटियां लड़ रही हैं।" हां, तो धरतीपर क्रियाशील दानवी शक्तियोंके लिये धरतीपर युद्ध करते हुए मनुष्य लड़ती हुई चींटियों जैसे हैं, कुछ भी नहीं हैं। तुम्हें चीजोंका मूल्यांकन मानव चेतनाके मापसे नहीं करना चाहिये...। मनुष्यके लिये प्रकृति विकराल वस्तु है। वह अत्यंत विकट है। सभी शक्तियां उसकी सेवामें हैं, सभी क्रियाओंकी सृष्टि वही करती है। और हम बस उतना ही जानते हैं जो इस धरतीपर हो रहा है! तुम प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे, एक प्रकारके अनुमानात्मक ज्ञानसे यह जानते हो कि बाकी विश्वमें क्या हो रहा है। ये मानव चेतनाके अनुपातमें विकट और विकराल क्रीड़ाएं और संघर्ष हैं। ये ऐसी चीजें हैं जो मानव अवधिकी तुलनामें अनंत काल-तक रहती हैं। तो यह कालमें विशाल हैं, देशमें विशाल हैं और मानव चेतनाके लिये यह लगभग अबोधगम्य हैं। लेकिन इन शक्तियोंके लिये मानव आकार और गतियोंका सचमुच वही अनुपात है (शायद उससे भी कम) जो हमारे लिये चींटियोंके झुंडका है, वही चीज है। स्वीडन और नार्वेकी गाथाओंमें ऐसे वैश्व दानवोंकी बात आती है जो लगभग ऐसे ही हैं। ऐसी कहानियां कही जाती हैं जिन्हें बच्चे समझ सकें। कहा जाता है कि दो दानव विश्वकी किसी चोटीपर बैठे थे — धरतीपर नहीं। एक दानवने आह भरी। हजार वर्ष बीत गये। तब दूसरेने पूछा: "आह क्यों भरते हो?" फिर हजार वर्ष बीते और पहलेने उत्तर दिया: "मैं

ऊब गया हूं।" फिर हजार वर्ष बीत गये...। इनसे कुछ ख्याल आ सकता है। शायद दानवको यह कहते सैकड़ों वर्ष लगे होंगे : "मैं ऊब गया हूं।" यह अनुपातोंका प्रश्न है!

क्या योग-शक्तिसे शरीरको कठोर होनेसे रोक सकना संभव नहीं है?

संभव है। जब तुम जिमनास्टिक करते हो तो क्या यह शरीरको कम कठोर बनानेके लिये नहीं होती? और तुम प्रगति करते जाते हो। जो तुम पहले साल नहीं कर सकते थे उसे कुछ वर्षोंमें करने लगते हो। ऐसे लोग हैं, उदाहरणके लिये, जो आसन करते हैं, जो लगभग पूर्ण लचीलापन प्राप्त कर लेते हैं। हां, लगभग पूर्ण लचीलापन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन अगर कोई साधारण आदमी ये कसरतें करनेकी कोशिश करे तो वह कुछ तोड़ लेगा। हां, इसी तरह होता है। मनके साथ भी यही बात है। तुम जिमनास्टिककी कसरतोंके द्वारा अपने-आपको अधिक लचीला बनाते हो। यह अनुशासनका, विकासका प्रश्न है।

मान लो कि कोई आदमी इस जन्ममें बहुत बुद्धिमान बननेके लिये कोशिश करता है, लेकिन अगले जन्ममें वह महामूढ़ बन जाता है तो उसके सारे प्रयासका क्या लाभ?

नहीं, मैंने जरा संक्षेपमें कहा था, लेकिन बात यही नहीं है। उसका चैत्य पुरुष मूढ़ नहीं होता! उदाहरणके लिये, मान लो, चैत्य पुरुषको एक ऐसे आदमीके जीवनका अनुभव हो चुका है जो एक लेखक था, जो अपनी अनुभूतिको भाषणों और पुस्तकोंके द्वारा अनूदित कर सकता था। इस तरह उसने, वह जिन परिस्थितियोंमें और जिस संसर्गमें रहता था, उसके द्वारा, अनुभूतियोंका एक क्षेत्र-विशेष देख लिया है। लेकिन अनुभूतिका एक और क्षेत्र है जो उसने नहीं देखा। उदाहरणके लिये, वह कहता है: "मैं अपने मस्तिष्कसे जीता था, एक बुद्धिप्रधान व्यक्तिकी जीवनके प्रति होनेवाली प्रतिक्रियाओंको देख चुका। अब मैं संवेदनोंका जीवन जीना चाहता हूं।" क्योंकि सामान्यतः बुद्धिकी अत्यधिक क्रियाशीलता संवेदनोंकी क्षमताको बहुत कम कर देती है। अतः, अनुभूति और विकास-का कोई और क्षेत्र पानेके लिये वह बौद्धिक शिखरोंको त्याग देता है। वह प्रतिभाशाली नहीं रहता, एक प्रतिभाशाली लेखक नहीं रहता। वह

साधारण आदमी बन जाता है। लेकिन उसका हृदय विलक्षण होता है, बहुत दयालु और उदार। मैंने "मूढ़" कहा था पर यह एक सापेक्ष बात है। उदाहरणके लिये, यह विरल नहीं है कि एक चैत्य पुरुष प्रशासकके अधिकारोंका रस लेनेके बाद (उन सब चीजोंका जो किसी राजा या सम्राट्के जीवनमें मिल सकती हैं), एक अनजान जीवनमें काम करना चाहे जहां वह सरकारी शान-शौकतकी बेड़ियोंसे मुक्त रह सके। वह एक साधारण वातावरणमें रहनेवाले मध्यवर्गीय जीवनको पसंद कर सकता है जहां सामान्य अवस्थाएं हों, ताकि वह उस प्रकार अज्ञात-सा जीवन बिता सके जिसमें वह राज्यके अध्यक्षके साथ जुड़ी सरकारी प्रदर्शनकी आवश्यकताओंसे बचा रहकर काम कर सके। तुम अगर इस चीजको एक दृष्टिकोणसे देखो तो कह सकते हो: "यह क्या? यह पतन कैसा?"

यह पतन नहीं है। यह समस्याका एक और दृष्टिसे, एक और दृष्टिकोणसे समाधान है। चेतनाके लिये (मेरा मतलब है सत्य-चेतनाके लिये, भागवत चेतनाके लिये), सफलता और असफलता एक ही है, महिमा और सामान्यता एक ही है। महत्त्वपूर्ण है बस चेतनाकी वृद्धि। और कुछ अवस्थाएं जो मनुष्योंको बहुत अनुकूल मालूम होती हों वे चेतनाके विकासकी दृष्टिसे बहुत प्रतिकूल हो सकती हैं...। तुम अपने ऊपर नजर डाल सकते हो। स्वभावतः, अगर तुम हमेशा सावधान रहो और हमेशा अपनी सत्ताके शिखरपर रहनेकी सावधानी रखो तो इस भ्रांतिमें न पड़ोगे। लेकिन सामान्य विचारसे, सामान्य रूपसे तुम हर चीजका मूल्यांकन सफलता या असफलताकी दृष्टिसे करते हो, परंतु यह किसी चीजके बारेमें निर्णय करनेका अंतिम, अधम उपाय है, क्योंकि यह सबसे ज्यादा कृत्रिम, सबसे ज्यादा बाहरी उपाय है जो सत्यसे बिलकुल विपरीत है। मानव जीवनमें, जैसा वह इस समय है, लाखोंमें एक बार भी सत्य मूल्य एकदम सामने देखा या पहचाना नहीं जा सकता। साधारणतः, थोड़ा-सा "घटिया अभिनय" (काबोतिनाज) हमेशा जरूरी होता है। जब कोई सफलता पाता है, बड़ी सफलता, वह चाहे कुछ क्यों न हो, चाहे किसी क्षेत्रमें हो तो तुम हमेशा यह सोच सकते हो कि कहींपर कुछ अभिनय है।

"काबोतिनाज" का क्या अर्थ है?

यह ऐसे अभिनेताओंके बारेमें कहा जाता है जो किसी प्रहसनमें इतराते-इठलाते हैं। लेकिन इस शब्दका ऐसे व्यक्तिके बारेमें भी उपयोग होता है जो अपना मूल्य बहुत ज्यादा आंक लेता है, जो जितना है उससे बहुत

ज्यादा दिखाता है, जो नहीं है उसका प्रदर्शन करता है और सबसे बढ़कर, सराहना पानेके बारेमें ही सोचता है। उसके लिये सबसे बड़ी चीज है सराहना और महत्त्व पाना।

स्मरण-शक्तिको कैसे बढ़ाया जा सकता है?

अपनी चेतनाका विस्तार करो और तुम्हारी स्मृति बढ़ेगी।

चेतना यांत्रिक मस्तिष्ककी स्मृतिसे बहुत ज्यादा बड़ी स्मृति है। मैंने यह बात एक दिन, अभी बहुत दिन नहीं हुए, तुम्हें समझायी थी। मैंने तुम्हें बतलाया था कि यांत्रिक मस्तिष्ककी स्मृति भूल सकती है — उलझन डाल सकती है, विकृत कर सकती है — लेकिन अगर तुम अपने अंदर फिरसे उस चेतनाको स्थापित कर सको जिसमें तुम उस समय थे तो तुम्हें ठीक वही अनुभूति होगी। और यही एकमात्र सच्ची स्मृति है। और यह पूरी तरह तुम्हारी चेतनाके विकासपर निर्भर है!

आपने कहा है कि भौतिक स्तरपर "ग्रहणशीलता एक बड़ी मात्रामें प्रतिरोधके साथ मिली रहती है"। यह प्रतिरोध क्या है?

तुम्हारे शरीरमें प्रतिरोध नहीं है? नहीं है क्या? जब तुम कोई व्यायाम करना चाहो तो क्या तुम शरीरके साथ जो भी करना चाहो कर सकते हो? और जब तुम स्वस्थ रहना चाहो तो क्या तुम्हारा शरीर हमेशा आज्ञा-पालन करता है? और जब तुम अपना पाठ सीखना चाहो तो क्या तुम्हारा मस्तिष्क हमेशा उसे समझ सकता है? यही तो प्रतिरोध है। जो कुछ प्रगति करनेसे इंकार करता है वह सब प्रतिरोध है। और मेरा ख्याल है कि प्रतिरोधकी मात्रा ग्रहणशीलताकी मात्रासे बहुत अधिक है। ग्रहणशील होनेके लिये बहुत ज्यादा परिश्रम करनेकी जरूरत होती है।

तुम नहीं जानते — यह ऐसी चीज है जिसे शायद तुम एक दिन जान पाओगे, शायद तुम्हें एक दिन बताया जाय, तुम्हें यह समझाया जा सके — तुम कल्पना नहीं कर सकते कि शक्तिका कितना बड़ा सैलाब तुम्हारे अधिकारमें है। और साधारणतः तुम उसे अनुभव भी नहीं करते। जब तुम्हें अनुभव होता है तो तुम्हारे अंदर कोई चीज सिकुड़ती है क्योंकि वह बहुत ज्यादा है, यही चीज तुम्हारे कोषाणुओंमें एक प्रकारका सहज

भय भर देती है। और जब तुम्हें वह प्राप्त होती है तो तुम तीन-चौथाई-से अधिक छलका देते हो जैसे चीज ज्यादा भरे हुए बरतनमेंसे निकल जाती है। वह छलक जाती है, गिर जाती है, क्योंकि तुम उसे रख सकनेमें असमर्थ हो। मुझे ऐसे बहुत-से लोग मिले हैं जिन्होंने यह शिकायत की है कि उन्हें कुछ भी नहीं मिल रहा, अर्थात्, उनमें वह शक्ति नहीं है जिसकी उन्हें जरूरत थी। इसका कारण यह है कि वे उसे ग्रहण करनेमें बिलकुल असमर्थ थे। वे जितनी ले सकते थे उससे लाखों गुना अधिक शक्ति मौजूद थी। बात ऐसी है। तुम सब विशाल विस्मयकारी स्पंदनों-के सागरमें हो। तुम उसके बारेमें बिलकुल नहीं जानते, क्योंकि तुम ग्रहण-शील नहीं हो। और तुम्हारे अंदर ऐसा प्रतिरोध है कि अगर कोई चीज अंदर घुसनेमें सफल हो जाय तो उसका तीन-चौथाई भाग उग्रतासे बाहर फेंक दिया जाता है, क्योंकि तुम उसे समा नहीं सकते....। मैं साधा-रणतः इस विषयकी बात नहीं करती, लेकिन अब चूंकि हम इस विषयमें बात कर रहे हैं इसलिये तुम्हें बता रही हूं। और शायद एक दिन मैं तुम्हें इसका उदाहरण दूंगी। यह ऐसी बात है जिसपर विश्वास नहीं होता। उदाहरणके लिये, शक्तियोंकी चेतनाको लो। प्रेमकी शक्तिकी तरह समझने-की शक्ति, सृजन-शक्ति (हर चीजके लिये वही बात है, संरक्षणकी शक्ति, वृद्धिकी शक्ति आदि, और प्रगतिकी शक्ति, हर चीजके लिये), चेतनाको लो, केवल यह चेतना जो हर चीजको घेरे हुए है, हर चीजमें प्रवेश करती है, जो हर जगह है, हर चीजमें है....। यह ऐसे लगती है मानों एक उग्रता हो जो अपने-आपको ऐसी सत्तापर आरोपित करना चाहती है जो उसे ग्रहण करने या सहन करनेमें असमर्थ है। और मैं अच्छे-से-अच्छेकी बात कर रही हूं, लेकिन हर एकमें बड़ा या छोटा, कम या अधिक महत्त्व-पूर्ण भाग होता है जिसमें अभीतक सद्भावना नहीं है, जो अभी दुर्भावनाकी सीमापर है और किसी भी मूल्यपर उस चीजको नहीं फेंकना चाहता जो वहां है। लेकिन अगर तुम सचेतन हो और केवल श्वास लो, कुछ अधिक नहीं, बस इतना ही, तो तुम चेतना, प्रकाश, समझ, शक्ति, प्रेम और बाकी चीजोंको सांसके साथ अंदर लोगे। और यह सब धरतीपर व्यर्थ हो रहा है, क्योंकि धरती उसे लेनेके लिये तैयार नहीं है। तो बस।

२३ सितम्बर, १९५३

"शरीरका हर स्थान किसी आंतरिक क्रियाका प्रतीक है; उसमें बहुत अधिक सूक्ष्म अनुरूपताएं हैं। लेकिन वह एक लंबा और जटिल विषय है और हम अभी इसमें नहीं प्रवेश कर सकते। शरीरमें जो विशेष स्थान रोगसे पीड़ित होता है वह आंतरिक असामंजस्यकी प्रकृतिका सूचक है। वह उद्गमकी ओर संकेत करता है, वह रोगके कारणका चिह्न है। वह उस प्रतिरोध-की प्रकृतिका भी सूचक है जो सारी सत्ताको समान द्रुत गतिसे आगे बढ़नेसे रोकता है। उससे उपचार और चिकित्साका भी पता लगता है। अगर तुम पूरी तरह समझ सको कि भूल कहां है, यदि यह पता लगा सको कि कौन-सी चीज ग्रहणशील नहीं है तो उस भागको खोलकर उसपर शक्ति और प्रकाश डालो। तब क्षण भरमें जो सामंजस्य बिगड़ गया था उसे फिर-से स्थापित किया जा सकेगा और रोग दूर हो जायगा।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (१६ जून)

शरीरका हर भाग किसी आंतरिक क्रियाका प्रतीक क्यों है?

क्योंकि सारा भौतिक जगत् वैश्व गतियोंका प्रतीक है। इस तरह हमारा शरीर हमारी आंतरिक क्रियाओंका प्रतीक है। सारा जगत्, सारा भौतिक जगत् एक प्रकारका स्फटिकीकरण है — यह मूर्तीकरण, स्फटिकीकरण है — विश्वके अन्य लोकोंकी क्रियाओंका। यह एक अंतिम रूप है, मानों किसी ऐसी चीजपर प्रक्षेपण है जो चित्रको रख सकती है, चित्रको स्थिर बना सकती है। अतः, हर बिंदुपर वही चीज है जो समस्त भौतिक विश्वमें है।

भौतिक भी एक स्तर या लोक है न?

हां, यह अंतिम परिणाम है। बढ़ती हुई भौतिकता होती है और एक घटती हुई भौतिकता होती है और यह भौतिक जगत् बीचमें है : यह मानों एक परदा है जिसपर सभी मध्यवर्ती स्पंदन प्रक्षिप्त होते हैं और सुरक्षित रहते हैं। परदेकी तरह ही — यह एक बिंब है, जो कुछ हो रहा है उस-का बिंब। हम इसे देखते हैं क्योंकि यह ऐसी चीज है जो की जा चुकी

है, ठोस चीज है, यह ऐसा है मानों तुम समस्त विश्वको शक्तिकी गतिके रूपमें देखो और शक्तिकी यह गति तबतक प्रक्षिप्त की जाती रहे जबतक उसे एक परदा न मिल जाय और उस परदेपर वह कोई बिंब न बना ले। परदेपर वह बिंब ही भौतिक जगत् है। वह केवल एक बिंब है। भौतिक जगत् जिसे हर एक एकमात्र वास्तविकता मानता है, एक बिंबमात्र है। जिन्हें हम अदृश्य लोक कहते हैं, यह वहां होनेवाली हर चीजका बिंब है। यह हमें इसलिये दिखायी देता है क्योंकि बीचमें एक परदा आ जाता है जो स्पन्दनोंको रोकता है, इस तरह बिंब पैदा करता है। अगर ऐसा परदा न होता तो स्पंदन आगे चलते चले जाते और कुछ भी दिखायी न देता। फिर भी सभी गतियोंका अस्तित्व तो रहता ही। लेकिन वे हमारे लिये अदृश्य होतीं क्योंकि स्पंदनोंको रोकनेवाला परदा न होता।

साधारण चेतनाके लिये केवल बिंब ही सत्य है। जो कुछ उसके पीछे होता है वह सब कम या ज्यादा संदिग्ध या संदेहात्मक होता है, लेकिन सत्य चेतनामें जो कुछ आगे या पीछे होता है वही सत्य है और जो बाहरी रूप दीखता है वह केवल बिंब है। अर्थात्, किसी ऐसी चीजका परदेपर प्रक्षेपण जो एकदम स्वतंत्र रूपसे अस्तित्व रखती है। तो हमारा शरीर बिंबोंके इस संग्रहमें एक छोटे-से टुकड़ेका प्रतिनिधि है जिसे प्रक्षिप्त किया गया है और यह ऐसा टुकड़ा है जो आंतरिक अवस्थाके उन सब स्पंदनोंको यथार्थ रूपमें प्रकट करता है जो इस छोटे-से बिंदुके, जो यह शरीर है, अनुरूप है।

पशुओंमें रोगका क्या कारण होता है?

मेरा ख्याल है कि जैसा मनुष्योंमें होता है, वैसे ही पशुओंमें भी जितने रोग हैं उतने ही कारण होते हैं। शायद ये मनोवैज्ञानिक गतियां होती हैं, क्योंकि पशुओंमें मनोवैज्ञानिक गतियां होती हैं। वे शायद संयोग हैं, क्योंकि संयोगोंका एक पूरा क्षेत्र है। वस्तुतः विद्वानोंका कहना है कि सभी रोग, यहांतक कि मृत्यु भी, संयोगसे होते हैं। यह साधारण अवस्था नहीं है। पशुओंके लिये यह बात हो सकती है और शायद यह मनोवैज्ञानिक स्थिति भी है।

जो पशु मनुष्यके साथ रहते हैं उनके लिये यह निश्चित तथ्य है। उन्होंने इस संसर्गसे पाया क्या, उन गरीब जीवोंने क्या पाया? वे मनुष्यकी तरह ज्यादा संवेदनशील और असंतुलित हो गये, परंतु उसकी बुद्धि नहीं मिली! उदाहरणके लिये, जानवरोंमें एक बहुत निश्चित सहज-बोध होता है। तुम

किसी गायको ऐसे खेतमें छोड़ दो जहां सब तरहकी अच्छी-बुरी घास पायी जाती है, कोई घास विषैली भी होती है। लेकिन गाय कभी बुरी या विषैली घासको छुएगी भी नहीं, कभी नहीं। वह अपनी जीभकी नोकसे अच्छी घास चुनती है और दूसरीको छोड़ देती है। लेकिन तुम घासकी कुट्टी काटकर अच्छी-बुरी सब मिला दो और नांदमें जलकर गायके सामने रख दो। वह सब कुछ खाकर अपने-आपको जहर दे लेगी। उसे एक प्रकारका विश्वास, अज्ञानमय विश्वास, होता है, कि वहां जो कुछ दिया जाता है वह अच्छा ही होता है, इस कारण वह अपना सहज-बोध खो देती है। अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पशु कभी जरूरतसे ज्यादा नहीं खाते। वे अपनी भूखके अनुसार खाते हैं और अगर कुछ खाद्य बचा हो और वे नहीं चाहते कि उसे दूसरे साफ कर जायं तो वे उसे छिपा देते हैं, गाड़ देते हैं, उसे बड़ी सावधानीसे छिपाते हैं ताकि जब उन्हें भूख लगे तो उसे पा सकें। लेकिन मनुष्यके साथ रहनेवाला जानवर इस सहज-बोधको खो बैठता है, सिर्फ यही नहीं कि उसे जो कुछ दिया जाय उसे चट कर जाता है, बल्कि उसकी पहुंचमें जो कुछ छूट जाय उसे भी खा जाता है। मैं कुछ समय दक्षिण फ्रांसके एक छोटे-से नगरमें रही थी। वहां एक पंसारी था जिसने बकरियां पाल रखी थीं। उनमेंसे एक बहुत लालची हो गयी थी। उसके पास शीरेका एक पीपा आया था, तुम उसे क्या कहते हो? शीरा या गुड़? उसने पीपा खोला, उसने ढक्कन खोला पर उसे बन्द करना भूल गया। पीपा वहां था और बकरी उधर घूम रही थी। बकरीने सोचा, यह खाने लायक अच्छी चीज होगी तभी उसकी पहुंचके अंदर छोड़ी गयी है। उसने खाना शुरू किया। उसका स्वाद सचमुच बहुत अच्छा लगा। उसका सहज-बोध तो जा चुका था। वह खाती गयी, खाती गयी, यहांतक कि अधिक खानेकी वजहसे सचमुच मर गयी। कोई जंगलका जानवर ऐसा कभी न करता। आदमीके संगके ये लाभ हैं।

कोई प्रश्न नहीं है?

तो हम इस विषयको छोड़ देंगे। ऐसा लगता है कि यह महिला[1] रोगों-में बहुत व्यस्त रहती थी।

आपने कहा कि यह भौतिक जगत् अदृश्य लोकोंका प्रक्षेपण है। तब फिर भागवत अंश इस भौतिक जगत्का रूपांतर करनेके

---

[1] जो मातृवाणी १९२९ के बारेमें प्रश्न पूछा करती थी।

लिये यहां क्यों आते हैं? वे उन अदृश्य लोकोंमें ही काम कर लें तो प्रश्नोपण अच्छा होगा।

यह सचमुच गंभीर प्रश्न है। तुम विश्वके बारेमें वह रूपक जानते हो। अपनी ही पूंछको काटता हुआ सांप? यह शाश्वतका, विश्वका प्रतीक माना जाता है। यह एक तथ्य है। सृष्टिमें एक प्रगतिशील अधिकाधिक स्थूल मूर्तिकरण है। लेकिन हम एक और रूपक ले सकते हैं। मैं एक सन्निकट रूपक ले रही हूं। विश्व एक चक्र बल्कि एक गोला है। (लेकिन समझानेकी आसानीके लिये चक्र मान लें।) सूक्ष्मतमसे स्थूलतमकी ओर उत्तरोत्तर अवरोहण होता है। लेकिन स्थूलतम सूक्ष्मतमके उद्गमको छूता है। अगर तुम इस रूपकको समझते हो तो भौतिकको बदलनेके लिये इतना घूमकर जानेकी जगह सीधी क्रिया करना कहीं अधिक सरल है, क्योंकि दोनों छोर मिलते हैं — सूक्ष्मतम और स्थूलतम एक-दूसरेको छूते हैं, क्योंकि यह गोला है। अतः वह सब करनेकी जगह (माताजी एक चक्र बनाती हैं), यह करना बहुत ज्यादा अच्छा है (माताजी चक्रके अत्यंत भौतिक भागको छूती हैं)। वस्तुतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे यही होता है। बाकी सब अपने-आप ही पीछे-पीछे आता रहेगा। अगर हो जाय (माताजी उसी अत्यंत भौतिक भागको छूती हैं), तो बाकी सब अपने-आप यथा-समय हो जायगा। और वह ठीक ऐसी बात नहीं है। ठीक-ठीक कामकी सुविधाके लिये सब कुछ एक ही जगह केंद्रित या मूर्त कर दिया गया है ताकि चीजोंको बदलनेके लिये अनंतमें फैलनेकी जगह ऐसे बिंदुपर कार्य किया जा सके जो समस्त विश्वके प्रतीकका काम देता है। और गुह्य दृष्टि-बिंदुसे धरती (जो ज्योतिषकी दृष्टिसे कुछ भी नहीं है, ज्योतिषकी दृष्टिसे गगनकी विशालतामें धरतीका जरा भी महत्त्व नहीं है, वह कोई दिलचस्प चीज नहीं है), लेकिन गुह्य दृष्टिसे और आध्यात्मिक दृष्टिसे धरती सारे विश्वका घन प्रतीक है। हल्की विशालतापर क्रिया करनेकी जगह, एक केंद्र-पर काम करना बहुत ज्यादा आसान है। काम करनेवाले सब लोग यह बात जानते हैं। हां, तो कामकी सुविधा और आवश्यकताकी दृष्टिसे समस्त विश्वको प्रतीक रूपमें धरती कहानेवाले एक बालूके कणमें केंद्रित करके घन रूप दे दिया गया है, इसलिये यह सबका प्रतीक है, उस सबका जिसे परिवर्तित करना है, जिसका रूपांतर करना है। जिस किसी चीजका परिवर्तन करना है वह **यहां** मौजूद है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि इस कार्यपर केंद्रित होकर, इसे **यहां** किया जाय तो बाकी सब अपने-आप होता जायगा, अन्यथा कहीं कोई अंत ही न आयेगा — कोई आशा न रहेगी।

और यही कारण है कि यह बिंदु इतना अधिक बुरा दीखता है। क्योंकि सारी चीज यहां एकाग्र है। यही बात विशेष रूपसे अच्छी भी हो सकती है। क्योंकि हमेशा दो होते हैं, दो विरोधी साथ होते हैं और हमेशा सबसे अच्छेका किनारा सबसे बुरेके साथ मिलता है या सबसे बुरेका किनारा सबसे अच्छेके साथ मिलता है। और यह इसपर निर्भर है कि तुम किस दिशासे देख रहे हो। लेकिन बुरे-से-बुरेके कारण ही तुम अच्छे-से-अच्छेको खोज सकते हो और अच्छे-से-अच्छेके कारण ही बुरे-से-बुरेका रूपांतर किया जा सकता है — दोनों एक-दूसरेपर क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं...। वह लेख बुलेटिनमें छपा था: "अशुभ व्यक्तित्व"।[1] हमेशा कहा जाता है कि सभी तारोंका एक अंधकारमय दूसरा रूप है और सभी ग्रहोंका एक ज्योतिर्मय दूसरा रूप है। गुह्य विधिसे कहा जाता है कि एक ज्योतिर्मय पृथ्वी है। यह सब ज्योतिर्मय पृथ्वीकी अनुभूति है। श्रीअरविंदने इस अनुभूतिकी व्याख्या की है।

कौन-सी अनुभूति?

---

[1] "तुम "अशुभ व्यक्तित्व" के बारेमें जो कहते हो वह मुझे बहुत मजेदार लगा, क्योंकि यह मेरे सतत अनुभवका उत्तर है कि जो व्यक्ति कामके लिये विशेष रूपसे संपन्न है उसके साथ हमेशा या प्रायः हमेशा — शायद तुम्हें इन चीजोंके बारेमें कठोर नियम नहीं बनाने चाहिये — एक ऐसी सत्ता लगी रहती है जो देखनेमें उसीका भाग लगती है, लेकिन जो, वह व्यक्ति कार्यमें जिस चीजका प्रतिनिधित्व करता है, उसका ठीक प्रतिवाद होती है। और अगर शुरूमें वह न भी हो, उसके व्यक्तित्वके साथ बंधी न हो, तो जैसे ही वह अपनी उपलब्धिके लिये कार्य शुरू करता है वैसे ही, इस प्रकारकी शक्ति उसके वातावरणमें घुस जाती है। मालूम होता है कि उसका काम है विरोध करना, रोड़े डालना, गलत परिस्थितियां पैदा करना, एक शब्दमें कहें तो उसने जो काम शुरू किया है उसकी सारी समस्याको उसके सामने लाखड़ा करना। ऐसा लगता है कि गुह्य मितव्ययताकी दृष्टिसे समस्याको सुलझानेका इसके सिवाय कोई और तरीका नहीं है कि पूर्व निर्दिष्ट यंत्र कठिनाइयोंको स्वयं अपनी कठिनाइयां बना ले। इससे बहुत-सी ऐसी बातें स्पष्ट हो जाती हैं जो ऊपरी तलपर बहुत घबरानेवाली प्रतीत होती हैं।"

—श्रीअरविंदके पत्र, सेंटिनरी वॉल्यूम २४, पृ० १६६०

यह मेरी एक अनुभूति है जिसके बारेमें मैंने श्रीअरविंदको लिखा था। उन्होंने मुझे बतलाया कि यह वैदिक कालकी अनुभूति है जो ज्योतिर्मय पृथ्वीमें हुई थी . . .। वह किसी दिन कहीं छपेगी।[1]

३० सितम्बर, १९५३

"मनका एक स्तर है जहां हर चीजकी स्मृति संचित है और हमेशा बनी रहती है। धरतीके जीवनकी सभी मानसिक क्रियाएं इस स्तरपर अंकित और स्मृत रहती हैं। जो लोग वहां जा सकते हैं और कष्ट उठानेकी परवाह करते हैं, वे उसमें जो चाहें पढ़ और सीख सकते हैं। इस क्षेत्रको भूलसे अति-मानसिक क्षेत्र न मान लेना चाहिये। और यहांतक पहुंचनेके लिये भी तुम्हें अपने भौतिक या दैहिक मनको नीरव करना होगा, तुम्हें अपने सभी संवेदनोंको एक ओर छोड़कर, अपनी साधारण मानसिक गति-विधिको बंद करके, वे चाहे कुछ क्यों न हों, अपने प्राणसे बाहर निकलना और शरीरकी ग्रासतासे मुक्त होना चाहिये। तभी, अगर तुम्हें इसके लिये प्रयास करने-में काफी रस है तो, तुम वहां पहुंच सकते हो, तुम उस क्षेत्रमें प्रवेश पाकर देख सकते हो और पृथ्वीकी स्मृतिमें जो लिखा है उसे पढ़ सकते हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

आपने कहा है कि जिस जगह पार्थिव जीवनकी सभी गति-विधियां अंकित और सुरक्षित हैं वहां जानेके लिये हमें भौतिक और दैहिक मनकी सभी गति-विधियोंको . . . नीरव करना होगा और सभी सामान्य मानसिक क्रियाओंको बंद करना होगा। अगर ये सब क्रियाएं बंद कर दी जायं तो क्या होगा? हमें सारे दिन कुछ-न-कुछ तो करना ही होता है।

---

[1] यह २६ नवंबर, १९२६ की अनुभूतिकी बात है। इसे 'श्रीमातृवाणी' खंड १, पृ० १८४ में देख सकते हैं।

नहीं, बस क्षण-भरके लिये। हमेशाके लिये नहीं।

मां, लेकिन अगर हम भूल जायं? कुछ काम करना है: दो बजे यह करना है, साढ़े दस बजे वह करना है, अगर हम भूल जायं तो . . .

नहीं, तुम समझे नहीं। उस जगह जानेके लिये, जाते समय तुम्हें अपने मनको पूरी तरह नीरव कर सकना चाहिये (और उन सब चीजोंको जिनका मैंने उल्लेख किया है), लेकिन बस, वहां जानेके लिये। उदाहरणके लिये, तुम निश्चय करते हो : "अब मैं धरतीके इतिहासका अमुक अध्याय पढ़ने जा रहा हूं," तब तुम आरामसे आराम-कुरसीपर लेट जाते हो और लोगों-से कह देते हो कि तुम्हें तंग न करें। तुम अपने अंदर प्रवेश करते हो और अपने मनको पूरी तरह चुप कर देते हो और उस स्थानपर अपने मानसिक दूत भेजते हो . . .। ज्यादा अच्छा यह है कि कोई हो जो तुम्हें वहां रास्ता दिखा सके, क्योंकि, अन्यथा तुम रास्ता भटककर कहीं और जा सकते हो! और तब तुम जाते हो। यह एक बड़े पुस्तकालय जैसी जगह है जिसमें बहुत-से छोटे-छोटे कमरे हैं। तुम्हें जिस तरहकी सूचना चाहिये उसके अनुसार कमरा खोल लो। तुम एक बटन दबाओ। वह खुल जाता है। उसके अंदर तुम एक खर्रा-सा पाओगे, एक मानसिक रचना जो तुम्हारे सामने चर्मपत्रकी तरह खुलता है और तुम पढ़ते हो और तुमने जो पढ़ा है उसे नोट करके, उस नयी जानकारीके साथ चुपके-से अपने शरीर-में वापस आ जाते हो। और तुम लिख सको तो तुमने जो देखा है उसे भौतिक रूपसे लिख लो और फिर उठकर पहलेकी तरह अपना जीवन जारी रखो . . .। इसमें तुम्हें दस मिनट लग सकते हैं, एक घंटा लग सकता है, आधा घंटा भी लग सकता है। यह तुम्हारी क्षमतापर निर्भर है। लेकिन जैसा कि मैंने कहा, रास्ता जानना जरूरी है ताकि तुम भूल न कर बैठो।

तो हम किताबें पढ़नेकी जगह वहीं क्यों नहीं करते?

क्योंकि बहुत कम लोग ही यह कर सकेंगे जब कि बहुत-से किताबें पढ़ सकते हैं (ऐसे लोग अधिक नहीं हैं जो उन्हें समझते हों, पर बहुत-से पढ़ सकते हैं!)। और यह पुस्तक समझनेसे भी ज्यादा कठिन है।

और अगर वह बच्चोंको बहुत छोटी अवस्थामें सिखाया जाय ?

यह संभव है कि लाभदायक रूपमें वह पुस्तकें पढ़नेका स्थान ले ले !

धरतीपर जो कुछ हुआ है — धरतीके आरंभसे अबतक, मनकी सभी गति-विधियां, सब-की-सब, वहां अंकित हैं। तो जब तुम्हें किसी चीजके बारेमें किसी ठीक सूचनाकी जरूरत हो तो बस वहां चले जाओ। अपना रास्ता ढूंढ लो। वह बड़ी विचित्र जगह है। वह मानों छोटे-छोटे कोषाणुओंसे बनी है। वे मानों छोटे-छोटे खानोंसे बनी हैं। और, उन खानों-का अनुसरण करते हुए किसी प्रकार... कैसे कहा जाय ? इस प्रकारके पुस्तकालय हैं। मैंने सिनेमामें न्यू यॉर्कके एक पुस्तकालयका चित्र देखा था। यह कुछ-कुछ उस तरहसे व्यवस्थित है। कुछ उसी तरहकी व्यवस्था है। इसी कारण मुझे उसमें मजा आया। लेकिन किताबोंकी जगह वहां छोटे-छोटे चौकोर हैं। वे सब बंद हैं। तुम उंगली रखो, एक बटन दबाओ और वे खुल जाते हैं, और तब एक खरी-सा निकलता है। तुम उसे खोलकर पढ़ सकते हो — जो कुछ भी उस विषयपर लिखा गया है। ऐसे लाखों, करोड़ों, अरबों हैं। और सौभाग्यवश मनमें तुम नीचे जा सकते हो, ऊपर जा सकते हो, एकदम चोटीतक पहुंच सकते हो। तुम्हें सीढ़ीकी जरूरत नहीं होती।

उसे कैसे पढ़ते हैं ? जैसे पुस्तक पढ़ी जाती है ?

हां, यह एक प्रकारका मानसिक बोध होता है। यह उसके साथ मेल खाता है। तुम सूचनाके बारेमें सारा वर्णन बहुत अच्छी तरह पा सकते हो (यह इसपर निर्भर है कि वह क्या है), कभी चित्र होते हैं; ऐसा लगता है मानों कोई चित्र सुरक्षित रखा गया हो। कभी कहानी होती है, कभी बस एक प्रश्नका उत्तर होता है। मानसिक रूपमें अंकित सभी संभव और कल्पनीय चीजें वहां हैं। तुम बहुत-से संशोधन भी पा सकते हो (ठीक वे तथ्य जो पुस्तकोंमें दिये गये हैं, पर सच्चे नहीं हैं)। और तुम्हें चढ़ने या चलनेकी जरूरत नहीं होती। तुम बिलकुल सरल रीतिसे एकाग्र मान-सिक चेतनाके जैसी कोई चीज भेजते हो और वह आगे बढ़कर उस चीज-को छू लेती है। लेकिन मुझे भय है कि यदि तुम यह चीज अपने-आपको मानसिक क्रिया-कलापसे पूरी तरह अलग किये बिना करोगे तो केवल वही देखोगे जो तुम्हारे सिरमें है। चीजको उस रूपमें देखनेकी जगह, जैसी कि वह है, शायद तुम अपने ही दिमागमें टहलते हो और वही देखते हो

जो वहां है — यह खतरा है। तुम्हें अपने सिरको पूरी तरह नीरव कर देना चाहिये और पूरी तरह अनासक्त होना चाहिये, (उदाहरणके लिये, जब तुम किसी समस्याका समाधान खोज रहे हो), तुम्हारे सिरमें पहले से ही वह समाधान भी न हो जो तुम्हें ठीक लगता है या जो सबसे अच्छा या लाभदायक दीखता है। वह वहां नहीं होना चाहिये। तुम्हें एकदम कोरे कागजकी तरह हो जाना चाहिये, जिसपर कुछ नहीं लिखा। और तुम इस तरह चलो, सत्य जाननेके लिये बहुत सच्ची अभीप्साके साथ चलो, पहलेसे ही यह न मान लो कि ऐसा होगा या वैसा होगा; वरना तुम अपनी ही रचना देखोगे। सबसे पहली शर्त है कि अवलोकनके समय सिर बिल-कुल नीरव हो।

और ज्यादा निश्चित होनेके लिये (यहां तुम्हें पूरी तरह प्रशिक्षित होना चाहिये, तुम्हें बहुत अच्छी शिक्षा मिली होनी चाहिये), ताकि तुम, जो ज्ञान मिले उसे किसी तरह बिगाड़े बिना स्पष्ट रूपसे प्रस्तुत कर सको, ज्यादा अच्छा यह है कि तुम जो देख रहे हो और जो पढ़ रहे हो (हम "पढ़ना" कहते हैं, पर वास्तवमें वह बोध पाना है), तुम्हें जो बोध हो रहा है उसे बोलते जाओ और कोई दूसरा लिखता जाय...। मैं दोहराती हूं: तुम आराम-कुरसीपर चुपचाप लेट जाओ, बिना हिले-डुले, एकदम चुप और अपने दिमागसे एक संदेशवाहक भेजो। अब यहां, कोई तुम्हारे पास बैठा हो और जब तुम उस स्थानपर पहुंच जाओ और दरवाजा खोलकर पांडुलिपि निकालो (या तुम उसे जो नाम देना चाहो), तो तुम केवल आंखोंसे पढ़नेकी जगह, जो अनुपस्थित है, जो देखते हो उसका वर्णन करना शुरू करो। तुम जोरसे बोलनेकी आदत डाल लो। तुम जैसे-जैसे वहां, ऊपर, देखो, वैसे-वैसे यहां बोलते जाओ। तुम उन बड़े कमरोंमें अपनी यात्राका ठीक-ठीक वर्णन करो और यह बताओ कि तुम वहां कैसे पहुंचे और कैसे उस चीजका छोटा-सा निशान वह संकेत था जिसे तुम देखना चाहते थे। तब तुम उस छोटी-सी जगहको खोलकर, खर्रा निकालकर पढ़ना शुरू करो। तुम उसे जोरसे पढ़ो। जो आदमी वहां है, जो तुम्हारे पास बैठा है वह जो कुछ तुम पढ़ रहे हो उसे लिखता जाता है। इस प्रकार यह खतरा नहीं रहता कि तुम्हारे लौटनेपर चीज बदल जायगी। तुम्हारी सत्ताका जो अंश उस क्षण वहां होता है उसके लिये यह अनुभूति बहुत स्पष्ट और यथार्थ होती है, परंतु जब तुम भौतिक जगत्‌में, जैसा कि वह है, वापिस आते हो तो प्रायः हमेशा ही कुछ-न-कुछ बच निकलता है और यह तब नहीं निकल सकता जब तुम उस समय बोलते हो, जब तुम कार्यरत हो...। इस सारेका मतलब है, बहुत-सी शर्तें पूरी करनी होंगी। यह पुस्तकालयसे

पुस्तक लेकर पढ़नेके जैसा नहीं है। यह हर एककी पहुंचके अंदर है। वह पाना जरा ज्यादा मुश्किल है।

सापेक्षताका सिद्धांत क्या है?[1]

(माताजी एक गणितज्ञ शिष्यकी ओर मुड़ती हैं) पवित्र! तुम इन बच्चों-को समझा दोगे?

पवित्र: एक वाक्यमें कहें तो इसका अर्थ है कि विश्वका वर्णन हर देखनेवालेके साथ बदलता है।

बस यही! तो फिर इस खोजके बारेमें इतना हो-हल्ला क्यों है?

पवित्र: मां, यह एक क्रांति है।

---

[1] "यह भले सामान्य रूपमें एक तरहसे सत्य हो कि योगी सब कुछ जान सकता है और अपनी चेतना और अपने दृष्टि-क्षेत्रसे सब प्रश्नोंके उत्तर दे सकता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसा कोई, किसी प्रकारका प्रश्न न होगा जिसका वह उत्तर न देगा या न दे सकेगा। जिस योगीको प्रत्यक्ष ज्ञान हो, वस्तुओंके सत्यका प्रत्यक्ष ज्ञान हो वह शायद पूरी तरहसे मनुष्यकी मानसिक रचनाओंके क्षेत्रके प्रश्नोंका उत्तर देनेकी परवाह न करे या उनका उत्तर देना उसे कठिन लगे। हो सकता है कि वह तुम्हारी की हुई ऐसी समस्याओं और कठिनाइयोंको हल करना न चाहे जो केवल वस्तुओंके आभास या उनके बाहरी रूपसे संबंध रखती हैं। उसके ज्ञानकी क्रिया मनमें नहीं होती। अगर तुम उससे कुछ मूर्खता-भरे मानसिक प्रकारके प्रश्न करो तो संभवतः वह उत्तर न दे। यह बहुत प्रचलित धारणा है कि तुम उससे कोई भी अज्ञान-भरा प्रश्न कर सकते हो मानों वह बड़ा स्कूल-मास्टर हो, या उससे किसी तरहकी भी भूत, भविष्य, वर्तमान-की जानकारी मांग सकते हो और वह उत्तर देनेके लिये बाधित है, यह एक मूर्खतापूर्ण विचार है। यह ऐसी ही असंगत बात है जैसी किसी आध्यात्मिक व्यक्तिसे करतबों और चमत्कारोंकी आशा करना जो गंवारु बाहरी मनको संतुष्ट करे और उसे मुंह बाए खड़ा कर दे।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

यह एक क्रांति है? यह कि तुम जो देखते हो यह देखनेवालेपर निर्भर है? ओह! अच्छा...

पवित्र : भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे हम जिस चीजको नापते हैं वह भौतिक जगत्पर निर्भर है।

भौतिक विज्ञान, हां। विश्वको मापनेके लिये हर एक अपने ही तरीकेसे मापता है।

पवित्र : लेकिन फिर, इसका पूरक है — यह भी खोज हुई है कि इसके पीछे कुछ और है जो अवलोकन करनेवालेसे स्वतंत्र है।

आहा! उन्होंने यह "खोज" कर ली? (हंसी) एक और भी बड़ी क्रांति! ...(जोरकी हंसी) अच्छा है।

मां, आपने कहा है[1] कि मन और अतिमनके बीच बहुत-से मध्यवर्ती स्तर हैं और अगर कोई साधारण आदमी इनमेंसे किसी मध्यवर्ती स्तरके संपर्कमें आये तो चुंधिया जायगा। तो फिर जब मनुष्य इतनी अविकसित अवस्थामें है तो हम मध्यवर्ती स्तरोंके अवतरणकी जगह अतिमनके अवतरणकी बात क्यों करते हैं?

एक बहुत ही सरल-से कारणसे, क्योंकि अभीतक सारा भौतिक और दैहिक जगत्, सारी धरती (हम धरतीको ही लें), श्रीअरविन्द जिसे अधिमानस कहते हैं, उसीकी शक्तियों और चेतनाओंद्वारा शासित रही है। लोग जिसे

---

[1] "मनुष्य बहुत आसानीसे यह माननेके लिये तैयार रहते हैं कि वे बहुत दिव्य क्षेत्रोंमें जा पहुंचे हैं जब कि सचमुच वे बस साधारण स्तरसे, औसतसे जरा ही ऊपर उठते हैं। साधारण मानव मन और अतिमनके बीच बहुत-सी श्रेणियां हैं, मध्यस्थ स्तर हैं। अगर कोई साधारण मनुष्य इन मध्यस्थ स्तरोंमेंसे किसीके संपर्कमें आ जाय तो वह चुंधिया जायगा, अंधा हो जायगा। वह विशालताके भावके बोझसे कुचला जायगा या अपना संतुलन खो बैठेगा, लेकिन फिर भी यह अतिमन नहीं है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

भगवान् कहते हैं वह भी अधिमानससे आनेवाली शक्ति, वहींका बल है। और सारा संसार अधिमानसके राज्यके अधीन था। वहांतक पहुंचनेके लिये व्यक्तिको बहुत-से मध्यवर्ती स्तरोंसे गुजरना पड़ता है और बहुत कम लोग चुंधियाए बिना वहांतक पहुंच सकते हैं। लेकिन श्रीअरविन्दने कहा है कि अब अधिमानसके "राज्य"का समय खतम होनेवाला है और उसकी जगह अतिमनका शासन आयेगा। वे सब जिन्हें आध्यात्मिक अनुभव हुए हैं, जिन्होंने भगवान्‌की खोज कर ली है और उनके साथ एक हो गये हैं, यह जानते हैं कि वह क्या है। लेकिन श्रीअरविन्द कहते हैं कि अधिमानसके परे कुछ है और अब इस कुछकी बारी है कि आकर धरतीपर शासन करे, यहां अभिव्यक्त हो और धरतीपर राज्य करे। इसलिये, अधिमानसके बारेमें बात करनेकी कोई जरूरत नहीं, क्योंकि बहुत-से लोग उसके बारेमें कह चुके हैं और उसकी अनुभूति पा चुके हैं, जब कि यह एक नयी चीज है जो अपने-आपको एक नये तरीकेसे अभिव्यक्त करनेवाली है और पहले किसीको इसका भान न था। बस, इसीलिये। पुराने विवरण—ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो इन चीजोंको अनुभव कर चुके हैं या उनका वर्णन कर चुके हैं; इस विषयपर लिखी गयी पुस्तकोंकी भी कमी नहीं है। जो बातें दूसरे कह चुके हैं उन्हें ही फिरसे दोहरानेकी जरूरत नहीं है। श्रीअरविन्द कुछ नयी बात कहने आये थे। और ठीक इसी कारण कि लोग उन अनुभूतियोंसे बाहर नहीं निकल पाते जिन्हें वे जान चुके हैं या जिनके बारेमें वे सुन चुके हैं, लोग इस 'शक्ति'को, जिसे श्रीअरविन्द अतिमन कहते हैं, अपनी मध्यवर्ती स्तरोंकी, जिसमें अधिमन भी आ जाता है, अनुभूतियोंके साथ एक करनेकी कोशिश करते हैं। क्योंकि वे यह सोच नहीं सकते कि कोई और चीज हो सकती है...। श्रीअरविन्द हमेशा कहते थे कि यह योग वहांसे शुरू होता है जहां दूसरे योग समाप्त होते हैं, कि इस योगकी उपलब्धिके लिये सबसे पहले यह जरूरी है कि उस अंतिम सीमातक पहुंचा जाय जिसे पुराने योग पा चुके थे, अर्थात्, भगवान्‌का बोध, ऐक्य और भगवान्‌के साथ तादात्म्य। लेकिन श्रीअरविन्द कहते हैं कि वह भगवान् अधिमनके भगवान् हैं जो मानव चेतनाकी दृष्टिसे पहले ही अचिंत्य हैं, क्योंकि वहां पहुंचनेके लिये भी व्यक्तिको बहुत-से स्तरोंसे गुजरना पड़ता है और इन स्तरोंपर आदमी चुंधिया जाता है।

प्राणकी ऐसी सत्ताएं हैं, यदि वे मनुष्योंके सामने प्रकट हों, या अगर ठीक-ठीक कहा जाय, जब कभी वे मनुष्योंके सामने प्रकट हुई हैं, मनुष्योंने उन्हें हमेशा परम प्रभु माना है — इन प्राणिक सत्ताओंको ! अगर तुम चाहो तो हम उसे छद्मवेश कह सकते हैं, लेकिन वह बहुत सफल छद्मवेश

है क्योंकि जिन्होंने उसे देखा उन्हें पूरा, पक्का विश्वास हो गया कि उन्होंने परम प्रभुको देखा है। और फिर भी, ये प्राणिक सत्ताएं थीं। और अधिमनकी ये सत्ताएं, अधिमनके ये देवता हमारी मानवजातिकी तुलनामें महान् सत्ताएं हैं। जब मनुष्य इनके संपर्कमें आते हैं तो सचमुच चकरा जाते हैं।

लेकिन एक प्रकारकी भागवत कृपा है जो हमारे लिये दूसरोंके अनुभवसे लाभ उठाना संभव बनाती है। यह भौतिक विज्ञान सिखानेकी तरह ही है। यदि प्रत्येक वैज्ञानिकको नया शोध करनेसे पहले भूतकालके परीक्षणोंको फिरसे करना पड़ता, जो कुछ पहले खोजा जा चुका है उसे नये सिरेसे दोहराना होता तो इसीमें सारा जीवन बीत जाता और नये आविष्कारके लिये समय ही न बचता! अब हमें वह सब करनेकी जरूरत नहीं होती: हम एक किताब खोलकर परिणाम जान सकते हैं और वहांसे आरंभ करके आगे चल सकते हैं। हां, तो श्रीअरविन्द भी वही करना चाहते थे। वे तुम्हें बतलाते हैं कि दूसरोंने जो पाया है — उन्होंने जो परीक्षण किये हैं और उनके जो परिणाम आये हैं — उन्हें तुम कहां पा सकते हो, तुम्हारी स्थिति कहां है, ऐतिहासिक दृष्टिसे जगत्के आध्यात्मिक इतिहासमें तुम कहां खड़े हो। और तुम्हें वहांसे लेकर, तुम्हारे लिये नींव पक्की करके वे तुम्हें पहाड़के ऊपर चढ़ाते हैं।

तो, आश्रममें केवल ऐसे लोग ही होने चाहिये जो अधिमनके स्तरतक पहुंच चुके हैं। उनकी जगह...

मैं उन लोगोंकी बात नहीं करना चाहती जो यहां शुरूमें थे, वे क्या जानते थे और क्या नहीं जानते थे और उनकी क्या अनुभूतियां थीं। लेकिन तुम सब, मेरे बच्चो, तुम यहां किस उम्रमें आये थे? वह अधिमन पानेकी अवस्था नहीं थी!

अगर आपके चारों ओर, उदाहरणके लिये, विवेकानंद जैसे लोग होते तो आपका काम ज्यादा आसान होता, है न? हम जैसे अपरिष्कृत लोगोंकी जगह? ... (हंसी)

संभवतः वे ज्यादा दुर्दान्त होते! ... क्योंकि जिसे कुछ सिद्धि प्राप्त हो चुकी है उसे विश्वास दिलाना सबसे कठिन होता है। उसे विश्वास होता है कि वह सब प्रगतिसे ऊपर है।

आवश्यक नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि जिसे कुछ अनुभूति हो वह ज्यादा आगे बढ़ा हुआ हो। उसके अंदर सरलता और विनयका तथा सुनम्यताका अभाव होता है जो इस तथ्यसे आती है कि व्यक्ति पूरी तरह विकसित नहीं है। आदमी जैसे-जैसे बढ़ता है वैसे-वैसे दिमागमें कोई चीज स्फटिक बनने लगती है और यदि तुम बहुत अधिक प्रयास न करो तो वह ज्यादा-ज्यादा स्थिर होती जाती है और अंतमें पथरा जाती है। साधारणतः यही होता है, विशेष रूपसे उन लोगोंके साथ जिन्होंने किसी उपलब्धिके लिये कोशिश की है और उसमें सफलता पायी है, या जो यह विश्वास करने लगे हैं कि वे लक्ष्यतक जा पहुंचे हैं। बहरहाल, वह उनका निजी लक्ष्य था। वे वहां जा पहुंचे, उन्होंने उसे प्राप्त कर लिया। यह हो गया, वहां वे रहते हैं, वहां बस जाते हैं, पूरी तरह बस जाते हैं और कहते हैं: "बस, यही है।" वे और कुछ नहीं करते। उसके बाद वे चाहे दस वर्ष, बीस वर्ष, तीस वर्ष जीते रहें, पर वे जरा भी न हिलेंगे। वे वहां हैं, वे वहीं रहेंगे। इन लोगोंमें उस द्रव्यके लोचका एकदम अभाव होता है जो आगे बढ़नेके लिये, प्रगति करनेके लिये जरूरी है। वे फंस जाते हैं, वे संग्रहालयमें दिखाये जानेके लिये बड़ी अच्छी चीजें हैं, काम करनेके लिये नहीं। वे ऐसे बहुत अच्छे नमूने हैं जिनसे यह मालूम होता है कि क्या किया जा सकता है, पर वे और कुछ करनेके लिये उपादान नहीं हैं। अपने लिये, मैं स्वीकार करती हूं कि मैं अपने कामके लिये किसी ऐसेको ज्यादा पसंद करूंगी जो बहुत कम जानता है, जिसने बहुत ज्यादा परिश्रम नहीं किया, परंतु जिसमें बहुत अभीप्सा है, बहुत सद्भावना है, जो अपने अंदर इस ज्वालाका, आगे बढ़नेकी आवश्यकताका अनुभव करता है। चाहे वह बहुत कम जानता हो, चाहे उसने उपलब्ध और भी कम किया हो, लेकिन अगर उसके अंदर यह है तो वह बहुत अच्छा उपादान है जिसके साथ बहुत कुछ किया जा सकता है, बहुत आगे जाना संभव है। तुम्हें रास्ता मालूम होना चाहिये (यहां भी वही बात है जो तुम्हारे पुस्तकालयके लिये है), जानेके लिये तुम्हें रास्ता मालूम होना चाहिये। हां, साधारण जीवनमें जब तुम्हें पहाड़पर चढ़ना हो या किसी अनजान देशमें जाना हो तो तुम किसी ऐसे आदमीको खोजते हो जो वहां हो आया हो, जो मार्ग-दर्शक हो। तुम उससे रास्ता दिखानेके लिये कहते हो। वही चीज है। अगर तुम पथ-प्रदर्शकका अनुसरण करो तो तुम उस आदमीकी अपेक्षा बहुत ज्यादा तेज जा सकते हो जिसने प्रयास तो बहुत किया है, अपना ही रास्ता खोजा है, जिसे अपने ऊपर काफी गर्व है, जिसे यह लगता है कि वह लक्ष्यतक आ पहुंचा, उसने जो ध्येय चुना था वहांतक

अंतिम रूपसे आ पहुंचा — और वह रुक जाता है, वहीं बस जाता है और वहांसे हिलता भी नहीं।

स्वभावतः, शुरूमें यहां बच्चे नहीं थे और बच्चे लिये भी नहीं जाते थे। सभी बच्चे अस्वीकार कर दिये जाते थे। युद्धके बाद ही बच्चे लिये गये। लेकिन मुझे इसका पछतावा नहीं है कि उन्हें स्वीकार किया गया। मेरा ख्याल है कि उन बड़ोंकी अपेक्षा जो समझते हैं कि उन्हें सब कुछ आता है, भविष्यके लिये उन बच्चोंमें बहुत ज्यादा सामग्री है जो कुछ नहीं जानते ...। मुझे पता नहीं कि तुम्हें मूर्ति-निर्माणका कुछ परिचय है या नहीं, पर मूर्ति बनानेके लिये तुम्हें मिट्टी लेनी होती है, उसे पानीसे भिगोना होता है। मिट्टी बहुत बारीक पिसी होनी चाहिये और उसमें पानी मिलाकर अच्छी तरह पिट्ठी-सी बना लेनी चाहिये। तुम्हें उसे हमेशा गीला रखना होता है तब तुम उसमेंसे मूर्ति या कुछ और जो बनाना चाहो बना सकते हो। जब वह तैयार हो जाय तो तुम उसे भट्टीमें जलाते हो ताकि वह हिले भी नहीं। और उसके बाद — वस्तुतः, उसके बाद — वह इधर-उधर नहीं हो सकती। अगर तुम उसमें कुछ बदलना चाहो तो उसे तोड़कर दूसरी मूर्ति बनानी होगी। वरना वह जैसी है, उस अवस्थामें उसमें लोच नहीं रहता, वह कठोर और पत्थर जैसी सख्त हो जाती है। जीवनमें भी कुछ ऐसी चीज होती है। तुम्हें कुछ चीज प्राप्त करके स्फटिक या पत्थर बनकर गतिहीन न हो जाना चाहिये। अन्यथा तुम्हें उसे तोड़कर टुकड़े-टुकड़े करना होगा, वरना फिर उसके साथ तुम कुछ भी नहीं कर सकते।

जबतक व्यक्ति मिट्टीकी तरह बहुत नरम, बहुत लचीला, अभीतक अनगढ़ हो, उसे पता न हो कि वह गढ़ा जा रहा है, तबतक उससे कुछ किया जा सकता है। जबतक तुम बालक बने रहो...। यह एक आनंदमय अवस्था है। मैं कल कह रही थी। बच्चोंमें बस एक विचार होता है — बस, बड़ा बननेका, लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम कि बड़े होकर वे अपना तीन-चौथाई मूल्य खो देंगे। उनका मूल्य ऐसी चीज होनेमें ही है जिसे विकसित किया जा सकता है, जिसे रूप दिया जा सकता है जो लचीला, प्रगतिशील है, जिसे प्रगति करनेके लिये टुकड़े करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसे लोग हैं जो पहाड़का पूरा चक्कर लगानेके लिये बाधित होते हैं। इस तरह, तलहटीसे चोटीतक पहुंचनेमें उन्हें पूरा जीवन लग जाता है। जब कि दूसरे ऐसे होते हैं जो रास्ता जानते हैं, छोटे-से-छोटा पथ जानते हैं जिससे होकर सीधा चोटीतक पहुंचा जा सकता है। और एक बार ऊपर पहुंच जायं तो भी वे यौवन और ऊर्जासे भरे रहते हैं और वहां क्षितिज

और अगले पहाड़को देख सकते हैं। इसके विपरीत, दूसरोंको इसका भान रहता है कि उन्होंने गोल-गोल घूमकर और चोटीतक पहुंचनेमें सारा जीवन लगाकर काफी काम कर लिया। लेकिन जहांतक तुम्हारा प्रश्न है, मेरे बच्चो, यहां यह प्रयास किया जा रहा है कि तुम्हें एकदम तलीसे लेकर सबसे छोटे रास्तेसे रज्जु-रेल द्वारा सीधा चोटीपर पहुंचा दिया जाय और जब तुम चोटीपर पहुंचोगे तो तुम्हें अपने सामनेके खुले मैदानोंका दृश्य दिखायी देगा और तुम चुनाव कर सकोगे कि तुम किस पहाड़पर चढ़ना चाहते हो।

बहरहाल, बच्चे न बने रहनेकी जल्दी न करो! जहांतक हो सके, जितने अधिक कालके लिये हो सके, जीवन-भर बालक ही बना रहना चाहिये। सुखी रहो, मग्न रहो, बालक होनेमें ही संतुष्ट रहो और बालक — आकार ग्रहण करनेके लिये लोचदार द्रव्य — बने रहो। तो बस अब।

क्या जिसने पहले ही कुछ प्रगति कर ली है उसे आप नहीं बदल सकतीं? क्या उन लोगोंको नहीं बदला जा सकता जो बूढ़े हो रहे हैं?

यह किया जा सकता है, किया जा सकता है। यह किया जा रहा है। यह किया जा सकता है, परंतु यह बहुत अधिक कठिन है और जितना अधिक उन्हें विश्वास हो कि उन्होंने कुछ पा लिया है उतना ही ज्यादा कठिन है।

यह किया जा सकता है, यह किया गया है, पर यह है बहुत अधिक कठिन और कभी-कभी इसमें अधिक समय लगता है।

युद्धसे पहले बच्चोंको क्यों नहीं लिया जाता था?

ओह! मेरे बच्चो, यह बहुत सरल है। क्योंकि जहां कहीं बच्चे हों वहां अधिक समय तुम्हें उन्हींके साथ लगे रहना पड़ता है। बच्चे बहुत आकर्षक जीव होते हैं। उनके लिये हर चीजकी व्यवस्था करनी पड़ती है। उनके कुशल-क्षेमकी दृष्टिसे हर चीजकी व्यवस्था करनी पड़ती है और जीवनका सारा पहलू ही बदल जाता है। बच्चे सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होते हैं। जब बच्चे हों, हर चीज उन्हींके चारों ओर घूमती है। आश्रम-का सारा संगठन ही बदल गया है। शुरूमें एक प्रकारकी तपस्या थी जिन्हें बच्चोंपर नहीं लादा जा सकता। जीवनकी कई सरलताएं और

तपस्याएं ऐसी हैं जिन्हें बड़ोंपर लगाया जा सकता है, उनसे कहा जाता है: "इसे ले लो या छोड़ दो। अगर तुम नहीं सह सकते या तुम्हें यह पसंद नहीं है तो तुम जा सकते हो। ऐसा होना चाहिये। अगर तुम यह नहीं चाहते तो तुम यहांसे जा सकते हो, दरवाजा हमेशा खुला है।" परंतु एक बच्चेके साथ...। तुम्हें बच्चेसे किसी ऐसी चीज-की मांग करनेका क्या अधिकार है जिसका उसकी वृद्धिके साथ सामान्य संबंध नहीं है? बच्चोंको चुनाव करनेसे पहले थोड़ी-बहुत परिपक्वतातक तो पहुंचना चाहिये। उनके अंदर चुनावकी क्षमता आनेसे पहले तुम उन्हें कोई चीज करनेके लिये बाधित नहीं कर सकते। तुम्हें बिलकुल सामान्य रूपसे उन्हें वह सब देना चाहिये जिसकी उन्हें आवश्यकता हो और इससे सारा जीवन ही पूरी तरह बदल जाता है। मैं यह बात भली-भांति जानती थी। मुझे पहले ही अनुभव था कि अकेले लोगोंका या अकेले लोगोंके दलका जीवन कैसा होता है, या वह जीवन कैसा होता है जिसमें बच्चोंको प्रवेश मिल जाय। जबतक किसी व्यक्तिको चुनाव करनेकी आजादी न हो तबतक तुम उससे कोई मांग नहीं कर सकते और जबतक व्यक्तिका निर्माण न हो जाय, जबतक उसने अमुक परिपक्वता नहीं पा ली तबतक तुम उसे चुनाव करनेके लिये नहीं कह सकते। यह परिपक्वता पाकर ही व्यक्ति चुनाव करता है। और बच्चे यहां अपने-आप नहीं आये हैं। तुममेंसे अधिकतर जब यहां आये थे तो एक बित्ते-भरसे अधिक नहीं थे — जब तुम यहां आये तो कितने वर्षके थे?... उनसे यह नहीं कहा जा सकता: "तुमने यह चुनाव किया है, या तो इसे लो या छोड़ जाओ। या तो यह करो या चले जाओ।" उन्हें यहां लाया गया है इसलिये उन्हें जिस चीजकी जरूरत हो वह देना हमारा कर्तव्य है, और बच्चोंकी जरूरतें वही नहीं होतीं जो बड़ोंकी होती हैं। यह बहुत ज्यादा पेचीदा है।

अब चीजें और तरहकी हैं। अब लोगोंसे यह नहीं कहा जाता: "तुम यहां योग करनेके लिये आ रहे हो।" उनसे कहा जाता है: "तुम उन परिस्थितियोंको जाननेकी कोशिश करोगे जिनमें धरतीका जीवन ज्यादा अच्छा बनाया जा सके।" अतः लोग आते हैं और अध्ययन करते हैं। कोई यह समझता है कि वह जानता है कि उसे क्या सीखना है तो वह चला जाता है। यह वही चीज नहीं है। और यह वही स्थिति नहीं है जिसमें आदमी अपने भौतिक जीवनमें भगवान्‌की प्राप्ति जैसे एक निश्चित और ऐकांतिक लक्ष्यको लेकर आता है और उसके लिये इसे छोड़कर और किसी चीजका कोई महत्त्व ही नहीं होता। चुननेसे पहले तुम्हें उन

तत्त्वोंका जरा-सा परिचय तो होना ही चाहिये जिनमेंसे चुनाव करना है। और इसके लिये तुम्हारे अंदर कुछ आंतरिक रचना, कुछ प्रशिक्षण होना चाहिये। और निश्चय ही जब तुम पांच वर्षके होते हो, तो तुम्हें यह प्राप्त नहीं होता, कुछ अपवाद होते हैं। तुममेंसे कुछ (तुम जितना मान सकते हो उससे ज्यादा) ऐसे हैं जो भली-भांति जानते थे कि वे यहां क्यों आये थे, यद्यपि वे उन्हें शब्दोंमें नहीं रख सकते थे। वे तीव्रताके साथ उसका अनुभव करते थे। और जब उनके मां-बापने उन्हें ले जानेकी कोशिश की तो उन्होंने बहुत जोरसे विरोध किया और कहा: "नहीं, नहीं, हम यहीं रहना चाहते हैं।" और यह पांच वर्षकी अवस्थामें हुआ, जब वे अपने दिमागमें इसका कोई कारण न जानते थे, क्योंकि मस्तिष्कने अभौतिक ठीक रूप नहीं लिया था। लेकिन चैत्य चेतना तो थी ही और वे अनुभव कर सकते थे। ये उन बच्चोंकी अपेक्षा जिनका तीन-चौथाई मस्तिष्क सामान्य विद्यालयोंकी शिक्षासे भोथरा हो गया है, जो यहां पूरे विश्वासके साथ आते हैं कि वे बहुत कुछ जानते हैं और वे जीवनसे भली-भांति परिचित है, ऐसोंकी अपेक्षा इन बच्चोंका दिमाग अनंत गुने श्रेष्ठ द्रव्यसे बना है। उनका चरित्र गठित हो चुका होता है और वे बहुत सारी बुरी आदतें प्राप्त कर चुकते हैं। तो यह लो।

क्या याद रखना और स्मृति एक ही चीज है?

आवश्यक नहीं है। स्मरण-शक्ति एक मानसिक तथ्य है, शुद्ध रूपसे मानसिक। याद रखना चेतनाका तथ्य हो सकता है। आदमी अपनी सत्ताके सभी क्षेत्रोंमें याद रख सकता है। तुम प्राणमें याद रख सकते हो, शरीरमें याद रख सकते हो, चैत्यमें याद रख सकते हो और मनमें भी याद रख सकते हो, परंतु स्मृति शुद्ध रूपसे मानसिक तथ्य है। स्मृति, पहले तो विकृत हो सकती है, मिट भी सकती है। आदमी भूल सकता है। चेतनाका तथ्य बहुत यथार्थ होता है। अगर तुम चेतनाको उसी स्थितिमें वापिस ले जा सको तो चीजें ठीक उसी रूपमें वापिस आ जाती हैं जिस रूपमें थीं। यह ऐसा होता है मानों तुम उन क्षणोंको फिरसे जी रहे हो। तुम उसे एक बार, दो बार, दस बार, सौ बार फिरसे जी सकते हो, लेकिन तुम चेतनाका तथ्य जीते हो। यह एक घटनाकी स्मृतिसे बहुत भिन्न है जिसे तुम अपने मस्तिष्कमें कहींपर अंकित कर लेते हो। और अगर मस्तिष्कके संबंध जरा भी इधर-उधर हो जायें (क्योंकि तुम्हारे मस्तिष्कमें बहुत-सी चीजें हैं और यह बहुत नाजुक यंत्र है), अगर जरा-सी गड़बड़

हो जाय तो तुम्हारी स्मृति काम नहीं करती। और छेद हो जाते हैं, तुम भूल जाते हो। दूसरी ओर, यदि तुम चेतनाकी अमुक स्थितिको वापिस लाना जानो तो वह ठीक उसी स्थितिमें वापिस आती है जिसमें पहले थी। अब, याद शुद्ध रूपसे मानसिक भी हो सकती है, वह मस्तिष्क-की क्रियावलीका ही जारी रहना हो सकता है; पर यह मानसिक याद होगी। और भावनाओंमें याद हो सकती है, संवेदनोंमें याद हो सकती है . . .।

उस दिन आपने कहा था : अपनी स्मृतिको बढ़ानेके लिये तुम्हें अपनी चेतनाको विस्तृत करना होगा। क्या यादके लिये भी यही बात है ?

मेरे कहनेका मतलब यह था कि स्मृतिके तथ्यकी जगह चेतनाके तथ्यको बिठाओ। मुझे याद नहीं उस दिन मैंने स्मृति शब्दका व्यवहार किस अर्थमें किया था। इसी अर्थमें हो सकता है।

पढ़ाई-लिखाईमें स्मृति।

अच्छा, हां, यही है। मेरा यही मतलब था। शुद्ध रूपसे मानसिक चेतना-की जगह चेतनाकी अवस्थाओंको लाओ। मैं ठीक यह कहना चाहती थी। क्योंकि, अगर तुम किसी चीजको रटनेकी कोशिश करो तो कुछ समयके बाद तुम उसे जरूर भूल जाओगे। या फिर छेद होते हैं : तुम्हें एक चीज याद रहती है और दूसरी नहीं याद रहती। लेकिन अगर तुम किसी ज्ञान-विशेषको चेतनाकी किसी अवस्थाके साथ जोड़ लो तो तुम उसे सदा ही वापिस ला सकते हो और ज्ञान जैसा था वैसा ही वापस आ जायेगा।

अच्छा, अब पुनरागमनाय, मेरे बच्चो।

"इलाज पानेके लिये तुम किस विधिसे सबसे अधिक सफल होगे यह इसपर निर्भर है कि तुमने कैसी चेतना विकसित की है और तुम जिन शक्तियोंको काममें ला सकते हो उनका स्वभाव कैसा है। तुम पूर्ण रोगमुक्ति या परिवर्तनकी चेतनामें रह सकते हो और अपनी आंतरिक रचनाकी शक्तिके द्वारा धीरे-धीरे बाहरी परिवर्तन ला सकते हो। या अगर तुम उस शक्तिको जानते हो या तुम्हें उसका अंतर्दर्शन प्राप्त हो जो यह कर सकती हो और तुम्हारे अंदर उसे उपयोगमें लानेका कौशल हो तो तुम उसे नीचे बुला सकते हो और उन भागोंपर लगा सकते हो जहां उसके कार्यकी जरूरत है और वह परिवर्तन ला देगी। या फिर तुम भागवत शक्तिके अंदर पूरे-पूरे विश्वासके साथ अपनी कठिनाई भगवान्‌के आगे रखकर उनसे रोग-मुक्तिके लिये प्रार्थना कर सकते हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

पूर्ण रोगमुक्तिकी यह चेतना कौन-सी है?

इसका यह मतलब नहीं है कि पूर्ण रोगमुक्तिकी कोई विशिष्ट चेतना है। उसका अर्थ है: "ऐसी चेतनामें रहना जो पूर्ण रोगमुक्तिके लिये अनुकूल हो।" इसकी व्याख्या कैसे की जाय? तुम्हारे मनमें एक चित्र या बिंब या रचना है जो अपने अंदर रोगमुक्तिके अस्तित्वको पूर्ण बनानेके लिये आवश्यक सभी संबंधों और तत्त्वोंको चरितार्थ करता है। इसे कहते हैं "पूर्ण रोगमुक्तिकी चेतना रखना"। इसका यह अर्थ नहीं है कि ऐसी स्थिति है जो अपने-आपमें पूर्ण रोगमुक्ति है और तुम उस चेतनाको पा लो तो रोगमुक्ति पा लोगे। बात ऐसी नहीं है। तुम भेद समझ गये?

"कुछ लोगोंमें अभीप्सा मानसिक स्तरोंपर या प्राणिक क्षेत्रमें होती है, कुछ लोगोंमें आध्यात्मिक अभीप्सा होती है। अभीप्साके गुणपर निर्भर है कि कौन-सी शक्ति उत्तर देगी और क्या काम करनेके लिये आयेगी। ध्यानमें अपने-आपको रिक्त कर लेनेसे आंतरिक नीरवता आती है। इसका यह अर्थ नहीं

होता कि तुम शून्य बन गये हो या मृत, जड़राशि बन गये हो। तुम अपने-आपको एक खाली पात्र बनाकर उसे बुलाते हो जो उसे भर देगा। इसका अर्थ है कि तुम अपनी आंतरिक चेतनाके दबावको उपलब्धिके प्रति मुक्त कर देते हो। उस समय चेतनाके स्वभाव और दबावकी अवस्था केवल इस बातका निश्चय नहीं करती कि तुम कौन-सी शक्तियोंको क्रियामें लाते हो, बल्कि इसका भी कि वे कामको किस तरह पूरा करेंगी, या असफल रहेंगी या फिर हानि पहुंचायेंगी और बाधा देंगी।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

मानसिक अभीप्सा, प्राणिक अभीप्सा और आध्यात्मिक अभीप्सा-में क्या फर्क है ?

तुम किस प्रकार अभीप्सा करते हो, मनमें या प्राणमें या फिर आध्यात्मिक रूपमें ?

मानसिक अभीप्साका अर्थ है कि विचार-शक्ति, उदाहरणके लिये, ज्ञान पानेके लिये अभीप्सा करती है या अपने-आपको भली-भांति अभिव्यक्त करनेके लिये या स्पष्ट विचार पानेके लिये या युक्तियुक्त तर्क-बुद्धिके लिये अभीप्सा करती है। व्यक्ति बहुत-से परिवर्तनोंके लिये अभीप्सा कर सकता है, कि उनकी सभी क्षमताएं और योग्यताएं विकसित होकर भगवान्‌की सेवामें अर्पित हो सकें। यह मानसिक अभीप्सा है।

या तुम्हारे प्राणमें अभीप्सा हो सकती है। अगर तुम्हारे अंदर कामनाएं या कठिनाइयां, आंधियां या आंतरिक मुश्किलें हैं तो तुम शांतिके लिये, बिलकुल तटस्थ होनेके लिये, कामना और पसंदके बिना, अपनी निजी सनकोंके बिना अच्छे और आज्ञाकारी यंत्र बननेके लिये अभीप्सा कर सकते हो जो हमेशा भगवान्‌के अधिकारमें रहे। यह प्राणिक अभीप्सा है।

तुम्हारे अंदर भौतिक अभीप्सा भी हो सकती है, शरीर एक प्रकारका संतुलन पाना चाहे जिसमें सत्ताके सभी भाग भली-भांति संतुलित हों और तुम्हारे अंदर रोगको दूर रखनेकी शक्ति हो या अगर वह चालाकीसे घुस आये तो उसपर तेजीसे विजय पानेकी क्षमता हो, शरीर हमेशा सामान्य रूपसे, सामंजस्यके साथ पूर्णतया स्वस्थ रहे। यह हुई भौतिक अभीप्सा।

आध्यात्मिक अभीप्साका मतलब है भगवान्‌के साथ ऐक्य पानेके लिये तीव्र आवश्यकता, अपने-आपको समग्र रूपसे भगवान्‌को देना, भगवान्‌की चेतनाके बाहर न रहना ताकि भगवान् ही तुम्हारे लिये समस्त सत्तामें सब

कुछ हों और तुम्हें उनके साथ सतत सामंजस्य, उनकी उपस्थितिके भानकी, तुम जो कुछ करो उसमें उनके मार्गदर्शनकी और सत्ताकी सभी गतियोंमें उनके द्वारा सामंजस्य लाये जानेकी आवश्यकता अनुभव हो। यह आध्यात्मिक अभीप्सा है।

मां, क्या चैत्यसे अभीप्सा आती है?

जरूरी नहीं है। सत्ताका हर भाग अपनी-अपनी अभीप्सा कर सकता है।

भौतिक किस प्रकार अभीप्सा कर सकता है, क्योंकि सोचता तो मन है?

जबतक मन सोचता है, तुम्हारा मन तीन-चौथाई जड़ रहता है जिसकी अपनी चेतना नहीं होती। लेकिन एक यथातथ्य भौतिक चेतना है, शरीरकी चेतना। शरीर अपने बारेमें सचेतन होता है और उसकी अपनी अभीप्सा होती है। जबतक तुम अपने शरीरके बारेमें सोचते हो तबतक तुम अपनी भौतिक चेतनामें नहीं हो। शरीरकी अपनी निजी चेतना होती है जो मनसे एकदम स्वतंत्र होती है। शरीरको अपनी क्रियाओंका, अपने संतुलन या असंतुलनका पूरी तरह पता होता है और अगर कहीं कोई गड़बड़ हो तो वह पूरी तरह यथातथ्य रूपमें सचेतन हो जाता है (इसे कैसे कहूं?), उसका उस चीजके साथ संपर्क होता है और बाहरी लक्षण न हो तो भी बहुत स्पष्ट रूपमें अनुभव करता है। शरीरको भान होता है कि सारी क्रियावली सामंजस्यके साथ, संतुलित, नियमित रूपमें उसी तरह चल रही है जैसे उसे चलना चाहिये। उसमें एक तरहकी प्रचुरता, आनंद और शक्तिकी प्रचुरताका भाव होता है — कुछ-कुछ जीवनके आनंद, कार्य करनेका और जीवनसे भरे और ऊर्जासे भरपूर संतुलनमें गति करनेका आनंद। या शरीरको इस बातका भान हो सकता है कि उसके साथ मन और प्राण अच्छा व्यवहार नहीं कर रहे और इससे उसका संतुलन बिगड़ता है और वह कष्ट पाता है। यह पूरा-पूरा असंतुलन पैदा कर सकता है। इसी तरह और भी।

तुम अपनी भौतिक चेतनाको इतनी अच्छी तरह विकसित कर सकते हो कि अगर तुम पूरी तरह बहिर्मुख हो जाओ, यदि प्राण शरीरसे बिलकुल बाहर निकल जाये, तब भी शरीरकी निजी स्वतंत्र चेतना बनी रहे जो उसे हिलने-डुलनेमें, सब प्रकारकी सीधी-सादी चीजें करनेमें प्राणकी सहायताके

बिना, स्वतंत्र रूपसे सक्षम बना दे। शरीर बोलना सीख सकता है; मन और प्राण भले उसके बाहर हों, दूर, बहुत दूर, कहीं और व्यस्त हों। लेकिन जड़ पदार्थके साथ जोड़नेवाली कड़ीके कारण वे एक ऐसे शरीरके द्वारा अपनी अभिव्यक्ति कर सकते हैं जिसमें मन-प्राण नहीं हैं, और जो फिर भी, दूसरे जो कहते हैं उसे बोलना और दोहराना सीख सकता है। शरीर गति कर सकता है। मैं यह नहीं कहती कि बहुत श्रम कर सकता है, पर वह गति कर सकता है। वह छोटी-मोटी, बहुत सारी चीजें कर सकता है। उदाहरणके लिये, वह लिख सकता है, जैसे बोलना सीखता है उसी तरह लिखना सीख सकता है। वह बोलता अवश्य है: जरा (क्या कहा जाय?) धीरे, कुछ कठिनाईके साथ, फिर भी वह स्पष्ट, काफी स्पष्ट बोल सकता है जिसे लोग समझ सकते हैं। और फिर भी मन और प्राण, बाहर, बिलकुल बाहर जा चुकते हैं। यहां दैहिक चेतना होती है।

और जब तुम यह दैहिक चेतना विकसित कर लो तो तुम्हें विविध प्रकारकी चेतनाओंके पारस्परिक विरोधका स्पष्ट बोध हो सकता है। जब शरीरको किसी चीजकी जरूरत हो और उसे मालूम हो कि उसे क्या चाहिये, और प्राण कुछ और ही चाहता हो और मन उससे भी अलग कुछ और, तो उनमें खासी बहस हो सकती है, विरोध और संघर्ष हो सकते हैं। और तुम बहुत स्पष्ट रूपसे देख सकते हो कि शरीरका संतुलन क्या है, अपने-आपमें शरीरकी क्या आवश्यकता है और किस तरह प्राण हस्तक्षेप करता और बहुधा इस संतुलनको बिगाड़ देता और विकासको इतना अधिक नुकसान पहुंचाता है — क्योंकि वह अज्ञानी है। और जब मन आता है तो वह एक और तरहकी अव्यवस्था पैदा कर देता है जो अपने विचार, अपनी धारणाएं, अपने सिद्धांत और नियम, अपने विधान आदिको घुसाकर प्राण और शरीरके बीच व्याप्त अव्यवस्थामें एक और अव्यवस्था बढ़ा देता है। वह दूसरोंकी आवश्यकताओंको ठीक-ठीक हिसाबमें नहीं लेता। वह बस वही करना चाहता है जो हर एक करता है। पशुओंकी अपेक्षा मनुष्योंका स्वास्थ्य बहुत अधिक नाजुक और अनिश्चित होता है, क्योंकि यहां मन हस्तक्षेप करता है और संतुलन बिगाड़ देता है। शरीरको यदि अकेला छोड़ दिया जाय तो उसे बड़ा निश्चित बोध प्राप्त होता है। उदाहरणके लिये, यदि शरीरको अपने हालपर छोड़ दिया जाय तो वह कभी बिना जरूरतके न खायेगा, कोई ऐसी चीज न लेगा जो उसके लिये हानिकर हो। जब उसे नींदकी जरूरत होगी वह सो जायगा, जब उसे कुछ करनेकी जरूरत होगी तब करेगा। शरीरका सहजबोध बहुत निश्चित होता है। प्राण और मन उसमें बाधा डालते हैं। एक अपनी कामनाओं

और सनकोंके द्वारा और दूसरा अपने सिद्धांतों, मान्यताओं, विधानों और विचारोंके द्वारा। और दुर्भाग्यवश हम जिसे सभ्यता समझते हैं उसमें, बच्चोंको जैसी शिक्षा दी जाती है उसके द्वारा शरीरके इस निश्चित बोध-को बिलकुल नष्ट कर दिया जाता है, बाकीके तत्त्व ही अपना अधिकार जमाते हैं। और स्वभावतः चीजें जिस रूपमें होती हैं उसमें होती हैं। तुम हानिकर चीजें खा लेते हो, जब जरूरत होती है तब सोते नहीं, या बिना जरूरतके बहुत ज्यादा सो लेते हो या जो चीजें नहीं करनी चाहिये उन्हें करते हो और अपने स्वास्थ्यको बिलकुल खराब कर बैठते हो।

मां, कभी-कभी जब बच्चे किसी चीजमें रस लेते हैं तो वे सोना नहीं चाहते। तब क्या किया जाय? कुछ ही मिनट पहले वे कहते हैं: "नींद आ रही है," और फिर खेलना शुरू कर देते हैं और सोना नहीं चाहते।

उन्हें जब नींद आ रही हो तब खेलने नहीं देना चाहिये। यह ठीक-ठीक प्राणकी घुसपैठ है। जो बच्चा बहुत ज्यादा बड़ोंके साथ नहीं रहता (बच्चोंके लिये बड़ोंके बीच अधिक समय रहना बुरा होता है), अगर बच्चेको अपने-आपपर छोड़ दिया जाय तो वह, चाहे कुछ क्यों न कर रहा हो, जैसे ही नींदकी जरूरत होगी सहज रूपमें सो जायगा। जब बच्चोंको बड़ोंके साथ रहनेकी आदत हो जाती है तो वे बड़ोंकी सब आदतें पकड़ लेते हैं। खास तौरपर जब उनसे कहा जाता है: "नहीं, तुम यह नहीं कर सकते, क्योंकि तुम अभी बहुत छोटे हो! जब बड़े हो जाओ तब करना। तुम यह नहीं खा सकते, क्योंकि तुम छोटे हो, जब बड़े हो जाओगे तब खा सकोगे। तुम्हें इस समय सो जाना चाहिये क्योंकि तुम छोटे हो ....।" तो स्वभावतः उनकी धारणा यही बनती है कि उन्हें किसी भी कीमतपर बड़ा होना चाहिये या कम-से-कम बड़ा दीखना चाहिये।

"तुम्हारी श्रद्धाकी तीव्रताका अर्थ है कि भगवान्‌ने यही चुना है कि वह जिस ओर संकेत कर रही है वह काम पूरा हो। अटल श्रद्धा भागवत इच्छाकी उपस्थितिका चिह्न, इस बातका संकेत है कि क्या होगा।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

क्रियाशील श्रद्धा और महान् विश्वास – क्या ये दोनों एक ही नहीं हैं?

आवश्यक नहीं है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि श्रद्धा और विश्वास किस द्रव्यसे बने हैं। क्योंकि अगर तुम सामान्य रूपसे रहते हो, बिलकुल सामान्य परिस्थितियोंमें — ऊलजलूल विचारों और अवसाद लानेवाली शिक्षाके बिना — तो, सारी जवानीमें और सामान्यतः जबतक तुम तीसके न हो जाओ, तुम्हें जीवनपर पूरा-पूरा विश्वास होता है। उदाहरणके लिये, यदि तुम ऐसे लोगोंसे न घिरे हो जो तुम्हें जरा-सा जुकाम या सिर-दर्द होनेसे ही न घबरा दें और दौड़े-दौड़े डाक्टरके पास जायं और तुम्हें दवाइयां दें — अगर तुम साधारण परिस्थितियोंमें हो और तुम्हें कुछ हो जाय, कोई दुर्घटना या जरा-सी बीमारी, तो शरीरमें यह निश्चिति रहती है, पक्का विश्वास रहता है कि वह ठीक हो जायगी: "यह कुछ नहीं है। यह चली जायगी। यह जरूर चली जायगी। मैं कल, या कुछ दिनोंमें बिलकुल ठीक हो जाऊंगा। यह निश्चय ही ठीक हो जायगी," — फिर तुम्हें चाहे कुछ क्यों न हुआ हो। वास्तवमें, शरीरकी यही स्वाभाविक दशा है। एक पक्का विश्वास कि सारा जीवन सामने है और सब कुछ ठीक होगा। और यह बहुत बड़ी सहायता करता है। तुम दसमेंसे नौ बार रोगमुक्त हो जाते हो। तुम इस विश्वासके साथ बहुत जल्दी रोगमुक्त हो जाते हो: "यह कुछ भी नहीं है, आखिर यह है क्या? एक छोटी-सी दुर्घटना, यह गुजर जायगी। यह कुछ भी नहीं है।" और ऐसे लोग हैं जो इसे बहुत लंबे समयतक बनाये रखते हैं, बहुत लंबे समयतक, एक प्रकारका विश्वास — उन्हें कुछ नहीं हो सकता। उनका सारा जीवन उनके सामने है, पूरा-पूरा, उन्हें कुछ नहीं हो सकता। और उन्हें जो भी हो उसका कोई महत्त्व नहीं है। सब कुछ ठीक हो जायगा। उसे ठीक होना पड़ेगा। सारा जीवन उनके सामने है। स्वाभाविक है कि यदि तुम ऐसे वातावरणमें रहते हो जहां रुग्ण विचार हैं और लोग अपना समय अनर्थकारी, संकटकारी बातोंको दोहराते रहनेमें लगाते हैं, तो तुम गलत तरीकेसे सोचोगे और अगर तुम गलत तरीकेसे सोचो तो शरीरपर इसकी प्रतिक्रिया होती है। अन्यथा अपने-आपमें शरीर इस विश्वासको चालीस-पचासकी अवस्थातक रख सकता है — यह व्यक्तियोंपर निर्भर है — कुछ लोग स्वाभाविक संतुलित जीवन जीना जानते हैं। लेकिन शरीरको अपने जीवनके बारेमें पूरा विश्वास होता है। केवल, जैसा कि मैंने कहा, यदि विचार बीचमें आकर सब प्रकारकी रुग्ण और अस्वस्थ कल्पनाएं ले आयें, तो उससे सब कुछ बदल जाता है। मैंने ऐसे उदाहरण देखे हैं। ऐसे बच्चे जिनके साथ छोटी-मोटी दुर्घटना हो गयी। उनमेंसे एक दौड़ता, खेलता रहा, किसीने उसकी परवाहतक न की और चीज तुरंत ठीक हो

गयी। और दूसरे ऐसे जिनके परिवारने, जबसे उन्होंने समझना शुरू किया तबसे, बार-बार उनके कानोंमें यह बात ढोल बजाकर घुसायी है कि हर चीज भयानक है, कि चारों ओर कीटाणु रहते हैं, कि तुम्हें बहुत सावधान रहना चाहिये, कि जरा-सा घाव भी विपत्तिजनक हो सकता है, कि तुम्हें हमेशा सावधान रहना चाहिये और इस बातका पूरा ख्याल रखना चाहिये कि कहीं कुछ गंभीर चीज न हो जाय...। इसलिये अपने घाव कृमि-नाशक औषधियोंसे धुलवाने चाहिये। मरहम-पट्टी करवानी चाहिये। और उसके बाद वे सोचने बैठते हैं: "अब मुझे क्या हो जायगा? ओह! ओह! कहीं मुझे धनुस्तम्भ (टिटेनस) न हो जाय, कहीं इससे पूति ज्वर न आ जाय।" स्वभावतः ऐसे कारणोंसे आदमी जीवनपर विश्वास खो बैठता है और इसका शरीरपर बहुत असर होता है। प्रतिरोधकी शक्तिका तीन-चौथाई भाग खतम हो जाता है। लेकिन सामान्यतः, स्वाभाविक रूपसे शरीर जानता है कि उसे स्वस्थ रहना चाहिये और वह जानता है कि उसमें प्रतिक्रिया करनेकी क्षमता है। और अगर कुछ हो जाय तो वह उस "कुछ" से कहता है: "यह कुछ नहीं है, यह चला जायगा। इसके बारेमें कुछ न सोचो, यह खतम हो गया।" और वह चला जाता है।

यह वास्तवमें पूरा-पूरा विश्वास है।

अब जब तुम "क्रियाशील श्रद्धाकी" बात कर रहे हो: क्रियाशील श्रद्धा कुछ भिन्न वस्तु है। अगर आदमीके अंदर भागवत कृपापर श्रद्धा है कि भागवत कृपा उसपर नजर रखे हुए है और चाहे कुछ क्यों न हो जाय, भागवत कृपा तो है ही, उसकी निगरानी कर रही है। आदमी इसे हमेशा सारे जीवन रख सकता है और यह हो तो खतरोंमेंसे गुजर सकता है, सब प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना कर सकता है और कोई उसका बाल भी बांका न कर सकेगा, क्योंकि उसे श्रद्धा है और भागवत कृपा उसके साथ है। यह अनंतगुना शक्तिशाली, अधिक सचेतन, और अधिक स्थायी शक्ति है जो तुम्हारे शारीरिक गठनकी अवस्थापर निर्भर नहीं है, जो भागवत कृपाके सिवा किसी औरपर निर्भर नहीं है और इसलिये सत्यका सहारा लेती है और कोई चीज उसे हिला नहीं सकती। यह बिलकुल भिन्न है।

कभी-कभी बच्चे हमसे पूछते हैं कि हम यहां क्यों हैं। उनसे क्या कहा जाय?

यह उनकी अवस्थापर निर्भर है मेरे बच्चे, और इसपर निर्भर है कि वे

क्या हैं। यह उनकी सचाईपर निर्भर है। तुम हर एकको एक-सा उत्तर नहीं दे सकते।

पर क्या नन्हें-मुन्ने कभी यह पूछते हैं...? क्या सबसे छोटे बच्चे पूछते हैं कि हम यहां क्यों हैं?

नहीं सबसे छोटे नहीं — पूर्णिमा, तरुलता।

उस अवस्थामें, यह तो वह अवस्था है जब व्यक्ति पूछता और संदेह करता है।

बहुत छोटे बच्चे। अगर वे पूछें तो अद्‌भुत बात होगी। उन्हें बतानेके लिये एक सरल-सा उत्तर है: "मेरे बच्चो, क्योंकि यही भगवान्‌की इच्छा है। भगवान्‌की कृपाके कारण तुम यहां हो। खुश रहो, चुप रहो, शान्त रहो, प्रश्न मत करो, सब कुछ अच्छा होगा।" और जब वे जरा बड़े हो जायं तो वे तर्क करना शुरू करते हैं, तब इतना अच्छा नहीं रहता, तब आसान नहीं रहता। पर यह निर्भर है, जैसा मैंने कहा; यह इसपर निर्भर है कि वे कितने बुद्धिमान् हैं और कितने खुले हैं। ऐसे हैं जिनकी यह पूर्व-नियति है। वे यहां हैं क्योंकि उन्हें यहां होना चाहिये। इनके साथ बात सरल है। उनसे बस यही कहना होगा: "मेरे बच्चो, क्योंकि तुम उस भविष्यके हो जो अभी बन रहा है और वह यहीं बन रहा है।" उनके लिये बात सरल है, यह सत्य है। कुछ ऐसे हैं जो यहां इसलिये हैं कि उनके मां-बाप यहां हैं, किसी और कारणसे नहीं। उन्हें बतलाना मुश्किल है जबतक कि तुम सीधी तरह यह न कहो: "क्योंकि तुम्हारे मां-बाप यहां हैं।"

हम कैसे समझ सकते हैं?

ओ! यह वास्तवमें तुमपर निर्भर है।

सीखने योग्य पहली चीज यह है कि तादात्म्यके द्वारा कैसे जाना जाय। जब तुमपर दूसरोंकी जिम्मेदारी हो तो यह अनिवार्य है। दूसरोंका मार्ग-दर्शन कैसे किया जाय, यह जाननेके लिये सबसे पहला अनिवार्य कदम है उनके मनमें प्रवेश करके उन्हें जानना — अपने विचारको प्रक्षिप्त करना नहीं, यह कल्पना नहीं कि वे क्या हैं, बल्कि अपने-आप अपने अंदरसे निकलकर उनमें प्रवेश करना और यह जानना कि वहां क्या हो रहा है। तब, इस तरीकेसे तुम उन्हें जान सकते हो, क्योंकि तुम वह

होते हो। जब तुम दूसरोंके अंदर अपने-आपको ही देखते हो तो इसका मतलब है कि तुम कुछ नहीं जानते। तुम पूरी तरह गलतीपर हो सकते हो। तुम कल्पना करते हो कि यह ऐसा है या वैसा है — तुम बाहरी रूपसे या मानसिक पसंदसे पहलेसे बने हुए विचारोंके अनुसार फैसला करते हो, यानी, तुम जानते कुछ नहीं। लेकिन एक स्थिति है जिसमें तुम्हें जाननेकी जरूरत ही नहीं होती, यह जाननेकी कोशिश करनेकी जरूरत नहीं होती कि कोई कैसा है। तुम यह अनुभव करते हो कि वह क्या है, इसके अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकते, क्योंकि वह तुम्हारा ही प्रक्षेप है। जबतक तुम यह करना न जानो तबतक तुम लोगोंके लिये जो आवश्यक है वह नहीं कर सकते — जबतक तुम वैसा ही अनुभव न करो जैसा वे अनुभव करते हैं, वैसा ही न सोचो जैसा वे सोचते हैं, जबतक तुम उनके अंदर इस तरह प्रवेश न कर सको मानों तुम स्वयं वही हो। यही एकमात्र तरीका है। अगर तुम एक छोटे-से सक्रिय मनके द्वारा जाननेकी कोशिश करो तो तुम कभी कुछ न जान पाओगे — और लोगोंको देखकर अपने-आपसे यह कहोगे : "यह आदमी ऐसा इस तरह करता है और वह उस तरह, इसलिये यह ऐसा होना चाहिये।" यह असंभव है।

तो, जिन लोगोंपर कोई जिम्मेदारी है उनका पहला काम — उदाहरणके लिये जो और बच्चोंके शिक्षणकी व्यवस्था करते हैं, दूसरोंकी देखभाल करते हैं, शासकोंसे लेकर अध्यापकों और कक्षानायकोंतक — उनका पहला काम है यह सीखना कि दूसरोंके साथ अपना तादात्म्य कैसे किया जाय, उन्हींकी तरह कैसे अनुभव किया जाय। तब तुम जान सकते हो कि तुम्हें क्या करना चाहिये। तुम अपनी आंतरिक ज्योतिको, अपनी चेतनाको वहां रखो जहां उसे होना चाहिये, बहुत ऊंचेपर, प्रकाशमें, और साथ-ही-साथ तादात्म्य प्राप्त करो, तब तुम देखोगे कि वे क्या हैं, उनकी प्रतिक्रियाएं क्या हैं, उनके विचार क्या हैं। इन सबको उस प्रकाशके सामने रखो, तब तुम भली-भांति यह सोच सकनेमें सफल हो सकोगे कि उनके लिये क्या करना चाहिये। तुम हर एकसे वही कहोगे जो उसे सुननेकी जरूरत है, तुम हर एकके साथ ऐसा व्यवहार करोगे जो उसे समझानेके लिये जरूरी है। और इसलिये यह एक अद्भुत कृपा होती है जब तुम्हें कुछ लोगोंकी जिम्मेदारी सौंपी जाती है, क्योंकि तब तुम सबसे आवश्यक प्रगति करनेके लिये बाधित होते हो और मैं साथ ही यह भी कह दूं कि सौमेंसे निन्नावे व्यक्ति यह नहीं करते। और ठीक यही कारण है कि चीजें इतनी बुरी हालतमें हैं। विशेष रूपसे जिनपर किसी देशके शासनकी जिम्मेदारी है — वे तो इस बारेमें कभी सोच ही नहीं

सकते। वे अपने देखनेके ढंग, अपने अनुभव करनेके ढंगको बनाये रखने-के लिये बहुत उत्सुक होते हैं और वे जिनपर शासन करते हैं उनकी आवश्यकताओंको समझनेसे बड़े उग्र रूपमें कतराते हैं। लेकिन देख सकते हैं कि इसका परिणाम कुछ खास नहीं होता : यह स्पष्ट ही है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि सरकारें विलक्षण संस्थाएं हैं। सभी स्तरोंपर यही बात है। छोटी सरकारें हैं और बड़ी सरकारें हैं, पर विधान सबके लिये एक ही है। यदि कोई पाठ पढ़ाते समय तुम उसी समय वहींपर, सारे वातावरणको लेकर, लोगोंके चारों ओरके स्पंदनोंको इकट्ठा करके, इस सारेको अपने सामने रखकर यह न जान सको कि इस सामग्रीके साथ क्या किया जाय (स्पंदनोंके साथ तुम ऐसी शक्तियां फैला सकते हो जिन्हें तुम दे सकते हो, जिन्हें ग्रहण किया जा सकता है, जिन्हें आत्मसात् किया जा सकता है), अगर तुम यह न कर सको तो अधिकतर तुम अपना समय नष्ट करते हो, तुम भी। छोटे-से-छोटा काम करनेके लिये भी तुम्हें बहुत-सी प्रगति करनी चाहिये।

"अतिमन मानसिक चीजोंमें उसी तरह रस नहीं लेता जैसे मन लेता है। वह विश्वभरकी गतिविधियोंमें अपना अलग ही रस लेता है, लेकिन यह हमेशा एक भिन्न दृष्टिकोणसे, और ही दृष्टिसे होता है। उसके आगे संसार अपनी सामान्य रूप-रेखा-से भिन्न एक और ही दृश्य प्रस्तुत करता है। वहां दृष्टि पलट जाती है और वहांसे हर चीज मनको जैसी दिखायी देती है, उससे अलग तरहकी, बहुधा उससे उलटी दिखायी देती है। चीजोंका अर्थ कुछ और ही होता है, उनके पहलू, उनकी क्रिया और प्रक्रिया, उनके बारेमें सब कुछ और ही आंखोंसे देखा जाता है। अतिमन यहांकी हर चीजका अनुसरण करता है : मनकी गति-विधि, प्राणकी गति-विधि और भौतिक गति-विधि। विश्वकी समस्त लीला उसके लिये बहुत गहरे रूपमें रुचिकर होती है, पर और ही ढंगसे।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२३ जून)

अतिमन किस चीजमें रस लेता है?

वह संसारके रूपांतरमें रस लेता है — जड़ जगत्में शक्तियोंके अवतरण और उसके रूपांतरमें और उसकी तैयारीमें ताकि वह अतिमानसिक

शक्तियोंको ग्रहण कर सके। और वह संसार जैसा है, और उसे जैसा होना चाहिये, इसके फर्कसे अवगत है। वह हर क्षण जो है और जो होना चाहिये उसके बीचकी, सत्य और प्रकट मिथ्यात्वके बीचकी खाईको देखता है और वह हमेशा जो सत्य जगत्के ऊपर छाया हुआ है उसे दृष्टि-में रखता है ताकि जहां कहीं जरा छिद्र मिल जाय वहां वह उतरकर अपने-आपको अभिव्यक्त कर सके। और जो साधारण जानकारीको बिलकुल साधारण लगता है वह उसके लिये साधारणतः अंधेरी, अज्ञानी, एकदम निश्चेतन शक्तियोंका खेल मालूम होता है। वह उसे स्वाभाविक बिलकुल नहीं लगता। वह उसे एक घृणित दुर्घटनाके रूपमें देखता है और अपनी सारी शक्तिसे उसे ठीक करनेकी कोशिश करता है। वह देखता है, खोजता है, और अगर कहीं जरा भी ग्रहणशीलता दीख जाय तो अपने कार्यको तीव्र बना देता है। वह मनुष्योंको उनके बाहरी रूपमें नहीं देखता, बल्कि उन स्पंदनोंके रूपमें देखता है जो न्यूनाधिक ग्रहण-शील, न्यूनाधिक अंधकारमय या ज्योतिर्मय हैं। वह जहां कहीं प्रकाश देखता है वहां अपनी शक्ति प्रक्षिप्त करता है ताकि वह पूरा प्रभाव डाल सके। और हर सत्ताके साथ शतरंजकी बिसातपर गोटके रूपमें — छोटे सुनिश्चित व्यक्तिके रूपमें — व्यवहार नहीं करता। वह देखता है कि शक्तियां कैसे अंदर आती हैं, बाहर निकलती है, हिलती-डुलती हैं, हर चीजको गति देती हैं और स्पंदन कैसे कार्य करते हैं। वह उन स्पंदनोंको देखता है जो ऊपर उठते हैं और प्रगतिकी ओर ले जाते हैं और वह उन स्पंदनोंको देखता है जो तुम्हें अंधेरेमें दूर, और अधिक दूर फेंक देते हैं, जो तुम्हें नीचे उतार देते हैं। और कभी-कभी तुम्हारे पास कोई आता है जिसके पास साधारणतः पुस्तकोंसे तैयार किये गये वाक्य रहते हैं। यद्यपि वे अभीप्सा और सद्भावनाके शब्द होते हैं, फिर भी उसे दो टूक जवाब मिलता है और कहा जाता है कि सच्चे बननेकी कोशिश करो — वह समझ नहीं पाता। यह इसलिये होता है क्योंकि दिव्य शक्ति देखती है कि इसमें सचाई नहीं है — शक्ति शब्दोंको नहीं देखती, शब्दोंको नहीं सुनती, सिरके विचारोंको भी नहीं देखती। वह केवल चेतनाकी अवस्थाको देखती है, देखती है कि चेतनाकी अवस्था सच्ची, निष्कपट है या नहीं। और ऐसे लोगोंके भी उदाहरण हैं जो बिलकुल छिछोरे और मूढ़ लगते हैं, जो हमेशा बेकार बातोंमें लगे रहते हैं। अचानक उनकी सहायता की जाती है, उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है, उनके साथ मित्र और साथीका-सा व्यवहार किया जाता है, क्योंकि उनके अंदर कहीं गहराईमें सचाई और अभीप्साकी चमक दिखलायी पड़ती है जिसका बाहरी रूप भले बचकाना

हो, पर जो मौजूद है और कभी-कभी बहुत शुद्ध होती है। अतः, ऐसे लोगोंके लिये ऐसी बहुत-सी चीजें की जाती हैं जिन्हें लोग नहीं समझते, क्योंकि वे बाहरी रूपके पीछे छिपी वास्तविकताको नहीं देख सकते। इसी-लिये मैं कहती हूं कि अतिमन एक बिलकुल ही भिन्न तरीकेसे रस लेता है, एक बिलकुल भिन्न तरीकेसे देखता है और बिलकुल भिन्न तरीकेसे जानता है।

क्या अपने-आपको जानना दूसरोंको जाननेकी कोशिश करनेसे ज्यादा जरूरी नहीं है ?

बहुत जरूरी, चरम आवश्यक ! इसके अतिरिक्त, वही वह कार्यक्षेत्र है जो हर एकको दिया गया है। तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि हर एक — तुम्हारे आंतरिक और बाह्य शरीरको रूप देनेवाले द्रव्यकी यह समग्रता, बाह्यतमसे लेकर अंतरतम सत्ताको निर्मित करनेवाले द्रव्यकी यह समग्रता — एक कार्यक्षेत्र है। यह ऐसा है मानों किसीने स्पंदनोंकी अमुक संख्या सावधानीसे इकट्ठी करके, जमा करके तुम्हारे अधिकारमें सौंप दी है ताकि तुम उनपर पूरी तरह क्रिया कर सको। यह मानों ऐसा कार्यक्षेत्र है जो हमेशा तुम्हारे अधिकारमें रहता है : रात-दिन, सोते-जागते, सारे समय — कोई भी तुमसे इसे नहीं छीन सकता, यह अद्‌भुत है ! तुम इसका उपयोग करनेसे इंकार कर सकते हो (जैसा अधिकतर लोग करते हैं), लेकिन यह एक ऐसी राशि है जिसका रूपांतर करना है। यह तुम्हारे हाथोंमें है, पूरी तरह तुम्हारे अधिकारमें है, तुम्हें उसपर क्रिया करना सीखनेके लिये ही दिया गया है। इसलिये सबसे महत्त्वपूर्ण काम है वह करना शुरू करो। जबतक तुम अपने साथ कोई चीज न कर सको तबतक दूसरोंके साथ बिलकुल ही नहीं कर सकते। तुम किसीको कोई अच्छी सलाह तब-तक नहीं दे सकते जबतक स्वयं अपने-आपको न दे लो और उसके अनुसार आचरण न करो। अगर तुम कहीं कोई कठिनाई देखो तो इस कठिनाईको बदलनेका सबसे अच्छा उपाय है पहले उसे अपने अंदर बदलना। अगर तुम किसीके अंदर एक दोष देखो तो विश्वास करो कि वह स्वयं तुम्हारे अंदर भी है और तुम अपने-आपको बदलना शुरू करो। और जब तुम उसे अपने अंदर बदल चुकोगे तो उसे दूसरोंमें बदलनेके लिये भी काफी समर्थ होगे। और यह अद्‌भुत चीज है। लोग यह अनुभव नहीं कर पाते कि यह कैसी अनंत कृपा है कि यह विश्व इस प्रकार व्यवस्थित है कि सारे द्रव्यको — अत्यंत भौतिकसे लेकर उच्चतम आध्यात्मिकतक — एक

ही जगह इकट्ठा कर दिया गया है, लेकिन वह एक केंद्रीय संकल्पके अधीन है। और यह तुम्हारा, तुम्हारा कार्यक्षेत्र है, इसे तुमसे कोई नहीं छीन सकता, यह तुम्हारी संपत्ति है। और तुम जिस हदतक इसपर कार्य कर सकोगे, उसी प्रमाणमें संसारपर क्रिया कर सकोगे, बस उसी हदतक। और फिर, जितना तुम दूसरोंके लिये करते हो, अपने लिये उससे ज्यादा करना चाहिये।

क्या अपने-आपको जाननेसे पहले औरोंको जानना संभव है?

कुछ भी असंभव नहीं है। तुम यह नहीं कह सकते कि यह असंभव है। लेकिन अगर तुम अपने अंदर अमुक गति-विधियोंसे अवगत नहीं हो तो पहले उन्हें दूसरोंमें जानना निश्चय ही असंगति है। यह एक असंगति है। यह हो सकता है। ऐसे लोग हो सकते हैं जो इतने विकेंद्रित हैं कि वे अपनी अपेक्षा दूसरोंके बारेमें ज्यादा संवेदनशील हैं। फिर भी उन्हें जरा रुग्ण या विकृत माना जाता है। यह उन्हें कोई बहुत अधिक आंतरिक संतुलन नहीं देता, वे असंतुलित हो जाते हैं। कुछ लोग हमेशा चकराये रहते हैं, वे लहरोंपर पड़ी कागकी तरह होते हैं। वह इधर-उधर जाती है, इस ओर, उस ओर कूदती है। उनकी चेतनाकी कोई लीक नहीं होती...। यह कोई वांछनीय वस्तु नहीं है। मुझे नहीं लगता, सचमुच, सचाईके साथ मुझे नहीं लगता कि जबतक तुम स्वयं अपनी सहायता न कर लो तबतक किसीकी सहायता करना संभव है। अगर तुम स्वयं अचेतन हो तो तुम कैसे आशा करते हो कि तुम औरोंमें चेतना ला सकोगे? यह मुझे ऐसी समस्या लगती है जिसका कोई उपाय नहीं। लोग साधारणतः यही करते हैं। यह कोई कारण नहीं है कि हम उसे स्वीकृति दें। मेरा ख्याल है कि ठीक इसी कारण चीजें इतनी बुरी होती जा रही हैं। यह उन लोगोंकी तरह है जो औरोंको झगड़ते देखकर दौड़कर आगे आते हैं और "खामोश, खामोश" कहकर उनसे भी ज्यादा जोरसे चिल्लाते हैं: "खामोश, खामोश!"

आपने कहा है कि हर व्यक्तिको एक समस्या सुलझानेके लिये दी गयी है। अतः धरतीपर हर व्यक्तिको अकेला रहना चाहिये, क्योंकि मिलकर रहनेसे समूहकी कठिनाइयां भी आ जाती हैं। केवल अपनी ही कठिनाई नहीं रहती।

हां, परंतु मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अतः स्वाभाविक रूपसे वह दल बनाता है। और यही कारण है कि जो तेजीसे आगे बढ़ना चाहते थे और जो अपने-आपको काफी बलवान नहीं पाते थे, वे एकांतवासमें चले गये। जो संन्यासी एकांतमें चला जाता है उसका यही कारण है और यही औचित्य होता है, वह अपने-आपको संसारसे बिलकुल काट लेनेकी कोशिश करता है। केवल... यहां एक "केवल" है। तुम अपने-आपको केवल भौतिक दृष्टिसे, एक हदतक, एक बिंदुतक भौतिक प्रकृतिसे अलग कर सकते हो — — पूर्ण रूपसे नहीं — उदाहरणके लिये, देखा गया है कि जो वैरागी जंगलमें पेड़के नीचे जा बैठे, थोड़े ही समयमें जंगलमें रहनेवाले पशुओंमें असाधारण रस लेने लगे। यह अन्य जीवित सत्ताओंके साथ भौतिक संपर्क-की आवश्यकता है। यह संभव है कि कुछ लोगोंको इसकी जरूरत न हो, लेकिन काफी हदतक यह सामान्य नियम है।

लेकिन परस्पर-एकता यहींपर नहीं समाप्त हो जाती। एक प्राणिक एकता होती है, एक मानसिक एकता होती है जिसे तुम नहीं रोक सकते। और सब होते हुए भी (यद्यपि मनुष्य पशुओंकी तुलनामें बहुत अधिक व्यक्ति-भावापन्न है), एक "जातिकी आत्मा" होती है। सामूहिक संकेत होते हैं जिन्हें शब्दोंमें प्रकट करना जरूरी नहीं होता। ऐसे वातावरण होते हैं जिनसे तुम बच नहीं सकते। यह निश्चित है (क्योंकि मैं इसे अनु-भवसे जानती हूं), यह निश्चित है कि व्यक्तिगत पूर्णता और रूपांतरकी एक अवस्था होती है जिसे तबतक चरितार्थ नहीं किया जा सकता जबतक कि सारी मानवजाति एक विशेष प्रगति न कर ले। और यह उत्तरोत्तर पगोंसे ही होता है। भौतिक तत्त्वमें ऐसी चीजें हैं जिनका रूपांतर तब-तक नहीं हो सकता जबतक कि सारा ही भौतिक तत्त्व अमुक सीमातक रूपांतरित न हो जाय। व्यक्ति अपने-आपको पूरी तरह अलग नहीं कर सकता। यह संभव नहीं है। तुम काम कर सकते हो, तुम चुनाव कर सकते हो। ऐसे लोग हैं जिन्होंने एकांतमें जाकर अपने अंदर उस आदर्श-को चरितार्थ करनेकी कोशिश की जिसे उन्होंने देखा था — सामान्यतः वे एक बिंदुतक जा पहुंचे, फिर वहीं रुक गये। वे आगे न जा सके। ऐतिहासिक रूपमें ऐसा हुआ है। मैं उस दिन कह रही थी: "शायद धरती-पर ऐसे लोग हैं जिन्हें मैं नहीं जानती, जिन्होंने असाधारण वस्तुओंकी उपलब्धि की है।" लेकिन ठीक इसी कारण कि उन्होंने अपने-आपको धरतीसे अलग कर लिया है, धरती उन्हें नहीं जानती। यह बस यही बतानेके लिये है कि कुछ भी असंभव नहीं है। मैं बस यही कह सकती हूं कि यह संदिग्ध प्रतीत होता है। लेकिन अगर तुम भौतिक रूपसे अपने-

आपको बिलकुल अलग-थलग कर लो तो भी प्राण और मनके क्षेत्रमें अलग करना असंभव है। पहले तो सारा पार्थिव वातावरण है जिसमें तुमने जन्म लिया है, फिर एक प्रकारकी मानव जातिकी आत्मा या प्रतिभा है। हां, किसीके और आगे बढ़ सकनेसे पहले यह जरूरी है कि यह प्रतिभा पूर्णताकी अमुक अवस्थातक पहुंच चुकी हो। यह बात नहीं है कि जबतक सब न कर लें तबतक व्यक्तिको प्रतीक्षा करनी पड़ती है, नहीं, पर यह ऐसा है मानों सबका एक विशेष स्तरतक पहुंचना जरूरी है ताकि एक छलांग लगाकर आगे बढ़ सके ...। निश्चय ही व्यक्ति हमेशा समूहसे पहले आयेगा, इसके बारेमें कोई संदेह नहीं, लेकिन हमेशा एक संबंध और एक अनुपात रहेगा।

कौन-से स्तरपर मनुष्य सबसे ज्यादा संयुक्त है?

तुम्हारा मतलब है "सबसे अधिक परस्पर निर्भर"?

नहीं, मेरा मतलब है एक सामान्य इच्छा-शक्तिसे।

एक सामान्य इच्छाशक्ति? तुम्हें चीजोंको मिला नहीं देना चाहिये। अगर तुम मनुष्योंमें सद्भावनाकी बात कह रहे हो तो यह चैत्यमें होती है। इसमें शंकाकी छायातक नहीं है। लेकिन एक प्रकारकी प्राणिक परस्पर निर्भरता होती है, काफी अधिक, मेरा ख्याल है, भौतिकसे अधिक। उदाहरणके लिये, पहला महायुद्ध भौतिक जगतोंमें प्राण जगत्की विशाल और भयंकर शक्तियोंके अवतरणका परिणाम था। जो लोग इस अवतरणके बारेमें जानते थे और परिणामतः जिन्होंने अपने-आपको इसके लिये तैयार कर लिया था, उन्हें भी परिणाम भुगतने पड़े। सारे जगत्को, सारी पृथ्वीको उसके परिणाम भोगने पड़े, प्राणिक दृष्टिसे व्यापक ह्रास हुआ। मैं कह सकती हूं कि यह उनके लिये भी अनिवार्य था जो सचेतन रूपसे जानते थे कि यह शक्ति कहांसे आयी है, ह्रास कहांसे आया है और जो इस कारण सचेतन रूपसे लड़ सकते थे — वे धरतीके वातावरणमें अमुक परिणामोंके पैदा होनेको न रोक सके। स्वभावतः, लोग नहीं जानते कि उन्हें क्या हुआ था। उन्होंने जो कुछ कहा वह यही था कि युद्धके बाद हर चीज बिगड़ गयी। बस वे इतना ही निश्चयके साथ कह पाये। उदाहरणके लिये, नैतिक स्तर बहुत गिर गया। यह शुद्ध रूपसे प्राण जगत्के भयंकर अवतरणका सीधा परिणाम था: ये अव्यवस्थाकी शक्तियां, भ्रष्टाचारकी शक्तियां,

विकृतिकी शक्तियां, विनाशकी शक्तियां, हिंसाकी शक्तियां, क्रूरताकी शक्तियां थीं।

यह अवतरण क्यों हुआ ?

शायद यह एक प्रतिक्रिया थी। क्योंकि एक और शक्ति (दिव्य शक्ति) उतर रही थी जो अपना काम करना चाहती थी। शायद ये शक्तियां यह नहीं चाहती थीं — वह उनकी आदतोंमें बाधा देती थी। यह एक ऐसी सरकारकी तरह है जिसे डर लगता है कि वह गद्दीसे उतार दी जायगी और वह गद्दी बनाये रखनेके लिये बड़े उग्र रूपसे हस्तक्षेप करती है।

१४ अक्तूबर, १९५३

प्र० — "अगर भगवान् ही, जो सर्वप्रेम हैं, इस सृष्टिके उद्गम हैं तो ये सब अशुभ कहांसे आए जिनसे धरती भरपूर है ?"

"सब कुछ भगवान्‌से आया है : पर एकमेव चेतनाने, परम प्रभुने सृष्टिको सीधा अपने अंदरसे नहीं बनाया है। उनमेंसे एक शक्ति निःसृत हुई और क्रियावलीके बहुत-से स्तरोंसे होती हुई, बहुत-से मध्यवर्तियोंसे होती हुई आयी है। बहुत सारे स्रष्टा या यूं कहें बहुत-से रूप देनेवाले हैं जिन्होंने सृष्टिकी रचनाका संचालन किया है। ये मध्यवर्ती गुमाश्ते हैं। मैं इन्हें स्रष्टा न कहकर रूपदाता कहना पसंद करती हूं, क्योंकि उन्होंने जड़-सत्त्वको रूप, मोड़ और स्वभाव दिया है। ये बहुत-से हो गये हैं, उनमेंसे कुछने सामंजस्यपूर्ण, भद्र चीजोंको रूप दिया है और कुछने दुष्ट और अशुभ चीजोंको। और कुछ बनानेवालोंकी जगह बिगाड़नेवाले ही थे, क्योंकि उन्होंने बीचमें पड़कर जो चीज औरोंने भली-भांति शुरू की थी उसे बिगाड़ डाला।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (३० जून)

आप कहती हैं कि बहुत-से स्रष्टाओं बल्कि रचयिताओं या रूप देनेवालोंने संसारके निर्माणका संचालन किया है। ये रूप देनेवाले कौन हैं?

यह निर्भर है। उन्हें बहुत-से नाम दिये गये हैं। यह बस क्रमशः और सब प्रकारकी व्यक्तिगत सत्ताओंके द्वारा किया गया है। सत्ताके हर स्तरपर बहुत सारी सत्ताएं, व्यक्तित्व और व्यष्टि हैं और हर एकने अपने चारों ओर एक जगत्‌की रचना की है या धरतीपर अमुक सत्ताओंके निर्माणमें योगदान दिया है। प्राण लोकवाले अंतिम स्रष्टा हैं। लेकिन अधिमानस (श्रीअरविंद इसे अधिमानस स्तर कहते हैं) की सत्ताएं हैं जिन्होंने सृष्टि की है, रूप दिये हैं, अपने अंदरसे अंश निःसृत किये हैं और इन अंशोंके अपने अंश होते हैं और इसी तरह...। कहनेका आशय यह था कि सीधे भागवत संकल्पने संसारको वांछित रूप देनेके लिये काम नहीं किया। कह सकते हैं कि यह बहुत-से स्तरोंसे, लोकोंसे पार होते हुए हुआ है, उदाहरणके लिये, मानसिक लोकसे — मानसिक लोकमें बहुत-सी सत्ताएं हैं जो रूप देती हैं, जो कुछ ऐसी सत्ताओंको रूप देती हैं जो धरतीपर उतरी हैं। प्राण लोकमें भी यही होता है।

उदाहरणके लिये, एक परंपराके अनुसार सारा कीट-पतंग-जगत् प्राणमय लोकके रूप गढ़नेवालोंका बनाया हुआ है, इसीलिये उन्हें सूक्ष्मदर्शी यंत्रसे देखा जाय तो वे पूरे-पूरे पैशाची रूप दीखते हैं। उस दिन तुमने देखा था न, जब तुम्हें पानीके कीटाणु दिखाये गये थे? स्वभावतः, वे चित्र मनोरंजनके लिये, कल्पनाको जगानेके लिये बनाये गये थे, लेकिन वे सच्चे रूपोंपर आधारित थे, लेकिन उनको इतना बड़ा किया गया था कि वे दानवों जैसे लगते थे। लगभग सारे-का-सारा कीट-जगत् सूक्ष्म दानवों जैसा है, अगर वे आकारमें बड़े होते तो बहुत भयानक होते। इसलिये कहा जाता है कि ये प्राणमय लोककी सत्ताएं हैं, प्राणमय लोककी सत्ताओंने मनोरंजनके लिये इन्हें बनाया और इन सब असंभव जीवोंको, जो मानव जीवनको बिलकुल अप्रीतिकर बना देते हैं, बनाकर अपना मनबहलाव किया।

क्या ये मध्यवर्ती भी भगवान्‌से ही आये हैं?

मध्यवर्तियोंके द्वारा, हां, सीधे नहीं। इन सत्ताओंका भगवान्‌के साथ सीधा संपर्क नहीं है (यानी, सामान्यतः, लेकिन अपवाद होते हैं)। ये ऐसी

सत्ताएं हैं जिनका अन्य सत्ताओंसे संबंध है, उनका औरोंसे, इसी तरह एक सोपान है — परम प्रभुतक।

अगर वे भगवान्‌से आये हैं तो फिर अशुभ क्यों है?

अशुभ? मेरा ख्याल है, मैं तुम्हें यह बात एक बार समझा चुकी हूं। बस इतना ही काफी है कि तुम भगवान्‌के सीधे प्रभावमें न रहो, सृष्टि या विस्तारकी गतिका भगवान्‌की इच्छाके अनुसार अनुसरण न करो। इस तरह संबंधका जरा-सा फटना ही बड़ी-से-बड़ी अव्यवस्था — विभाजन — पैदा करनेके लिये काफी है। सबसे अधिक ज्योतिर्मय, सबसे बढ़कर शक्तिशाली सत्ताएं भी भगवान्‌की गतिविधि स्वीकारनेकी जगह अपनी ही गतिसे चलना पसंद कर सकती हैं। अपने-आपमें वे बहुत अद्‌भुत हो सकती हैं। अगर मनुष्य देखें तो उन्हें साक्षात् भगवान् ही मान सकते हैं, लेकिन चूंकि वे सृष्टिकी गतिके साथ सामंजस्य रखनेकी जगह अपने ही ढंगसे चलती हैं इसलिये वे बड़े-से-बड़े अशुभ, बड़ी-से-बड़ी अव्यवस्था, महान्, विशालकाय बाधाओंका कारण हो सकती हैं। लेकिन क्या तुम यह नहीं देखते कि प्रश्न[1] बुरी तरह पूछा गया है। मैं अभी यह प्रश्न पढ़कर हंसी थी। यह कहनेका एक बचकाना तरीका है। यह व्यक्ति कहता है: "अगर भगवान् दुनियामें सब कुछ हैं तो फिर दुनियामें अशुभ चीजें क्यों हैं?" अगर उसने मुझसे यह बात कही होती तो मैं बस यह उत्तर देती: ऐसी कोई चीज नहीं है जो भगवान् न हो, वह बस अव्यवस्थामें है। हमें इसका उपचार करनेकी कोशिश करनी चाहिये — भगवान् केवल प्रेम ही नहीं हैं, वे सब कुछ हैं, और अगर यह हमें — हमें — बिलकुल गलत लगता है तो इसका कारण यह है कि वह ठीक तरह व्यवस्थित नहीं है। मैंने तुम्हें जो बताया है, ठीक उसी तरहकी क्रियाएं हुई हैं।

तुम पूछ सकते हो कि यह क्यों हुआ। निश्चित रूपसे मन यह नहीं बता सकता कि यह क्यों हुआ। यह हुआ, बस इतना ही। वस्तुतः बस एक ही चीज है जिसके साथ हमारा संबंध है और वह है कि ऐसा हुआ है। शायद संयोग था जिससे यह आरंभ हुआ...। अगर तुम वस्तुओंको दार्शनिक दृष्टि देखो तो यह स्पष्ट है कि हम जिस जगत्‌में रहते हैं वह बहुत-सी गतियोंमेंसे एक है और यह गति एक विधानका अनुसरण करती है

---

[1] "अगर भगवान् ही, जो सर्व प्रेम हैं, इस सृष्टिके उद्‌गम हैं तो ये सब अशुभ कहांसे आये जिनसे धरती भरपूर है?"

जो इसका अपना है (शायद दूसरोंमें जो विधान है यह उसके समान नहीं है) और अगर भागवत इच्छा चुनावके सिद्धांतमें पक्षमें थी और चुनावकी स्वाधीनता अभीष्ट थी तो अव्यवस्थित गतियोंको होनेसे तबतक नहीं रोका जा सकता जबतक कि ज्ञान आकर चुनावको आलोकित न कर दे। अगर व्यक्तिको चुननेकी छूट है तो वह बुरी चीजें भी चुन सकता है, जरूरी नहीं है कि अच्छी चीजें ही चुने; क्योंकि अगर यह चीज पहलेसे ही निश्चित होती तो स्वतंत्र चुनाव न रहता। देखो, जब ऐसे प्रश्न किये जाते हैं तो केवल मन ही उत्तर देता है। वह समस्याको छोटा कर देता है। वह उसे न्यूनाधिक रूपमें, एक प्रारंभिक मानसिक सूत्रमें बदल देता है; परंतु वह वस्तुओंके सत्यके साथ बहुत ही उथले, अस्पष्ट और अपूर्ण रूपसे मेल खाता है।

समझ सकनेके लिये तुम्हें 'होना' चाहिये। अगर तुम विश्वके क्यों और कैसेको समझना चाहो तो तुम्हें विश्वके साथ तादात्म्य स्थापित करना होगा। यह असंभव नहीं है पर साथ ही यह आसान भी नहीं है, विशेषकर बच्चोंके लिये।

यह उन सबसे अधिक बचकाने प्रश्नोंमेंसे एक था जो उसने पूछे थे — बिलकुल बचकाने : "अगर भगवान् न्यायशील हैं तो अन्याय कैसे है? अगर वे अच्छे हैं तो यह दुष्टता क्यों है? अगर वे प्रेम हैं तो घृणा क्यों है?" — लेकिन वे सब कुछ हैं! इसलिये वे केवल यह या वह ऐकांतिक रूपसे यह नहीं हैं — वे सब हैं। यानी, ज्यादा ठीक तो यह कहना होगा कि सब कुछ वही हैं। सृष्टिके बारेमें धरतीपर बहुत व्यापक धारणाएं हैं जिन्हें न्यूनाधिक रूपमें मानव विचार बहुत लंबे जमानेसे मानता आया है, पर वे हैं बिलकुल एकांगी। "कुछ चीज" है (वास्तवमें, पता नहीं वह क्या है), और फिर एक भगवान् है जो इस चीजको रूप देता और उसमेंसे सृष्टिका निर्माण करता है। अगर तुम्हारी ऐसी धारणाएं हैं तो तुम्हें इस भगवान्‌से यह कहनेका न्यायसंगत अधिकार है: "हां, तुमने वास्तवमें सृष्टि रची है, बड़ी अच्छी है तुम्हारी यह सृष्टि!" यद्यपि कहानीके अनुसार सात दिनके परिश्रमके बाद उसने घोषणा की थी कि सृष्टि अच्छी है — लेकिन वह उसके लिये अच्छी थी। शायद इससे उसका बहुत मनोरंजन हुआ हो, पर जहांतक हमारा संबंध है, हमें, इस दुनियामें रहनेवालोंको यह जरा भी अच्छी नहीं लगती! तुम्हें नहीं दीखता कि सारा विचार और उसे प्रस्तुत करनेका तरीका दोनों बिलकुल बचकाने हैं! यह बिलकुल उस कुम्हारकी तरह है जो अपने बरतनोंको रूप देता है — यह भगवान् एक मनुष्य है, अनुपात और शक्तिमें भयावह और विशाल, पर देखने-

में विचित्र रूपसे मानव जैसा। भगवान्‌ने मनुष्यको अपनी मूर्तिके रूपमें नहीं गढ़ा है, मनुष्य भगवान्‌को अपनी मूर्तिके रूपमें गढ़ता है। हर बार जब कभी कोई प्रश्न अधूरे या बचकाने ढंगसे किया जाता है तो उसका सच्चा उत्तर देना असंभव होता है, क्योंकि प्रश्न बुरी तरह किया गया है। तुम कुछ कहते हो, तुम उसे स्वीकार करते हो, पर तुम्हें दावेके साथ कहनेका क्या अधिकार है? चूंकि तुम स्वीकार करते हो इसलिये इस निर्णयपर पहुंचते हो: "चूंकि वह यह है, तो फिर यह कैसे हुआ कि यह ऐसा है?" लेकिन "वह ऐसा है", यह तो तुम्हारा अपना कथन है, इसका यह अर्थ नहीं है कि वह ऐसा है ही!

समस्याका केवल एक समाधान है — उद्गममें भगवान् और सृष्टिमें कोई भेद न करो। विश्व देशमें प्रक्षिप्त भगवान् है और भगवान् अपने उद्गममें सृष्टि हैं। यह एक या दूसरे पहलूसे वही बात हुई। तुम उसका विभाजन नहीं कर सकते। यह "स्रष्टा" और उसके "कार्य" के विचारसे विपरीत है। बात यह है कि स्रष्टा और उसके कार्यके बारेमें बोलना बहुत सुविधाजनक है, यह व्याख्याको बहुत सरल बना देता है और शिक्षाको बहुत प्रारंभिक, पर यह सत्य नहीं है। और तब तुम कहते हो: "यह कैसी बात है कि भगवान्‌ने जो सर्वशक्तिमान् है, संसारको इस तरह होने दिया?" — लेकिन यह तो तुम्हारी अपनी धारणा है। चूंकि तुम अपने-आप ऐसी परिस्थितियोंके चक्रमें हो जो तुम्हें अप्रीतिकर लगती हैं। अतः तुम उसे भगवान्‌पर प्रक्षिप्त करते हो और उनसे कहते हो: "तुमने ऐसा संसार क्यों बनाया?" — "मैंने नहीं बनाया उसे। यह तो स्वयं तुम हो। और अगर तुम फिरसे 'मैं' बन जाओ तो तुम्हें ऐसा न लगेगा जैसा अभी लग रहा है। तुम्हें जैसा लग रहा है उसका कारण यही है कि अब तुम 'मैं' नहीं रहे," भगवान् तुम्हें यह उत्तर दे सकते हैं। और तथ्य यह है कि जब तुम अपनी चेतनाको भागवत चेतनाके साथ एक कर देनेमें सफल हो जाते हो तो फिर कोई समस्या ही नहीं रह जाती। हर चीज बिलकुल स्वाभाविक, सरल और उचित प्रतीत होती है, ठीक वैसी ही जैसी होनी चाहिये। लेकिन जब तुम अपने-आपको मूल-स्रोतसे अलग करके भगवान्‌के विरुद्ध खड़े होते हो तो फिर सब कुछ बुरी तरह चलता है, कोई चीज ठीक नहीं हो पाती!

लेकिन अगर तुम एक ऐसा तर्क ले आओ जो चीजोंको अंतिम छोरतक ले जाता है तो तुम पूछते हो कि भगवान्‌ने यह कैसे सह लिया कि उन्हींके अपने अंश उनसे अलग हो जायं और यह सारी अव्यवस्था पैदा हो? तुम यह कह सकते हो। तब मेरा उत्तर होगा: "अगर तुम जानना चाहते हो

तो ज्यादा अच्छा यही होगा कि अपने-आपको भगवान्‌के साथ एक कर लो क्योंकि यही एकमात्र उपाय है यह जाननेका कि उन्होंने यह सब क्यों किया है।" तुम उनसे मानसिक प्रश्न करके उत्तर नहीं पा सकते, क्योंकि तुम्हारा मन इसे नहीं समझ सकता। और मैं फिरसे कहूंगी, जब तुम ऐसे तादात्म्य-तक पहुंचोगे तो सब प्रश्न हल हो जायेंगे। और यह भाव कि चीजें ठीक नहीं हैं, उन्हें और तरहसे होना चाहिये, इसीलिये आता है क्योंकि भगवान्‌की इच्छा है कि सतत प्रगतिमें सदा उन्मीलन होता रहे और जो चीजें थीं उन्हें जो चीजें होंगी उनको अपना स्थान दे देना चाहिये और जो होंगी वे जो थीं उनसे ज्यादा अच्छी होंगी। और जो संसार विगत कल अच्छा था वह आगामी कलके लिये अच्छा न होगा। समस्त जगत् जो एक समय पूरी तरह समस्वर और पूर्ण दीख सकता था, हां, वही आज बेमेल है, अब समस्वर नहीं लगता, क्योंकि अब हम एक ज्यादा अच्छे जगत्‌की संभावना देख सकते हैं। अगर हमें यह ठीक ही लगता तो हम वह न करते जो हमें करना चाहिये, यानी, इसे ज्यादा अच्छा बनानेके लिये जिस प्रयासकी जरूरत है वह न करते।

एक समय आता है जब ये सब धारणाएं इतनी बचकानी लगती हैं! और यह केवल इसी कारण होता है क्योंकि हम अपने अंदर बंद रहते हैं। इस चेतनाके साथ जो तुम्हारी अपनी है, जो अनंत विस्तारमें बालूके एक दानेके समान है। तुम अनंतको जानना और उसका मूल्यांकन करना चाहते हो? यह असंभव है। सबसे पहले तुम्हें अपने अंदरसे निकलना होगा और फिर अनंतके साथ तादात्म्य साधना होगा। उसके बाद ही तुम यह समझना शुरू कर सकते हो कि यह क्या है, उससे पहले नहीं। तुम अपनी चेतनाको प्रक्षिप्त करते हो — तुम जो कुछ हो, तुम जो विचार करते हो, तुम्हारे अंदर समझनेकी जो शक्ति है — तुम इन सबको भगवान्‌पर प्रक्षिप्त करके कहते हो: "यह सब गलत है।" मैं भलीभांति समझती हूं! लेकिन जाननेकी तबतक कोई संभावना नहीं है जबतक तुम तादात्म्य न साध लो। मैं नहीं देखती, उदाहरणके लिये, कि कैसे पानीकी एक बूंद तुम्हें यह बता सकती है कि समुद्र क्या है। यह ऐसी ही बात है।

"जब कोई मनुष्य शरीर स्वीकार करता है तो वह उसके साथ-ही-साथ इन व्यापक सुझावोंके ढेरको भी स्वीकार लेता है: जातीय विचार, मनुष्यके जातीय संवेदन, संगति, आकर्षण, विकर्षण, भय।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (३० जून)

जब आदमी मानव शरीर ग्रहण करता है तो क्या यह जरूरी है कि वह भयके सुझावोंको भी स्वीकार करे?

यह आवश्यककी अपेक्षा अनिवार्य ज्यादा मालूम होता है!... तुम्हें यह पता भी नहीं चलता कि तुम उन्हें स्वीकार कर रहे हो। हमने उस दिन कहा था कि जब कोई चैत्य पुरुष किसी शरीरमें प्रवेश करता है तो मानों वह अपने सिरके बल गिरता है — वह कुछ समयके लिये एकदम सुन्न-सा हो जाता है। उस कालमें वह बिना जाने इन सुझावोंके प्रभावमें रहता है। परंतु जागते ही वह उनसे बाहर निकल सकता है: इन सुझावोंको स्वीकारना बिलकुल जरूरी नहीं है। लेकिन व्यक्तिको यह जानना चाहिये कि ये सुझाव हैं। व्यक्तिको अपने-आपको विरुद्ध मानव चेतना, दैहिक चेतनासे अलग कर सकना चाहिये। और एक बार तुम उसे ऊपरसे देख सको तो तुम अपने-आपको सुझावोंसे भली-भांति मुक्त कर सकते हो। तुम अपने-आपको सभी सुझावोंसे मुक्त कर सकते हो, लेकिन इसके लिये तुम्हें उनसे ऊपर उठना होगा। अगर यह संभव न होता तो योग करना असंभव होता।

लेकिन तुम इसके बारेमें अवगत नहीं होते, यह निरंतर वस्तु है। उदाहरणके लिये, मृत्युका सामूहिक भयंकर सुझाव। लेकिन तुम इस विचारसे कैसे मुक्त हो सकते हो जबतक कि अपने अंदर अमर चेतना न पैदा कर लो? एक बार तुम अपने अंदर अमर चेतना पैदा कर लो तो तुम इस सुझावसे छुटकारा पा सकते हो, अन्यथा यह संभव नहीं है। और तुम उसके बारेमें अवगत नहीं हो क्योंकि तुम उसमें सामान्य रूपसे रहते हो — तुम मानव जातिकी गतिविधि और विचारोंसे भरे होते हो, जो तुम्हारे निजी हरगिज नहीं है। तुम उसके बारेमें अवगत नहीं होते क्योंकि वह तुम्हारी चेतनाके साथ बहुत घनिष्ठतासे जुड़ा होता है। लेकिन जिस क्षण तुम अपने-आपको इस मानव चेतनासे मुक्त कर सको और किसी ऐसे क्षेत्रमें प्रवेश कर सको जहां, उदाहरणके लिये, शरीरका जीवन एक संयोग-सा बन जाता है — वह यहां हो सकता है, वहां हो सकता है, वह और आगे उधर हो सकता है — तब तुम शरीरके साथ बंधे नहीं रहते। तुम उसे देखते हो और कहते हो: "यह तो एक संयोग है" (हो सकता है कि तुमने उसे चुना हो, पर बहुधा वह संयोग ही होता है)। उस क्षणसे तुम बंधे नहीं रहते क्योंकि अब तुम एक ऐसी सत्ताके प्रति सचेतन होते हो जो केवल, ऐकांतिक रूपसे मानव नहीं रही। लेकिन उस क्षणतक अवगत भी नहीं होते। तुम्हारे पास अवगत होनेका कोई उपाय भी नहीं होता। और अगर तुम शुद्ध रूपसे मानसिक क्षेत्रमें आओ, वहां ऐसे दृढ़ विचार होते हैं, उदाहरणके

लिये, अनंत सांतमें नहीं रह सकता, कि जिसका आरंभ है उसका अंत अवश्य होगा — ऐसे विचार जो आश्चर्यजनक रूपसे प्रकाशमान प्रतीत होते हैं, पर हैं मूर्खतापूर्ण। लेकिन यह सब सामूहिक मानव मनकी चीजें हैं और जो लोग अपने-आपको बहुत होशियार समझते हैं उनके दिमागमेंसे ऐसी बातोंको निकालनेसे बढ़कर कठिन कुछ नहीं है। शायद तुमने अभीतक ऐसी समस्याएं अपने सामने नहीं रखी हैं क्योंकि तुमने अभीतक दर्शनशास्त्र पढ़ना शुरू नहीं किया। जब शुरू करोगे तब देखोगे। और ये बातें तुम्हें अमर सत्यके रूपमें दी जायंगी जिन्हें तुम हाथ भी नहीं लगा सकते। पर है यह मूर्खतापूर्ण। एक दिन मैं चाहूंगी ... (मलिमीकी ओर मुड़कर) तुम्हारे पास यहांपर 'ऐडवेंट' नहीं है? श्रीअरविन्दका वह वचन 'ऐडवेंट' में है। एक दिन हम लोग मिलकर उसका फरासीसीमें अनुवाद करेंगे। उन्होंने वहां तर्कशास्त्र और तर्कबुद्धिपर अद्‌भुत टिप्पणी की है...।[1] यह सब तुम्हारे दिमागमें नहीं घुसा: कि ये सब सामूहिक सुझाव हैं और व्यक्तिको इनके बाहर निकल आना चाहिये। न सिर्फ यह कि यह तुम्हें दासताके रूपमें नहीं दीखता, बल्कि यह प्रकाशके रूपमें दीखता है। लेकिन यह वह बिलकुल नहीं है!

मां, कभी-कभी हमें बहुत अधिक भय लगता है। ऐसी हालतमें हमें क्या करना चाहिये?

आह! यह भयके प्रकारपर निर्भर है। यह अकारण भय होता है या किसी कारणपर आधारित होता है? क्योंकि इलाज भिन्न होता है।

यह किसी कारणपर आधारित होता है।

ओ! जैसे जब कोई बीमार हो तो तुम्हें डर लगता है कि तुम्हें भी बीमारी न लग जाय ...

---

[1] शायद माताजीका इशारा अगस्त ५३ के 'ऐडवेंट' में छपे हुए श्रीअरविन्दके इस सूत्रकी ओर था:

"तर्कशास्त्र 'सत्य'का सबसे बुरा दुश्मन है, जैसे दंभ सद्‌गुणोंका सबसे बुरा दुश्मन है: क्योंकि एक अपनी भूलें नहीं देख सकता और दूसरा अपनी अपूर्णताएं।"

(विचार और सूत्र: शताब्दी ग्रंथ, खंड १७, पृ० ४५)

नहीं, कोई मर गया हो।

और तुम्हें मरनेका डर लगता है।

दो उपाय हैं। वैसे बहुत-से हैं पर कम-से-कम दो तो हैं ही। लेकिन हर हालतमें ज्यादा गहरी चेतनाका उपयोग जरूरी है। एक इलाज यह है कि तुम यह करो कि यह ऐसी चीज है जो हर एकके साथ होती है (हम इसी स्तरपर लें), हां, यह ऐसी चीज है जो एकके साथ होती है इसलिये जल्दी हो या देरमें, वह आयेगी, इसलिये इससे डरनेका कोई कारण नहीं, यह बिलकुल सामान्य बात है। तुम इसमें एक और विचार भी जोड़ सकते हो कि अनुभवके अनुसार (तुम्हारे नहीं बल्कि सामूहिक मानव अनुभवके अनुसार), समान परिस्थितियोंमें, एकदम समान परिस्थितियोंमें, एक ओर लोग मरते हैं और दूसरी ओर नहीं मरते। क्यों? अगर तुम बातको और जरा आगे बढ़ाओ तो तुम अपने-आपसे कहोगे कि आखिर यह किसी ऐसी चीजपर निर्भर होगी जो व्यक्तिकी चेतनाके बिलकुल बाहर है — और अंतमें उसे जब मरना होता है तब वह मरता है। बस, जब व्यक्तिको मरना होता है तब वह मरता है, जब नहीं मरना होता तो नहीं मरता। तुम भले प्राणघातक संकटमें हो, अगर तुम्हारे मरनेका समय नहीं आया है तो तुम नहीं मरोगे, दूसरी ओर, तुम भले सब संकटोंसे परे हो, पांवमें जरा-सी खेंख भी तुम्हें मारनेके लिये काफी हो सकती है, ऐसे लोग हैं जो पैरपर पिनकी खरोंच लगनेके कारण मर गये, क्योंकि समय आ गया था। इसलिये, भयका कोई अर्थ नहीं है। तुम जो कर सकते हो वह यह है — अपने-आपको एक ऐसी चेतनामें ऊपर उठा लो जहां तुम कह सको: "बात ऐसी है, हम इस तथ्यको स्वीकारते हैं, क्योंकि ऐसा लगता है कि इसे अनिवार्य तथ्यके रूपमें स्वीकार कर लिया गया है। लेकिन मुझे चिंता करनेकी कोई जरूरत नहीं क्योंकि वह तभी आयेगी जब उसे आना चाहिये। इसलिये मुझे डरनेकी जरूरत नहीं: जब उसे नहीं आना है तब वह मेरे पास नहीं आयेगी, लेकिन जब उसे मेरे पास आना होगा तब आयेगी। और चूंकि वह अनिवार्य रूपसे मेरे पास आयेगी, ज्यादा अच्छा यही है कि मैं उससे न डरूं; इसके विपरीत, जो चीज बिलकुल स्वाभाविक है उसे स्वीकार करना चाहिये।" यह सुपरिचित उपचार है, यानी, इसका बहुत उपयोग होता है।

एक और उपचार है, कुछ ज्यादा कठिन, पर मेरा ख्याल है, ज्यादा अच्छा। इसमें अपने-आपसे कहना होता है: "यह शरीर मैं नहीं हूं।" और अपने अंदर उस भागको जाननेकी कोशिश करनी होती है जो सच-

मुच हमारा "अपनापन" है जबतक कि चैत्य पुरुष न मिल जाय। और जब चैत्य पुरुष मिल जाय तो — तुरंत, समझे — अमरताका भान होता है। और व्यक्ति यह जान लेता है कि जो बाहर जाता या अंदर आता है वह केवल सुविधाकी बात है। "मैं उन जूतोंके लिये रोने नहीं बैठूंगा जो छेदोंसे भरे पड़े हैं। जब मेरी जूतोंकी जोड़ी घिस जाती है तो मैं उसे फेंक देता हूं और रोना-धोना नहीं करता।" हां, तो चैत्य पुरुषने यह शरीर इसलिये धारण किया है क्योंकि उसे अपने कामके लिये इसकी जरूरत थी, लेकिन जब शरीर छोड़नेका समय आता है, यानी, जब उसे छोड़ना जरूरी होता है, वह किसी-न-किसी कारणसे उपयोगी नहीं रहता तो व्यक्ति शरीर छोड़ देता है। उसके लिये कोई डर नहीं होता। यह एक स्वाभाविक क्रिया होती है — और जरा भी पछतावेके बिना की जाती है। बस खतम।

और जिस क्षण तुम अपने चैत्य पुरुषमें होते हो, उसी क्षण तुम्हारे अंदर यह भाव बिना प्रयासके सहज रूपमें आ जाता है। तुम भौतिक जीवनसे ऊपर उठ जाते हो और तुम्हें अमरताका बोध होता है। मैं, मैं तो इसी-को सच्चा इलाज मानती हूं। दूसरा बौद्धिक, सहज बुद्धिका युक्तियुक्त उपाय है। यह एक गहरी अनुभूति और तुम इसे हमेशा वापिस पा सकते हो — जैसे ही तुम चैत्य पुरुषके साथ फिरसे संपर्क कर सको। यह सचमुच बहुत मजेदार घटना है, क्योंकि यह अपने-आप होती है। जिस क्षण चैत्य पुरुषके साथ तुम्हारा संपर्क होता है उसी क्षण तुम्हें अमरताकी प्रतीति होती है, यह लगता है कि तुम हमेशासे रहे हो, हमेशा शाश्वत रूपसे रहनेका अनुभव। और तब जो कुछ आता-जाता है — ये बस जीवनके संयोग होते हैं जिनका कोई महत्त्व नहीं। हां, यही सबसे अच्छा उपाय है। दूसरा ऐसा है जैसे बन्दी जेलको स्वीकार करनेके लिये अच्छी-अच्छी युक्तियां ढूंढे। यह उस व्यक्तिकी तरह है जिसके लिये अब कोई कारा नहीं रही।

हां, अब एक तीसरी चीज भी है जिसे तुम्हें जानना चाहिये। लेकिन इसके लिये तुम्हें महायोगी होना चहिये। इसका अर्थ है यह जानना कि मृत्यु कोई अनिवार्य चीज नहीं है, यह एक ऐसा संयोग है जो अभीतक होता रहा है (ऐसा लगता है कि यह अभीतक हमेशा ही होता रहा है), कि हमने अपने मस्तिष्कमें, अपने संकल्पमें यह ठान लिया है कि इस संयोगको जीतकर, इसपर विजय पाकर रहेंगे। लेकिन यह भयंकर है, प्रकृतिके विधानके विरुद्ध, समस्त सामूहिक सुझावों, समस्त पार्थिव अभ्यासोंके विरुद्ध घोर संग्राम है। जैसा कि मैंने कहा, जबतक तुम प्रथम

कोटिके योद्धा नहीं हो जिसे कोई नहीं डरा सकता, तबतक इस संग्रामको शुरू न करना ही ज्यादा अच्छा है। तुम्हें पूर्ण रूपसे निर्भीक योद्धा होना चाहिये, क्योंकि हर पगपर तुम्हें सभी स्थापित वस्तुओंके विरुद्ध युद्ध करना होगा। तो यह बहुत आसान चीज नहीं है। और व्यक्तिके रूपमें भी, यह स्वयं अपने विरुद्ध संग्राम है; क्योंकि (मेरा ख्याल है कि मैं तुम्हें एक बार पहले भी बता चुकी हूं), अगर तुम चाहो कि तुम्हारी भौतिक चेतना ऐसी स्थितिमें हो जो भौतिक अमरताको स्वीकार करे तो तुम्हें इतनी हद-तक उन सब चीजोंसे स्वाधीन होना चाहिये जो अभी भौतिक चेतनाका प्रतिनिधित्व करती हैं, तब यह हर क्षणका युद्ध हो जाता है। सभी संवेदन, सभी अनुभूतियां, सभी विचार, सभी प्रतिक्रियाएं, सभी आकर्षण, सभी विकर्षण, सभी वर्तमान वस्तुएं, वह सब कुछ जिससे हमारे भौतिक जीवनका ताना-बाना बना है, उस सबको जीतना होगा, उसे रूपांतरित करना होगा और पुरानी आदतोंसे मुक्त करना होगा। यह हर क्षण लाखों-करोड़ों शत्रुओंके साथ युद्ध होगा। जबतक तुम यह न अनुभव करो कि तुम वीर हो तबतक ज्यादा अच्छा यही है कि प्रयास न करो। क्योंकि यह समाधान, हां, तो... पता नहीं, मुझे लगता है कि पहले भी मुझसे यह प्रश्न पूछा गया था कि क्या अभीतक इसमें कोई सफल हुआ है? सच कहूं तो मुझे नहीं मालूम, क्योंकि मैंने अभीतक ऐसा व्यक्ति नहीं देखा...। मुझे ऐसा नहीं लगता कि अभीतक कोई सफल हुआ हो। परंतु यह संभव है। सिर्फ जिस किसीने सफलता पायी है उसने घोषणा नहीं की, कम-से-कम अभीतक।

बाकी दो समाधान निश्चित हैं, वे तुम्हारी पहुंचके भीतर भी हैं। अब एक छोटा-सा इलाज है जो बहुत सरल है, क्योंकि यह सहज-बुद्धिके एक छोटे-से निजी प्रश्नपर आधारित है...। तुम्हें जरा अवलोकन करना चाहिये और कहना चाहिये कि जब तुम डरते हो तो मानों तुम्हारा डर उस चीजको खींच रहा है जिससे तुम डरते हो। अगर तुम बीमारीसे डरते हो तो मानों तुम बीमारीको खींचते हो। अगर तुम किसी दुर्घटनासे डरते हो तो मानों तुम दुर्घटनाको आकर्षित करते हो। और अगर तुम अपने अंदर और अपने चारों ओर जरा नजर डालो तो तुम यह जान लोगे, यह एक अटल सत्य है। तो अगर तुम्हारे अंदर जरा भी सहज-बुद्धि है तो तुम कहोगे: "किसी चीजसे डरना मूर्खता है। यह तो ठीक वैसा है मानों मैं उसे अपने पास आनेके लिये इशारा कर रहा हूं। अगर मेरा कोई दुश्मन होता जो मेरी हत्या करना चाहता तो मैं जाकर उससे यह न कहता: 'जानते हो, मैं ही हूं जिसकी तुम हत्या करना चाहते हो!'" यह

कुछ वैसी ही बात है। इसलिये, चूंकि डर बुरा है इसलिये हम उसे न रखेंगे। अगर तुम यह कहो कि तुम उसे तर्क करके रोक नहीं सकते तो इससे यह प्रकट होता है, कि तुम्हें अपने ऊपर अधिकार नहीं है और तुम्हें अपने-आपको वशमें करनेके लिये कुछ प्रयास करना चाहिये। बस यही है।

हां, अपने-आपको भयसे मुक्त करनेके बहुत-से तरीके हैं। लेकिन वास्तवमें हर एक अपना ही तरीका खोज निकालता है, ऐसा तरीका जो उसके लिये अच्छा है। ऐसे लोग हैं जिनसे तुम्हें बस इतना कहना होता है। "तुम्हारा भय एक दुर्बलता है," और वे तुरंत उसे अपमानकी दृष्टिसे देखनेका तरीका खोज लेंगे, क्योंकि उन्हें दुर्बलतासे घृणा होती है। कुछ और लोग ऐसे होते हैं कि तुम उनसे कहो : "भय विरोधी शक्तियोंका सुझाव है, तुम्हें उसे दूर ढकेल देना चाहिये जैसे तुम विरोधी शक्तियोंको धकियाते हो," और यह बहुत असर करता है। हर एकके लिये अलग तरीका है। लेकिन सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि भय बहुत बुरी चीज है, बहुत बुरी। वह द्रावक है, वह अम्लकी तरह है। अगर तुम उसकी एक बूंद भी किसी चीजमें डालो तो वह उसके द्रव्यको खाने लगता है। पहली चीज है भयकी संभावनाको ही अस्वीकार करना। हां, यह पहला कदम है, मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो अपने भयके बारेमें शेखी बघारते थे। उन्हें ठीक करना असंभव था। यानी, स्वाभाविक रूपसे वे कहेंगे : "आह, जरा कल्पना करो, मैं कितना डर गया था।" और तब फिर? यह कोई गर्व करनेकी चीज नहीं है। ऐसे लोगोंके साथ तुम कुछ नहीं कर सकते।

फिर भी, एक बार तुम जान लो कि भय न तो जरा-सी आलोकित चेतनाके लिये अच्छा है, न उसके अनुकूल है, न उदात्त है न उसे शोभा ही देता है, तो तुम उसके विरुद्ध लड़ना शुरू करते हो और मैं कहती हूं : "एकका रास्ता दूसरेका रास्ता नहीं होता। हर एकको अपना-अपना रास्ता खोजना चाहिये, यह हर एकपर निर्भर है।" भय बहुत ज्यादा सामूहिक छूतकी चीज है, सबसे अधिक छूतकी बीमारियोंसे भी ज्यादा लगनेवाली। तुम भयके वातावरणमें सांस लो और क्यों और कैसे जाने बिना ही तुम्हें डर लगने लगता है, कुछ भी नहीं, केवल इसीलिये कि भयका वातावरण था। किसी दुर्घटनाके बाद फैलनेवाला आतंक, हर एकके चारों ओर फैलनेवाले भयके वातावरणके सिवा कुछ नहीं है। और इसे ठीक करना संभव है। ऐसे बहुत-से उदाहरण हैं जहां आतंकको एकदमसे बंद किया जा सका, क्योंकि कुछ लोगोंने उसके सुझावको स्वीकारनेसे इंकार किया और उलटे सुझाव देकर उसे व्यर्थ कर

दिया। रहस्यवादियोंके लिये सबसे अच्छा इलाज यह है कि जैसे ही किसी चीजका डर लगने लगे, बस भगवान्‌के बारेमें सोचें और उन्हींकी भुजाओंमें या उनके चरणोंसे चिपट जायं और भीतर या बाहर होनेवाली हर चीजकी जिम्मेदारी उन्हींके ऊपर छोड़ दें — भय तत्काल गायब हो जायगा। रहस्यवादीका इलाज यही है। यह सबसे सरल है। लेकिन हर एक रहस्यवादी होनेकी कृपाका रस नहीं लेता।

कभी-कभी हमारे अंदर कुछ गुप्त शक्तियां होती हैं जिनके बारेमें हमें पता नहीं होता। कोई काम करनेके लिये यह कैसे पता लगे कि हम उसके योग्य हैं या नहीं?

यह कैसे जाना जाय कि हम उसे करनेके योग्य हैं या नहीं! कोशिश करके देखनेसे। यही सबसे अच्छी चीज है। और अगर तुम तुरंत सफल न होओ तो लगे रहो। तुम्हें यह जानना चाहिये कि यदि तुम्हारे अंदर कुछ करनेकी प्रबल प्रेरणा आती है, बहुत प्रबल प्रेरणा तो इसका मतलब है कि इस कामके साथ तुम्हारा कुछ संबंध है और तुम उसे करने योग्य हो। लेकिन तुम्हारे अंदर शक्तियां इतनी अच्छी तरह छिपी रह सकती हैं कि उन्हें पानेसे पहले बहुत खोदना पड़ता है। इसलिये तुम्हें पहली बाधासे ही हतोत्साह न हो जाना चाहिये। तुम्हें लगे रहना चाहिये।

२१ अक्तूबर, १९५३

जब कोई सच्चा कलाकार एकाग्र होता है और अपने अंदर भगवान्‌को देखता है तो क्या वह कलाका उपयोग भगवान्‌को अभिव्यक्त करनेके लिये कर सकता है?

क्यों नहीं? सबसे पहले यह बताओ, तुम कलाकार कहते किसे हो? कोई चित्रकार, मूर्तिकार — बस यही? और बस? तुम कलाकार शब्दका क्या अर्थ करते हो? जब तुम कलाकार कहते हो तो किसके बारेमें सोचते हो? चित्रकार या मूर्तिकारके बारेमें?

जो आलेखन करता हो।

हां, चित्रकार, नक्शानवीस, यह एक ही बात हुई। चित्रकार या मूर्तिकारके बारेमें, बस? चित्रकार या मूर्तिकार? किसी संगीतकार या लेखक या...। मैं इसलिये पूछ रही हूं क्योंकि उदाहरणके अनुसार उत्तर भिन्न होगा।

मैंने नक्शानवीसके बारेमें सोचा था।

उदाहरणके लिये, मध्ययुगोंमें — ये आज भी हैं, पर मध्ययुगोंमें भी थे — ऐसे लोग थे जो रंगीन कांचकी खिड़कियां बनाते थे। रंगीन कांचके टुकड़ोंसे भिन्न-भिन्न आकारके बहुत तरहके चित्र बनाते थे। गिरजाघरों और धर्मपीठोंमें हमेशा रंगीन कांचकी खिड़कियां होती थीं। साधारण खिड़कियोंकी जगह रंगीन कांच लगाये जाते थे जिनसे आकार बनते थे। यह अद्‌भुत चीज होती है। उनके पीछे धूप होती है (या कम-से-कम पूरी रोशनी होती है), और ये कांच पारदर्शक होते हैं। उनमेंसे ऐसा रंग निकलता था मानों वह अपने-आप चमक रहा हो। और ये लोग आकार बनाते थे। इन कटे हुए रंगीन कांचोंसे चित्र बनाते थे — विशेष आकारोंमें, भिन्न-भिन्न रंगोंमें। और वह सचमुच कला थी। सभी धर्मपीठोंमें, बड़े गिरजाघरोंमें, रंगीन कांचकी खिड़कियां होती थीं। उनमेंसे कुछ सचमुच बहुत सुंदर होती थीं। और, उदाहरणके लिये, उनमें किसी संतकी जीवनी या ईसाके जीवनके दृश्य या...इसी तरहकी बहुत-सी चीजें चित्रित होती थीं।

तो तुम्हारा प्रश्न क्या है? उसे स्पष्ट करो।

क्या स्वयं भगवान्‌को अभिव्यक्त किया जा सकता है?

क्या स्वयं भगवान्‌को कलामें अभिव्यक्त किया जा सकता है? लेकिन भगवान्‌को किसमें अभिव्यक्त किया जा सकता है? मेरा मतलब यह है कि जब तुम कहते हो "भगवान्‌को व्यक्त करना" तो इससे तुम्हारा क्या आशय है? शब्दोंमें? शिक्षामें? अंततः पुस्तकोंमें? या फिर कैसे? तुम भगवान्‌को पूरी तरह भौतिक जगत्‌में कैसे अभिव्यक्त करते हो? जब भौतिक जगत्‌का रूपांतर हो जायगा तभी भगवान्‌को शुद्ध रूपमें प्रकट करना संभव होगा। मैं नहीं देखती कि कलामें या किसी अन्य क्रियामें क्या

अंतर हो सकता है। यह एक ऐसी चीज है जिसमें मिल जानेकी क्षमता है, लेकिन पूरी तरह नहीं। और वह रूप देनेवाला यंत्र बनी रहती है (इसे कैसे कहा जाय?) और रूप चाहे जैसा भी हो, इससे क्या फर्क पड़ता है — मुझे नहीं दीखता। अगर एक भगवान्‌को शब्दोंके द्वारा अभिव्यक्त करता है तो एक रंगोंके द्वारा अभिव्यक्त करता है, एक ध्वनिके द्वारा अभिव्यक्त करता है तो कोई दूसरे रूपके द्वारा प्रकट करता है। लेकिन इनमेंसे कोई भी अभिव्यंजना पूर्ण नहीं होती, क्योंकि ऐक्य पूर्ण नहीं होता। लेकिन जब जगत्‌का रूपांतर हो जायगा और भगवान् बिना विकृत हुए अपने-आपको अभिव्यक्त कर सकेंगे तो अभिव्यंजना भी पूर्ण होगी। लेकिन अभी तो सभी अभिव्यंजनाएं एक ही स्तरपर हैं। उनमेंसे कोई भी किसी औरसे (मेरा मतलब, अपने-आपमें) अच्छी नहीं है। जो कुछ अभिव्यक्त किया जा रहा है उसमें हमेशा मानव व्यक्तित्वका, रूप-सत्ताका कुछ-न-कुछ बना रहता है जो विकृति लाता है और सीमित करता है।

कला अन्य क्रियाओंकी तरह एक क्रिया है। सच पूछो तो मैं जरा ज्यादा सभ्य थी इसलिये उस महिला[1] से तो नहीं कहा पर अपने-आप सोचा: "तुम इस प्रकारके भेद क्यों करती हो? यह सब एक ही है।" तुम समझे मैं क्या कहना चाहती हूं?

जब कोई भगवान्‌के साथ तादात्म्य पा लेता है तो क्या वह उन्हें उस रूपमें देखता है जिस रूपके बारेमें वह सोचता है कि यही उनका रूप है?

सामान्यतः। उन्हें तटस्थ होकर विषयनिष्ठ रूपमें देखना बहुत ही विरल है, जबतक कि कोई अपनी मानसिक रचनाओंसे पूरी तरह छुटकारा न पा ले; तबतक यह बहुत ही विरल है। इसके अतिरिक्त, श्रीअरविंद हमेशा कहा करते थे कि भगवान्‌के साथ संबंध इस बातपर निर्भर है कि तुम कैसा संबंध चाहते हो। हर एक एक खास तरहके संबंधके लिये अभीप्सा करता है और उसके लिये संबंध वही रूप ले लेता है।

तब सत्य क्या है?

---

[1] जिसने २८ जुलाई, १९२९ को यह प्रश्न पूछा था।

शायद ऐसी चीज जो रूपसे पूरी तरह बच निकलती है या जो सब प्रकारके रूप धारण कर सकती है। भगवान्‌की अभिव्यक्तिके लिये कोई सीमा नहीं है। वे अपने-आपको बिना किसी रूपके अभिव्यक्त कर सकते हैं और वे अपने-आपको सभी रूपोंमें अभिव्यक्त कर सकते हैं। और वे हर एकमें उसकी आवश्यकताके अनुसार अभिव्यक्त होते हैं। क्योंकि अगर कोई भगवान्‌के साथ पूर्ण तादात्म्य प्राप्त करनेके लिये काफी निर्वैयक्तिक बन जाय तो उस क्षण वह उन्हें अभिव्यक्त न कर सकेगा और जैसे ही वह अभिव्यक्त करने योग्य अवस्थामें होगा कि वहां उसका सीमित व्यक्तित्व भी आ जायगा और अनुभूतिको इसमेंसे गुजरना होगा। अनुभूतिका क्षण एक चीज है और उसकी अभिव्यक्ति और ही चीज है। ये एक साथ हो सकती हैं: ऐसे लोग हैं जो अनुभूतिके साथ ही, जो अनुभव करते हैं उसे किसी-न-किसी रूपमें अभिव्यक्त कर सकते हैं। तब दोनों साथ-साथ होती हैं। लेकिन यह बात, जो शुद्ध रूपमें अनुभूति प्राप्त कर रहा है और उसे अभिव्यक्त कर रहा है, उन दोनोंको सत्ताके दो काफी भिन्न प्रकार होनेसे नहीं रोकती। और यह भेद इतना काफी होता है कि व्यक्ति सचाईके साथ कह सकता है कि भगवान् बने बिना भगवान्‌को जानना असंभव है।

रही बात अभिव्यक्तिकी, तो उसमें हमेशा स्थानांतरण होता रहता है। उसकी वजहसे हमेशा कुछ-कुछ ऐसा (स्तर बदलनेका संकेत) होता रहता है, अभिव्यक्तिका प्रकार चाहे कोई क्यों न हो।

केवल एक ही क्षेत्र बचा है जहां अनुभूति पूरी तरहसे प्राप्त नहीं हुई है और वह है शुद्ध रूपसे भौतिक क्षेत्र। और वहां, यह प्रश्न उठ सकता है, यदि सचमुच भागवत चेतना शरीरमें उतरे तो क्या वह रूपांतर वहांपर समग्र अभिव्यक्तिकी संभावनाके लिये काफी नहीं होगा ...। लेकिन वह तो आनेवाला है, अभी आया नहीं है। और जबतक यह हो न जाय तब-तक कुछ नहीं जाना जा सकता। क्योंकि उच्चतम मानसिक अभिव्यक्तिमें भी कुछ चीज भौतिक शरीरके कारण हस्तक्षेप करती है। उदाहरणके लिये, प्रेरणाको सीधा कागजतक पहुंचनेके लिये, हर चीजके होते हुए, बहुत अधिक भौतिक स्पंदनोंमेंसे आना पड़ता है और इससे वह बदल सकती है। लेकिन अगर ये स्पंदन ही रूपांतरित हो जायं, तो उस हालतमें यह संभव है कि बाहरी अभिव्यक्ति भीतरीके साथ पूरी तरह एकरूप हो; यानी, दैहिक अभिव्यक्ति भागवत सार-तत्त्वकी सच्ची अभिव्यक्ति बन जाय।

बस यही है?

क्या रामायण और महाभारतकी घटनाएं सच्ची नहीं हैं?

सच्ची, किस अर्थमें? क्या सचमुच धरतीपर ऐसा हुआ था? हनुमान और दूसरे बंदर आदि...? (हंसी) मैं नहीं कह सकती। मुझे लगता है कि यह प्रतीकात्मक है। उदाहरणके लिये, जब तुम हनुमानकी बात करते हो तो हनुमान विकसनशील मानवके प्रतीक हैं और राम अंतर्लयात्मक सत्ताके, जो ऊपरसे आती है। परंतु...

विकसनशील और अंतर्लयात्मक सत्ताओंसे आपका क्या मतलब है?

विकसनशील सत्ता वह है जिसमें पशुकी अवस्थिति है, पशुका ही क्रम है जब कि दूसरी, उच्चतर लोकोंसे आयी हुई सत्ता है जिसने धरतीके रचे जानेके समय मूर्त रूप लिया था। वह नीचेसे नहीं आती, वह ऊपरसे आती है। लेकिन विकसनशील सत्तामें वह केंद्रीय प्रकाश होता है जो चैत्य पुरुषका प्रारंभ है, जो विकसित होकर चैत्य पुरुष बनेगा। और जब चैत्य पुरुष पूरी तरह बन जाय तो एक ऐसा क्षण आता है जब वह ऊपरसे आयी हुई सत्ताके साथ जो उसमें अवतार ले सकती है, एक हो सकता है। तो यह ऊपरसे आयी हुई सत्ता जो चैत्य पुरुषमें अवतार लेती है, अंतर्लयात्मक सत्ता है — अधिमानस लोक या कहीं औरकी सत्ता।

बस?

क्या अनातोल फ्रांसका 'जोंग्लर' कलाकार था?

मुझे नहीं मालूम, यह निर्भर है (मैंने पारुलसे ठीक यही पूछा था), यह निर्भर है तुम्हारी "कलाकार" शब्दकी परिभाषापर।

अगर तुम मुझसे पूछो तो मेरा तो यह ख्याल है कि जो कोई भी कलात्मक चीज पैदा करते हैं वे सब कलाकार हैं! शब्द इसपर निर्भर है कि उसका उपयोग कैसे किया जाता है, उसमें क्या रखा जाता है। तुम उसमें जो कुछ चाहो सब रख सकते हो। उदाहरणके लिये, जापानमें ऐसे माली हैं जो अपना सारा जीवन पेड़ोंके आकार ठीक करनेमें लगा देते हैं ताकि वे भूदृश्यमें सुंदर चित्र लगे। वे तरह-तरहसे काट-छांटकर, सहारा देकर उन पेड़ोंके रूपको अनुकूल बनाते हैं। वे उन्हें विशेष रूप देते हैं ताकि उनमेंसे हर एक ठीक वैसा बन सके जैसा भूदृश्यमें होना चाहिये। बगीचेमें पेड़को ऐसा रूप दिया जाता है जो सारे परिवेशके साथ मेल खाता है। और वे अद्भुत चीजें करनेमें सफल होते हैं। तुम उस बगीचेका फोटो लो तो वह

सच्चा चित्र बनता है! वह इतना अच्छा होता है। हां, मैं निश्चय ही उस आदमीको कलाकार मानती हूं। तुम उसे माली कह सकते हो, पर है वह कलाकार...। वे सब जिनमें सामंजस्यका निश्चित और विकसित भाव — सभी रूपोंमें और सभी रूपोंके आपसी सामंजस्यका भाव — होता है वे निश्चित रूपसे कलाकार हैं, उनकी रचना चाहे जिस तरहकी क्यों न हो।

आपने राम और हनुमानकी बात पूरी नहीं की। (हंसी)

मैंने पूरी नहीं की? लेकिन हां, मैंने कहा...। ओहो! क्योंकि उसने पूछा था कि विकसनशील और अंतर्लयात्मक सत्ताओंमें क्या फर्क है। लेकिन यह अपने-आपमें काफी है। एक बार तुम इतना जान लो तो तुम्हारे हाथ कहानीकी चाबी लग जाती है। और इसके अतिरिक्त, मैं यह नहीं जानती कि रामायणका एक प्रामाणिक पाठ है या भिन्न-भिन्न पाठ हैं, क्योंकि मैंने अलग-अलग पाठांतर सुने हैं — अलग-अलग पाठ हैं, हैं न? सबसे बढ़कर अंतके बारेमें, दो महत्त्वपूर्ण घटनाओंके बारेमें (नलिनीकी ओर मुड़कर); रावणकी पराजय और मृत्यु और सीताकी मृत्यु। मैंने अलग-अलग पंडितोंसे अलग-अलग अर्थके साथ अलग-अलग कथाएं सुनी हैं। अपने-अपने मनकी अभिवृत्तिके अनुसार, अगर ऐसे कहा जाय, कुछ बहुत ही कट्टर पंडितोंने मुझे अमुक बातें बतलायीं और उन लोगोंने जो इतने कट्टर न थे, बहुत भिन्न बातें बतायीं। इसलिये मुझे नहीं मालूम कि भिन्न-भिन्न पाठ हैं या उनकी अपनी टीकाएं ही थीं।

(नलिनी) बहुत-से पाठ हैं। एक उत्तरमें प्रचलित है दूसरा दक्षिणमें।

आह! जैसा बौद्ध धर्ममें है। उत्तर और दक्षिणके लोगोंकी कल्पना अलग-अलग तरहकी होती है। साधारणतः दक्षिणके लोग ज्यादा कट्टर होते हैं, हैं न...? मुझे नहीं मालूम। लेकिन बौद्ध धर्मके बारेमें, दक्षिणका बौद्ध धर्म ज्यादा कट्टर है और पाठकी व्याख्यामें जरा भी लचीलापन नहीं स्वीकार करता। वह एक भयानक रूपसे कट्टर बौद्ध धर्म है जिसमें किसी भी रूपमें भगवान्‌के विचारतकको दूर कर दिया गया है। दूसरी ओर उत्तरके बौद्ध धर्ममें देवताओंकी भरमार है। यह सच है कि ये सब बोधिसत्त्व हैं, फिर भी उन्हें देवोंमें बदल दिया गया है और यही धर्म चीनमें फैला और

वहांसे जापान गया है। तो, तुम जापानके बौद्ध-मंदिरमें प्रवेश करो तो देखोगे . . . एक मंदिर है जिसमें हजारसे अधिक बुद्ध हैं, सबकी मूर्तियां — केंद्रीय बुद्धके चारों ओर हजार मूर्तियां बैठी हुई हैं — वे चारों ओर थीं। मंदिरकी पिछली दीवार, सारीकी सारी, चित्रोंसे भरी थी, छोटे-बड़े, मोटे, पतले, नर, नारी — सभी। वहां एक पूरा देवकुल था। बहुत ही बड़ा। सब-के-सब देवोंके जैसे लग रहे थे। और फिर नीचेकी ओर सब तरहके रूपोंवाली, जिनमें पशु भी थे, छोटी-छोटी सत्ताएं थीं — और ये सब पुजारी थे। यह . . . यह सारी देवोंकी गुप्तोपासना थी। लेकिन दक्षिणका बौद्ध धर्म प्रोटेस्टेंट ईसाइयोंकी तरह आडंबरहीन, कठोर है। वहां कोई मूर्ति नहीं हो सकती। वहां कोई दिव्य चेतना नहीं है। मनुष्य इच्छाके कारण धरतीपर आता है, इच्छा-जगत्में आता है और इच्छाओंको त्यागकर जगत् और सृष्टिके बाहर, निर्वाणमें चला जाता है — वहां शून्य भी बहुत ज्यादा ठोस है। बौद्ध धर्ममें कोई स्रष्टा नहीं है। तो, मैं नहीं जानती। दक्षिणके बौद्ध शास्त्र पालीमें हैं, और उत्तरके संस्कृतमें और स्वभावतः तिब्बती बौद्ध धर्म है जिसके शास्त्र तिब्बती भाषामें हैं, चीनके शास्त्र चीनीमें और जापानी बौद्ध धर्मके जापानीमें। और मेरा ख्याल है कि हर एक-दूसरेसे बहुत भिन्न है। हां, शायद रामायणके भी बहुत सारे रूप होंगे और महाभारतके तो और भी ज्यादा — वह तो भयानक है!

(नलिनी) रामायणके भी।

तो पाठ बादमें जोड़े गये हैं।

मां, क्या महाभारतका अस्तित्व था?

मेरा ख्याल है कुछ तो था ही। इन सब चीजोंमें "कुछ चीज" सच्ची होती है और बाकी वह, जो उन्हें बना दिया गया है। ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। लेकिन सभी धर्मोंमें हर जगह यही बात है। कुछ चीज है, किसी चीजका अस्तित्व है, और फिर कुछ-का-कुछ बना दिया जाता है। इतिहास और पुराण कथामें यही फर्क है। परंतु इतिहास अपने-आपमें पुराण-कथा है।

एक ही कहानी, चाहे जितने तटस्थ रूपमें ली जाय, बार-बार दोहराने-पर बदल जाती है और इस तरह हजारों वर्षोंके बाद बिलकुल विकृत हो जाती है। मूल पाठ कौन-से हैं? — मेरा मतलब है, महाभारतके पहले

मान्यताप्राप्त पाठ ? — बहुत जमानेतक तो वह जबानी सुनाया जाता रहा था, है न ? तो तुम कल्पना कर सकते हो कि वह कितना बदला होगा। बहुत लंबे कालतक ये मौखिक परंपराएं रहीं। तो पहला रूप किसने लिखा ?

(नलिनी) व्यासने।

ओ !

(नलिनी) पहले उसमें ३६००० श्लोक थे, अब लाख दो लाख हैं।

ओहो ! वह बहुत बढ़ गया है। वह खूब फूल गया है छत्तीस हजारसे ! लेकिन गीता — उसके भी अनेक पाठ हैं ?

(नलिनी) नहीं।

लेकिन गीता भी तो महाभारतका अंग है।

(नलिनी) हां।

क्या रामायण ज्यादा अर्वाचीन है ?

(नलिनी) नहीं।

क्या यह भी उसी कालकी है ? उसका लेखक ज्ञात है ?

(नलिनी) वाल्मीकि।

हां, क्या यह इतनी, इतनी नहीं बदली ?

(नलिनी) महाभारत जितनी नहीं।

लेकिन भेद तो हैं। एक परंपरा कहती है कि रावण जानबूझकर मरा था,

कि जानबूझकर उसने असुरकी भूमिका स्वीकार की ताकि भगवान्‌के बाहर रहनेकी अवधिको छोटा कर सके। वह मरनेपर राममें ही घुल-मिल गया और यह कहता गया कि इस तरह वह निश्चित रूपसे भगवान्‌के साथ ज्यादा जल्दी जा मिला। और दूसरा मत क्या है? क्या वह भी शास्त्र-सम्मत या परंपरागत है?

(नलिनी) सब कुछ शास्त्रसम्मत है।

यह शास्त्रसम्मत है। विचार यह है (यह विचार ही है न?) कि असुरों-ने असुर होना इसलिये पसंद किया कि इस तरह वे ज्यादा जल्दी भग-वान्‌के अंदर लीन हो जायंगे, भागवत तत्त्वके अंदर ज्यादा तेजीसे एक हो जायंगे जब कि देवताओं और ऋषियोंको भगवान्‌तक लौट सकनेके लिये बहुत परिश्रम और लंबे चक्करकी जरूरत होगी। दूसरी ओर, असुरोंने बहुत दुष्ट होनेका चुनाव किया है, वे बहुत जल्दी नष्ट कर दिये जायेंगे और वे ज्यादा तेजीसे लौटेंगे। यह भी एक विचार है। (हंसी)

इस तरह मैंने सीताके अंतके बारेमें दो कथाएं सुनी हैं (लेकिन जैसा कि मैंने कहा, एक उदार और दूसरी बहुत ज्यादा परंपरावादी)। एकके अनुसार सीताने अपनी पवित्रता प्रमाणित करनेके लिये पृथ्वीमें समा जाना पसंद किया जब कि दूसरी, बहुत कट्टर कथाके अनुसार वे बिलकुल पवित्र नहीं थी इसलिये धरतीमें समा गयीं। (हंसी)

लेकिन तब पुष्पवृष्टि हुई थी न?

ओहो! यह एक और ही कहानी है...। मैंने रामायण पंडित नामक एक व्यक्तिसे सुनी थी। वह किसी पंडितका बेटा था और कानूनकी पढ़ाईके लिये पैरिस आया था। लेकिन वह कट्टर बना रहा; जितना कट्टर हुआ जा सकता है उतना कट्टर। ओह, भयंकर! उसके पास अंगरेजीमें रामा-यणका सचित्र अनुवाद था। उसने मुझे वह दिखलाया और मुझे कहानी सुनायी और जब वह अंततक पहुंचा तो उसने मुझसे यह बात कही। तो मैंने पूछा: "इससे तुम्हारा मतलब क्या है?" उसने कहा: "आप जानती हैं, एक भारतीयके लिये यदि कोई स्त्री किसी परपुरुषके घरमें कुछ घंटे भी रह ले तो वह अपवित्र हो जाती है...।" ओह! यह भयावह है...। तो वह अपवित्र थी इसलिये धरती उसे लील गयी। मुझे याद है, वह काफी ठिगना था; वह बंबईके किसी परिवारका था। खास बंबईका नहीं,

आस-पासका। शायद वह गुजराती था और गुजराती बोलता था। और दूसरा रूप मैंने सुना . . . । वह आदमी शास्त्री कहाता था। वह एक और पंडित था। वह जापानमें था। तो यह स्थिति है।

बस, हो गया? कोई प्रश्न नहीं है? तुम . . . जल्दी करो, देर हो गयी है।

अपने किसी लेखमें आपने कहा है कि सौंदर्य विश्वव्यापक है और उसे देखने और पहचाननेके लिये व्यक्तिको सार्वभौम होना चाहिये।

हां, मेरा मतलब है कि उसे देखने और पहचाननेके लिये तुम्हारे अंदर सार्वभौम चेतना होनी चाहिये। उदाहरणके लिये, यदि तुम्हारी चेतना एक जगहतक सीमित है, यानी, राष्ट्रीय चेतना है (किसी एक देशकी चेतना) तो जो चीज एक देशमें सुन्दर है, वह दूसरे देशके लिये सुन्दर नहीं है। सौंदर्यका भाव भिन्न होता है। उदाहरणके लिये, मैं तुम्हें एक कहानीसे हंसा सकती हूं। मैं पैरिसमें दहोमीके एक राजकुमारको जानती थी (वह नीग्रो था — दहोमीका राजा नीग्रो था), और यह लड़का पैरिसमें कानून पढ़नेके लिये आया था। वह फरासीसी लोगोंकी तरह फरासीसी भाषा बोलता था। फिर भी वह रहा नीग्रो ही — समझे? और उससे पूछा गया (वह हमें अपने छात्र जीवनकी तरह-तरहकी कहानियां सुनाया करता था), किसीने मेरे सामने उससे पूछा: "जब तुम्हें ब्याह करना होगा तो किससे ब्याह करोगे?" — "ओह! स्वभावतः अपने देशकी किसी लड़कीसे। केवल वे ही सुन्दर होती हैं।" (हंसी) जो लोग नीग्रो नहीं हैं उनके लिये नीग्रो-सुन्दरताको देखना जरा कठिन है। लेकिन यह बिलकुल सहज था। उसे पूरा विश्वास था कि किसीके लिये इससे अलग तरह सोचना असंभव है . . . । "केवल मेरे देशकी स्त्रियां ही सुन्दर होती हैं।"

हर जगह यही बात है। केवल वे जिन्होंने कलात्मक रसका स्वाद लिया है, जो बहुत घूमे-फिरे हैं और बहुत कुछ देखा है, जिन्होंने अपनी चेतनाका विस्तार किया है, वे ही इस तरह मतांध नहीं रहते। लेकिन किसी व्यक्तिको उसकी जातिकी विशेष रुचियोंसे, रससे बाहर निकालना बहुत कठिन है। अब मैं देशकी बात नहीं कर रही, जातिकी बात कर रही हूं। यह बहुत कठिन है। वह है, जानते हो, एकदम तली-में छिपा हुआ, अवचेतनामें, और वह तुम्हारे जाने बिना ही, बिलकुल

सहज रूपमें, बिलकुल स्वाभाविक तौरपर वापिस आ जाता है। इस बातपर भी कि तुम्हारी जातिकी स्त्री और सब जातियोंकी स्त्रियोंसे हमेशा ज्यादा सुन्दर होती हैं। सहज रूपसे, यह सहज रुचि है। मेरा यही मतलब है। तुम्हें इससे ऊपर उठना चाहिये। मैं उन लोगोंकी बात ही नहीं कर रही जिनके लिये अपने परिवार या अपनी जातिसे बाहरकी हर चीज बुरी या कुरूप होती हो। मैं उन लोगोंकी बात बिलकुल नहीं कर रही। मैं उन लोगोंकी बात नहीं कर रही जिनके लिये एक देश किसी दूसरे देशसे कहीं ज्यादा सुन्दर है। फिर भी ये लोग साधारण विचार-धारासे काफी ऊंचे उठ चुके हैं। मैं जातिके सवालपर भी नहीं बोल रही ...। यह बहुत कठिन है। तुम्हें एकदम नीचे जाना होगा, एकदम नीचे अपनी अवचेतनामें — या उससे भी नीचे — ताकि इन चीजोंकी जड़ोंको खोज सको। इसलिये अगर तुम अपने-आप सौंदर्यकी भावना पाना चाहो — जो इस प्रकारकी जातीय रुचियोंसे स्वतंत्र हो, तो तुम्हारे अंदर वैश्व चेतना होनी चाहिये। अन्यथा तुम उसे कैसे पा सकते हो? तुम्हारे अंदर हमेशा पसंदें बनी रहेंगी, चाहे वे सक्रिय और सचेतन पसंदें न हों। वे अवचेतन पसंदें होती हैं, सहज-वृत्ति होती है। इसलिये सब रूपोंसे मुक्त सच्चे सौंदर्यको जाननेके लिये तुम्हें सब रूपोंसे ऊपर उठना होगा। और एक बार तुम उसे सब रूपोंके परे जान लो तो तुम उसे जिस किसी रूपमें भी, किसी भी तरह पहचान सकोगे। उदासीन दृष्टिसे, और यह चीज बहुत मजेदार हो उठती है।

तो बस यही है। पुनरागमनाय, मेरे बच्चो।

२८ अक्तूबर, १९५३

"सच्ची कला एक समग्र और एक समष्टि होती है। वह एक और समस्त जीवनके साथ एकरस होती है। तुम्हें इसकी अंतरंगताका कुछ अंश प्राचीन यूनान और प्राचीन मिस्रमें दिखायी देता है क्योंकि वहां सभी चित्र और मूर्तियां और कलाकी चीजें मकानके स्थापत्यके भागके रूपमें बनायी और व्यवस्थित की जाती थीं। उसका हर ब्योरा समग्रका भाग होता था और समग्रके सामंजस्यसे मेल खाता था। जापानमें ऐसा ही है या

कम-से-कम उपयोगितावादी और व्यावहारिक आधुनिकतावादके आक्रमणतक ऐसा ही था। जापानी मकान अद्‌भुत रूपसे कलात्मक समग्र होता है, हमेशा उचित स्थानपर उचित वस्तु होती है। कोई चीज गलत ढंगसे नहीं रखी जाती, कोई चीज बहुत अधिक नहीं होती, कोई चीज बहुत कम भी नहीं, सब कुछ इतना सुव्यवस्थित होता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि हर चीज ठीक जैसी होनी चाहिये वैसी ही है और सारा मकान अद्‌भुत रूपसे प्राकृतिक परिवेशके साथ मेल खाता है। भारतमें भी, चित्रकला, मूर्तिकला और वास्तुकलासे समग्र सौंदर्य बनता था, भगवान्‌की आराधनाकी एक ही गति।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ जुलाई)

मां, आपने जो कहा है : "सच्ची कला एक समग्र और एक समष्टि होती है, समस्त जीवनके साथ एकरस होती है" — इसे मैं नहीं समझ पाया।

मैंने जो कहा है? कुछ नहीं, बस यही कि सच्ची कला भौतिक जगत्‌में सौंदर्यकी अभिव्यक्ति है। और आध्यात्मिक रूपमें पूरी तरह बदले हुए जगत्‌में, यानी, भागवत सत्यको पूरी तरह प्रकट करनेवाले जगत्‌में, कलाको जीवनमें दिव्य सौंदर्यको प्रकट करनेवाले और शिक्षकके रूपमें कार्य करना चाहिये। यानी, कलाकारको भौतिक रूपमें भागवत सौन्दर्यको अभिव्यक्त करनेके योग्य होनेके लिये भगवान्‌के साथ तादात्म्य पा सकना चाहिये और एक या अनेक आकारोंको ग्रहण कर सकना चाहिये। और इस तरह, अगर वह यही करे तो कला सौंदर्यकी उपलब्धिका साधन बन सकती है और साथ ही इस बातका शिक्षक कि सौंदर्यको क्या होना चाहिये, यानी, कलाको व्यक्तिके रसका, जवान और बूढ़े समीके लिये रसका शिक्षक होना चाहिये; और यह है सच्चे सौंदर्यकी शिक्षा, उस तात्त्विक सौंदर्यकी जो भागवत सत्यको प्रकट करता है। कलाका यही उद्देश्य है। इसमें और जो किया जाता है, उसके बीच बहुत अधिक अंतर है, पर कलाका सच्चा उद्देश्य यही है।

कुछ समझे? थोड़ा-सा!

आजके चित्रकार उतने अच्छे क्यों नहीं हैं जितने लियोनार्दो द विन्सीके समय थे?

क्योंकि मानव विकास कुंडलाकार घूमता जाता है। मैं यह पहले समझा चुकी हूं।[1] मैंने कहा था कि पिछली शताब्दीके आरंभसे अबतक कला भाड़ेकी चीज, अंधेरी और अज्ञानमय बनी हुई थी। वह बहुत ज्यादा व्यापारिक बन गयी थी और कलाके सच्चे भावसे बहुत दूर थी। इसलिये स्वभावतः कलात्मक आत्मा नहीं आती! वह बुरे रूपोंका अनुसरण करने लगी फिर भी उसने सुरुचिके प्रचलित ह्रासको प्रभावहीन करनेकी कोशिश की। लेकिन स्वभावतः, जैसा कि मनुष्यमें प्रकृतिकी हर एक क्रियाके साथ होता है, कुछ अगर एक छोरपर जायं तो दूसरी दूसरे छोरपर जा पहुंचती हैं, और चूंकि उन्होंने प्रकृतिकी दासोचित नकल की — (वह भी नहीं — उन दिनों उसे फोटो जैसा दृश्य कहा जाता था, पर अब यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अब फोटोग्राफीने इतनी प्रगति कर ली है कि अब उसे यह नाम देना उसके साथ अन्याय होगा, है न? अब फोटोग्राफी कलात्मक बन गयी है इसलिये अब किसी चित्रकी निंदा करनेके लिये उसे फोटो नहीं कहा जा सकता और न उसे अब यथार्थवादी कहा जा सकता है, क्योंकि एक यथार्थवादी चित्रकला है जो ऐसी बिलकुल नहीं है) — लेकिन वह रूढ़िवादी, कृत्रिम और सच्चे जीवनसे रहित थी, इसलिये प्रतिक्रिया एकदम विपरीत और स्वभावतः, एक दूसरे बेतुकेपनकी ओर चली गयी। अब "कला"को भौतिक जीवनको नहीं, बल्कि मानसिक और प्राणिक जीवनको अभिव्यक्त करनेका काम दिया गया और इसी तरह क्यूबिस्ट आदि शैलियां आयीं जिन्होंने सिरसे सृजन किया। परंतु कलामें सिरकी नहीं, भावना और सौंदर्यकी प्रधानता होती है। चित्रकारोंने असंगत, हास्यास्पद और भयानक चीजोंकी रचना की। अब वे और भी आगे चले गये हैं, लेकिन वह, वह युद्धोंके कारण है और हर युद्धके साथ धरतीपर एक ऐसी सड़ांध-भरी दुनिया उतर आती है जो हर प्रकारकी अव्यवस्था पैदा करती है। और कुछ लोगोंको यह सब बहुत सुंदर लगता है और वे उसकी खूब प्रशंसा करते हैं।

वे क्या करना चाहते हैं, यह मैं समझती हूं, मैं उसे भली-भांति समझती हूं, परंतु मैं यह नहीं कह सकती कि मुझे लगता है कि वे भली-भांति करते हैं। मैं बस इतना ही कह सकती हूं कि वे कोशिश कर रहे हैं।

लेकिन यह शायद (एक दृष्टिसे अपने बीभत्स रूपके बावजूद), शायद उससे अच्छा है जो विक्टोरिया काल या फ्रांसके दूसरे साम्राज्यके उग्र व्यावहारिक विषयासक्तिके कालमें हो रहा था। तो आदमी शुरू करता

---

[1] प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ जुलाई)

है ऐसे बिंदुसे जहां पूर्ण सामंजस्य है और एक गोल रेखा बनाता है और उस गोल रेखाके कारण पूरी तरह इस सामंजस्यके बाहर निकल जाता है और हो सकता है पूर्ण अंधकारमें प्रवेश कर जाय और तब वह ऊपर चढ़ता है और फिर जब वह अपने-आपको कलाकी पुरानी उपलब्धिकी सीवमें पाता है तो उसे इस उपलब्धिके सत्यका भान होता है और साथ ही अधिक पूर्ण और अधिक सचेतन वस्तुको प्रकट करनेकी आवश्यकताका भी पता लगता है। लेकिन चक्र बनाते समय आदमी यह भूल जाता है कि कला रूपोंकी अभिव्यक्ति है, और वह कम-से-कम रूपोंके साथ विचारों और भावनाओंको प्रकट करनेकी कोशिश करता है। और इससे उस तरहकी चीजें पैदा होती हैं जो हमारे पास हैं, जिन्हें तुम देख सकते हो, (मेरा ख्याल है कि हमारे पुस्तकालयमें अत्याधुनिक कलाकारोंकी कृतियोंकी प्रतिकृतियां हैं), लेकिन अगर तुम जरा और आगे बढ़ो तो ये विचार और ये भावनाएं जिन्हें वे व्यक्त करना चाहते हैं और बहुत ही भद्दी तरह व्यक्त करते हैं — अगर व्यक्ति कुंडलके उसी बिंदुपर वापिस आये (बस जरा ऊंचा), तो वह देखेगा कि यह उस नयी कलाका अंकुर है जो सौंदर्यकी कला होगी, जो केवल भौतिक जीवन ही नहीं, बल्कि उसकी आत्माको भी प्रकट करनेकी कोशिश करेगी।

बहरहाल, अभी हम उस स्थितितक नहीं पहुंचे हैं, पर आशा कर सकते हैं कि वहांतक जल्दी ही पहुंच जायंगे। तो बस...

सतत प्रगति क्यों नहीं होती, विकासक्रम कुंडलाकारमें क्यों बढ़ता है?

यह सतत प्रगति है। लेकिन अगर यह सीधी लकीरमें की जाती तो वह केवल एक भागको ही ले पाता — लेकिन संसार एक गोला है, सीधी लकीर नहीं।

और अगर वह बेलनाकार होता?

बेलनाकारके लिये भी, अगर तुम एक सीधी लकीर खींचो तो बेलनका एक भाग बिलकुल अछूता रह जायगा। कुंडलाकार गति ठीक इसीलिये है कि हर चीजको विकासकी घटनाके अंदर समा लेनेकी कोशिश की जाय —ताकि ऐसा न हो कि एक चीज आगे बढ़े और दूसरी चीजें पीछे रह जायं। इसलिये केंद्रकी दृष्टिसे जहां प्रगति सकेंद्रित है ऐसा लगता है कि

तुम एक चीजसे दूर होते जाते हो और दूसरीमें प्रवेश करते हो। लेकिन आगे चलकर जब तुम सचेतन विकास साधते हो तो तुम एक चीज करनेके लिये दूसरीको भूल नहीं जाते। वर्तमान अवस्थामें बुरी बात है भूल जाना। उपलब्धिके लिये अमुक क्रियावलीका अनुसरण करते हुए तुम अन्य क्रियाओं-को भूल जाते हो या वे पृष्ठभूमिमें चली जाती हैं, उनमें कोई तीव्रता नहीं रह जाती। लेकिन यह मानव त्रुटि है जिसे ठीक किया जा सकता है — ठीक करना चाहिये।

क्या सब कुंडलाकार प्रगति करते हैं, सब साथ या अलग-अलग ?

मुझे भय है कि यह बहुत सामंजस्यपूर्ण नहीं होती, क्योंकि मुझे संसार अस्तव्यस्त प्रतीत होता है! अगर वस्तुतः अभियान पूरी तरह सुव्यवस्थित होता तो यह सामंजस्यपूर्ण विकास होता और अगर व्यक्ति यह देख पाता कि वह कहां जा रहा है — जो कुछ किया जा चुका है उसकी रेखाको पा लेता तो इन रेखाओंको आगे बढ़ाकर यह भी देख लेता कि क्या आने-वाला है। लेकिन अभी तो यह केवल किन्हीं गिने-चुने श्रेष्ठ व्यक्तियोंके लिये ही संभव है। जन-समूह तो गति-विधिका अनुसरण करता है और सब गतियां युगपत् और एक रूप नहीं होतीं — कुछ चीजें औरोंकी अपेक्षा पंक्ति और गतिमें आनेके लिये धीमी होती हैं इसलिये यहांपर जरा-सा फर्क भी गतिमें बहुत बड़ा फर्क पैदा करनेके लिये काफी होता है।

काफी संख्यामें ऐसी सर्पिल गतियां होती हैं जो एक-दूसरेको काटती जाती हैं और विरोधका संस्कार देती है। अगर हम वैश्व प्रगतिकी समग्र गतिका अनुसरण कर सकते तो यह दिखायी देता कि इतनी अधिक सर्पिल गतियां एक-दूसरेको काटती हुई चलती हैं कि अंतमें तुम्हें पता ही नहीं लगता कि तुम आगे बढ़ रहे हो या पीछे हट रहे हो। क्योंकि एक ही समयमें कुछ चीजें ऊपर जा रही हैं और कुछ अंधेरेमें वापिस गिर रही हैं और ये सब आपसमें एक-दूसरेसे स्वतंत्र नहीं हैं। उनमें एक प्रकारका समन्वयन है, अतः इसी प्रकारकी सर्पिल गतिकी कल्पना करनेकी जगह हमें गोलाकार सर्पिल गतियोंके बारेमें सोचना पड़ेगा। अगर इसका वर्णन किया जा सकता तो इन सब सर्पिल गतियोंसे एक बहुत बड़ा, विशाल गोला बन जाता। और इन सर्पिल गतियोंकी कटानोंपर प्रगतिके क्षण होते हैं। लेकिन प्रगतिके सुसंगत और समग्र होनेसे पहले, जीवनकी एक अंतर्व्यवस्था होनी चाहिये जो प्रकृतिकी व्यवस्थासे भिन्न एक योजनाके अनुसार हो। क्योंकि प्रकृतिकी योजना एक अभीप्सा, एक निश्चय और एक उद्देश्य-

से ही बनती है। और रास्ता बड़ा विलक्षण-सा लगता है जो हर क्षणके आवेगोंका अनुसरण करता है — परीक्षण, गतिरोध, विरोध, प्रगति और जो पहलेसे है उसे ढा देना; और यह एक ऐसी अव्यवस्था है कि उसमें कुछ भी समझमें नहीं आता। उसके रंग-ढंगसे ऐसा लगता है कि कोई उमंगों, आवेशोंके अनुसार काम कर रहा है — कुछ आवेगोंको प्रकट करता है और उन्हें नष्ट कर देता है, फिर नये शुरू करता है, बस इसी तरह चलता रहता है। वह बनाती और बिगाड़ती है, फिरसे बनाती और फिर ढा देती है, वह मिलाती है, नष्ट करती है, निर्माण करती है और यह सब एक ही साथ होता रहता है। इसे समझना असंभव है। और फिर भी, स्पष्ट है कि उसकी एक योजना है, वह अपने-आप किसी विशेष लक्ष्यकी ओर जा रही है जो उसके लिये स्पष्ट है, लेकिन मानव चेतनासे बिलकुल ढका हुआ है...। यह बहुत मजेदार है। अगर कोई इस तरहकी चीज बना सके तो यह कुछ ख्याल दे सकेगी : एक-दूसरेको काटते हुए भिन्न-भिन्न रंगोंके कुंडल हों जिनमेंसे प्रत्येक कुंडल प्रकृतिकी सृष्टिका एक पहलू हो। ये पहलू एक-दूसरेके पूरक हैं — परंतु अभीतक वे सहयोग देनेकी जगह प्रतियोगी हैं और ऐसा लगता है कि प्रकृति कुछ चीज बनानेके लिये किसी और चीजको नष्ट करनेके लिये बाधित होती है। और इससे बहुत अधिक अपव्यय होता है और उससे भी अधिक अव्यवस्था आती है। लेकिन अगर इस सबको उसके सामूहिक रूपमें देखा जाय तो यह बहुत ही मजेदार बात होगी। क्योंकि यह बहुत ज्यादा जटिल और कुंडलाकार आरोहणकी सभी संभव दिशाओंमें आड़ी-तिरछी गति है।

हां, तुम्हारे प्रश्नका एक और उत्तर हो सकता है। मैंने अभी जो कहा है ठीक वही कलापर भी लागू होता है। वह भी एक क्रमविकासका अनुसरण करती है और किसी क्षण ऐसा लगता है मानों वह अपने लक्ष्यसे दूर हो गयी है और कभी ज्यादा ऊंचाईपर ज्यादा नजदीक खिंच आती है। लेकिन एक और चीज भी है और वह है सामाजिक दृष्टिकोण : एक ऐसा समय आता है, उदाहरणके लिये, चौदहवें लुईका काल, जिसमें कलात्मक सृजनकी भावना प्रधान थी और ऐसा लगता है कि इस भावने उस समय सौंदर्यकी दृष्टि प्रदान की; लेकिन बादमें सामाजिक विकास दूसरी आवश्यकताओं और दूसरे विचारोंको ले आया और अब, एक शतीसे ऊपरसे, संसारमें व्यापार-भावना ही प्रधान है और कलाके लिये व्यापार-बुद्धिसे अधिक विरोधी चीज कोई और नहीं है। और यह एक ऐसी चीजका जो अपवाद रूप होनी चाहिये सामान्यीकरण है, जो चीज केवल

श्रेष्ठ जनोंके द्वारा समझी जा सकती है उसे सबकी पहुंचके भीतर लाना है। और चूंकि हम यंत्रीकरण और व्यापार-वृत्तिके युगमें है इसलिये यह कलाके खिलनेके लिये अनुकूल समय नहीं है। शायद इसीलिये जब कला-को पूरी तरह खिलनेके लिये उचित परिस्थितियां नहीं मिलतीं तो वह दूसरे रास्ते खोजती है और अपनी अभिव्यक्तिके लिये मानसिक और प्राणिक क्षेत्रोंमें प्रवेश करती है। यही कारण है। कह सकते हैं कि जब उसे झकझोरनेका समय आयगा, इस व्यापार-वृत्तिको त्यागकर अधिक सुंदर सत्यकी ओर जाग्रत होनेका समय आयगा तो कला भी सामंजस्यकी महत्तर चेतनामें पुनर्जन्म लेगी।

क्या आत्म-संतोष कलामें बाधक होता है?

हां, यह समझदारीमें भी बाधक है। मूढ़ता मानव मूर्खताओंमें सबसे बड़ी है। जो कुछ किया जा सकता है उसपर श्रद्धा रखना, उसे चरितार्थ करनेके लिये संकल्प करना और सृष्टिमें संभावनाओंके बारेमें विश्वास और इन संभावनाओंके चरितार्थ होनेके बारेमें निश्चिति तथा आत्म-संतोषमें बहुत फर्क है। ये दोनों ऐसी चीजें हैं जो हमेशा एक-दूसरेसे मुंह मोड़े रहती हैं। इस बातका विश्वास बहुत जरूरी है कि यदि आदमी समय, शक्ति, संकल्प, विश्वास, निष्कपटता आदि लगाये तो कोई चीज असंभव नहीं है, लेकिन किसी भी तरीकेसे आत्म-संतुष्ट होना, बिना अपवादके, हमेशा एक मूर्खता है। और यह एक ऐसी चीज है जो तुम्हें भागवत उपलब्धिसे अधिक-से-अधिक दूर ले जाती है, क्योंकि यह तुम्हें मूढ़ बना देती है। और साथ ही यह उन चीजोंमेंसे है जो प्रकृतिकी सद्भावनाके एकदम विपरीत है, क्योंकि प्रकृति तुरंत तुम्हारे ऊपर हंसती है। तुम तुरंत मजाकका विषय बन जाते हो। क्योंकि सचमुच ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो अपने-आपमें कुछ हो। वह केवल एक संभावना है जिसे भगवान्‌ने बनाया है और जिसे केवल भगवान् ही विकसित कर सकते हैं, जिसका अस्तित्व केवल भगवान्‌से ही है और जिसे केवल भगवान्‌के लिये ही जीना चाहिये। अतः मैं इसमें आत्म-तुष्टिका कोई स्थान नहीं देखती; चूंकि हम, भगवान् हमें जो कुछ बना दे उसके सिवा अपने-आपमें कुछ नहीं हैं, और भगवान् हमारे द्वारा जो कुछ करना चाहते हैं उसके सिवा अपने-आप कुछ नहीं कर सकते, इसलिये मुझे नहीं दीखता कि इसमें आत्म-तुष्टि कैसे हो सकती है। इसमें व्यक्ति-को अपनी नितांत शक्तिहीनताकी अनुभूति ही हो सकती है। लेकिन जो बात बहुत बुरी है वह है इस गलत पार्श्वका वाहन होना — चेतनाकी हर

एक अवस्थाका एक सीधा और एक उल्टा पार्श्व होता है और मूलतः यह वही मिथ्या-अभिमान है जो तुमसे कहलवाता है: "मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं किसी कामका नहीं हूं, मैं कुछ भी करनेके योग्य नहीं हूं।" यह उसीका दूसरा पार्श्व है जिसमें तुम कहते हो: "मैं कर सकता हूं, मैं महान् हूं, मेरे अंदर सब प्रकारकी शक्तियां हैं।" दोनों एक ही हैं। एक प्रकाश है, दूसरा छाया, लेकिन हैं दोनों बिलकुल एक समान। इनमें कोई किसीसे अच्छा नहीं है। और अगर वास्तवमें तुम्हें कुछ न होनेका भान होता तो तुम यह जाननेकी चिंता न करते कि तुम कैसे हो। यह अपने-आपमें कुछ चीज होती। लेकिन सचमुच, सचाईके साथ मैं तुमसे कहती हूं कि, और मुझे जीवनका काफी लंबा अनुभव है, मैं लोगोंके अपने-आपसे संतुष्ट होनेके जैसी विकृत और भौंडी चीज नहीं जानती। यह वास्तवमें हास्यास्पद है। वे अपने-आपको बहुत हास्यास्पद बना लेते हैं। इस प्रकारके लोग होते हैं। उनमेंसे कुछ श्रीअरविंदसे मिलने आये और उन्हें बताया कि वे क्या-क्या करने योग्य थे, उन्होंने क्या-क्या किया था, वे क्या-क्या कर सकते थे और क्या कुछ चरितार्थ कर चुके थे। श्रीअरविन्दने उनकी ओर बड़ी गंभीरतासे देखा और बोले: "ओह! आप यहां रहनेके लिये जरा ज्यादा ही पूर्ण हैं। आपके लिये यही ज्यादा अच्छा होगा कि आप चले जायं।"

"संगीत भी तत्त्वतः आध्यात्मिक कला है और उसका संबंध हमेशा धार्मिक भावनाओं और आंतरिक जीवनके साथ रहा है। लेकिन वह अपने असली भावसे भटक गया है। परंतु यहां भी हमने उसे एक स्वतंत्र, आत्म-निर्भर, कुकुरमुत्ते जैसी कलामें बदल दिया है, उदाहरणके लिये, सांगीतीय गान (आपेरा)। अधिकतम संगीत रचनाएं इसी प्रकारकी मिलती हैं जो अपने अच्छे-से-अच्छे रूपमें बस कौशलकी दृष्टिसे रोचक होती हैं।

"मैं यह नहीं कहती कि सांगीतीयका उपयोग उच्चतर कलाकी अभिव्यक्तिके लिये साधनके रूपमें नहीं हो सकता: क्योंकि रूप चाहे कैसा भी क्यों न हो, उसे अधिक गहरे उद्देश्यके लिये काममें लाया जा सकता है। सब कुछ स्वयं वस्तुके ऊपर निर्भर होता है, उसका उपयोग कैसे किया जाता है और उसके पीछे क्या है। ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका उपयोग दिव्य प्रयोजनके लिये नहीं किया जा सकता — वैसे ही जैसे हर

चीज दिव्य होनेका ढोंग कर सकती है, भले ही वह कुकुरमुत्तेकी जातिकी क्यों न हो।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ जुलाई)

"कुकुरमुत्तेकी जाति" से आपका क्या मतलब है?

तुम नहीं जानते कि कुकुरमुत्ता क्या होता है? कुकुरमुत्ते कैसे पैदा होते हैं? कुकुरमुत्ते कहीं भी निकल आते हैं और ऐसा लगता है कि उनका किसी खेतीसे संबंध नहीं है। मतलब है, कोई ऐसी जंगली उपज जिसकी सृष्टिकी समग्रतामें जड़ें न हों। ये ऐसी चीजें होती हैं जो किसी समग्रका अंश नहीं होतीं, वे मानों बाहरी चीजें होती हैं। मैं कुकुरमुत्तेकी जगह, पेड़ोंके पराश्रयी भी कह सकती थी। तुम जानते हो पेड़ोंपर पराश्रयी होते हैं, जैसे बलूतपर मिस्लटो। यहां भी मैंने उन्हें कुछ पेड़ोंपर उगते देखा है। मैंने ऐसे पौधे देखे हैं जो पेड़ोंपर चिपके रहते हैं, ऐसे पौधे जो उन पेड़ोंके जीवनपर जीते हैं, जिनका अपना निजी जीवन नहीं होता, अपनी जड़ें नहीं होतीं, जो अपना पोषण सीधा जमीनसे नहीं लेते। वे दूसरे पेड़ोंसे चिपके रहते हैं मानों वे दूसरोंके कामका उपयोग करते हैं। दूसरे भोजन पानेके लिये काम करते हैं और ये उनपर चिपककर उनपर जीते हैं। वास्तवमें, पशुओंपर भी पराश्रयी जीव किस तरह जीते हैं!

मालूम नहीं, मेरा ख्याल था कि मैं बहुत विस्तारमें चली गयी। जो जानते हैं — उनके लिये मैंने काफी कह दिया है। पुराने जमानेमें, मेरा मतलब है कलात्मक युगोंमें, उदाहरणके लिये यूनानमें, या इटलीके नवजागरण कालमें भी (परंतु यूनान और मिस्रमें बहुत अधिक), सार्वजनिक उपयोगके लिये मकान बनाये जाते थे। यूनान और मिस्रमें ही, एक प्रकारके देवताओंके रहनेके लिये एक तरहके पुण्य स्थान बनाये जाते थे। हां, वे समग्र, अपने-आपमें सुंदर, पूर्ण वस्तु बनानेकी कोशिश करते थे। और इसमें वे स्थापत्यका उपयोग करते थे, यानी, रेखाओंमें सामंजस्यका और स्थापत्यमें अभिव्यक्तिका विस्तार जोड़नेके लिये मूर्तिकला ले आते थे और इस अभिव्यक्तिको पूरा करनेके लिये चित्रकला लाते थे। यह सब एक समन्वित एकताके रूपमें होता था जो उस निर्मित भवनका रूप लेती थी। मूर्ति भवनका एक भाग होती थी, चित्र भवनका एक भाग होता था। ये अलग-अलग चीजें नहीं होती थीं जो न जाने क्यों एक साथ रख दी गयी हों — यह एक व्यापक योजनाका अंग थीं। उदाहरणके लिये, जब ये लोग मंदिर बनाते थे तो यह एक समष्टि या एक

सर्वयोग होता था जिसमें कलाकी प्रायः सभी प्रकारकी अभिव्यक्तियां पायी जाती थीं जो उसके अभीष्ट सौंदर्यको अभिव्यक्त करनेपर केंद्रित होती थीं, यानी, वे चीजें उस देवका परिणाम होती थीं जिसकी वे पूजा करना चाहते थे। कलाके सभी सुंदर युग ऐसे ही थे। परंतु यथार्थतः, इन दिनों, बिलकुल हालमें ही नहीं, — पिछली शताब्दीके अंतमें कला व्यापारकी, भाड़ेकी चीज बन गयी। चित्र बेचनेके लिये बनाये जाते थे। किसी कपड़े पर चित्र बनाया जाता था और उसपर फ्रेम लगा दिया जाता था और फिर बिना किसी ठीक कारणके कोई चित्र यहां-वहां लगा दिया जाता था, या किसी भी चीजकी मूर्ति बनायी जाती थी और जहां मरजी रख दी जाती थी थी। उसका उस मकानके साथ कोई संबंध न होता था जिसमें वह रखी जाती थी। वह वहां जंचती भी न थी। चीजें अपने-आपमें भले सुन्दर होतीं पर उनका कोई अर्थ न होता। यह किसी चीजको अभिव्यक्त करनेवाला, सामंजस्य समग्र न होता था। वह प्रतिभा, चातुरी, चित्र या मूर्ति बनानेकी योग्यताका प्रदर्शन होता था। इसी भांति उन दिनोंके स्थापत्यका भी कोई ठीक अर्थ न था। इमारत इस विचारसे नहीं बनायी जाती थी कि उसमें जिस शक्तिको मूर्त रूप देना है उसे अभिव्यक्त किया जा सके, स्थापत्य किसी अभीप्सा या किसी ऐसी चीजकी अभिव्यक्ति न था जो तुम्हारे भावोंको ऊंचा उठाती हो या, उस देवकी महानताकी अभिव्यक्ति हो जिसकी वहां स्थापना करनी है। यह कुकुरमुत्तोंकी तरह था। वे यहां एक मकान खड़ा करते थे, एक वहां, इधर-उधरकी चीजें बनाते थे, चित्र, मूर्तियां और सब तरहकी चीजें रखते थे। तो जैसा कि मैंने अभी कहा, घरमें घुसते ही तुम देखते कि यहांपर थोड़ी मूर्तिकला, वहां थोड़ी चित्रकारी, आपसमें कोई संबंध न रखनेवाली बेतुकी चीजोंसे भरी प्रदर्शनी-मंजूषाएं। और यह सब किसलिये? एक प्रकारके प्रदर्शनके लिये, ऐसी कलात्मक चीजोंके प्रदर्शनके लिये जिनका कला और सौंदर्यसे कोई संबंध नहीं। लेकिन वह — अगर तुम कलाके गहरे अर्थ समझते हो तभी यह अनुभव कर सकते हो कि यह सब किस हदतक बीभत्स होता है। अन्यथा, यदि तुम्हें इसका अभ्यास हो, यदि तुम उस युगमें, उस वातावरणमें रहे हो तो यह बिलकुल स्वाभाविक मालूम होता है, पर यह स्वाभाविक नहीं है। यह व्यापारिक विकृति है।

इसका एक ही औचित्य है और वह है इसे शिक्षाका साधन बनानेका। और तब यह संग्रहालय बन जाता है। यदि तुम एक संग्रहालय बनाओ तो वह जो किया गया है उसके ऐतिहासिक प्रतिचयनका काम देता है। यह तुम्हें चीजोंका ऐतिहासिक ज्ञान देनेका काम देता है। परंतु संग्रहालय

अपने-आपमें सुन्दर वस्तु नहीं होता, उससे बहुत भिन्न! किसी कलाकार-के लिये तो यह बीभत्स चीज होती है। शिक्षाकी दृष्टिसे यह बहुत अच्छा होता है क्योंकि यहां एक जगहपर सब प्रकारकी चीजोंके नमूने इकट्ठे होते हैं, और इस तरह तुम सीख सकते हो, विद्वत्ता प्राप्त कर सकते हो; परंतु कलाकी दृष्टिसे यह भयानक चीज है।

और बादमें, लौटनेका प्रयास किया गया (उदाहरणके लिये, इस शताब्दीके आरंभमें — मैं इस शताब्दीके पहले वर्षोंकी बात कर रही हूं), उस चीजके लिये प्रयास किया गया जिसे सज्जा-कला कहते थे, यानी, समष्टिकी दृष्टिको फिरसे पानेकी कोशिश की गयी, जब घरकी व्यवस्था करनी हो तो एक समन्वित सर्वयोग बनानेकी कोशिश की जाती थी जहां हर चीजका केवल प्रयोजन ही नहीं था, बल्कि अपना निश्चित स्थान भी था जहांसे उसे हिलाया न जा सकता था। एक समष्टि, सर्वयोगकी रचना होती थी। यह अपने-आपमें पहलेसे कुछ अच्छा था। वे प्रयास कर रहे थे।

यहां भारतमें चीज एकदम अलग है। कलाकी एक परंपरा चली आ रही है। सारा देश ऐसी चीजोंसे भरा है जो देशकी कलाके लिये इतिहासके किसी सुन्दर मुहूर्त्तमें बनायी गयी थीं। तुम उसीमें रहते हो। यहां मुश्किलसे ही उस तरहके उत्तर-प्रभावोंमेंसे गुजरना पड़ा है जैसे बाकी संसारमें और विशेषकर यूरोपमें फैले हैं। भारतके केवल वे भाग जो जरा ज्यादा अंगरेजियतमें रंगे हैं, उन्होंने अपना सौंदर्य-बोध खो दिया है। बंबईमें कुछ शैलियां हैं, कला-शैलियां, जो भयावह हैं। और फिर, कलकत्ता शैलीका भारतीय कलाको पुनरुज्जीवित करनेका प्रयास था, लेकिन वह एक छोटे पैमानेपर था। कलाकी दृष्टिसे जो चीजें अधिक-से-अधिक तुम्हारे पहुंचके अंदर हैं वह हैं पुरानी कृतियां, पुराने मंदिर, पुराने चित्र। और ये सब चीजें अच्छी थीं, जिन्हें एक विश्वासको प्रकट करनेके लिये रचा गया था। यह सब यथार्थ रूपमें सर्वांगीण दृष्टिसे किया गया था, अस्तव्यस्तताके साथ नहीं।

मैं कलाकी जिस गतिविधिकी बात कह रही हूं, उसका तुमने कम ही अनुसरण किया है। वह यूरोपीयसे संबंध रखती है, उसका यहां अनुभव नहीं हुआ है — बस, जरा-सा, लेकिन गहराईमें नहीं। यहां अधिकतर कृतियोंपर (यह बहुत अच्छा उदाहरण है), अधिकतर रचनाओंपर, मेरा ख्याल है कि प्रायः सभी श्रेष्ठ रचनाओंपर हस्ताक्षर नहीं होते। गुहाओंके सारे चित्रों और मन्दिरोंकी इन मूर्तियोंपर, कहीं कोई हस्ताक्षर नहीं है। किसीको पता नहीं कि उन्हें किसने बनाया है। यह सब काम आजकी

तरह नाम कमानेके लिये नहीं किया गया था। अगर कोई बड़ा मूर्तिकार, बड़ा चित्रकार, बड़ा वास्तुकार हुआ तो इतना काफी था। हर चीजपर अपना नाम लिखनेका, अखबारोंमें नामकी घोषणा करनेका — ताकि कोई उन्हें भूल न जाय — कोई प्रश्न ही न था। उन दिनों कलाकार जो करना चाहता था, इसकी परवाह किये बिना करता था कि अगली पीढ़ियों-में उसका नाम चलता रहे। यह सब उच्चतर सौंदर्यको अभिव्यक्त करने-की अभीप्साके द्वारा किया जाता था, और सबसे बढ़कर इस विचारसे कि जिस देवताका आवाहन किया जा रहा है उसके लिये एक अच्छा आवास तैयार हो जाय। मध्ययुगीन कैथीड्रलोंमें भी यही बात थी और मुझे नहीं लगता कि वहां भी उन्हें बनानेवाले कलाकारोंके नाम बचे हैं। अगर कोई नाम बचा है तो एकदम अपवाद रूपमें अचानक ही बच रहा होगा। और आज, कोई छोटा-सा कपड़ेका टुकड़ा भी ऐसा न होगा जिसपर कोई चित्र पोता गया है और यह बतानेके लिये किसीके हस्ताक्षर न हों कि इसे अमुक सज्जनने बनाया है!

कहा जाता है कि पूर्व और पश्चिमकी कलाका समन्वय किया जा सकता है?

हां, यदि तुम काफी ऊंचे हो तो हर चीजका समन्वय कर सकते हो।

उसका क्या परिणाम होगा?

अगर यह आवश्यक है तो होगा। परंतु मूलतः ये चीजें अभी बननेकी प्रक्रियामें हैं। क्योंकि आधुनिक कालका और विशेषकर इस भद्दे व्यापार-वादका यह लाभ है कि अब हर चीज घुल-मिल गयी है, पूर्वकी चीजें पश्चिममें जाती हैं और पश्चिमकी चीजें पूर्वमें आती हैं और एक-दूसरेपर प्रभाव डालती हैं। अभीके लिये तो इससे एक गड़बड़झाला ही पैदा हो रहा है, एक प्रकारकी खिचड़ी-सी बन रही है। लेकिन इसमेंसे एक नयी अभिव्यक्ति आयेगी — यह अब चरितार्थ होनेसे इतनी दूर नहीं है। आज लोग जिस तरह मिल रहे हैं उस तरह मिलते हुए एक-दूसरेसे प्रभावित न होना संभव नहीं है। उदाहरणके लिये, अपनी विजयके पागलपनमें, पश्चिमकी जिन जातियोंने दुनियाके सब प्रकारके देशोंको जीत लिया था, उनपर विजित देशोंका बहुत मजबूत असर पड़ा है। प्राचीन कालमें जब रोमने यूनानको जीता था तो वह यूनानसे बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ था।

बिना जीते इतना असर न पड़ता। और अमरीकी — अब वे जो कुछ बनाते हैं उस सभीमें जापानी चीजें भरी होती हैं। और शायद उन्हें इसका भान भी नहीं है। जबसे उन्होंने जापानको जीता है; मैं देखती हूं कि अमरीकासे आने वाली पत्रिकाएं जापानी चीजोंसे भरी रहती हैं। और अमरीकासे आनेवाली वस्तुओंके ब्योरेमें जापानी प्रभाव दिखायी देता है। यह अपने-आप हो जाता है। यह बड़ी विचित्र बात है, हमेशा एक प्रकारका संतुलन होता है। जो भौतिक विजय प्राप्त करता है उसे विजितकी आत्मा जीत लेती है। यह पारस्परिक चीज है। उसने भौतिक विजय प्राप्त की, उसने भौतिक रूपसे अधिकार प्राप्त कर लिया, परन्तु विजितकी आत्मा विजेतापर अधिकार कर लेती है।

तो मिश्रण द्वारा... प्रकृतिके तरीके धीमे, अंधेरे और जटिल होते हैं। जिस कामको आत्माके द्वारा शायद जल्दी, आसानीसे और बिना अपव्ययके किया जा सकता था, उसे करनेमें वह बहुत लंबा समय लगाती है। वर्तमान अवस्थामें संसारमें बहुत अधिक अपव्यय होता है। लेकिन चीज हो जाती है। लोगोंको मिलाने-जुलानेका उसका अपना तरीका है।

क्या यह जानबूझकर है?

उस अर्थमें नहीं जिसमें मनुष्य "जानबूझकर" समझते हैं। यह वास्तवमें उसके अभिप्राय और लक्ष्यकी अभिव्यक्ति है जिसकी ओर व्यक्ति जा रहा है। सब कुछ निर्भर है चेतना-राशिपर। मनुष्यके लिये यह अस्त-व्यस्तता-सी है, क्योंकि वह केवल ब्योरे देख सकता है और यह समयका बहुत अधिक अपव्यय लगता है, क्योंकि उसके लिये समयका विचार उसके व्यक्तित्वकी अवधितक सीमित है। लेकिन प्रकृतिके सामने तो अनंतकाल है। और अपव्यय भी उसके लिये समान ही है, क्योंकि वह उस व्यक्तिकी तरह है जिसके सामने एक बड़ा कड़ाहा है। वह चीजोंको उसमें डालकर मिलाती है और सफल न हो तो सब कुछ निकाल फेंकती है, क्योंकि वह जानती है कि उन्हीं चीजोंको वापिस लेकर वह कोई और मिश्रण तैयार कर लेगी। चीज ऐसी ही है। कुछ भी गुम नहीं होता, वह सारे समय फिर-फिर काम आता रहता है। रूप तोड़े जाते हैं और पदार्थ वापिस ले लिया जाता है। हमेशा इसी तरह चलता रहता है। चीज बनती है, बिगड़ती है, उलट-फेर होती है — वह चाहे तो लाखों बार परीक्षण करती रहे, इस सबसे उसे क्या नुकसान हो सकता है? क्योंकि इसमें उसके कार्यको छोड़कर और किसी चीजका अपव्यय नहीं होता।

काम ही उसका सुख है। बिना कामके उसका अस्तित्व ही न रहेगा।

यह उसके लिये सुख हो सकता है, पर मनुष्योंके लिये नहीं!

नहीं, हर्गिज नहीं। मैं पूरी तरह सहमत हूं। मैं इसे जरा ज्यादा क्रूरता-पूर्ण विनोद मानती हूं। लो, बस।

४ नवम्बर, १९५३

माताजीने पिछले सप्ताह जो कहा था उसके अनुसार बच्चोंने सर्पिल कुंडलोंका गोला बनाया था। माताजी कक्षा शुरू होनेसे पहले उसके बारेमें बात करती रहीं।

...गोलेको वक्र रेखाओंका एक भाग ही छूता है। बाकी सब अंदर ही विकसित होता है। वह बनाया नहीं जा सकता। यह अपारदर्शक है। लेकिन वह था... उस गोलेके केंद्रमें सभी कुंडलोंके मिलनेका स्थान चौराहा था।

तुमने जो बनाया है, जिस तरह बनाया है, यह उसे चपटा कर देता है। यह चपटा है। जैसा मैंने देखा था, वक्र रेखाका एक हिस्सा किनारेको छूता था। हर वक्र रेखाका एक भाग किनारेका हिस्सा[1] है। और रंग स्पष्ट दिखायी देते थे और उनके आर-पार देखा जा सकता था...। मेरा ख्याल है तुम इसे ज्यामितिके ढंगसे कर सकते हो। सारी सतह कुंडलके एक भागसे बनी है।

पवित्र: ये कुंडल गोलेकी सतहपर हैं या उसके अंदर?

नहीं; कुंडल अंदर हैं।

---

[1] माताजी कहना चाहती हैं कि गोलेकी सतह ऐसे अनगिनत कुण्डलोंके कटान-बिन्दुओंसे संगठित है जो भीतर खुलते हैं।

अंत:केंद्रकी ओर।

वे एक-दूसरेको काटते हैं। उनकी दिशा ऐसी है कि सारा गोला कुंडलोंके एक-एक भागसे बना है।

क्या गोलेके अंदरका सारा भाग कुंडलोंसे भरा है?

स्वभावत: अंदरका सारा भाग कुंडलोंसे भरा था। लेकिन चूंकि वहां कोई पदार्थ न था (केवल कुंडल थे), इसलिये उनके आर-पार देखा जा सकता था। वे इस तरह जुड़े न थे कि अपारदर्शक द्रव्य बन जायं। और अच्छी तरह देखा जा सकता था: रंग चमकदार थे, आलोकमय रंग थे। अंदर लकीरका अनुसरण किया जा सकता था। इससे यह अनुमान किया जा सकता था कि वे असंख्य थीं।

क्या वे अंदरकी ओर ज्यादा-ज्यादा नजदीक खिंचते जा रहे थे जिससे छोटी-छोटी गोलाइयां बनती जायं?

ऐसे नियमित रूपमें नहीं कि सभी पहले चक्कर केंद्र पर हों। यह कुंडलों-की शृंखला नहीं थी जो पहले चक्रसे शुरू करके केंद्रकी ओर बढ़ती जाय।

और फिर केंद्रसे शुरू करके बाहरकी ओर चले?

नहीं, बिलकुल नहीं। आरंभ-बिंदु और अंतिम बिंदु एक ही न थे। फिर भी, इस तरह, दूरसे देखनेपर, कुछ-कुछ ऐसा ही लगता था। वह इसकी अपेक्षा बहुत ज्यादा जटिल था। उसमें वे नीरस चीजें बिलकुल न थीं।

मां, रंग किस चीजके प्रतीक थे?

यहां तीन हरे और एक नीला है। वह है तो नीला, पर हरा-नीला। फिर दो भूरे हैं, एक काला है, एक धूसर है और दो लाल:..। ये मूल रंग हैं, हैं न? उन्हें विशेष अर्थ दिया जा सकता है।

काला रंग नहीं था।

४ अगस्त, १९२९के वार्तालापमेंसे यज्ञ और आत्मनिवेदन वाला भाग पढ़नेके बाद माताजी आगे पढ़ती हैं :

> "... यह सत्य है कि आध्यात्मिक जीवन सबके अंदर एक तत्त्वको प्रकट करता है पर साथ ही उसकी अनंत विभिन्नताको भी प्रकट करता है। वह सत्तामें विभिन्नताके लिये और विभिन्नतामें पूर्णताके लिये कार्य करता है। नैतिकता आत्माकी स्वाधीनता और जीवनकी विविधताके विरुद्ध एक कृत्रिम ध्वजा उठाती है। वह निश्चित, सीमित, मानसिक चीजकी रचना करके सबको उसके अनुसार चलनेके लिये कहती है। सभीको वही गुण और वही आदर्श स्वभाव प्राप्त करनेके लिये परिश्रम करना चाहिये। नैतिकता न तो भागवत है और न भगवान्‌की है, यह मनुष्यकी है और मानव चीज है। नैतिकता अपने मूल-तत्त्वमें अच्छे और बुरेका निश्चित विभाजन करती है। लेकिन यह मनमानी धारणा है। यह सापेक्ष वस्तुओंको लेकर निरपेक्ष रूप दे देती है। क्योंकि अलग-अलग देशोंमें, अलग-अलग काल, जलवायु और समयमें अच्छा और *बुरा बदलते रहते हैं।*"
>
> प्रश्न और उत्तर १९२९ (४ अगस्त)

पुराने जमानेमें लोग मंदिरोंमें मानव-बलि क्यों चढ़ाते थे ?

मैं प्रश्नको पूरी तरह पकड़ नहीं पायी। वे ऐसा क्यों न करते? बकरेको मारनेमें और मनुष्यको मारनेमें बहुत अंतर नहीं है। मुझे नहीं मालूम। बहरहाल, हो सकता है कि जो सचमुच हुआ था और जो बात हमारी पीढ़ीतक आयी है — ये दोनों एकदम अलग चीजें हों। हो सकता है कि जब वे बलिकी बात कहते थे तो वह केवल प्रतीकात्मक चीज रही हो। हमें बताया गया है कि कुछ धर्मोंने हजारों मनुष्योंको जबह किया है। यह संभव है, यह वही सहज-वृत्ति है जो मनुष्योंसे चीजोंका नाश करवाती है। और निश्चय ही ये ऐसे धर्म थे जो विनाशकी ओर झुके हुए थे। बहुत सारी अलग-अलग बातें हैं। अगर कोई यह पूछे कि लोग भौतिक बलि क्यों चढ़ाते थे तो पहले उसके बारेमें निश्चित होना चाहिये। जहांतक मेरा सवाल है, मैं इसके बारेमें निश्चित नहीं हूं।

यह संभव है। यह इसपर निर्भर है कि तुम जीवनको किस दृष्टिसे देखते हो। बहरहाल, अगर कोई किसी दूसरेके जीवनपर अनधिकार चेष्टासे भगवान्‌के सामने उसकी बलि देनेका अपना अधिकार मान ले, अगर व्यक्ति जीवनको अमुक दृष्टिसे देखे तो यह बहुत बुरी मनोवृत्ति है। मैं शुरूमें कह रही थी कि मैं कोई कारण नहीं देखती कि मनुष्य किसी दूसरे पशु और मानव पशुमें फर्क क्यों करे। यह एक अजीब-सी चीज है।

अधिकतर धर्मोंमें, मेरा ख्याल है कि यह ऐसी ही चीज थी जैसी अब भी वहां है जहां मस्तकहीन कालीका मंदिर है[1] — यह अत्यंत अंधकारपूर्ण और अज्ञानमय चीज है। यह एक ऐसे दानवी देवताके अस्वस्थ भयसे आती है जिसे संतुष्ट करनेके लिये, इसलिये कि उससे कोई हानि न पहुंचे रक्त, बल और न जाने किस चीजकी जरूरत होती है। और यह सब भगवान्‌की ऐसी कल्पना या उसके भयसे आता है जो अपने-आपमें एक विरूप असंगति है। लेकिन अगर इसे मान भी लिया जाय तो केवल एक ही बलि सत्य हो सकती है और वह है आत्म-बलि। अगर कोई भगवान्‌के प्रति किसी चीजकी बलि देना चाहता है तो मुझे नहीं दीखता कि वह अर्पण करनेके लिये किस अधिकारसे अपनी जगह किसी औरकी जान ले सकता है, चाहे वह मनुष्य हो या पशु। अगर कोई बलि देना चाहता है तो उसे अपने-आपकी बलि चढ़ानी चाहिये, औरोंकी नहीं। चूंकि यह क्रिया अपने-आपमें काफी बुरी, अंधकारमय और निश्चेतन है इसलिये मुझे कोई कारण नहीं दीखता कि मनुष्यकी बलि देनेमें और बकरेकी बलि देनेमें ऐसा फर्क क्यों हो। बकरेके दृष्टिकोणसे यह एक असह्य विचार है — अगर बकरेसे पूछा जाता कि क्यों...।

संसारमें अपनी महत्ता और अपने व्यक्तित्वके निजी मूल्यके बारेमें मनुष्यकी अजीब धारणाएं होती हैं। इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। अगर उनसे कहा जाय: "तुम्हें किसी और की जान लेनेका कोई अधिकार नहीं है," तो यह उचित है; लेकिन तब बलि मत चढ़ाओ। यदि तुम बलि चढ़ाना ही चाहो तो अपनी बलि दो; अगर तुम यह मानते हो कि कोई ऐसा भयानक भगवान् है जिसे संतुष्ट करनेके लिये रक्त या जो भी हो, प्राणिक शक्तियां देनेकी जरूरत है तो दो। लेकिन तुम किस अधिकारसे उसे देनेके लिये औरोंकी जान ले सकते हो? यह असह्य अत्याचार है, भले यह उन मुर्गियोंकी ही बात हो जिन्हें मारा जाता है! लेकिन मेरा ख्याल है कि इसका एक और भी कारण है — मनुष्योंको एक अच्छी-खासी दावत मिल जाती

---

[1] जिसके मानमें हर वर्ष बहुत-से चूजोंकी गरदनें मरोड़ी जाती हैं।

है! यह काफी अधिक मात्रामें भोजन निगलनेका एक अवसर हो जाता है। मुझे पता नहीं, मेरे लिये इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता।

क्या बुरे वातावरणसे, मानसिक और प्राणिक गड़बड़ोंसे घिरे रहते हुए, भगवान्‌की उपस्थितिका अनुभव किया जा सकता है?

बशर्ते कि वह वातावरण स्वयं तुम्हारे अंदर न हो! क्योंकि अगर ऐसी बात हो तो मुश्किल है। फिर भी! हमारे सामने ऐसे लोगोंके उदाहरण प्रायः ही आते रहे हैं जिनका जीवन संदिग्धसे भी बढ़कर रहा है और जिनको अंतःप्रकाश मिलता था। एक पियक्कड़का उदाहरण है जिसे ऐसी अवस्थामें, जब वह पिये हुए था, अचानक भगवान्‌का संपर्क प्राप्त हुआ — जिसने उसका जीवन ही बदल दिया, और मुझे यह भी बताना चाहिये कि इसने आगेके लिये उसका पीना भी बंद कर दिया। लेकिन फिर भी जिस समय उसे भागवत उपस्थितिका साक्षात्कार हुआ था उस समय वह पीकर धुत था। मुझे नहीं लगता — हम फिरसे उन्हीं बातोंपर वापिस जाते हैं — मुझे नहीं लगता कि भगवान् नैतिकवादी हैं। मनुष्य नैतिकवादी होता है, भगवान् नहीं। अगर ऐसा संयोग हो कि उसी समय, ठीक उसी क्षण घटनाओंका ऐसा संयोग हो जाय और शायद सत्तामें एक उद्घाटन हो जाय, तो भगवान् जो हमेशा उपस्थित रहते हैं, अपने-आपको अभिव्यक्त कर देते हैं। दूसरी ओर, जो संत या मनीषी अपनी ही महत्ता और अपने ही मूल्यसे भरा हो, जो मिथ्या-अभिमान और गर्वसे भरा हो, उसके अंदर भगवान्‌के प्रकट होनेकी बहुत संभावना नहीं है, क्योंकि वहां भगवान्‌के प्रकट होनेके लिये स्थान ही नहीं है। वहां उस बुद्धिमान् और नैतिक मूल्यवाले आदमीके महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्वको छोड़कर किसीके लिये जगह ही नहीं है।

स्वभावतः एक ऐसी अवस्था होती है जब व्यक्ति पूर्ण रूपसे शुद्ध, पूर्ण रूपसे बुद्धिमान् हो और भगवान्‌के साथ उसका संपर्क भी हो। लेकिन तब उसका मतलब यह होता है कि वह पूर्णताकी अमुक स्थितितक पहुंच चुका है और अपने व्यक्तिगत महत्त्व और निजी मूल्यके भाव खो चुका है। मेरा ख्याल है कि यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। भगवान्‌के साथ संपर्कमें सबसे बड़ी बाधा है गर्व, अपने व्यक्तिगत मूल्यका भाव, अपनी निजी क्षमताओं, अपनी निजी शक्तिका भाव — तब व्यक्ति बहुत बड़ा हो जाता है, इतना बड़ा कि भगवान्‌के लिये कोई जगह ही नहीं रह जाती।

नहीं, एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है अभीप्साकी तीव्रता और अभीप्साकी यह तीव्रता सब प्रकारकी परिस्थितियोंमें आती है।

दो चीजें हैं जिनमें हमें गड़बड़ नहीं करनी चाहिये। कुछ जरूरतें (अगर तुम भौतिक द्रव्यको वशमें करना चाहो तो ये शुद्ध रूपसे जरूरतें हैं), और फिर नैतिक धारणाएं। ये दोनों बहुत भिन्न वस्तुएं हैं। उदाहरणके लिये, यदि तुम अपनी भौतिक चेतनाके स्वामी बनना चाहते हो और अपने शरीरको रूपांतरके योग्य बनाना चाहते हो तो तुम अपने शरीरको विषाक्त करनेसे, अपने दिमागको मतवाला बनानेसे और अपनी इच्छा-शक्तिको लुप्त करनेसे परहेज कर सकते हो। लेकिन अगर तुम यही चीजें केवल इसलिये करो क्योंकि तुम्हारा ख्याल है कि इससे तुम्हें नैतिक पुण्य मिलेगा तो यह तुम्हें कहीं नहीं पहुंचायेगा, इससे तुम्हें कोई लाभ न होगा। क्योंकि यह इसके लिये नहीं है। तुम इसे शुद्ध रूपसे व्यावहारिक कारणोंसे करते हो, उदाहरणके लिये, उसी तरह जैसे तुम विष नहीं खाते क्योंकि तुम जानते हो कि यह तुम्हें विषाक्त कर देगा। फिर कुछ मंद विष हैं जिनका उपयोग किया जाता है (लोग अपनी ओरसे बेधड़क होकर उनका उपयोग करते हैं, क्योंकि उनका असर धीरे-धीरे होता है और वे उसे आसानीसे नहीं देख पाते)। लेकिन अगर तुम अपनी शारीरिक क्रियाओंके पूरी तरहसे स्वामी बननेमें सफल होना चाहते हो, और अपने शरीरकी सहज क्रियाओंमें ज्योति डालना चाहते हो तो तुम्हें ऐसी चीजोंसे परहेज करना चाहिये — नैतिक कारणोंसे नहीं। शुद्ध रूपसे व्यावहारिक कारणोंसे, योगकी उपलब्धिकी दृष्टिसे। तुम्हें यह सब पुण्य लाभकी दृष्टिसे या इस विचारसे नहीं करना चाहिये कि पुण्य लाभ करनेसे भगवान् तुमसे बहुत खुश होंगे और आकर तुम्हारे अंदर प्रकट होंगे। नहीं, ऐसा बिलकुल नहीं है, बिलकुल नहीं! शायद यहांतक कि भगवान् अपने-आपको उसके ज्यादा निकट पाते हैं जिसने भूलें की हैं और अपने दोषोंके बारेमें सचेतन है, जिसे अपनी कमजोरीका भान है और सचाईके साथ इस सबमेंसे बाहर निकल आना चाहता है — शायद भगवान् अपने-आपको ऐसे आदमीके ज्यादा नजदीक अनुभव करते हैं, ऐसे आदमीकी अपेक्षा जिसने कभी भूल नहीं की और जो अन्य मनुष्योंसे बाहरी रूपमें श्रेष्ठ होनेसे ही संतुष्ट है। बहरहाल, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। जिस चीजसे बहुत फर्क पड़ता है वह है सचाई और निष्कपटता, सहज-स्वाभाविकता, अभीप्साकी तीव्रता — आवश्यकता, ऐसी आवश्यकता जो तुम्हें पकड़ लेती है, जो इतने जोरकी होती है कि उसके सामने दुनियाकी और किसी चीजकी कोई गिनती नहीं।

जैसा कि मैंने कहीं और समर्पण और बलिदानके बारेमें कहा है, अगर तुम्हें किसी चीजके लिये पछतावा होता है तो इसका मतलब है कि तुम आध्यात्मिक चेतनामें नहीं हो। अगर तुम्हें इस चीजके लिये बुरा लगता

है कि तुम अब अपनी इच्छाएं पूरी नहीं कर सकते तो इसका मतलब यह हुआ कि इन इच्छाओंका ज्यादा नहीं तो कम-से-कम उतना महत्त्व तो है ही जितना उस चीजका जिसके लिये तुम अभीप्सा कर रहे हो। तुम कह सकते हो: "इच्छाओंके बारेमें मैं पूरी तरह सचेतन हूं। मैं भगवान्‌को पानेके विचारसे इच्छाओंका परित्याग कर रहा हूं, लेकिन मुझे इसका विश्वास नहीं कि वे मुझे मिल जायंगे। इसलिये मैं इसे बलिदान कहता हूं।" परंतु मैं इसे सौदाबाजी कहती हूं। यह भगवान्‌के साथ सौदाबाजी है। तुम भगवान्‌से कहते हो: "लो और दो, मैं तुम्हें अपनी इच्छाओंकी पूर्तिसे मिलने-वाली खुशी दे रहा हूं। तुम्हें इसके बदलेमें मुझे अपने अंदर तुम्हें अनुभव करनेका आनंद देना चाहिये, वरना यह न्याय न होगा।" यह आत्म-दान नहीं है, यह है सौदाबाजी।

यह मैंने बहुधा सुना है, बहुत बार सुना है: "मैंने इतनी चीजोंका त्याग किया, मैंने इतना प्रयास किया, इतना कष्ट उठाया और अब देखो, बदलेमें मुझे कुछ भी नहीं मिला।" मैं इसका बस यही उत्तर दे सकती हूं: "कोई आश्चर्य नहीं!"

क्या किसी बहुत घमंडी आदमीमें बहुत अभीप्सा हो सकती है?

क्यों नहीं? बहुत घमंडी आदमीपर मार पड़ सकती है और वह समझदार बन सकता है; इसके अतिरिक्त, जब उसे एक थप्पड़ लगता है तो वह उसे जरा जगा भी सकता है। तब उसमें कुछ अभीप्सा हो सकती है। और अगर कोई ऐसा आदमी हो जिसके स्वभावमें तीव्रता हो, कुछ बल हो तो उसकी अभीप्सा भी शक्तिशाली होगी।

और मार खाये बिना?

वह हो सकता है। लेकिन उस अवस्थामें वह बहुत ज्यादा मिला-जुला होगा। सभी उदाहरणोंमें वह बहुत मिला-जुला होगा — लेकिन हमेशा हर चीज मिली-जुली होती है। चीजोंके साफ होनेके लिये बहुत समयकी जरूरत पड़ती है। तुम कहीं भी, किसी भी, कैसी भी हालतमें, किसी भी अवस्थामें शुरू कर सकते हो। तुम हमेशा शुरू कर सकते हो। हां, कुछ अवस्थाओंमें बहुत अधिक समय लगता है। क्योंकि मिश्रण ऐसा होता है कि हर बार एक कदम आगे बढ़नेके साथ-साथ तुम आधा कदम पीछे हटते हो। लेकिन इसका कोई कारण नहीं। मूलतः जीवनका और व्यक्तिगत

सत्ताका सच्चा उद्देश्य है भगवान्‌से अवगत होना, यह कहींसे, किसी भी क्षण आ सकता है। अगर कहीं जरा-सी भी संभावना हो तो वह उछल पड़ता है। स्वभावतः अगर कोई पूरी तरह संतुष्ट है तो यह एक बाधा है, क्योंकि तब तुम आत्म-तुष्टिमें सोये रहते हो। लेकिन यह बहुत दिन नहीं चल सकती। जीवनमें, संसारकी जो अवस्था है उसमें, अहंकारमय संतोष, एक निजी संतोष टिक नहीं सकता और — वह जबतक टिकता है, हां, तुम कठोर बन जाते हो और बिलकुल अभीप्सा नहीं करते। लेकिन यह चीज टिकती नहीं।

और कुछ?

किसीको कुछ नहीं कहना?

तो फिर, पुनरागमनाय, मेरे बच्चो, शुभ रात्रि!

११ नवम्बर, १९५३

माताजी 'Quelques Paroles, Quelques Prières' नामक पुस्तकके पहले पृष्ठ पढ़नेवाली हैं।

इसके पहले कुछ पृष्ठ १९१२ में लिखे गये थे। तुममेंसे बहुत-से तो तब पैदा भी न हुए थे।

लगभग बारह व्यक्तियोंका एक दल था जो सप्ताहमें एक बार मिलता था। एक विषय दे दिया जाता था, और अगले सप्ताहके लिये उत्तर तैयार करना होता था। हर एक अपने साथ अपनी छोटी-सी कृति लाता था। साधारणतः मैं भी एक छोटा-सा निबंध तैयार करती थी और अंतमें उसे पढ़ सुनाती थी। यहां वही दिया गया है — सब नहीं, सिर्फ यही दो। यही पहले दो। बादमें कुछ और हैं। बाकी निबंध 'पहलेकी बातें' (श्रीमातृवाणी, खण्ड २) में छपे हैं।

चार बैठकें हुई थीं। पहली बैठकका विषय था: "कौन-सा लक्ष्य प्राप्त करना है, कौन-सा काम करना है और उसे प्राप्त करनेका साधन क्या है?" और यह रहा मेरा उत्तर:

माताजी ७ मई, १९१२ का लेख पढ़ती हैं: "सामान्य लक्ष्य है

उत्तरोत्तर बढ़ते हुए वैश्व सामंजस्यको प्राप्त करना।"

यही है अतिमानस।

उस समय मैं श्रीअरविन्दको न जानती थी। उन्होंने तबतक कुछ नहीं लिखा था।

"...'अचित्य'के तीन प्रकार, सात विशेषताओं और बारह गुणोंमें धरतीपर प्रथम अभिव्यक्तिके पूर्ण प्रतिनिधि बनना..."

आप "तीन प्रकार, सात विशेषताएं और बारह गुण" किसे कहती हैं?

अब मुझे याद नहीं है, तीन बने हुए प्रकार — प्रेम, ज्योति और जीवन जो सच्चिदानंदके साथ मेल खाते हैं। सात विशेषताएं ... मेरे पास कहीं उनकी सूची है। एक पुरानी परंपराके अनुसार सृष्टिकी रचना सात बार की गयी, यानी, छह बार वह स्रष्टाके अंदर वापस चली गयी। यही प्रलयका विचार है। कहा जाता है कि यह छह बार हो चुका है और हम अब सातवीं सृष्टिमें हैं और यह अंतिम है और यह बनी रहेगी। यह "संतुलनकी सृष्टि" है। ये सब भी मैंने कहींपर लिखी हैं, यह सब लिखा हुआ है परंतु अब मुझे उनका क्रम याद नहीं है। छः सृष्टियां हैं, एकके बाद एक, जो इस विशेष प्रकारसे बनायी गयी थीं, वे अपूर्ण पायी गयीं और अपने 'मूल'में वापिस खींच ली गयीं, फिरसे बनायी गयीं और फिरसे 'उद्गम' में खींच ली गयीं — इस तरह छः बार हुआ। यह प्रगतिशील क्रम है। अगर तुम्हें वह क्रम मालूम हो तो तुम हर सृष्टिके तत्त्वको समझ सकोगे। हां, तो इस परंपराका कहना है कि इस अंतिम सृष्टिका तत्त्व, वर्तमान सृष्टिका तत्त्व संतुलन है, और यही अंतिम है। इसका मतलब है कि अब संसार प्रलयमें वापिस न जायेगा और निरंतर प्रगति होती रहेगी और यह संतुलनकी सृष्टि है।

परिणामतः, अब कोई चीज भली या बुरी नहीं है। ऐसी चीजें हैं जिनमें समत्व है और ऐसी चीजें हैं जिनमें समत्व नहीं है। संतुलन और असंतुलन है। बस, इतना ही। और मैंने वहां जो कहा है वह उसीपर आधारित था।

बारह गुण — यह कुछ और ही चीज है। यह भी कहीं लिखा हुआ है। संसारके चलते रहनेके लिये उसे इन बारह गुणोंके द्वारा — ये सब उसमें हैं — अपने सभी तत्त्वोंमें पूर्ण समत्व लाना चाहिये। और

तब वह ऐसा जगत् होगा जो अनिश्चित कालतक प्रगति करता रहेगा, जो निरंतर सामंजस्यमें रहेगा और इसलिये विनाशकी संभावना न रहेगी।

"संसारको फिरसे एक नये रूपमें उसकी मनोवृत्तिकी वर्तमान अवस्थाके अनुसार शाश्वत वाणी प्रदान करना। यह समस्त मानव ज्ञानका समन्वय होगा।..."

आप यहां "शाश्वत वाणी"की बात कहती हैं?

मैं "वाणी"का प्रयोग सत्यके अर्थमें कर रही हूं। एक शाश्वत सत्य है जो शाश्वत रूपसे सत्य है, परंतु वह निश्चित रूपोंमें अभिव्यक्ति पाता है और ये निश्चित रूप बदलते रहते हैं, घटते-बढ़ते हैं और विकृत हो सकते हैं। सत्यको पानेके लिये तुम्हें हमेशा मूल-स्रोतकी ओर वापिस जाना चाहिये जो... जिसे शाश्वत वाणी कहा जा सकता है, अर्थात्, सर्जनात्मक वाणी। यह एक ऐसा सत्य है जो शाश्वत है, जो अपने-आपको सभी संभव शब्दोंमें और विचारोंके द्वारा अभिव्यक्त करता है। मैं यहां वाणी शब्दका उपयोग शाब्दिक अर्थमें कर रही हूं — जिसे अन्य स्थानोंपर "सर्जक शब्द" कहा जाता है। यह वाचाका और समस्त विचारका मूल-स्रोत है।

मैं "जिस लक्ष्यको चरितार्थ करना है" का अर्थ नहीं समझा।

जिस लक्ष्यको चरितार्थ करना है? मैंने क्या कहा है? यह धरतीको सामंजस्यपूर्ण करना है — मेरा ख्याल है, है न?

"धरतीके बारेमें, इस लक्ष्यको पानेका साधन है सबके अंदर दिव्यताको जगाकर, सबमें उस एक ही दिव्यताको अभिव्यक्त करके मानव एकताकी प्राप्ति।

"दूसरे शब्दोंमें: भगवान्‌का जो राज्य सबके अंदर मौजूद है उसे स्थापित करके एकता पैदा करना।

"अतः जो काम सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है वह है:

"१) हर एकके लिये व्यक्तिगत रूपसे, अपने अंदर दिव्य उपस्थितिके बारेमें सचेतन होना और उसके साथ अपना तादात्म्य करना।"

हां, तुम नहीं समझ रहे? मैं अभीतक यह बात पचास हजार बार कह चुकी हूं, है न? . . . ओह! अब समझ गये? (हंसी)

> "२) सत्ताकी उन अवस्थाओंको व्यक्तिगत रूप देना जो अभीतक मनुष्यके अंदर कभी नहीं जागी हैं और परिणामतः धरतीका वैश्व शक्तिके एक या अनेक स्रोतोंके साथ संपर्क बनाना, ऐसे स्रोतोंके साथ जो अभीतक उसके लिये बंद रहे हैं।"

"सत्ताकी उन अवस्थाओंको व्यक्तिगत रूप देना जो अभीतक मनुष्यके अंदर कभी नहीं जागी है," यानी, ये ऊपर स्थित अवस्थाएं हैं और ऐसे नये क्षेत्र हैं जो अभीतक कभी धरतीपर प्रकट नहीं हुए, जिन्हें श्रीअरविंद अतिमानस कहते हैं। यह वही है, यह वही विचार था। अर्थात्, व्यक्तिको सृष्टिकी ऐसी गहराइयों और ऐसी ऊंचाइयोंतक जाना चाहिये जो धरतीपर कभी अभिव्यक्त नहीं हुईं, और उनके प्रति सचेतन होना तथा उन्हें धरतीपर प्रकट करना चाहिये। श्रीअरविंद इसे अतिमन कहते हैं। मैं सिर्फ इतना ही कहती हूं कि ये सत्ताकी ऐसी अवस्थाएं हैं जो कभी मनुष्यमें नहीं जागीं (यानी, अभीतक मनुष्यको उनका भान नहीं हुआ)। व्यक्तिको उनके साथ तादात्म्य सिद्ध करना चाहिये, फिर उन्हें बाहरी चेतनामें लाना चाहिये और उन्हें क्रियामें अभिव्यक्त करना चाहिये। और आगे मैं कहती हूं (ठीक वही जो मैंने पहले ही देख लिया था — मुझे यह न मालूम था कि यह काम श्रीअरविंद करेंगे, पर फिर भी मैंने यह देख लिया था कि यह करना होगा):

> "३) संसारसे उसके वर्तमान मानसके अनुकूल एक नये रूपमें शाश्वत वाणी बोलना।".

यह परम सत्य है — सामंजस्य। श्रीअरविंदने आगे चलकर जो किया, यह उसका संपूर्ण कार्यक्रम है, धरतीपर उसे करनेका तरीका है। और मैंने इसे १९१२ में देख लिया था। मैं पहली बार श्रीअरविंदसे १९१४ में मिली थी, यानी, इसके दो साल बाद। और मैं इससे पहले ही कार्यक्रम बना चुकी थी।

> "४) और सामूहिक रूपमें नयी जातिके खिलनेके लिये उपयुक्त

स्थानपर एक आदर्श समाज, "भगवान्‌के बालकों"के समाजकी स्थापना करना।"

आपने किस जगह आश्रमकी स्थापना करनेका निश्चय किया था?

मैंने कहां करनेका निश्चय किया था? मैंने इस प्रकारका कोई निश्चय किया ही नहीं! मैंने बस इतना ही कहा था कि यह करना होगा। मुझे जरा भी ख्याल न था, सिवाय इसके कि मेरी हिंदुस्तान आनेकी बहुत इच्छा थी। फिर भी, मुझे यह भी न मालूम था कि यह किसी चीजसे मेल खाती थी। मैंने कोई भी निश्चय नहीं किया था। मैंने सिर्फ वह स्थिति देखी थी, कि क्या करना चाहिये।

बच्चे ४ अगस्त १९२९ की बातचीतपर वापिस आते हैं।

"साधारण सामाजिक धारणाएं दो प्रकारके लोगोंमें भेद करती हैं — उदार और लोभी। कृपण आदमीसे घृणा की जाती है, उसे बुरा-भला कहा जाता है जब कि उदारको निस्स्वार्थ और समाजके लिये उपयोगी माना जाता है, उसके गुणोंके लिये उसकी प्रशंसा की जाती है। परंतु आध्यात्मिक दृष्टिके सामने दोनों एक ही स्तरपर खड़े हैं। एककी उदारता और दूसरेकी कृपणता, दोनों ही एक उच्चतर सत्यके, एक ज्यादा बड़ी दिव्य शक्तिके विकृत रूप हैं। एक शक्ति है, एक दिव्य क्रिया जो शक्तियों और वस्तुओंको प्रकृतिके सभी स्तरोंपर, अत्यंत जड़ पदार्थसे लेकर अत्यंत आध्यात्मिक स्तरतक जो कुछ भी उसके अधिकारमें हो उसे बिखेरती, फैलाती और खुले हाथों फेंकती रहती है। उदार व्यक्तिके पीछे, उसकी उदारताके पीछे प्रकारकी आत्मा होती है जो इस क्रियाको अभिव्यक्त करती है। वह फैलानेके लिये, दूर-दूरतक बांटनेके लिये एक शक्ति है। एक और शक्ति है, एक और दिव्य क्रिया है जो इकट्ठा करती है, जमा करती है, वह सब प्रकारकी शक्तियों और चीजों और सभी संभव संपत्तिको बटोरती और उनका संचय करती है। फिर चाहे वे चीजें ऊंचे स्तरोंकी हों या नीचेकी। तुम जिसे कृपण होनेका दोषी ठहराते हो वह इस शक्तिका

यंत्र बननेके लिये था। दोनों महत्वपूर्ण हैं। समस्त योजनामें दोनोंकी जरूरत है। जोड़ने और इकट्ठा करनेकी क्रिया फैलाने और बिखेरनेकी क्रियासे कम आवश्यक नहीं है।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (४ अगस्त)

"प्रकारकी आत्मा" से आपका क्या मतलब है?

वाक्य क्या है? (माताजी पुस्तक देखती हैं) ओह! प्रकारकी आत्मा। जैसे हमने कहा था, हर पशुकी जातिके पीछे उस जातिकी आत्मा होती है, उसी तरह हर प्रकारके मनुष्यके पीछे उस प्रकारकी आत्मा होती है। मैं उसीको प्रकारकी आत्मा कहती हूं। यह प्रकारकी आत्मा है जो प्रगतिशील हो सकती है पर वह नष्ट नहीं होती।

प्रकारकी आत्मा, व्यक्तिगत रूपमें या सामूहिक रूपमें वस्तुओंके स्वधर्मसे मेल खाती है। कभी-कभी इसे वस्तुओंका सत्य, हर चीजका सत्य कहा जाता है।

क्या उदारता सत्यका विकृत रूप है?

हां, सभी मानवगुण अपने पीछे रहनेवाले सत्यके विकृत रूप हैं। और बिना चीजोंको तुच्छ गुण या दोष कहते होनेवाले सब हमेशा अपने पीछे रहनेवाली किसी चीजके विकृत रूप होते हैं, और वह चीज न तो यह है, न वह, बल्कि कुछ और ही है। और फिर, मैं कहती हूं, उदारताके पीछे जो सत्य पाया जाता है वह है फैलनेवाली शक्तियोंकी क्रिया। लेकिन इन शक्तियोंके फैलनेसे पहले यह जरूरी है कि वे कहींपर केन्द्रित हों। अतः स्पंदनकी-सी एक गति होती है। पहले शक्तियां केन्द्रित होती हैं, फिर फैलती हैं और फिर वे पुनः केंद्रित होती हैं और फिर फैलती हैं ...। लेकिन अगर तुम हमेशा, इकट्ठा किये बिना फैलाते ही रहना चाहो तो कुछ समयके बाद तुम्हारे पास फैलानेके लिये कुछ भी नहीं बच रहता। शक्तियोंके लिये — सभी शक्तियोंके लिये — यही बात है। और फिर, मैंने लिखा है (बल्कि मैं कभी लिखूंगी) कि धन एक शक्ति है, यह उसके सिवा कुछ नहीं। इसलिये किसीको व्यक्तिगत रूपसे उसे अपने वशमें रखनेका अधिकार नहीं है, क्योंकि वह केवल शक्ति है, प्रकृतिकी और विश्वकी और सब शक्तियोंकी तरह। अगर तुम प्रकाशको एक शक्तिके रूपमें लो, किसीके दिमागमें यह बात न आयेगी कि वह कहे: "प्रकाशपर

मेरा अधिकार है," और यह चाहे कि प्रकाशको अपने कमरेमें बंद करके किसी औरको न दे! हां, धनसे लोग ऐसे बौरा जाते हैं कि वे कल्पना करते हैं मानों यह कोई ऐसी चीज है जिसे वे अपने वशमें कर सकते हैं, रख सकते हैं, मानों वह उनकी अपनी हो और जिसे वे अपनी निजी संपत्ति बना सकते हों। यह ठीक वही चीज है। मैं कागजके रूपमें धनकी बात नहीं कर रही। यह तो, स्वभावतः ऐसी बात होगी जैसे तुम्हारे दीपककी रोशनी। दीपक तुम्हारा हो सकता है और तुम कहते हो: "यह मेरा प्रकाश है।" धन, तुम्हारे नोट, तुम्हारे चांदीके टुकड़े तुम्हारा धन है। परंतु ये धन नहीं हैं। इन सबके पीछे एक शक्ति होती है, विनिमयकी शक्ति जो धन है। वह किसीकी नहीं होती। वह सबकी होती है। वह ऐसी चीज है जो संचारसे ही जीवित रह सकती है। अगर तुम उसका ढेर लगाना चाहो तो वह सड़ जाती है। यह ऐसा होगा जैसे तुम किसी बर्तनमें पानीको बंद कर दो और हमेशा रखना चाहो। कुछ समयके बाद तुम्हारा पानी बिलकुल सड़ जायगा। धनके साथ भी यही बात है। लेकिन लोग अभीतक यह नहीं समझे हैं। मैं बादमें, इस बारेमें लिखूंगी।

यह चीज चलेगी नहीं।

क्या भौतिक वस्तुओंके लिये कृपणता हो...।

सभी चीजोंके लिये कृपणता — एक कृपणता आध्यात्मिक चीजोंके लिये भी होती है। ऐसे कंजूस लोग होते हैं जो सभी शक्तियोंको अपने ही लिये रख लेना चाहते हैं। कुछ भी नहीं देना चाहते। लेकिन मैंने अभी-अभी तुम्हें इसका सत्य बतलाया है। बिखेरनेकी शक्ति होनेके लिये तुम्हारे अंदर संचय करनेकी शक्ति होनी चाहिये। अगर तुम्हारे अंदर दोनोंमेंसे एक ही हो तो असंतुलन हो जाता है और तब यह कृपणता या अपव्यय बन जाती है। तुम्हारे अंदर संतुलित लयबद्ध गतिके रूपमें दोनों चीजें होनी चाहिये, जिनके बारेमें हम अभी बात कर रहे थे। क्योंकि, वास्तवमें, यह सिद्ध करना बहुत सरल होगा कि इस समय संतुलन ही सच्ची चीज है। तुम्हें न इस तरफ होना चाहिये, न उस तरफ, जिसे बुद्ध मध्यम मार्ग कहते हैं। मध्यमा मार्ग संतुलनका मार्ग है। इसलिये जैसे रस्सीपर चलनेवाला लाठीके सहारे अपना संतुलन रखता है उसी तरह तुम्हें भी अपने-आपको ठीक रखना जानना चाहिये।

लेकिन दुनियाका उदार-से-उदार आदमी भी कुछ न दे सकेगा यदि उस-

के पास देनेके लिये कुछ न हो। इसलिये यदि उसने संचय नहीं किया है तो किसी औरने उसके लिये संचय किया होगा, लेकिन अगर उसकी जेबमें कुछ नहीं है तो वह कुछ भी न दे सकेगा! यह तो स्पष्ट ही है। और संचय करनेकी शक्ति भी उतनी ही जरूरी है जितनी वितरण करनेकी शक्ति। जब ये दोनों चीजें अहंकारयुक्त हो जाती हैं तो उनमें विकार आ जाता है, वे बिलकुल विकृत हो जाती हैं और अपना सारा मूल्य खो बैठती हैं।

तो यह लो, मेरे बच्चो।

१८ नवम्बर, १९५३

"पुनर्जन्ममें माता-पिता, वातावरण और परिस्थितियोंद्वारा बनायी गयी बाह्य सत्ता — मानसिक, प्राणिक और भौतिक — दुबारा जन्म नहीं लेती, केवल चैत्य पुरुष ही एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता है। अतः, न्याय-संगत बात यह है कि न तो मानसिक और न प्राणिक सत्ताको पिछले जन्मोंकी याद रह सकती है और न वे अपने-आपको इस या उस व्यक्तिके चरित्र या जीवन-रीतिमें पहचान सकती हैं। केवल चैत्य पुरुष ही याद रख सकता है। इसलिये चैत्य पुरुषके बारेमें सचेतन हो कर ही हम अपने पिछले जन्मोंके ठीक-ठीक संस्कारोंसे अवगत हो सकते हैं।

"इसके अतिरिक्त हम क्या रह चुके हैं इसपर केंद्रित होनेकी जगह बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है कि हम अपना ध्यान उस चीजपर केंद्रित करें जो हम बनना चाहते हैं।"

२ अप्रैल १९३५; श्रीमातृवाणी

अगर मन, प्राण और शरीरका पुनर्जन्म नहीं होता, केवल चैत्य ही फिरसे जन्म लेता है तो मन, प्राणकी प्रगतिका अगले जन्ममें कोई महत्त्व नहीं होता?

यह उसी हदतक होता है जहांतक कि इन भागोंकी प्रगति उन्हें चैत्यके

निकट लाती है; यानी, जहांतक यह प्रगति सत्ताके इन भागोंको उत्तरोत्तर चैत्य-प्रभावमें लाती है। क्योंकि वह सब जो चैत्य-प्रभावमें है और चैत्यके साथ एक हो गया है, वह बना रहता है और केवल वही बना रहता है। लेकिन अगर चैत्यको अपने जीवन और अपनी चेतनाका केंद्र बनाया जाय और सारी सत्ताको उसीके चारों ओर संगठित किया जाय तो सारी सत्ता चैत्य-प्रभावमें आ जाती है और फिर वह बनी रह सकती है — यदि उसका बना रहना आवश्यक हो। वस्तुतः यदि भौतिक शरीरको भी उसी प्रकार-की गति दी जा सके — प्रगतिकी वही क्रियाएं और आरोहणकी वही क्षमता दी जा सके जो चैत्य पुरुषमें है — तो उसका विघटन जरूरी न होगा। लेकिन वही वास्तविक कठिनाई है।

और केवल वही बना रह सकता है जिसका चैत्यके साथ संपर्क हो और जो बना रह सकता है केवल वही याद रख सकता है, क्योंकि बाकी सब गायब हो जाता है, फिरसे छोटे-छोटे टुकड़ोंमें विघटित हो जाता है और कहीं और काममें आता है — जैसे शरीर फिरसे धूल बन जाता है और कहीं और काम आता है। वह फिरसे धरतीमें चला जाता है, वनस्पतियां मिट्टीका उपयोग करती हैं और मनुष्य वनस्पतियोंको खाते हैं। चीज इसी तरह चलती रहती है और वह फिरसे धरतीमें लौट आती है और फिरसे शुरू करती है। प्रकृति इसी तरह प्रगति करती है। प्रगति करने-के लिये वह ढेर सारे रूप बनाती है, फिर जब वे उसके लिये आवश्यक या महत्त्वपूर्ण नहीं रहते तो वह उन्हें तोड़ देती है, सभी तत्त्वोंको, चाहे वे रासायनिक हों या किसी और तरहके, फिरसे लेकर कोई और ही चीज बनाती है और इस तरह हमेशा बदलती जाती है, आना-जाना लगा रहता है। और उसे यह बहुत अच्छा लगता है, क्योंकि वह बहुत दूरतक देखती है। उसका काम शताब्दियोंमें फैला रहता है जिसमें छोटा-सा मानव जीवन कुछ भी नहीं, शाश्वत कालमें एक श्वास। तो, वह उठाती है, रूप देती है, कुछ समय लगाती है, उसके लिये यह तमाशा है: उसे यह बहुत अच्छा लगता है; और फिर जब वह इतना अच्छा नहीं रहता तो उसे तोड़ देती है — वह उठा लेती है, सब कुछ मिला देती है, एक नया रूप शुरू करती है और कोई और चीज बनाती है। और शायद इस विधिसे, जो स्पष्ट ही बहुत धीमी है, अंततः सारा जड़-तत्त्व प्रगति करता है। यह संभव है — हमेशा इस तरहसे आपसमें मिलाते हुए, तोड़ते हुए, फिरसे सानते हुए और फिरसे तोड़ते हुए यह संभव है। तत्त्वतः यह ऐसा ही है जैसे तुम छोटी-छोटी चीजोंका एक ढेर तैयार करो और उन चीजों-को नष्ट कर डालो और फिर मिट्टीसे कुछ बनाओ, कुछ नये खिलौने बनाओ

और उन्हें भी तोड़ दो और फिर नये बनाओ। हर बार उसे अच्छी तरह मिलानेके लिये तुम उसमें कोई नयी चीज जोड़ देते हो। और फिर, एक दिन, शायद इस सबसे कुछ पैदा होगा। बहरहाल, वह जल्दीमें नहीं है और जब हम जल्दी करते हैं तो वह कहती है: "तुम इतनी जल्दीमें क्यों हो? यह एक दिन अवश्य हो जायगा। चिंता करनेकी जरूरत नहीं। यह जरूर होगा। चुपके-से प्रतीक्षा करो।" तब हम उसे कहते हैं: "परंतु मैं यही प्रतीक्षा कर रहा!" — "ओह! यह तो इसलिये कि तुम उस चीज-को 'मैं' कहते हो जो आती-जाती रहती है। अगर तुम चेतनाको — एक शाश्वत, दिव्य चेतनाको — 'मैं' कहो तो तुम सब कुछ देख सकोगे, तुम हर बातके लिये उपस्थित रहोगे। तुम्हें ऐसा करनेसे कोई नहीं रोकता! यह सब इसीलिये है कि तुम अपने-आपको (शरीरकी ओर इशारा करते हुए) इसके साथ एक मानते हो। बस, इसके साथ तादात्म्य करना बंद कर दो।"

"न्याय वैश्व प्रकृतिकी क्रियाओंकी कठोर तर्क-संगत नियति है।

"रोग इसी नियतिका भौतिक शरीरपर प्रयोग है। चिकित्सक-का मन इस अपरिहार्य न्यायको आधार बनाकर ऐसी परि-स्थितियां खोजना चाहता है जो न्यायतः अच्छे स्वास्थ्यकी ओर ले जायं।

"इसी तरह नैतिक चेतना सामाजिक शरीरमें और तपस्या आध्यात्मिक क्षेत्रमें काम करती है।

"केवल भागवत कृपा ही हस्तक्षेप करके वैश्व न्यायकी गतिको बदल सकती है।

"अवतारका महान् कार्य है भागवत कृपाको धरतीपर प्रकट करना। अवतारके शिष्य होनेका अर्थ है भागवत कृपाका यंत्र बनना। दिव्य माता वैश्व न्यायकी सारी प्रक्रियाका तादात्म्य-के द्वारा पूर्ण ज्ञान रखते हुए तादात्म्यके द्वारा महान् वितरण करती हैं।

"और उनकी मध्यस्थताके द्वारा भगवान्‌की ओर की गयी हर निष्कपट और विश्वासपूर्ण क्रिया, प्रत्युत्तरमें भागवत कृपाके हस्तक्षेपको नीचे बुलाती है।

"और, हे नाथ! कौन है जो तुम्हारे सामने खड़ा होकर पूरी सचाईके साथ कह सके: 'मैंने कभी कोई भूल नहीं की?' हम जिनमें कितनी बार तुम्हारे कार्यके विरुद्ध अपराध करते

रहते हैं, परंतु तुम्हारी कृपा आकर उन्हें मिटा देती है!

"तुम्हारी कृपाके निरंतर हस्तक्षेपके बिना कौन है जो बहुधा वैश्व न्यायकी निर्दय धारके नीचे न आयेगा?

"यहां प्रत्येक व्यक्ति समाधान किये जानेके लिये एक असंभवताका प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन चूंकि तुम्हारी दिव्य कृपाके लिये सब कुछ संभव है, तुम्हारा कार्य होगा, समष्टि और व्योरेमें, सभी असंभावनाओंको दिव्य उपलब्धियोंमें रूपांतरित करना।"

(१५ जनवरी, १९३३; श्रीमातृवाणी)

"न्याय वैश्व प्रकृतिकी क्रियाओंकी कठोर तर्कसंगत नियति है" — का मतलब क्या है?

तुम नियतिवादका विधान जानते हो, नहीं जानते? तुमने दर्शनका बिलकुल अध्ययन नहीं किया? (एक अध्यापककी ओर मुड़ते हुए) पवित्र, इन्हें नियतिवादका अर्थ समझा दो, संक्षेपमें, स्पष्ट रूपमें बतानेकी कोशिश करो।

पवित्र: मेरा ख्याल है नियतिवाद यह है: जब कोई चीज होती है तो उसका हमेशा वही कार्य होता है।

यदि वही चीज हो — इस शर्तपर कि चीज एकदम वही हो। क्या संसारमें दो चीजें ठीक एक जैसी हैं? नहीं।

नलिनी: एक ही कारण एक ही कार्य उत्पन्न करता है।

हां, समान कारण समान कार्य उत्पन्न करता है। इसी सिद्धांतपर विज्ञान खड़ा है, लेकिन मैंने यहां इस शब्दका उपयोग ज्यादा व्यापक और साथ ही ज्यादा यथार्थ अर्थमें किया है। मेरा मतलब है कि हर चीज (चाहे वह समान हो या न हो), हमेशा कुछ कार्य पैदा करती है और यह कार्य एक और कार्यके लिये कारण बन जाता है और वह कार्य किसी औरका कारण बन जाता है, इसी तरह चलता रहता है — हमेशा कारण एक कार्य उत्पन्न करता है, और हर कार्य किसी दूसरे कार्यका कारण बन जाता है। और वह कार्य किसी औरका कारण बन जाता है और अनिश्चित कालतक यूं ही चलता रहता है। अतः न्यायका मतलब है कि हर चीज,

जैसा कि नलिनीने कहा, समान कारण हमेशा, अपने-आप, समान कार्य उत्पन्न करता है। और इसलिये तुम ऐसा एक शब्द भी नहीं बोल सकते, ऐसी कोई क्रिया नहीं कर सकते जो किसी और चीजके लिये कारण न बन जाय और यह कोई चीज किसी और चीजका कारण होती है। यह सब बड़ी कठोरताके साथ अपने-आप चलता रहता है। और यही है वैश्व न्याय।

किया गया हर कार्य कुछ परिणाम लाता है और यह परिणाम कुछ और लाता है और इसी तरह चलता रहता है और यह बिलकुल अपरिहार्य है। यह वैश्व न्याय है। तुम्हारे अंदर एक बुरा विचार आता है, उसका कुछ परिणाम होता है और उस परिणामसे कुछ और होता है। तुम उससे भागवत कृपाके बिना नहीं बच सकते। भागवत कृपा ठीक वह चीज है जिसमें इस सबको बदलनेकी शक्ति है। केवल भागवत कृपा ही उसे बदल सकती है। यह इतना कठोर और इतना भयंकर विधान है कि तुम एक बार उसमें प्रवेश कर जाओ तो उसमेंसे बाहर नहीं निकल सकते। और तुम जिस क्षण धरतीपर आते हो, उसी क्षण उसमें प्रवेश करते हो। सारा पार्थिव जीवन ऐसा ही है, उसकी रचना इसी तरह हुई है। और तुम जो भी करो, जो भी बात करो, जो कुछ सोचो, जो भी अनुभव करो, उसका कुछ परिणाम होता है। और यह परिणाम कुछ और परिणाम लाता है, और यूं ही चलता रहता है। अब अगर तुम ज्यादा व्यावहारिक दृष्टिकोण चाहते हो तो तुम ऐसे उदाहरण लेकर कह सकते हो: "अगर तुम यह करोगे तो अपने-आप यह फल होगा।" उदाहरणके लिये, मनुष्योंद्वारा संगठित समाजोंमें यदि तुम कोई अपराध करो तो तुम्हें अपने अपराधके लिये दंड मिलेगा। स्वयं अपने अंतःकरणमें, यदि तुम कोई भूल करो तो तुम्हें हमेशा अपनी भूलके लिये कष्ट सहना पड़ता है। और कानूनमें, जैसा मनुष्यने बनाया है, हमेशा यह कहा जाता है कि कानून न जानना कोई बहाना नहीं है। यदि तुम कानूनसे अपरिचित हो तो भी तुम्हें सजा दी जाती है। अगर तुम कोई भूल करते हो, यह जाने बिना कि यह भूल है, तो इससे तुम बच नहीं सकते, तुम्हें सजा मिलती है। हां, प्रकृतिमें भी ऐसा होता है। यदि तुम, यह जाने बिना कि यह विष है, कोई विष खा लो तो उसका विषैला असर होगा ही। समझे? ... जबतक कि भागवत कृपा हस्तक्षेप न करे। और चूंकि भागवत कृपा सर्वशक्तिमान् है, वह सब कुछ बदल सकती है। मैंने यही बात समझायी है। लेकिन उस कृपाके बिना कोई आशा नहीं। क्योंकि यथार्थ रूपमें अज्ञान ही मानव जातिका निरंतर तत्त्व है।

आज मैं यह सोच रही थी कि यह जाननेसे पहले कि प्रकृतिकी चीजोंका कैसे उपयोग किया जाय, मनुष्यको कितने शोचनीय और भयानक अनुभवोंमेंसे गुजरना पड़ता है ! यह संभव है कि इस भागवत कृपाने ही सहजबोधके द्वारा चीजें बतला दी हैं। लेकिन अगर उसे अपना पाठ पढ़ना पड़ता . . .। मैंने यह इसलिये सोचा क्योंकि . . : पेड़ोंके ऊपर अमुक संख्यामें फल हैं : उनमें अच्छे फल भी हैं और दूसरे ऐसे फल भी हैं जो विषैले हैं — और यह पेड़पर लिखा नहीं है ! अब, हमेशा कोई तुमसे यह कहता है : "नहीं, इसे मत खाओ, यह विषैला असर करेगा।" लेकिन अगर कोई कहनेवाला न होता तो तुम कैसे जानते ? — उसे खाकर, अपने-आपको विषाक्त करके, और तब किसी औरको तुम्हारे अनुभवका लाभ होता।

मैंने यह इसलिये सोचा क्योंकि कुछ फल जब पक जाते हैं तो बहुत अच्छे होते हैं, उनमें बहुत पोषक तत्त्व होता है, वे बहुत उपयोगी होते हैं। लेकिन अगर वे पके न हों तो उनका विषैला असर होता है, और फल वह-का-वही होता है। उदाहरणके लिये, आवोकाडो (मेरा ख्याल है बटर फ्रूट), बटर फ्रूटको लो; अगर तुम कच्चा बटर फ्रूट खाओ (तुम खाओगे नहीं क्योंकि उसका स्वाद बहुत बुरा होता है), लेकिन अगर तुम कच्चा बटर फ्रूट खा लो तो वह मूलतः विषैला प्रभाव डालेगा। लेकिन जैसे ही वह पक जाता है, वह बहुत अच्छा होता है। कुछ देशोंमें, दक्षिण अफ्रीकामें या अफ्रीकाके कुछ भागोंमें, ये पेड़ आमके जितने लंबे होते हैं और सभी फल उसी तरह लटकते रहते हैं। अगर कोई आदमी पेड़को जाने बिना, उसके बारेमें कुछ भी जाने बिना, क्योंकि उसे सावधान करनेवाला कोई नहीं है, वहां जाता है, उस फलको लेकर, काटकर खाता है तो मर जाता है। अब कोई दूसरा आदमी महीने-भर बाद आये, तब-तक फल पक गये हैं; वह लेकर खाता है और खूब पुष्ट अनुभव करता है — यह बहुत बढ़िया है, अद्भुत है। अब कोई उससे कहता है : "ओ ! यह कैसे हुआ ? तुमने वह फल खा लिया, वह दूसरा आदमी तो मर गया . . .।" तो यह जाननेके लिये कितने अनुभवोंकी जरूरत है कि ऐसा इसलिये हुआ कि एकने कच्चा फल खाया था और दूसरेने पका। और जब फल कच्चा हो तो बुरा होता है और पक जाये तो अच्छा।

और हम उन सबके अनुभवसे लाभ उठाते हैं जो हमसे पहले धरतीपर थे। लेकिन अगर हम किसी ऐसे देशमें जा पहुंचें जिसके बारेमें हम कुछ भी नहीं जानते और सब कुछ अपने-आप ही सीखना पड़े तो हमें बहुत अप्रिय अनुभव होंगे। ऐसे और भी फल हैं, वही अकेला नहीं है, ऐसे बहुत हैं। उदाहरणके लिये, अंजीर — कच्चा अंजीर — अगर तुम उस सफेद

रसको छू लो जो कच्चे अंजीरमेंसे निकलता है — वह भयंकर होता है — तो तुम्हारे सारे मुंहमें छाले पड़ सकते हैं और तुम बिलकुल बीमार हो सकते हो, और पेटमें भी घाव हो सकते हैं। लेकिन जब अंजीर पका हुआ हो और तुम सफेद रसको न छूनेकी सावधानी बरतो तो वह एक संपूर्ण भोजन है। मैं इस प्रकारके बहुत-से उदाहरण दे सकती हूं। लेकिन अब हमें ये बातें मालूम हैं क्योंकि ये हमें बतलायी गयी हैं। जिन्होंने हमें बतलायी थीं उन्होंने कुछ और लोगोंसे सुनी थीं। परंतु पहला परीक्षण किसने किया? किसने यह सब सीखा? प्रकृतिकी सब बातें जानीं? ... प्रकृतिमें बहुत-सी, अनगिनत चीजें हैं। प्रकृतिमें वनस्पति जीवनको ले लो। हमें अभीतक सब कुछ नहीं मालूम है। उदाहरणके लिये, कुछ लोग तुमसे कहते हैं: "रोगके साथ-ही-साथ प्रकृतिमें उसका इलाज भी हमेशा तैयार रहता है। प्रकृतिने ऐसी ही व्यवस्था की है।" मुझे नहीं मालूम कि यह बात ठीक-ठीक ऐसी है या नहीं, लेकिन, बहरहाल, एक तरहसे यह काम देती है, यह सत्य है। उदाहरणके लिये, कहा जाता है कि अगर कहींपर सांपका बिल है तो यह निश्चित जानो कि उसके आस-पास ही कोई ऐसा पौधा होगा जो सांप-काटेका इलाज है। लेकिन कौन-सा पौधा? वहां इतने सारे हैं। तुम्हें कौन सिखायगा? ऐसे लोग हैं जो चांदनी रातोंमें पहाड़ोंपर जाकर ऐसी जड़ी-बूटियां इकट्ठी करते हैं जो असाध्य माने जाने-वाली बीमारियोंको ठीक कर सकती हैं। उन्होंने यह सब कैसे सीखा? किसने परीक्षण किये थे?

और कुकुरमुत्ते? ...

हां, इसमें भी वही बात है। तुम साथ-ही-साथ, एक-दूसरेसे लगे कुकुरमुत्ते देखते हो जिनमेंसे एक बहुत श्रेष्ठ भोजन है और दूसरा तुम्हें तुरंत परलोक भेज सकता है। हम संग्रह किये गये ज्ञानसे लाभ उठाते हैं और मैं पूरे जोरके साथ कह सकती हूं कि इसमेंसे बहुत-सा ज्ञान खो चुका है। क्योंकि बहुत-से लोगोंने ऐसी चीजोंकी खोज की है, पर उन्हें कभी लिखकर नहीं रखा। और हम भी खोज कर सकते हैं, परंतु हमेशा उसे लिखनेकी परवाह नहीं करते और उसे दूसरोंके लिये सुलभ नहीं बनाते। और प्रकृति अध्ययन और खोजके लिये अनंत क्षेत्र है।

पवित्र: जिन लोगोंने विस्फोटकोंकी खोज की — उनमेंसे कितने मर गये और कितनोंके साथ दुर्घटना हुई ...।

यही मनुष्य है, यह उसका अपना दोष है। अगर वह इसमें टांग न अड़ाता तो यह न होता।

हो सकता है कि बहुत बार, उसने अचानक छू लिया हो, बिना जाने, बिना किसी प्रयोजनके छुआ हो।

फिर भी वह था तो विस्फोटक ही। यह हमेशा किसी दूसरे आदमीका दोष होता है, है न?

जिन लोगोंने रसायन-शास्त्र पढ़ा और विस्फोटक पा लिये।

अगर वे यह नहीं जानते थे कि यह क्या है तो हां। उदाहरणके लिये, तुम थोड़ा-सा पोटाशियम क्लोरेट लो जो बिलकुल निर्दोष है, सफेद, सुंदर, आकर्षक स्फटिक। लेकिन तुम उसे लेकर उसपर हथोड़ा बरसाना, अपनी सारी शक्तिके साथ उसे पीटना शुरू करो तो अचानक विस्फोट होता है। हां, यह ऐसा ही है।

लेकिन पौधोंकी संख्या — किसीको नहीं मालूम, और शायद कोई कभी जान भी न सकेगा कि धरतीपर विभिन्न प्रकारके कितने पौधे हैं। फिर भी जब उन पौधोंकी सूची बनायी जाती है जिन्हें लोग जानते हैं और जिनका उपयोग करते हैं तो उनकी संख्या बहुत ही कम होती है। मेरा ख्याल है, जब मैं जापानमें थी तो जापानी मुझसे कहा करते थे कि यूरोपीय लोग केवल साढ़े तीन सौ प्रकारके पौधोंको खाते हैं, जब कि वे छः सौ से अधिक पौधे खाते हैं। इससे बहुत फर्क पड़ता है। वे कहा करते थे: "ओह, तुम लोग अपना भोजन कितना नष्ट करते हो! तुम लोग जितना जानते हो प्रकृति उससे कहीं अधिक पैदा करती है; तुम उस सबको नष्ट कर देते हो।" क्या तुमने कभी (यहां नहीं, यूरोपमें) बांसके अंकुर खाये हैं? क्या तुमने कभी ताड़की कलियां खायी हैं? नारियलकी कलियां? — वस्तुतः, नारियलके फूलोंसे बड़ा बढ़िया सलाद बनता है। लेकिन इससे पेड़ मर जाता है। सलादके लिये तुम पेड़ नष्ट कर देते हो। लेकिन जब, उदाहरणके लिये, तूफान आता है और नारियलके सैकड़ों पेड़ोंको गिरा जाता है तो इस महाविपत्तिका उपयोग करनेका एक ही उपाय होता है — एक बढ़िया-सा पकवान बनाकर सारी कलियोंको खा जाओ। क्या तुमने कभी नारियलकी कलियां नहीं खायीं? जहांतक मेरी बात है, मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मैंने बांसके अंकुर —

जमीनसे बाहर निकलनेके पहले खाये थे, कुछ-कुछ एस्पेरेगस जैसे होते हैं। यह जापानका एक प्रसिद्ध व्यंजन है। और उनके बांस यहांके बांसोंसे बहुत ज्यादा नरम होते हैं। उनके बांस बहुत नरम होते हैं और उनके अंकुर अद्‌भुत होते हैं।

फिर भी बात ऐसी ही है। मालूम होता है कि यूरोपके लोग वनस्पति जगत्‌में केवल साढ़े तीन सौ प्रकारकी वनस्पतियोंका उपयोग करना जानते हैं जब कि जापानी छः सौसे भी अधिकका उपयोग करते हैं। लेकिन शायद अगर लोग जानते, तो कम-से-कम देहातोंमें तो, लोग भूखों न मरते। लो बस।

बहरहाल, चीजें इस तरह हैं। हमें पता नहीं कि अगर संसारपर केवल न्यायका राज होता तो क्या होता। लेकिन मेरा ख्याल है कि वह कोई मजाक न होता। क्योंकि जैसा कि मैंने कहा, एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो भगवान्‌के आगे खड़ा होकर उनसे कह सके: "मैंने कभी कोई भूल नहीं की।" और जब मैं भूल करनेकी बात कहती हूं तो वहां अज्ञानका बहाना नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि अगर तुम जान-बूझकर या अन-जाने आगको छू लो, तो शायद जान-बूझकर छूनेकी मूर्खता करनेवालेका पल्ला भारी रहता है, क्योंकि वह सावधानी बरत सकता है। लेकिन जब कोई अज्ञानवश आगको छूता है तो अपने-आपको पूरी तरह जला लेता है। और तब वह प्रकृतिसे यह नहीं कह सकता: "नहीं, मुझे जलना नहीं चाहिये था, मुझे मालूम न था कि आग जला देती है।" वह जलाती है, कोई भी तुम्हारी बात न सुनेगा!

क्या भगवान्‌की कृपा आवाहन करनेपर हस्तक्षेप करती है?

आवाहनपर? मेरे ख्यालसे हां, लेकिन, केवल; एकमात्र आवाहन करनेपर ही नहीं। यदि तुम्हारे अंदर भागवत कृपाके लिये श्रद्धा और अभीप्सा है तो निश्चय ही, हां (वह तब तो अवश्य हस्तक्षेप करती है)। और मेरा ख्याल है कि अगर तुम ऐसे करो जैसे कोई छोटा बच्चा करता है जब वह मांके पास दौड़कर जाता है और कहता है: "मां, मुझे यह दे दो," अगर तुम उस सरलतासे पुकारो, अगर तुम कृपाकी ओर मुड़कर कहो: "मुझे यह दे दो," तो मेरा ख्याल है वह सुनती है। लेकिन अगर तुम ऐसी चीज मांगो जो तुम्हारे लिये अच्छी नहीं है तब वह नहीं सुनती। अगर तुम कोई ऐसी चीज मांगो जो नुकसान करती है, या हितकर नहीं है तो वह नहीं सुनती।

इस कार्यका कारण क्या है? आवाहनका?

शायद आवाहन करना व्यक्तिकी नियतिमें था। यानी : मुरगीसे अंडा आया या अंडेसे मुरगी? मुझे मालूम नहीं कि कृपा ही तुमसे कृपाका आवाहन करवाती है या कृपाका आवाहन किया जाता है इसलिये कृपा आती है। कहना कठिन है।

तत्त्वतः, यह बहुत संभव है कि जिस चीजकी सबसे अधिक कमी है वह है श्रद्धा। हमेशा विचारमें कहीं एक छोटा-सा कोना बना रहता है जो संदेह करता है और विवाद करता है। तो वही सारी चीजको बिगाड़ देता है। केवल तभी जब तुम बहुत ही नाजुक स्थितिमें हो, जब मन यह अनुभव करे कि वह कुछ नहीं कर सकता, बिलकुल कुछ नहीं, जब वह बिलकुल मूढ़ और अक्षम बनकर खड़ा रहता है तब, उस क्षण, यदि तुम उच्चतर सहायताके लिये अभीप्सा करो, अगर अभीप्सामें उस तरहकी तीव्रता हो जो निराशासे आती है तो उसका असर होता है। लेकिन अगर तुम्हारा विचार बहस करता चले, अगर वह कहे: "हां, हां, मैंने अभीप्सा की है, प्रार्थना की है, लेकिन भगवान् जाने यह मुहूर्त्त है या नहीं, वह आयेगी या नहीं, यह संभव भी है," तो बस खतम, उससे काम नहीं चलता। यह सबसे अधिक सामान्य चीजोंमेंसे है। लोगोंसे कहा जाता है: "अगर तुम योगमें प्रगति करना चाहते हो तो तुम्हारे अंदर इच्छाएं नहीं होनी चाहिये।" इससे जरा आगे बढ़कर कहा जाता है: "तुम्हारी कोई आवश्यकताएं नहीं होनी चाहिये।" और जरा आगे जाकर कहा जाता है: "भगवान्‌से कभी कुछ न मांगो।" तो, मुझे पता नहीं, सौमेंसे निन्नानवेसे भी अधिक बार लोगोंकी प्रतिक्रिया यह होती है: "ओह! लेकिन अगर मैं न मागूंगा तो मुझे जिस चीजकी जरूरत है वह न मिलेगी।" वे यह नहीं देख पाते कि इस तरह वे सारी क्रियाकी जड़ ही काट देते हैं! उनमें श्रद्धा नहीं होती। "मुझे इस चीजकी जरूरत है...।"

यहां मैं आवश्यकताके विचारके बारेमें बातचीत नहीं कर रही, क्योंकि यह बहुत मनमाना होता है। मैं एक डच चित्रकारको जानती थी जो यहां आया था। उसने श्रीअरविंदका चित्र भी बनाया था और शायद वह चित्र अभीतक मौजूद है। यह डच चित्रकार योग-साधना करता था। तो एक दिन उसने मुझसे कहा: "ओह! जहांतक मेरा सवाल है, मेरा ख्याल है, मैं हर चीजके बिना काम चला सकता हूं। सचमुच मेरा विश्वास है कि आदमी अपनी आवश्यकताएं कम-से-कम कर सकता है।

लेकिन फिर भी मेरे पास टूथ-ब्रश तो होना ही चाहिये।" उस समयतक मैं हिंदुस्तानमें नहीं रही थी, अन्यथा मैं उससे कहती: "करोड़ों आदमी हैं जिनके पास कभी टूथ-ब्रश नहीं रहा, परंतु उनके दांत बिलकुल साफ हैं। दांत साफ रखनेका यही एकमात्र उपाय नहीं है।" लेकिन उस समय उसे पूरा विश्वास था कि आदमी अपना मुंह साफ रखनेके सिवा हर चीजके बिना काम चला सकता है। और उसके लिये मुंह साफ रखनेका अर्थ था टूथ-ब्रशका होना। यह इस बातका ठीक चित्र है कि लोगोंके मनमें क्या होता रहता है। वे किसी चीजसे चिपके रहते हैं और सोचते हैं कि उसकी उन्हें आवश्यकता है। और निश्चय ही यह पूरा-पूरा अज्ञान है, क्योंकि एक सच्ची आवश्यकता है: मुंह साफ रखना (यह हर हालतमें जरूरी मालूम होता है), लेकिन मुंह साफ रखनेके साथ टूथ-ब्रश होनेकी आवश्यकताको जोड़ देना बिलकुल मनमाना है। क्योंकि टूथ-ब्रशका आविष्कार हुए बहुत अधिक समय नहीं हुआ।

एक कोई और था जिसने मुझसे कहा: "ओह! मैं पूरी तरह हर चीजके बिना काम चला सकता हूं" — हम पीठपर कम-से-कम सामान लेकर यात्रापर जानेके बारेमें बात कर रहे थे (जब तुम्हें मीलों जाना हो और हर रोज चार-पांच किलोमीटर चलना पड़े तो तुम अपने थैलेका भार कम-से-कम रखनेकी कोशिश करते हो); इसलिये हम लोग यह बातचीत कर रहे थे कि थैलेमें क्या-क्या रखना अनिवार्य होगा। उसने कहा, मेरा टूथ-ब्रश। दूसरेने कहा, मेरा साबुन (सामान्यतः यह बात इसी प्रकारकी बहुत सादी चीजोंपर उतर आती है)। परंतु यहां कितने लोग हैं जिन्होंने कभी साबुनका उपयोग नहीं किया और इससे उनके साफ रहनेमें कोई कमी नहीं आती! साफ रहनेके लिये और भी तरीके हैं। तो बात ऐसी है। आदमी बहुत-सी छोटी-छोटी धारणाओंमें जकड़ा रहता है और मानता है कि ये आवश्यकताएं हैं। और फिर, यदि तुम दुनियाका जरा-सा चक्कर लगाओ तो देखोगे कि जो तुम्हारे लिये आवश्यक है वह दूसरोंके लिये ऐसी चीज है जिसके बारेमें वे कुछ नहीं जानते, कोई ऐसी चीज है जिसे उन्होंने अपने जीवनमें कभी देखा भी नहीं है, जिसका उनके लिये कोई अस्तित्व ही नहीं, किसी प्रकारका कोई महत्त्व नहीं। अतः वह अनिवार्य नहीं है। यह केवल शिक्षा और एक विशेष परिवेशके जीवनका परिणाम है। और ये चीजें बिलकुल सापेक्ष होती हैं, केवल सापेक्ष नहीं, अस्थायी और अल्पकालीन।

लो बस।

२५ नवम्बर, १९५३

आपने कहा है: "भागवत कृपा हमारे लिये, हमारे विश्वासके अनुपातमें काम कर सकती है और हमारी सहायता कर सकती है।"[1] अगर किसीमें भगवान्‌के लिये विश्वास न हो, परंतु जब वह कठिनाईमें हो, संकटमें हो और पूरी सचाईके साथ पुकारे तो उसका क्या होगा?

वह पुकार ही कैसे सकता है? दोनों बातें विरोधी हैं। अगर उसे विश्वास नहीं है तो वह भगवान्‌के बारेमें सोचेगा भी नहीं! वह पुकारनेकी बात न सोचेगा। ये विरोधी बातें हैं। वह अपने विश्वासके ठीक अनुपातमें ही पुकारनेकी सोचता है...। तो?

आपने कहा है: "शत्रुके सामने मुस्कराना उसे निःशस्त्र करना है।"[2] "मुस्कराना" का क्या अर्थ है? शत्रुके सामने तो नहीं मुस्कराना चाहिये!

नहीं मुस्कराना चाहिये!... मैंने यहां जो बात कही है वह एक अनुभूति है। यह एक अनुभूतिका आलेखन है जिसे मैंने सामान्य शब्दोंमें व्यक्त किया है। लेकिन अगर, किसी विशेष क्षणमें, कोई अधिक-से-अधिक बुरे इरादोंसे आये और तुम उसके आगे मुस्करा दो तो वह पूरी तरह निःशस्त्र हो जाता है। उसके बाद वह कुछ भी नहीं कर सकता। लेकिन सच्चे, निष्कपट-भावसे मुस्कराना चाहिये, केवल खीसें निपोरना या दांत दिखाना और सोचना... (हंसी) मैं "मुस्कान"को समग्र अर्थमें लेती हूं, अर्थात्, अगर तुम पर्याप्त रूपमें अपने स्वामी हो सको और वस्तुओंसे ऊपर उठ जाओ, एक बहुत ऊंची चेतनामें जाकर ऊपरसे देख सको — तो जो सामान्य मानव चेतनाको अत्यंत भयावह और बहुत अधिक नाटकीय प्रतीत होता है उसे देखकर भी तुम उसी तरह मुस्करा सकते हो जैसे किसी बचकानी चीजपर। तो अगर तुम उस चेतनामें हो जिसमें तुम हर चीजपर मुस्करा सकते हो (क्योंकि तुम हर चीजका कारण समझते हो और सभी

---

[1] श्रीमातृवाणी।

[2] वही।

चीजोंमें शक्तियोंको काम करते देखते हो), तुम अगर उस चेतनामें हो और जो कुछ हो उसपर मुस्कराओ तो चीजें एकदम बदल जाती हैं। हां, यह जरा-सी, बाहरी सामाजिक मुस्कान नहीं, चैत्य पुरुषकी मुस्कान होनी चाहिये।

क्या अगर भगवान्‌को बुलाया न जाय तो वे सहायता नहीं करते?

चीज ठीक ऐसी नहीं है ...। भागवत चेतना हमेशा, हर जगह उसी तरहसे काम करती रहती है। भागवत कृपा सब जगह, सभी परिस्थितियों-में समान रूपसे सक्रिय रहती है। इसी तरह। लेकिन अपनी निजी वृत्तिके अनुसार तुम अपने अंदर, जो किया जा रहा है उसे ग्रहण करने या न करनेकी परिस्थितियां पैदा करते हो और विश्वास — वस्तुतः सत्यपर विश्वास, भागवत कृपापर विश्वास, भागवत ज्ञानपर विश्वास — तुम्हें ऐसी परिस्थितिमें रखता है जिसमें तुम इन चीजोंको ग्रहण कर सकते हो। जब कि अगर तुम्हारे अंदर विश्वास न हो... फिर भी तुम कुछ ग्रहण करनेकी कोशिश कर सकते हो — उदाहरणके लिये, ऐसे लोग हैं जो एक तरहसे चुनौती देते हैं, वे भगवान्‌को चुनौती देकर कहते हैं: "स्थिति जैसी है तुम्हारी आगे है। मैं ऐसी हालतमें हूं। कम-से-कम मुझे तो यह बहुत जटिल लगती है जिसमेंसे कोई रास्ता नहीं, इसमेंसे बाहर निकलना असंभव है। लेकिन अगर भगवान् मुझे कठिनाईमेंसे बाहर निकाल लें तो मैं उन-पर विश्वास करूंगा।" बहुत-से लोग हैं जो इसे ऐसा रूप तो नहीं देते, पर इस तरह सोचते और अनुभव करते हैं। यह सभी संभव स्थितियोंमें सबसे अधिक बुरी है। साधारणतः, यह तुम्हें एक पूरी खाईमें डाल देती है। और यह स्थिति सत्य-निष्ठासे एकदम उलटी है। इसके अतिरिक्त, यह बहुत ही गंवारू व्यापार है: "अगर तुम मेरे लिये यह कर दो तो विश्वास करूंगा कि तुम हो। मैं प्रयोग करके देखूंगा कि तुम सचमुच हो या नहीं और क्या वैसे हो जैसा लोग कहते हैं। यह कर दिखाओ और हमें स्पष्ट रीतिसे पता लग जायगा कि तुम सफल होते हो या नहीं। तब मैं तुमपर विश्वास करूंगा।" और बहुत-से लोग बिना जाने ही ऐसा करते हैं। बहुत सारे लोग कहते हैं: "मैं भगवान्‌पर विश्वास कैसे कर लूं? मेरा जीवन इतना शोचनीय और दुःख-भरा है।" यानी, वे भागवत चेतनाको अपनी छोटी-मोटी आवश्यकताओंतक सीमित कर लेते हैं।

अगर किसीको विश्वास हो तो क्या सहायता अपने-आप आती है?

सचाईका एक अणु-भर भी काफी है, उससे सहायता आती है। और अगर, सचमुच, कोई बहुत निष्कपटताके साथ पुकारे (केवल यह नहीं कि पुकारता जाय और साथ ही कहे: "अब देखेंगे कि यह सफल होता है या नहीं।"— स्वभावतः, यह बहुत अच्छी अवस्था नहीं है), लेकिन अगर कोई बहुत सचाईसे पुकारे और सचाईके साथ उसे उत्तरकी आवश्यकता हो और व्यक्ति प्रतीक्षा करे तो वह हमेशा आता है। और यदि तुम अपने मनको नीरव कर सको और जरा स्थिर रहो तो तुम सहायताको आते हुए देख सकते हो और देख सकते हो कि वह कैसा रूप लेती है।

देवता कहांसे आते हैं?

इसका मतलब? "कहां" का क्या मतलब है? उनका मूल-स्रोत कहां है? उन्हें किसने रूप दिया? ... लेकिन हर चीज, हर एक चीज उसी एक मूलस्रोतसे आती है, परम प्रभुसे, देवता भी।

एक बहुत पुरानी परंपरा है जो इस तरह कहती है। मैं तुम्हें यह कहानी ऐसे सुनानेवाली हूं जैसे बच्चोंको सुनायी जाती है। इस तरह तुम समझ सकोगे।

एक दिन "भगवान्"ने अपने-आपको बाह्य रूप देनेका, मूर्त करनेका निश्चय किया ताकि अपने-आपको ब्योरेमें जाननेका आनंद ले सके। तो सबसे पहले उसने अपनी चेतनाको निःसृत किया (अर्थात्, उन्होंने चेतनाको प्रकट किया), और इस चेतनाको आज्ञा दी कि विश्वको चरितार्थ करे। इस चेतनाने चार सत्ताओंको निःसृत करके काम शुरू किया; ऐसे चार व्यक्तित्वोंको जो वास्तवमें उच्चतम 'सद्वस्तु'की बहुत ऊंची सत्ताएं हैं। वे इस प्रकार हैं: चेतनाकी सत्ता, प्रेमकी सत्ता (या आनंदकी), जीवनकी सत्ता और प्रकाश तथा ज्ञानकी सत्ता —लेकिन चेतना और प्रकाश एक ही है। तो वे यूं हैं: चेतना, प्रेम और आनंद, जीवन और सत्य — सत्य, यही ठीक शब्द है। और स्वभावतः वे अत्यधिक शक्तिशाली सत्ताएं थीं, समझे? परंपराके अनुसार ये पहली निःसृत सत्ताएं थीं, यानी, पहली संरचनाएं और हर एकको अपने गुणों, अपनी शक्ति, अपनी क्षमताओं और अपनी संभावनाओंका बहुत अधिक भान हो गया। लेकिन हर एक सत्ता अपने ही ढंगसे यह भूल गयी कि वह परम प्रभुसे निःसृत है, उनका एक अवतार है। तो हुआ इस तरह: जब प्रकाश या 'चेतना'का दिव्य चेतनासे अलगाव हुआ, यानी, जब उसने सोचना शुरू किया कि मैं ही दिव्य चेतना हूं और मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है, तो वह अचानक अंधकार और निश्चेतना बन

गयी। और जब 'जीवन'ने सोचा कि समस्त जीवन मेरे ही अंदर है, बस मेरे जीवनके सिवा और कुछ भी नहीं है और मैं परम प्रभुपर बिलकुल आश्रित नहीं हूं, तो वह मृत्यु बन गया। और जब 'सत्य'ने सोचा कि उसके अंदर सारा सत्य समाया हुआ है, मेरे सिवा और कोई सत्य नहीं है, तो 'सत्य' मिथ्यात्व बन गया। और जब प्रेम या आनंदको यह विश्वास हो गया कि मैं ही परम आनंद हूं और मेरे आनंदके सिवा और कोई है ही नहीं, तो वह दुःख बन गया। और इस तरह वह संसार जिसे इतना सुंदर होना था, इतना कुरूप बन गया। अब चेतनाने (तुम चाहो तो उसे भगवती माता, परम चेतना कह सकते हो), जब उसने यह देखा तो, निश्चय ही, वह बहुत क्षुब्ध हुई। उसने अपने-आपसे कहा: "यह सचमुच सफल नहीं रहा।" वह भगवान्‌की ओर, परम देवकी ओर, परम प्रभुकी ओर मुड़ी, उन्हें अपनी सहायताके लिये बुलाया। उन्होंने भगवान्‌से कहा: "जो हुआ है वह यह है, अब क्या किया जाय?" उन्होंने कहा: "फिरसे शुरू करो। लेकिन इस तरह करनेकी कोशिश करो कि सत्ताएं इतनी अधिक स्वतंत्र न हो जायं!... उनका तुम्हारे साथ और तुम्हारे द्वारा मेरे साथ संपर्क रहे।" और इस तरह उन्होंने देवोंकी सृष्टि की जो बिलकुल आज्ञाकारी थे, इतने घमंडी न थे। उन्होंने सृष्टि-रचना शुरू की। लेकिन चूंकि दूसरे इनसे पहले आये थे, इसलिये पग-पगपर देवोंका उनसे पाला पड़ता था। और इस भांति जगत् एक युद्धभूमि बन गया, युद्ध, संघर्ष, दुःख, अंधकार, और इसी तरहकी सब चीजोंकी जगह बन गया और हर नयी सृष्टिके लिये देवोंको दूसरोंके साथ लड़ना पड़ता था, जो उनसे आगे जा चुके थे: वे उनसे पहले आये थे, वे सीधे जड़ द्रव्यमें घंस गये थे; और उन्होंने यह सारी अव्यवस्था पैदा कर दी थी और देवोंको इस सारी अस्तव्यस्तताको ठीक करना था। तो देव इस भांति आये। वे दूसरे निर्गत-अंश हैं।

मां, पहले चार जो बदले तो क्या यह संयोग था या जान-बूझकर हुआ?

नहीं। संयोग क्या है?

यह भी कहा जाता है — और यह कहानीका अगला हिस्सा है या यूं कहें आरंभ है — कि भगवान् चाहते थे कि उनकी सृष्टि स्वाधीन सृष्टि हो। वे चाहते थे कि उनसे जो कुछ पैदा हो वह पूरी तरह स्वतंत्र हो और उनके साथ, बाध्य होकर नहीं, स्वतंत्रताके साथ एक होनेके लिये स्वतंत्र हो, वे नहीं चाहते थे कि उन्हें निष्ठावान होनेके लिये बाधित किया जाय,

सचेतन होनेके लिये बाधित किया जाय, आज्ञाकारी होनेके लिये बाधित किया जाय। वे सहज रूपसे यह करें, इस ज्ञान और विश्वासके साथ कि यह बहुत अधिक अच्छा है। तो इस जगत्‌की रचना संपूर्ण स्वाधीनताके जगत्‌के रूपमें की गयी थी, जहां चुनावकी स्वाधीनता है। और इसी भांति हर क्षण, हर व्यक्तिको चुनाव करनेकी स्वाधीनता है — पर अपने सब परिणामोंके साथ। अगर तुम अच्छा चुनाव करो तो अच्छी बात है, लेकिन अगर तुम बुरा चुनाव करो, तो फिर जो होना होता है, होता है — और वही हुआ है!

इस कहानीको ज्यादा गुह्य और आध्यात्मिक अर्थमें समझा जा सकता है। लेकिन यह सृष्टिकी अन्य कहानियोंकी तरह है। अगर तुम उन्हें इस तरह सुनाना चाहो कि लोग समझ सकें तो वे बच्चोंकी कहानियां बन जाती हैं, लेकिन अगर तुम प्रतीकोंके पीछे जो सत्य है उसे देखना जानो तो तुम सब कुछ समझ सकते हो। मैंने तुम्हें जो कहानी सुनायी है, जो बच्चोंकी कहानी जैसी लगती है, इस तरह भी अगर तुम समझ सको कि मैंने क्या कहा है, और मैंने जो कहा है उसका भाव समझ सको तो तुम वस्तुओं-का रहस्य पा सकते हो।

कुछ परंपराएं हैं जो इसे "संयोग" कहती हैं, इस अर्थमें कि यह किसी और तरह भी हो सकता था। लेकिन हुआ इस तरह। यह सत्य है कि यह इस तरह हुआ। हां, यह समझमें आनेवाली बात थी कि इन तत्त्वों-मेंसे हर एकका उद्‌गम परम प्रभुमें था। निःसृत अंशके बिलकुल पास होने-के कारण, उद्‌गमके बिलकुल पास होनेके कारण हर एकमें, आवश्यक रूपसे, दिव्य होनेकी, श्रेष्ठ होनेकी चेतना थी। क्योंकि यह कोई ऐसी सृष्टि न थी जिसे भगवान्‌से इतर किसी वस्तुसे बनाया गया हो : यहां तो केवल भगवान्‌ने अपने-आपको निःसृत किया है मानों वे अपने-आपको देख रहे हैं, अपने-आपको मूर्त रूप दे रहे हैं ताकि अपने-आप जो कुछ है उससे अवगत हो सकें; घनता और एकाग्रताकी आंतरिक सत् अवस्थामें रहनेकी जगह वे अपने-आपको अपने बाहर प्रक्षिप्त करते हैं "ताकि देख सकें," मानों वे अपने अंदर जो कुछ है, यानी, संभावनाओंकी अनंतताको, देखना चाहते हों। इसलिये सब कुछ संभव था — यह ऐसा हुआ, यह और तरहसे भी हो सकता था। इसके अतिरिक्त तुमसे यह नहीं कहा गया कि हमारी सृष्टिके साथ-ही-साथ, ऐसी अन्य सृष्टियां नहीं हैं जो इससे इतनी अधिक भिन्न हों, कि उनका हमारी सृष्टिके साथ कोई, किसी तरहका मेल ही न बैठता हो। यह भली-भांति हो सकता है कि हमारी सृष्टि ही भग-वान्‌का एकमात्र बाह्य मूर्त रूप न हो। हमारी सृष्टि ऐसी है जैसा हम

जानते हैं, दूसरी सृष्टियां ऐसी हो सकती हैं जिनकी अवस्था इससे बहुत कम शोचनीय हो। इसके अतिरिक्त वह केवल अपने बाह्य रूपमें ही शोचनीय है। अगर तुम बाहरी रूपोंके पीछे जाओ तो तुम यह जान जाते हो कि यह जरा भी शोचनीय नहीं है। यह केवल देखनेका एक ढंग है।

"जब हम एक निर्णायक आध्यात्मिक प्रगति कर लेते हैं तो भगवान्‌के अदृश्य शत्रु हमेशा बदला लेनेकी कोशिश करते हैं और जब वे अंतरात्मापर चोट नहीं कर पाते तो शरीरपर आघात करते हैं। लेकिन उनके सारे प्रयास व्यर्थ हैं और वे अंतमें परास्त होंगे, क्योंकि भागवत कृपा हमारे साथ है।"

(श्रीमातृवाणी)

"भगवान्‌के ये अदृश्य शत्रु" कौन-से हैं?

यथार्थ रूपमें ये वही चार सत्ताएं हैं जिन्होंने स्वाभाविक रूपसे अनगिनत अंश निःसृत किये हैं और उन अंशोंने फिर अपने अंदरसे अंश निकाले हैं और उन्होंने आकार और रूप बनाये हैं। तो ये लाखों, करोड़ों, अरबों हैं; और इन्होंने आपसमें मिलकर एक आदत-सी बना ली है, और उसे बनाये रखनेकी अपनी युक्ति रखी है और वे अपने सिवा और किसीके शासनको न चाहना जारी रखते हैं। यही हैं जिन्हें भारतमें असुर कहा जाता है — अंधकारकी सत्ताएं। एक प्रकारकी तर्कसंगतिके कारण ये ऐसे हैं। उन्होंने गलत चीज करनी शुरू की और वे उसी तरह चल रहे हैं। लेकिन मुझे कहना चाहिये कि उनमेंसे कुछ हैं जो अपना मन बदल लेते हैं। लेकिन यह गीतामें भी कहा गया है; ऐसे भी हैं, जो बदलनेसे बिलकुल इनकार करते हैं, जो बदलनेकी जगह गायब हो जाना, नष्ट किया जाना ज्यादा पसंद करते हैं। और चीज ऐसी है। कुछ एक तरहके हैं, कुछ दूसरी तरहके।

"वे दूसरे" कौन हैं जो बदल गये हैं?

ओहो, तुम जानते हो? तुम्हारी स्मरण-शक्ति अच्छी है। एक है जिसे बदला जा चुका है और जो सहयोग भी देता है और वह है चेतना और ज्योति-पुरुष।

अगर वह बदल गया है तो कठिनाईको अपने-आप चले जाना चाहिये।

भावतः, परंतु उसकी शक्ति बची हुई है। यह एक बड़ी भयानक सत्ता जाती है।

आपने कहा था कि चेतना निश्चेतनामें बदल गयी थी। लेकिन जब चेतनाका परिवर्तन हो गया तो निश्चेतनाको चला जाना चाहिये।

ह फिरसे चेतना और ज्योति बन जाती है — फिरसे वही बन जाती है ो पहले थी।

तो क्या वह फिरसे ऐसी बनी नहीं

ने अभी, एक मिनट पहले कहा कि जब वह निश्चेतना या अंधकार बनी ो उसने अनगिनत आकार बनाये — निःसृत अंश, रचनाएं, सृष्टियां। उसके परिवर्तनका यह अर्थ नहीं कि वे उसके पीछे-पीछे चले आयंगे। वे भी उसी स्वाधीनताके विधानके अनुसार चलते हैं, चुनावकी स्वाधीनता। वे बदल सकते हैं और नहीं भी। ऐसे हैं जो बदल जाते हैं और ऐसे भी हैं जो बदलनेसे इनकार करते हैं। और मेरा ख्याल है इनकार करनेवाले बहुत अधिक हैं।

लेकिन सबसे अधिक हानि पहुंचानेवाला है "मिथ्यात्वका प्रभु"। वास्तवमें सारी सृष्टिमें वही सबसे बड़ा बाधक है, यह सत्यका निरंतर निषेध। और पार्थिव जगत्पर, भौतिक द्रव्यके जगत्पर उसकी पकड़ बहुत मजबूत है। इसके अतिरिक्त, यहां (धरतीपर), जो उसे देखते हैं वे बहुत अद्भुत, भव्य, चमकीली सत्ताके रूपमें देखते हैं। वह अपने-आपको "राष्ट्रोंका स्वामी" कहता है, और वह अति विशाल, प्रकाशमय, शक्तिशाली और बहुत प्रभावशाली दीखता है....। ऐतिहासिक दृष्टिसे वह अमुक राज्यनायकोंको प्रेरणा देनेवाला था और वह अपने-आपको राष्ट्रोंका स्वामी कहता है, क्योंकि वही लोगोंपर राज्य करता है। स्पष्ट रूपमें पिछले दो युद्धोंके पीछे, उनके मूल-स्रोतमें उनका परम व्यवस्थापक था। उस अवसरपर उसने अपने-आपको राष्ट्रोंके स्वामीके रूपमें प्रकट किया था। और इसके अतिरिक्त उसने घोषणा की कि वह कभी नहीं

बदलेगा। और वह जानता है कि स्वभावतः उसका अंत आयेगा। स्वभावतः, वह कोशिश करेगा कि वह यथासंभव देरमें आये। और उसने घोषणा की है कि अपने-आप नष्ट होनेसे पहले वह जितना बन पड़े उतना नाश करेगा ....। हम सब प्रकारकी महान् विपदाओंकी अपेक्षा कर सकते हैं।

आपने फरवरीमें एक संदेश दिया था: "धरतीपर एक नयी ज्योति प्रकट होगी।"[1] और उसके तुरंत बाद (५ मार्च, १९५३ को) स्टालिनका देहान्त हो गया। क्या इसका कोई विशेष अर्थ है?

यह सचमुच बहुत छोटा-सा परिणाम होगा। स्टालिनकी मृत्युने (दुर्भाग्यवश उसी तरह जैसे हिटलरकी मृत्युने) संसारकी वर्तमान अवस्थाको नहीं बदला, उससे कुछ अधिककी आवश्यकता है। यह तो ऐसा ही है जैसे किसी हत्यारेको फांसी देना। जब उसका सिर उतारा जाता है तो उसकी भावना बनी रहती है और उसके बाहर प्रक्षिप्त हो जाती है। यह एक प्राणिक रचना होती है जो उसमेंसे निकलकर शुभचिंतक दर्शकोंमेंसे किसी-में डेरा डालती है और वह अचानक अपने अंदर अपराधकी वृत्ति अनुभव करने लगता है। ऐसे बहुत-से लोग हैं, विशेषकर जवान अपराधी जिन्होंने पूछे जानेपर यह बात स्वीकार की है। उनसे पूछा गया: "मारनेकी इच्छा तुम्हारे अंदर कब पैदा हुई?" बहुत बार उनका उत्तर था: "जब मैंने अमुककी फांसी देखी।"

अतः इसके या उसके मरनेसे कोई लाभ नहीं होता। इससे बहुत सहायता नहीं होती — चीज कहीं और चली जाती है। यह केवल एक रूप है। यह तो ऐसा है जैसे तुम कोई विशेष कमीज पहनकर बहुत दुष्टता-भरा काम करो और फिर कमीजको उतार फेंको और कहो: "अब मैं कोई नुकसान न पहुंचाऊंगा।" तुम दूसरी कमीज पहनकर उसे जारी रखते हो!

अगर जीवन मृत्युमें बदल गया है तो मृत्यु क्यों नहीं मरती?

---

[1] यह बंगला पत्रिका 'शृण्वंतु' में छपे एक संदेशकी ओर इशारा है: "आजसे हमेशाके लिये धरतीपर एक नयी चेतनाका जन्म हो।"
२१ फरवरी, १९५३

क्योंकि वह भली-भांति अपनी रक्षा करती है। तुम जो कहते हो वह बात ठीक है, परंतु वह धरतीपर जन्म न लेनेकी सावधानी बरतती है। और प्राणिक जगत्में तो मृत्यु नहीं होती, उसका वहां अस्तित्व नहीं है। यह केवल भौतिक जगत्में है और वह शरीर धारण न करनेकी पूरी सावधानी बरतती है।

स्टालिन जो बना, क्या यह बनना उसके लिये पूर्वनिर्दिष्ट था?

स्टालिन? मुझे पूरा-पूरा विश्वास नहीं है कि वह मनुष्य था . . .। इस अर्थमें कि, मुझे नहीं लगता कि उसके अंदर चैत्य पुरुष था। या शायद चैत्य पुरुष था तो — सारे द्रव्यमें, हर परमाणुमें दिव्य सत्ता है — पर मेरा मतलब है सचेतन चैत्य सत्ता जिसने रूप और व्यक्तित्व ग्रहण कर लिया हो। मुझे नहीं लगता। मेरा ख्याल है कि वह प्राणिक जगत्की किसी सत्ताका सीधा अवतार था। हिटलर और स्टालिनमें यह बहुत बड़ा अंतर था। हिटलर केवल मनुष्य था और मनुष्यके नाते वह बहुत दुर्बल मन-वाला और बहुत भावुक था — उसका अंतःकरण एक मामूलीसे मजदूर का था (कुछ लोग कहते हैं मोचीका), बहरहाल, एक मामूली मजदूरका था, छोटे-मोटे अध्यापकका या कुछ ऐसा ही था। वह बहुत ज्यादा भावुक था, फ्रेंचमें "Fleur bleue" कहते हैं — बहुत ही कमजोर।

लेकिन वह ग्रस्त था। वह स्वभावसे सामान्य था, अतिसामान्य। वह एक माध्यम था, बहुत अच्छा माध्यम — कोई प्रेतात्मा प्रेतात्माओंकी बैठकके समय उसपर कब्जा कर लेती थी और उसे वे दौरे आते थे जिनका मिरगीके दौरेके रूपमें वर्णन किया जाता है। लेकिन वे मिरगीके दौरे नहीं थे, भूत-बाधाके आक्रमण होते थे। इस तरहसे उसके पास एक प्रकारकी शक्ति होती थी, पर बहुत बड़ी नहीं। जब वह उस शक्ति-से कुछ जानना चाहता था तो वह अपने दुर्गमें चला जाता था और वहां, "ध्यान"में, सचमुच बड़ी तीव्रताके साथ उसका आवाहन करता था जिसे वह अपना "भगवान्" कहता था, उसका परम प्रभु जो "राष्ट्रोंका स्वामी" था। और उसे हर चीज शानदार लगती थी। वह एक सत्ता थी . . . वह छोटी थी — वह उसके सामने चांदीके कवच, चांदीका टोप पहने, सुनहरी पंख लगाये प्रकट होती थी! और वह सत्ता सचमुच शानदार थी! उस-का प्रकाश इतना चौंधियानेवाला था, आंखें उसकी चमकपर मुश्किलसे ही ठहर सकती थीं। निश्चय ही वह सत्ता भौतिक रूपमें नहीं प्रकट हुई — हिटलर एक माध्यम था और उसने देखा। उसे एक प्रकारकी अंतर्दृष्टि

प्राप्त थी। ऐसे अवसरोंपर उसे दौरे आते थे : वह जमीनपर लोटता था, बक-बक करता, लार टपकाता और कालीन काटता था। वह भयानक स्थितिमें होता था। उसके आस-पासके लोग यह जानते थे। हां, तो वह सत्ता "राष्ट्रोंका स्वामी" कहलाती है। और यह राष्ट्रोंके स्वामीका मूल रूप भी नहीं है, यह राष्ट्रोंके स्वामीसे निःसृत अंश है, बहुत सशक्त अंश।

अगर वह गायब होना चाहे तो क्या यह भगवान्‌के लिये शक्ति-की हानि न होगी?

क्या? तुम कह क्या रहे हो! कहां गायब होना? तुम गायब होना किसे कहते हो? —कहां गायब होना? तुम रामायणकी कथा जानते हो? रावणने क्या चुना था? तुम्हें मालूम है? बहुत अच्छा, तो उसे कहते हैं गायब होनेका चुनाव करना, यानी, उसका कोई व्यक्तित्व बाकी नहीं रहा।

हमें बताया नहीं गया कि रावणकी मृत्युके बाद उसका क्या हुआ।

बताया नहीं गया? लेकिन मुझे बताया गया था। कहा जाता है कि रावणने परम प्रभुमें लुप्त हो जाना चाहा था और वह पूरी तरह उनके अंदर घुल-मिल गया, यानी, उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया। वह 'मूल-स्रोत' में जा मिला। वह परम प्रभुमें विलीन हो गया। और उससे पहले भी, उसने यह भूमिका चुनी थी, विरोधी शक्तिकी भूमिका चुनी थी, क्योंकि इस तरह रास्ता बहुत छोटा होता है, भक्तों और आज्ञाकारियोंकी अपेक्षा यह रास्ता छोटा होता है। व्यक्ति बहुत ज्यादा तेजीसे जाता है। एक दिन भगवान् निश्चय करते हैं कि बस, बहुत हो गया और बस उसे नष्ट कर देते हैं। वह भगवान्‌के बाहर नहीं जा सकता, क्योंकि सब कुछ भगवान् ही है! वह अपना व्यक्तित्व खो सकता है, यानी, भगवान्‌के अंदर घुल-मिल सकता है, विलीन हो सकता है।

इसके अतिरिक्त कोई चीज गायब नहीं होती। रूप गायब होता है, पर उसे बनानेवाले संघटक तत्त्व बने रहते हैं। हर चीज शाश्वत है, क्योंकि हर चीज दिव्य है। कोई चीज भगवान्‌के बाहर नहीं जा सकती, क्योंकि सब कुछ भगवान् है। लेकिन रूप गायब होते हैं। और रूपके साथ तादात्म्यके कारण मृत्युका भाव आता है, लेकिन संघटक तत्त्व शाश्वत

रहते हैं, क्योंकि सब कुछ शाश्वत है। केवल रूप ही लुप्त होता है।

तो, उन सत्ताओंमेंसे कुछ बिलकुल विलीन होना, उस अनंतमें, उस ऐक्यमें, बिलकुल गायब हो जाना पसंद करती हैं (यानी, वे अपनी व्यक्तिगत चेतना खो देती हैं, फिर उनकी व्यक्तिगत चेतना नहीं रहती, वे व्यक्तिगत चेतनाके रूपमें बाकी नहीं रहतीं)। वे ऐसी व्यक्तिगत चेतना बननेकी अपेक्षा, जो अपने-आपको भगवान्‌के अर्पण कर दे और इस तथ्यके कारण सचेतन और व्यक्तिगत रूपसे अमर हो जाय, यह ज्यादा पसंद करती हैं। वे बदलने, यानी, आत्म-निवेदनकी जगह विलीन होना और व्यक्तिके रूपमें गायब हो जाना ज्यादा पसंद करती हैं।

क्यों?

गर्वके कारण, मेरा ख्याल है। यह हमेशा गर्व होता है। मूल रूपसे, यह शुरूसे ही गर्व होता है — प्रायः सभी धर्मोंने यही कहा है। यह गर्व है, यानी, अपनी शक्तिकी, अपने महत्त्वकी एक प्रकारकी चेतना।

आपने कहा है कि ये चारों निःसृत अंश परम प्रभुके अंग थे। तब उनकी चेतना प्रभुकी चेतनासे भिन्न कैसे हो सकती है?

भिन्न चेतना? लेकिन भिन्न चेतना तो कोई है ही नहीं! निःसृत होनेका सिद्धांत ही है भगवान्‌का अपने-आपको बाह्य रूप देना, ऐसा रूप जो निःसृत करनेवालेके गुण बनाये रखता है। लेकिन अगर ये निःसृत अंश चुनावकी स्वाधीनताके संकल्पके साथ बनाये गये हों (जैसे वे बनाये गये थे), तो जैसा कि मैंने कहा, ये निःसृत अंश यदि चाहें तो स्वाधीनता और स्वच्छंदताका अनुसरण कर सकते हैं या निःसृत करनेवालेके साथ संपर्क बनाये रख सकते हैं, क्योंकि चुनाव करनेकी छूट है। उनमें जो बल होता है, जो शक्ति होती है वह उन्हें अपने महत्त्व और अपनी सामर्थ्यका, विचार देनेके लिये बहुत काफी है। लेकिन अगर वे स्वेच्छापूर्वक भगवान्‌के प्रति समर्पणके संबंधका संपर्क रखनेके लिये चुनाव न करें, अगर वे उनके पास जितनी चेतना शक्ति और चिंतन-बल है उसे अपनी मरजीके अनुसार स्वतंत्र रूपसे उपयोगमें लाना चाहें तो इस तथ्यके कारण ही वे अपने-आपको मूल-स्रोतसे काट लेते हैं — लेकिन इसके बावजूद उनकी सत्ताके संघटक तत्त्व वही हैं जो स्रोतके थे। और इसी कारण अगर वे अपने-आपको स्वेच्छासे काट भी लें तो चेतनाकी गहराईमें

एक ऐसी कड़ी रहती है जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता। यह तादात्म्य-की कड़ी है। लेकिन बाहरी अभिव्यक्तिमें, चूंकि वे चुनावकी स्वाधीनता-के तत्त्वके साथ निःसृत हुए थे, उन्हें यह चुननेकी पूरी छूट है कि वे यह करें या वह। इसीलिये बुरे-से-बुरे अपराधीमें भी, कहीं गहराइयोंमें, कहीं-पर भागवत प्रकाश रहता है। मेरा ख्याल है कि तुमने विवेकानंदका वह उद्धरण पढ़ा होगा जहां वे कहते हैं (मुझे ठीक शब्द तो याद नहीं) कि अपराधीसे कहना चाहिये : "जागो, जागो, हे प्रकाशकी सत्ता, और चमको!"

अभी कुछ देर पहले जब मैंने तुमसे कहा कि मैं तुम्हें कहानी इस तरह सुनाऊंगी जैसे बच्चोंको सुनायी जाती है, तो यह ठीक इसलिये क्योंकि मैंने कहानी इस तरह सुनायी थी मानो वह कोई भौतिक कहानी हो। और इसलिये, इस तरह सुनानेपर वह बच्चोंकी कहानी बन जाती है। लेकिन इन चीजोंको उनके अपने क्षेत्रमें देखना चाहिये, जो भौतिक नहीं, आध्यात्मिक क्षेत्र है। वहां चीजें इस तरह नहीं होतीं जैसे यहां होती हैं।

लेकिन फिर भी, हां! यहां जो कुछ होता है वह प्रतीकात्मक रूपमें वही है। इस अर्थमें कि जो बच्चा पैदा होता है वह अपनी मांका एक टुकड़ा होता है। भौतिक रूपमें, बिलकुल भौतिक रूपमें — पहले कुछ घंटोंके लिये पूरी तरहसे, लगभग दो दिनतक, उसके बाद कम परिमाणमें, फिर भी काफी स्पष्ट रूपसे, कम-से-कम दो महीनेतक — पदार्थकी यह कड़ी इतनी बड़ी होती है कि ऐसा लगता है मानो वह मांका ही एक दीर्घीकरण है, पर है उसके बाहर। निःसृत होनेका यही तत्त्व है। किंतु यह बड़े होनेपर बच्चोंको मां-बापसे बिलकुल स्वतंत्र होनेसे नहीं रोकता, कभी-कभी तो एक-दम भिन्न। लेकिन शुरूमें स्रोतमें एक ही चीज थी। यह एकदम वही द्रव्य है, बिलकुल वही, सिर्फ उसे बाह्य रूप दिया गया है। बस।

और निःसृत अंशमें भी यही घटता है, परंतु वहां भौतिक स्तरपर होनेकी जगह चीज उच्चतम आध्यात्मिक स्तरपर होती है। और यहां जो कुछ होता है वह ऊपर होनेवाली चीजका प्रतीक है।

हां, तो कभी ऐसा नहीं होता कि तुम कहो: "यह कैसी बात है कि यह बच्चा, जिसके मां-बाप इतने अच्छे हैं, इतने ईमानदार, इतने उदार, इतने सच्चे हैं, उनका यह बच्चा इतना दुष्ट कैसे निकला?" तुम्हें इसपर आश्चर्य हो सकता है, लेकिन कोई भी चीज असंभव नहीं मालूम होती; तो यहां भी वही चीज है। मूलतः सब कुछ सत्ताके आंतरिक गठनपर निर्भर है। कोई दो सत्ताएं ऐसी नहीं हैं जो बिलकुल एक-सी हों, कोई दो शरीर-गठन एक-से नहीं हैं। और सब कुछ आंतरिक संगठनपर, सत्ताके

समग्र गठनपर, और उस ढांचेपर निर्भर है जिसमें तत्त्व संगठित हैं और इसपर भी कि उनका आंतरिक संबंध कैसा है — जैसे दाह्य रूप एक-दूसरे-से भिन्न होते हैं; क्योंकि कोषाणु एक ही तरहसे संगठित नहीं होते। किंतु यह एक ऐसी घटना है जिसे तुम हमेशा देखते हो, जिसमें तुमने जन्म लिया है, जिसे तुम हर रोज देखते हो, इसलिये वह तुम्हें स्वाभाविक दीखती है। बात वही है। तुम्हें यह बात बिलकुल स्वाभाविक लगती है कि बच्चा मां-बापसे भिन्न है — लेकिन फिर भी यह बात वही है। और परम पुरुष-के निःसृत अंशमें, शुरूमें, एक भाव निश्चित रूपमें समग्रसे भिन्न होता है, यद्यपि बीज-रूपमें उसके अंदर समग्र उपस्थित हो सकता है, लेकिन उसमें समग्र व्यक्त नहीं होता। और चूंकि समग्र व्यक्त नहीं होता, इसलिये अनिवार्य रूपसे वह समग्रसे भिन्न होता है, क्योंकि उसका आंतरिक गठन भिन्न होता है। तो मैं समझती हूं इतना काफी है।

हमने दर्शन-शास्त्रको लगभग छू लिया है।

पुनरागमनाय, मेरे बच्चो!

९ दिसम्बर, १९५३

"हम हमेशा उन चीजोंसे घिरे रहते हैं जिनके बारेमें हम सोचते हैं।"

(श्रीमातृवाणी)

यह बहुत महत्वपूर्ण है।

अगर तुम बुरी चीजोंके बारेमें सोचो तो तुम बुरी चीजोंसे घिरे रहोगे।

"अहंकारसे पार पाना आसान काम नहीं है।

"उसे भौतिक चेतनामें जीत लेनेके बाद भी, हम फिरसे उसके बड़े-बड़े रूपसे आध्यात्मिक चेतनामें मिलते हैं।"

(वही)

आध्यात्मिक चेतनामें हम अपने अहंकारसे कैसे मिल सकते हैं?

जैसे भौतिक, प्राणिक, मानसिक अहंकार है उसी तरह एक आध्यात्मिक अहंकार भी है। एक आध्यात्मिक अहंकार है। ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने अहंपर और अपनी समस्त सीमाओंपर विजय पानेके लिये बहुत प्रयास किया है और आध्यात्मिक चेतना पा ली है। वहांपर फिरसे उन्हें मिथ्या-अभिमान, अपने महत्त्वका भान, वे स्वयं जिस स्थितिमें हैं उसमें जो लोग नहीं हैं उनके प्रति तिरस्कार — आदि चीजें अपने अंदर मिलती हैं। वस्तुतः अहंकारमें जो कुछ हास्यास्पद और बुरा है वह सब उन्हें फिरसे मिलता है। ऐसे लोग बहुत, बहुत हैं। जो भौतिक या प्राणिक चेतनामें था उसपर उन्होंने विजय पा ली है, लेकिन उन्होंने अपने ऊपर स्वामित्व पानेके लिये जो प्रयास किया है वह, और उन्होंने जो विजय पायी है वह, उन्हें बहुत अधिक महत्त्वकी भावना दे देती है और वे फूल उठते हैं और अपना अधिकार जमाते हैं।

यह इतना अधिक हुआ करता है कि इसकी ओर ध्यान ही नहीं जाता।

> **मैं यह नहीं समझ पाया: "प्रकृतिकी तथाकथित शक्तियां ऐसी सत्ताओंकी बाहरी गति-विधि हैं, जो अपने आकार और अपनी शक्तिके हिसाबसे मनुष्यसे बहुत ज्यादा बड़ी हैं।"**
>
> (वही)

नहीं समझे? .... उदाहरणके लिये, आंधीको लो जो चला करती है। वैज्ञानिक तुमसे कहेंगे: "आंधियां प्रकृतिकी शक्तियोंकी अभिव्यक्तियां हैं और अमुक-अमुक घटनाओंका परिणाम हैं।" वे गरमी और ठंड, ऊंचे और नीचे आदिकी बात करेंगे और तुमसे कहेंगे: "आंधी चलनेका यह कारण है: ये वातावरणमें पैदा होनेवाली हवाकी लहरें हैं।" लेकिन बात ऐसी नहीं है। उनके पीछे सत्ताएं होती हैं। वे इतनी बड़ी हैं कि उनका रूप हमसे बच निकलता है। यह ऐसा ही होगा जैसे किसी चींटीसे कहा जाय कि मनुष्यके रूपका वर्णन करे — वह न कर पायेगी, कर पायेगी क्या? वह अधिक-से-अधिक छोटी उंगलीकी सबसे छोटी पोरको देखती है और पैरपर चलती है — यह एक लंबी यात्रा है और वह यह न जानेगी कि मनुष्यका आकार कैसा होगा। तो यहां भी वही चीज है। ये शक्तियां जो आंधी, मेह, भूकंप आदि ले आती हैं अभिव्यक्तियां हैं, तुम चाहो तो चेष्टाएं कह लो, इस प्रकारकी सत्ताओंकी गतियां हैं जो भयावह रूपसे महान् हैं। हम मुश्किलसे उनके पैरका एक सिरा ही देखते हैं, उनके आकारको नहीं देख पाते।

फिर भी आध्यात्मिक अहं साधारण अहंसे तो अच्छा ही है न?

वह साधारण अहंसे कहीं अधिक भयंकर होता है! क्योंकि इसमें तुम्हें भान ही नहीं होता कि यह अहं है। बाहरी तौरपर जब तुम्हारे अंदर अहंकार होता है तो न केवल तुम उसे जानते हो, लेकिन दूसरे भी तुम्हें उसका अधिकाधिक भान कराते रहते हैं, परिस्थितियां हर क्षण तुम्हारे आगे उसका प्रमाण देती रहती हैं। परंतु आध्यात्मिक अहंकारमें, दुर्भाग्यवश, तुम्हें ऐसे लोग मिलते हैं जो तुम्हारा बहुत आदर-सम्मान करते हैं। तुम्हें पता भी नहीं चलता कि तुम बहुत अधिक अहंकार-भरे हो।

बहुत भयानक, आध्यात्मिक मिथ्या-अभिमान भौतिक मिथ्या-अभिमानकी अपेक्षा बहुत ज्यादा गंभीर होता है।

तो, मधुर मां, क्या व्यक्ति अहंके साथ भगवान्‌का साक्षात् कर सकता है?

उनके साथ ऐक्य सिद्ध होनेके क्षण नहीं। यह स्पष्ट है कि उस क्षण अहं गायब हो जाता है। लेकिन यह स्थिति बनी नहीं रहती। या हम इसे एक और तरह कह सकते हैं: जो अपने अहंकारको साथ लाते हैं वे इस चेतनाको अधिक समयतक नहीं रख सकते। वे यह अनुभूति प्राप्त करते समय फिरसे अपने बारेमें सचेत हो उठते हैं, यही सबसे भयंकर बात है। वे अपने-आपको अनुभूति प्राप्त करते हुए देखते हैं और अपनी सराहना करते हैं। उन्हें लगता है कि वे अपवाद स्वरूप श्रेष्ठ सत्ता हैं, औरोंसे बहुत ऊंचे और यह बात शोचनीय हो उठती है।

यहां आप कहती हैं: "तू मेरे लिये जीवन चुने या मृत्यु, सुख या दुःख, आराम या तकलीफ, तेरी ओरसे मेरे पास जो कुछ भी आये उसका स्वागत होगा।"

(वही)

क्या भगवान् दुःख-कष्ट देते हैं?

ओह, मेरे बच्चे, यह पाठ, तुम जानते हो यह क्या है? यह कृष्णसे राधाकी प्रार्थना है। तो यह, भागवत शक्तियोंका ऐसा मानवीकरण है कि अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये तुम्हें अपनी मानवी भावनाओंको भग-

वान्पर आरोपित करना पड़ता है। इसे इसके सच्चे रूपमें समझनेके लिये एक लंबी-चौड़ी व्याख्याकी जरूरत होगी और तब यह कलात्मक चीज न रह जायगी — यह कट्टर सैद्धांतिक या कम-से-कम शैक्षणिक बात हो जायगी। यह बात यह विचार देनेके लिये है कि सब कुछ भगवान्में है और सब कुछ भगवान् है। और निश्चय ही यदि तुम अपनी चेतनाकी स्थिति बदल लो और भगवान्के साथ तादात्म्य प्राप्त कर लो तो उससे वस्तुओंकी प्रकृति ही बदल जायगी। उदाहरणके लिये, जो दुःख, कष्ट या दारिद्रय मालूम होता था — उसके बारेमें तुम्हें पता चलता है कि इसके विपरीत यह भगवान्के तुम्हारे अधिक निकट आनेका एक अवसर है। और इस अवस्थामें, जो चीज तुम्हें संतुष्ट करनेवाली मालूम होती है उसकी अपेक्षा इससे ज्यादा हर्ष मिलता है। हां, लेकिन तुम्हें इसे इस तरह समझना चाहिये, इस भावके साथ, इस चेतनाके साथ समझना चाहिये, अन्यथा साधारण अर्थमें लेनेपर यह — सब कुछ भगवान् हैं — के सिद्धांतसे एकदम उलटा है।

एक ही चीज, एक ही स्पंदन, या तो तीव्र आनंद ला सकता है या बहुत अधिक निराशा। यह इसपर निर्भर है कि उसे किस तरह लिया जाता है, उसकी कैसी प्रतिक्रिया होती है। ठीक वही चीज तुम्हारी चेतनाकी अवस्थाके अनुसार अलग परिणाम लाती है! अतः, ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके बारेमें यह कहा जा सके कि यह दुर्भाग्य है। ऐसी कोई चीज नहीं है जिसे यातना कहा जा सके। बस, आवश्यक है अपनी चेतनाकी अवस्थाको बदलना। बस यही। बस, (मैंने इस बारेमें कहीं लिखा है, पर इस समय ख्याल नहीं कहां) अगर तुम अपनी चेतनाकी अवस्थाको बदलनेमें सफल हो जाओ और इस आनंदकी अवस्थामें प्रवेश कर लो तो तुम चाहे दूसरोंको लड़ते-झगड़ते, दुःखी होते, कष्ट पाते, दीन अवस्थामें देखो, फिर भी तुम अपने-आप यही अनुभव करोगे कि सब कुछ सामंजस्यपूर्ण है, कितना अद्भुत है, कितना मधुर है, कितना सुखद है। और तुम कहते हो: "अरे! ये लोग वही क्यों नहीं करते जो मैं करता हूं?" लेकिन मुश्किल तो यह है कि हर एक उसे करनेके लिये तैयार नहीं है! और जो सामान्य चेतनामें रहते हैं उनके लिये दुःख-दर्द बहुत अधिक वास्तविक है।

लेकिन ऐसे लोग भी हैं जो अकेले-अकेले सुखी नहीं रहना चाहते और दूसरोंको पथपर जरा आगे चला सकनेके लिये इस पूर्ण आनंदकी अवस्थाको त्यागनेके लिये तैयार होते हैं।

संसारमें मनोवृत्तियां — सद्गुणोंके प्रति मनोवृत्तियां — बहुत ज्यादा आत्मपरक होती हैं। जो चीज एकके साथ सफल हो जाती है वह दूसरेके

साथ असफल हो सकती है। और हर एकको अपना ही मार्ग लेना चाहिये। इसीलिये लोगोंसे यह कहना बहुत कठिन होता है कि जो मैं करता हूं वही करो। प्रायः सभी गुरु सामान्यतः यही कहते हैं: "जैसा मैं करता हूं वैसा ही करो और तुम लक्ष्यतक जा पहुंचोगे।" तुम बस यही कह सकते हो: "जैसा मैं करता हूं वैसा ही करो, तुम मेरे जैसे हो जाओगे।"

(मौन)

आह! मैं तुमसे एक प्रश्न पूछना चाहती थी। हमने शुरूमें ही कहा था: आदमी जिन चीजोंके बारेमें सोचता है उन्हींसे घिरा रहता है। तुम भली-भांति समझते हो कि इसका क्या मतलब है। (एक बच्चेकी ओर मुड़कर) हर बार जब तुम किसी चीजके बारेमें सोचते हो तो मानों तुम हाथमें चुंबक लेकर उस चीजको अपनी ओर खींचते हो — समझे? कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें हर संभव विपदाके बारेमें सोचते रहनेकी बहुत, बहुत बुरी आदत होती है। उन्हें सारे समय एक तरहका भय लगा रहता है कि अगले क्षण उनपर कोई मुसीबत गिरनेवाली है। मैं ऐसे बहुतोंको जानती हूं। यहां भी ऐसे लोग हैं। तो ये लोग मानों मुसीबतोंको खींचनेके लिये हाथमें चुंबक लिये रहते हैं, केवल अपने ऊपर ही नहीं, औरोंपर भी। इससे उनपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आती है। अगर तुम सारे समय किसी-न-किसी चीजके बारेमें सोचना बंद नहीं कर सकते — कुछ लोगोंका मस्तिष्क हमेशा दौड़ता ही रहता है और उन्हें उसे रोकनेकी तरकीब नहीं आती — तो उसे गलत राहपर दौड़ने देनेकी जगह, ठीक राहपर क्यों न दौड़ाया जाय! एक बार तुम्हारा मस्तिष्क दौड़ना शुरू कर दे तो उसे उन सब अच्छी चीजोंकी ओर दौड़ने दो जो हो सकती हैं। अगर वह गोल-गोल चक्कर लगानेके लिये बाधित है तो उसे अच्छी चीजोंकी ओर मोड़ दो! यानी, अगर कोई बीमार है तो यह कहनेकी जगह कि "क्या होनेवाला है, शायद यह बहुत गंभीर हो, और अगर यह अमुक बीमारी हो.... और मुसीबत कितनी तेजीसे आती है," इस सबकी जगह अगर तुम सोचो: "आह! यह कुछ भी नहीं है। बीमारियां केवल बाहरी भ्रम हैं जो ज्यादा गहरे स्पंदनोंको ध्वनित करती हैं। वे दिखायी नहीं देते इसलिये हम उनके बारेमें बात नहीं करते। लेकिन बात है ऐसी ही। और ये ज्यादा गहरे स्पंदन आकर उन चीजोंको ठीक कर सकते हैं जो खराब हो गयी हैं। और यह असंतुलन, यह रोग या बुरी चीज जो आयी है, इसे भागवत कृपा सोख लेगी और यह गायब हो जायगी, उसका कोई

चिह्न भी न बच रहेगा। चिह्न रहेगा तो सुखद और प्रिय वस्तुओंका।" तुम इस तरह निरंतर सोचते रह सकते हो . . .। लोगोंको हमेशा अपने मनको दौड़ाने, दौड़ाने, दौड़ाते रहनेकी जरूरत होती है; तो फिर उसे ठीक रास्तेपर दौड़ाओ, तब तुम उसका प्रभाव देखोगे। उदाहरणके लिये, उसे इस तरह चलने दो: मैं इसे ज्यादा अच्छी तरह, और भी अच्छी तरह सीखूंगा, ज्यादा-ज्यादा जानूंगा, अधिकाधिक स्वस्थ बनूंगा, सब कठिनाइयां लुप्त हो जायंगी, दुष्ट लोग मधुर और अच्छे बन जायंगे, बीमार लोग स्वस्थ हो जायंगे, जिन मकानोंको बनानेकी जरूरत है वे बनते जायंगे, जिन चीजोंको लुप्त हो जाना चाहिये वे लुप्त हो जायंगी, लेकिन अपना स्थान ज्यादा अच्छी चीजोंको देती जायंगी और संसार हमेशा निरंतर प्रगति करता रहेगा और प्रगतिके अंतमें समग्र सामंजस्य होगा और इसी तरह, बस यही जारी रखो . . .। तुम इस तरह चलते ही चले जा सकते हो। तब फिर तुम्हारे चारों ओर तुम्हारे सिरके चारों ओर सुंदर चीजें होंगी। जो लोग वातावरणको देखते हैं वे स्याहीके-से धब्बे देखते हैं। वहां, हां, स्पर्शकों-वाले अष्टभुजकी तरह जो तुम्हारे मनको उलट-पलट देते हैं — इसकी जगह तुम प्रसन्न रचनाएं देखोगे, सूर्यकी किरणोंको या प्रकाशकी रचनाएं देखोगे, शायद सुंदर चित्र और ऐसी ही चीजें देखोगे। तुम सुंदर चीजें देखोगे ऐसे चित्रकार हैं जो यही करते हैं और वे हमेशा विचार पकड़ सकते हैं।

मधुर मां, आपने कहा है : "हर ध्यान एक नया अंतःप्रकाश होना चाहिये, क्योंकि हर ध्यानमें कुछ नया होता है।" क्या ध्यानके बाद व्यक्तिको सुध रहती है कि क्या हुआ था?

ठीक यही तो वह चीज है। मैं कहती हूं : सावधान रहो और सचेतन बनो। अगर तुम बहुत सावधान रहो तो सचेतन बन सकते हो। तुम्हें बहुत ज्यादा एकाग्र, बहुत सावधान होना चाहिये, तब तुम सचेतन बन सकते हो।

मां, दुःख-कष्ट अज्ञान और यंत्रणासे आते हैं। भगवती माता — सावित्रीमें भगवती माता — अपने बच्चोंके लिये जो दुःख-कष्ट झेलती है वह किस प्रकारका है?

क्योंकि वे उनकी प्रकृतिमें भाग लेती हैं। उनकी प्रकृतिमें भाग लेनेके लिये ही वे धरतीपर उतरी हैं। क्योंकि अगर वे उनकी प्रकृतिमें भाग

न लें तो वे उन्हें आगे न बढ़ा सकेंगी। अगर वे अपनी परम चेतनामें बनी रहें जहां कोई दुःख नहीं है, अपने परम ज्ञान और अपनी परम चेतनामें बनी रहें तो मनुष्योंके साथ उनका कोई संपर्क ही न होगा। इसीलिये उन्हें मानव चेतना और मानव रूप धारण करना पड़ता है, ताकि वे उनके साथ संपर्क स्थापित कर सकें। हां, वे भूलती नहीं। उन्होंने उनकी चेतना अपना तो ली है, लेकिन उनका संबंध अपनी वास्तविक, परम चेतनाके साथ बना रहता है। और इस तरह दोनोंको मिलाकर, जो लोग उस दूसरी चेतनामें हैं उनसे सचेतन प्रगति करवा सकती हैं। लेकिन अगर वे मानव चेतनाको न अपनातीं, अगर वे उनके दुःखमें दुःखी न होतीं तो वे उनकी सहायता न कर पातीं। उनका दुःख अज्ञानका दुःख नहीं है। यह तादात्म्यका दुःख है। यह इसलिये है, क्योंकि उन्होंने वही स्पंदन स्वीकार किये हैं जो उनमें होते हैं, ताकि वे उनके संपर्कमें आ सकें और उन्हें अपनी वर्तमान स्थितिमेंसे बाहर निकाल सकें। अगर वे लोगोंके साथ संपर्क न रखें तो उन्हें कोई भी अनुभव न कर सकेगा, कोई उनकी ज्योतिको न सह सकेगा...। यह सब प्रकारके रूपोंमें, सब प्रकारके धर्मोंमें कहा गया है। उन्होंने बहुधा भागवत बलिदानकी बात कही है। एक दृष्टिकोणसे यह सत्य है: यह स्वेच्छासे बलिदान है, पर है सत्य। पूर्ण चेतना, पूर्ण आनंद, पूर्ण शक्तिको तजकर बाह्य जगत्के अज्ञानको स्वीकार करना ताकि उसे अज्ञानमेंसे निकाल सकें। अगर इस अवस्थाको न स्वीकार किया जाता तो उसके साथ कोई संपर्क ही न होता, कोई संबंध न जुड़ता। अवतारोंका यही कारण है। अन्यथा उनकी जरूरत न होती। अगर भागवत चेतना या भागवत शक्ति सीधे अपनी पूर्णताके स्थानसे या उस अवस्थासे कार्य कर सकतीं, अगर वे जड़ द्रव्यपर वहांसे सीधी क्रिया कर सकतीं और उसका रूपांतर कर पातीं तो मनुष्य जैसा शरीर धारण करनेकी जरूरत ही न होती। तब 'सत्य' लोकसे पूर्ण चेतना द्वारा चेतनापर क्रिया करना ही पर्याप्त होता। वस्तुतः शायद उस तरह क्रिया होती तो है लेकिन इतनी धीमी कि जब संसारको प्रगति करवानी हो, उसे तेजीसे आगे बढ़ाना हो तो मानव प्रकृतिको स्वीकारना जरूरी हो जाता है। मानव शरीर स्वीकार करनेसे, अंशतः मानव स्वभाव स्वीकारना जरूरी हो जाता है। हां, अपनी चेतना खोने और सत्यके साथ संपर्क खोनेकी जगह, अवतार इस चेतनाको बनाये रखता है, इस सत्यको बनाये रखता है और इन दोनोंको जोड़कर ही वह रूपांतरकी कीमिया पैदा कर सकता है। लेकिन अगर उसने जड़ पदार्थको न छुआ होता तो कुछ भी न कर पाता।

क्या सावित्री पहलेसे जानती थी कि वह क्या करनेवाली है?

उसने ऐसा कहा है। तुमने पढ़ा नहीं? उसे यह भी बता दिया गया था कि वह अकेली होगी और उसने उत्तर दिया : मैं अकेली रहनेके लिये तैयार हूं। तुमने नहीं पढ़ा यह? यह उस सर्गमें है जो पिछले वर्ष सुनाया गया था।[1]

क्या वह जानती थी कि वह "दुःखोंकी माता" और "शक्तिकी माता"से मिलेगी?

निश्चय ही जानती थी। यह बराबर कहा गया है कि जो कुछ होनेवाला है वह सब उसे मालूम था। यह स्पष्ट रूपमें लिखा है। वास्तवमें, उसने हर एकसे स्पष्ट रूपसे कहा : मैं तुम्हारे लिये वह लाऊंगी जिसकी तुम्हें आवश्यकता है। स्वभावतः वह जानती है अन्यथा ऐसी बात न कहती। अगर वह न जानती तो ऐसी बात कैसे कहती?

सावित्रीमें "दुःखोंकी माता" कहती है : "शायद जब जगत् एक अंतिम निद्रामें डूबे तो मैं भी मूक शाश्वत शांतिमें जा सोऊं।"
(सावित्री)

ओह! यह। यह मानव चेतना है। यह मानव चेतना है। यह मानव चेतनाका विचार है कि जब सब दुःख समाप्त हो जाएंगे तो : "मैं सो जाऊंगी।" वास्तवमें, श्रीअरविन्द इसकी बात कह रहे हैं। जब परम शांतिके लिये अभीप्सा होती है, तो व्यक्तिको लगता है कि यदि प्रलय हो जाय और संसार लुप्त हो जाय, तो कम-से-कम तब तो शांति होगी। लेकिन यह वाक्य अपने-आपको काटता है, क्योंकि यदि प्रलय हो जाय और संसार लुप्त हो जाय तो कोई शांति ही न रहेगी जिसका अनुभव किया जा सके — तब तो कहीं कुछ न रहेगा!

परंतु यह मानव चेतनाके विरोधोंमेंसे एक है : "जबतक संसार है और दुःख है तबतक मैं संसारके साथ दुःख झेलूंगा। लेकिन अगर कभी संसार शांतिमें प्रवेश करे, असत्की शांतिमें प्रवेश करे, तो मैं भी आराम करूंगा।" यह एक काव्यात्मक तरीका है यह कहनेका कि जबतक संसारमें दुर्गति

---

[1] आश्रम-विद्यालयके वार्षिकोत्सवके अवसरपर इसका पाठ किया गया था।

है तबतक मैं भी जगत्‌के साथ कष्ट सहन करूंगा। जब यह अवस्था जगत्‌के लिये समाप्त होगी तभी मेरे लिये भी समाप्त होगी।

तब "दुःखोंकी माता" क्या करेगी? वह और क्या कर सकती है?

वह "आनंदकी माता" बन जायगी।

"सावित्री दिव्य मांकी चेतनाका प्रतिनिधित्व करती है न?"

हां।

और सत्यवान किसका प्रतीक है?

वह अवतार है, है न? वह परम प्रभुका अवतार है।

१६ दिसम्बर, १९५३

मधुर मां, आपने कहा है: "... अपने अंदर चैत्य पुरुषका बोध पानेके लिये और अंतमें उसके साथ तादात्म्य पानेके बहुत-से तरीके बताये गये हैं। कुछ तरीके मनोवैज्ञानिक हैं कुछ धार्मिक हैं और कुछ यांत्रिक भी हैं।"

शिक्षा : 'जीवन-विज्ञान'

क्या आप इसके कुछ उदाहरण देंगी?

यांत्रिक, जैसे आसन, हठयोग। यह इसी उद्देश्यसे किया जाता है। धार्मिक, ये उन लोगोंके लिये है जो किसी विशेष धर्ममें आस्था रखते हैं, पूजा करते और धार्मिक अनुष्ठान करते हैं। जब कोई किसी धर्मपर आस्था रखता है, वह चाहे कोई धर्म क्यों न हो, तो वह उस धर्मके अनुशासनके अनुसार चलता और उस धर्मके अनुसार प्रार्थना-याचना करता है, उसकी शिक्षा और मान्यताओंके अनुसार साधना करता है। मनोवैज्ञानिक

तरीका है योग। स्वयं अपने अंदर आत्म-निरीक्षणके द्वारा जो स्थायी है, जो अचल है उसे खोजना। बस, इतना ही।"

"तुम्हारा लक्ष्य ऊंचा और विस्तृत होना चाहिये, साथ ही उदार और निःस्वार्थ।"

(वही)

इसका क्या अर्थ है?

तुम इसका अर्थ पूछ रहे हो? ऊंचा? ... उदाहरणके लिये, ऐसे लोग हैं जिनका लक्ष्य है धन-ऐश्वर्य कमाना; फिर दूसरे ऐसे हैं जिनका लक्ष्य है किसी रोगका उपचार ढूंढना। स्पष्ट है कि रोगका उपचार ढूंढनेकी अपेक्षा धन-ऐश्वर्य कमाना ज्यादा नीचा और स्वार्थपूर्ण है। ऐसे लोग हैं जिनका लक्ष्य है परिवार और बाल-बच्चोंके साथ चैनसे, चुपचाप जीवन बिताना और सभी संभव जगतोंमेंसे अच्छे-से-अच्छा पाना। यह काफी नीचा लक्ष्य है। बहरहाल, बहुत ही सामान्य है। कुछ ऐसे लोग हैं जो सारे समाजकी भलाई चाहते हैं, या फिर रेडियमका आविष्कार करनेवाले क्यूरी-दंपत्तिकी तरह नई खोज करना चाहते हैं। यह ज्यादा ऊंचा लक्ष्य है। निःस्वार्थका मतलब है कि वह अपने छोटे-से, निजी लाभके लिये नहीं है, निजी सुखके लिये नहीं है, बल्कि पूरी तरह औरोंकी सहायता करनेके लिये है। स्वभावतः सबसे ऊंचा लक्ष्य है भगवान्‌के साथ एक होना और उनका काम पूरा करना। लेकिन वह, वह तो नसैनीके सबसे ऊपरके तख्तेपर है। इससे पहले अध्यायमें मैंने इस प्रकारकी कोई चीज न कहनेकी पूरी सावधानी बरती है। मैंने जान-बूझकर इसे सब लोगोंके लिये लिखा था, उनके लिये भी जिन्हें रहस्यवादका कोई ख्याल तक नहीं है। फिर यह कहनेकी जरूरत नहीं कि अपने अंदर भगवान्‌की खोज करना और उनके साथ ऐक्य साधना और उन्हींका काम करना, ऊंचे-से-ऊंचा और सबसे अधिक निःस्वार्थ लक्ष्य है और सबसे कम स्वार्थ परायण।

मैंने कौन-से विशेषणोंका उपयोग किया है?

ऊंचा और विस्तृत, उदार और निःस्वार्थ।

हां, विस्तृत। वह कोई ऐसी चीज है जो पूर्णतः तुच्छ व्यक्तिगत चेतनासे, और उसके पूर्णतः स्वार्थपूर्ण लाभोंसे परिसीमित नहीं है। कोई

ऐसी चीज जो समग्रको अपनी बाहुओंमें भर लेती है — वह समग्र चाहे कोई समूह हो या राष्ट्र, कोई महाद्वीप हो या समस्त धरा। मनुष्यके लिये समस्त धरापर काम करनेवाली क्रिया सचमुच विशाल क्रिया होती है।

उसके बाद आपने कहा है: "यह तुम्हारे जीवनको अपने लिये और सबके लिये बहुमूल्य बना देगा।"

हां, अगर तुम बेकार हो तो वह बहुमूल्य नहीं होता; अगर तुम उपयोगी हो तो वह बहुमूल्य बन जाता है! किसी संकरे व्यक्तिगत अस्तित्वके नगण्य ब्योरोंमें व्यस्त रहनेसे बढ़कर घृणित कोई और चीज नहीं है। व्यक्ति अपने-आपको रिक्त, खोखला और निरर्थक अनुभव करता है। उसे जीवनमें जरा भी रस नहीं रहता। ऐसे लोग ह जो अपने छोटे-से परिवारमें ही बंद रहते हैं; अगर बच्चा खांसे तो घंटों खीजते रहते हैं, अगर भोजन अच्छी तरह न पका हो तो झगड़ते हैं, अगर इन महाशयकी नौकरी छूट जाय और वह दूसरीकी खोजमें हों — तो वह विलाप करने लगते हैं: "हाय, मैं अपने परिवारका पेट कैसे भरूं?" यह है उसी तरह रहना जैसे किसी बिलमें केंचुआ।

हर एक व्यक्तिमें चैत्य हमेशा पवित्र रहता है या उसे पवित्र करना पड़ता है?

वह हमेशा पवित्र रहता है। लेकिन अपनी क्रियामें वह कम या अधिक व्यष्टि रूप और स्वतंत्र होता है। सत्तामें जो कुछ चैत्य है वह अपनी परिभाषाके अनुसार ही हमेशा पवित्र रहता है, क्योंकि यह सत्ताका वही भाग है जो भगवान्‌के संपर्कमें रहता है और सत्ताके सत्यको अभिव्यक्त करता है। लेकिन वह सत्ताके अंधकारमें एक चिंगारीकी भांति हो सकता है, अथवा प्रकाशकी एक सत्ता हो सकता है, जो सचेतन, स्वतंत्र और पूर्ण रूपसे निर्मित हो। इन दोनोंके बीच सब प्रकारके सोपान हैं।

क्या साधारणतः चैत्य पुरुष ढका रहता है?

बाह्य चेतना ही उसके संपर्कमें नहीं रहती, क्योंकि वह अंदरकी ओर मुड़ी होनेकी जगह बाहरकी ओर मुड़ी रहती है — क्योंकि अंदरकी ओर सत्ता-

की गहराइयोंमें देखनेकी और आंतरिक प्रेरणाओंको सुननेकी जगह, वह बाहरी शोर और गतिविधियोंके बीच, उन बीजोंमें रहती है जिन्हें वह देखती है, करती है और कहती है

चैत्यमें कोई शक्ति होती है क्या ?

शक्ति ? साधारणत: चैत्य ही सत्ताका संचालन करता है। व्यक्तिको उसके बारेमें कुछ मालूम नहीं होता क्योंकि वह उसके प्रति सचेतन नहीं होता, लेकिन साधारणत: वही सत्ताका संचालन करता है। अगर व्यक्ति बहुत सयाना हो तो उसे उसका भान हो सकता है। लेकिन उसके बारेमें अधिकांश मनुष्योंको लेशमात्र भी धारणा नहीं होती। उदाहरणके लिये, जब उन्होंने अपने बाहरी अज्ञानमें अमुक चीज करनेका निश्चय कर लिया है, और उसे सिद्ध कर सकनेकी जगह, परिस्थितियां इस तरह संगठित होती हैं कि वे कुछ और ही कर डालें, तब वे चिल्लाना, गरजना और भाग्यपर आग-बबूला होना शुरू करते हैं, कहते हैं (यह इसपर निर्भर है कि उन्हें किसपर विश्वास है, उनकी मान्यताओंपर) कि प्रकृति दुष्ट है, या उनका भाग्य अनिष्टकर है या भगवान् अन्यायी हैं या... जो भी हो (यह इसपर निर्भर है कि वे किसपर विश्वास करते हैं)। यहां तक कि परिस्थिति बहुधा उनके आंतरिक विकासके लिये सबसे अनुकूल थी। यह स्वाभाविक है कि अगर तुम चैत्यसे यह मांग करो कि वह तुम्हारे लिये सुखद जीवन बनानेमें, पैसे कमानेमें, ऐसे बच्चे पैदा करनेमें सहायता दे जो परिवारका गौरव बनें आदि... तो चैत्य तुम्हारी सहायता नहीं करेगा ! लेकिन वह तुम्हारे लिये ऐसी समस्त परिस्थितियां तैयार करेगा जो तुम्हारे अंदर किसी चीजको जगानेके लिये आवश्यक हों ताकि तुम्हारी चेतनामें भगवान्‌के साथ ऐक्यकी आवश्यकता जन्म ले। कभी-कभी तुमने बहुत बढ़िया योजनाएं बनायीं और अगर वे सफल हो जातीं तो तुम अधिकाधिक अपने बाह्य अज्ञानमें, अपनी तुच्छ और मूर्खतापूर्ण महत्त्वाकांक्षामें और अपनी उद्देश्यहीन क्रियामें ही अधिकाधिक जमे रहते। जब कि यदि तुम्हें एक अच्छा धक्का मिले और जिस पदके लिये तुम लोभ कर रहे थे उससे तुम्हें वंचित रखा जाय, तुमने जो योजना बनायी थी वह चूर-चूर हो जाय, और तुम अपने-आपको बिलकुल निष्फल और व्यर्थ पाओ, तो कभी-कभी यह विरोध तुम्हारे लिये किसी सत्यतर और गहनतर वस्तुके द्वार खोल देता है। और जब तुम कुछ जाग्रत होओ और पीछे मुड़कर देखो, तो यदि तुम जरा भी सच्चे या निष्कपट हो तो कहोगे : "आह ! मैं ठीक नहीं था —

प्रकृति, भागवत कृपा या मेरे चैत्य पुरुषने ही यह किया है।" चैत्य पुरुषने यह व्यवस्था की थी।

क्या वह चैत्य संकल्प है जो चाहता है कि भगवान्‌के साथ सत्ताका तादात्म्य हो?

हां, निश्चय ही। वह चैत्यका संकल्प है। यही उसके अस्तित्वका हेतु भी है। उसीके लिये वह यहां है। उदाहरणके लिये, मनमें अमुक क्रिया-कलाप (और कभी-कभी शरीर और प्राणमें भी), अमुक क्रिया-कलाप अनजाने ही चैत्यके प्रभावके प्रति जाग्रत हो उठते हैं। इसीलिये वे भाग उससे जुड़ जाते हैं और भागवत ज्ञान, भागवत ऐक्य, भगवान्‌के साथ संबंधके लिये भी अभीप्सा करना शुरू करते हैं।

चैत्य सत्यको किस तरह अभिव्यक्त करता है?

मैंने कहा है कि वह सत्यको अभिव्यक्त करता है।

"हम 'चैत्य' नाम अपनी सत्ताके उस मनोवैज्ञानिक केंद्रको, अपने अस्तित्वके उच्चतम सत्यके आधारको देते हैं, जो सत्यको जान सकता और अभिव्यक्त कर सकता है।"

शिक्षा : 'जीवन-विज्ञान'

ओह! हमारे अस्तित्वका सत्य — केवल सत्य नहीं। हमारे अस्तित्वका सत्य, यानी, हमारे अस्तित्वका केंद्रीय उद्देश्य। निश्चय ही, वही परिस्थितियोंको इस तरह संगठित करता है कि सत्ताका सत्य अभिव्यक्त हो सके अथवा सतही, बाहरी सत्ता अंदरकी ओर मुड़नेके लिये प्रेरित की जा सके। उदाहरणके लिये, बाहर कोई सहारा न मिले और वह अंदरकी ओर मुड़े, वहां वह चैत्यका सहारा पाती है।

"शरीरमें अनुकूल बनने और सहनेकी अद्‌भुत क्षमता होती है। व्यक्ति साधारणतः जितनी कल्पना कर सकता है वह उससे कहीं अधिक चीजें करनेमें समर्थ होता है। अज्ञानपूर्ण और निरंकुश प्रभुओंद्वारा शासित होनेकी जगह, अगर वह सत्ताके केंद्रीय सत्यसे शासित हो तो तुम यह देखकर आश्चर्यमें पड़ जाओगे

कि वह क्या-क्या कर सकता है। शांत और नीरव, शक्ति-शाली और संतुलित, वह हर क्षण वही प्रयास कर सकेगा जो उससे अपेक्षित है। क्योंकि उसने क्रियामें विश्राम पाना सीख लिया होगा। वैश्व शक्तियोंके संपर्कद्वारा वह सचेतन और उपयोगी ढंगसे जिन ऊर्जाओंको खर्च करता है उन्हें दोबारा प्राप्त करना सीख लिया होगा।"

(वही)

व्यक्ति "क्रियामें विश्राम" किस तरह पा सकता है?

यह आंतरिक चुनावकी एक प्रकारकी निश्चितिसे आता है। जब व्यक्ति किसी वस्तुके लिये अभीप्सा करता है और साथ ही यदि यह जानता है कि उसकी अभीप्साकी सुनायी होगी और यथासंभव श्रेष्ठ प्रकारसे उत्तर भी मिलेगा तो वह सत्तामें एक अचंचलता स्थापित कर देता है, उसके स्पंदनोंमें अचंचलता लाता है। जब कि यदि कोई संदेह हो, एक अनिश्चिति, यदि उसे यह न मालूम हो कि कौन-सी चीज लक्ष्यतक ले जायगी, या वह कभी वहांतक पहुंचेगा भी, या, उसे करनेका कोई रास्ता है भी इत्यादि, तो व्यक्ति क्षुब्ध हो जाता है। और साधारणतः वह चीज सत्ताके चारों ओर एक प्रकारका छोटा-सा बवंडर पैदा कर देती है जो उसे सच्ची वस्तुके ग्रहण करनेसे रोकता है। उसकी जगह, अगर व्यक्तिमें प्रशांत निष्ठा है, अगर अभीप्सा करते वक्त उसे मालूम है कि ऐसी कोई अभीप्सा नहीं (स्वभावतः, सच्ची अभीप्सा) जिसका उत्तर नहीं मिलता, तो वह अचंचल रहता है। व्यक्ति भरसक उत्साहके साथ अभीप्सा करता है, घबराहटमें अपने-आपसे यह पूछने नहीं बैठता कि उसने जो चीज मांगी है वह तुरंत क्यों नहीं मिल रही। व्यक्ति प्रतीक्षा करना जानता है। मैंने कहीं कहा है: "प्रतीक्षा करना जाननेका अर्थ है समयको अपने पक्षमें रखना।" यह बात बिलकुल सच्ची है। क्योंकि अगर व्यक्ति उत्तेजित हो जाय तो वह अपना सारा समय बरबाद कर देता है। वह अपना समय खोता है, अपनी शक्ति खोता है, अपनी गतिविधियां खो बैठता है। बहुत अचंचल, स्थिर, शांत रहनेसे, इस श्रद्धाके साथ कि जो सत्य है वह अवश्य होगा, यदि उसे होने दिया जाय तो वह बहुत ज्यादा जल्दी होगा। तब, उस शांतिमें हर चीज ज्यादा अच्छी तरह होती है।

२३ दिसम्बर, १९५३

अगर मन "ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ है", तो सत्ताका कौन-सा भाग ज्ञान प्राप्त करता है?

शिक्षा : 'जीवन-विज्ञान'

व्यक्तिको उस ज्ञानमें प्रवेश करना चाहिये जो अतिमानसिक क्षेत्रका है।

लेकिन उसे उतारनेके लिये?

हर बार जब कोई चीज इस ज्ञानको आकर्षित करती है (कोई ऐसी चीज जो स्पष्ट रूपमें उसे ग्रहण करनेके लिये तैयार हो), तो वह आता है।

मधुर मां, क्या वह मनमें नहीं उतरता?

हां, वह मनमें उतरता है। मनके किसी उच्चतर भागमें, बल्कि चैत्यमें। व्यक्तिको चैत्यसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है — यद्यपि वह किसी और प्रकारका होता है, मनके ज्ञानकी तरह सूत्रबद्ध नहीं होता। वह एक प्रकारकी आंतरिक निश्चिति होती है जो आवश्यक रूपसे तर्क-बुद्धि और मानसिक रचनामेंसे गुजरे बिना ही तुमसे ठीक ढंगसे, ठीक समयपर, ठीक चीज करवाती है।

उदाहरणके लिये, विवेचनशील मनके हस्तक्षेप — लेशमात्र हस्तक्षेप — के बिना व्यक्ति पूर्ण ज्ञानके साथ वह कर सकता है जो किया जाना चाहिये। मन मौन रहता है: वह केवल देखता और सुनता है ताकि वह चीजोंको अंकित कर सके, वह क्रिया नहीं करता।

यहां आपने कहा है: "ज्ञान मानव मनसे कहीं अधिक ऊंचे क्षेत्रकी चीज है, शुद्ध भावोंके क्षेत्रसे भी परेकी।"

शिक्षा : 'जीवन-विज्ञान'

मधुर मां, "शुद्ध भावों" से आपका क्या आशय है?

इसके बारेमें हम पहले भी एक बार बातचीत कर चुके है, और उसे अभी

बहुत दिन नहीं हुए। शुद्ध भाव वे हैं जो अनेक विचारोंसे अनूदित होते हैं। एक भाव अनेक विचारोंको जन्म दे सकता है, और तरह-तरहसे अभिव्यक्त हो सकता है; और फिर भी जो है वही बना रहता है।

कभी-कभी हम किसी एक बिंदुको एकटक देखते हैं; उस समय हम सब कुछ भूल जाते हैं और यदि कोई आवाज हो तो बाधा पड़ती है। यह कौन-सी अवस्था है?

एकाग्रता! एकाग्रताका सिद्धांत ठीक यही है। क्या तुम इसे सहज रूपसे कर सकते हो?

हां, बहुत बार।

निश्चय ही, यह बहुत अच्छा है!

हां, मधुर मां, लेकिन उस क्षण मैंने जो सोचा था उसे पकड़ नहीं पाता।

आह! ... अगर तुम वहांसे हठात् खींच लिये जाओ, तो विचार लुप्त हो जाता है?

हां।

यह इसलिये होता है कि तुम चेतनाकी एक ऐसी अवस्थामें चले जाते हो जो तुम्हारी चेतनाकी साधारण अवस्थासे भिन्न होती है और संभवतः दोनोंके बीच भली-भांति संबंध स्थापित नहीं होता। उसमें देर लगती है। यह ऐसा है जैसे किसीको पुल बनाना हो। अन्यथा व्यक्ति इस या उस ओर सहसा छलांग लगाता है और छलांग लगानेमें यह भूल जाता है कि वहां क्या था। जो अनुभूति प्राप्त हुई थी उसे वह पीछे छोड़ देता है। लेकिन अगर चीज विधिवत् की जाय, यानी, अगर व्यक्ति इसके लिये प्रतिदिन एक विशिष्ट समय रखे, और दस या पंद्रह मिनटके लिये ध्यान करे, ताकि उस चीज और बाह्य जीवनमें संपर्क स्थापित हो सके, तो कुछ समय बाद वह सफल हो जाता है और फिर व्यक्तिको याद रहता है, और यह चीज बहुत उपयोगी बन जाती है। यह बहुत उपयोगी है। और अगर तुम्हारी

एकाग्रताकी शक्ति पूर्ण है, तब ऐसी कोई समस्या नहीं जिसे तुम हल न कर सको — इससे मेरा मतलब गणितकी समस्याओंसे नहीं है (हंसी), मेरा मतलब है उन समस्याओंसे जो जीवन बितानेके बारेमें, उन निर्णयोंके बारेमें होती हैं जो हमें लेने पड़ते हैं, ऐसी मनोवैज्ञानिक समस्याएं जिनके समाधान ढूंढनेकी आवश्यकता होती है। ऐसी एक भी समस्या नहीं जो एकाग्रताकी इस शक्तिका प्रतिरोध कर सके।

और वास्तवमें एक बिंदुको लेनेमें बहुत सुविधा रहती है : व्यक्ति बिंदुको स्थिर दृष्टिसे देखता रहता है, इतनी स्थिर दृष्टिसे कि अमुक समयपर वह स्वयं बिंदु बन जाता है। तब वह बिंदुको देखनेवाला व्यक्ति नहीं रहता, वह स्वयं बिंदु होता है। और फिर, यदि पर्याप्त शक्ति और शांतिके साथ, बिना किसी बाधाके तुम इसे जारी रखो, तो तुम सहसा अपने-आपको एक द्वारके आगे पा सकते हो जो खुल जाता है और तुम उस पार चले जाते हो। और तब तुम्हें अंतःप्रकाश मिलता है।

तुम यह कबसे कर रहे हो? यह हमेशा होता रहा है या हालकी ही बात है।

मुझे मालूम नहीं।

तुम्हें मालूम नहीं? शायद तुम कर तो रहे थे पर उसके प्रति सचेतन नहीं थे!

मुझे मालूम नहीं था।

क्या तुम यह जान-बूझकर नहीं करते? क्या यह यूं ही आ जाता है, तुम्हें पकड़ लेता है?

हां।

आह! शायद यह भी उन कारणोंमेंसे एक है जिनकी वजहसे तुम्हें याद नहीं रहता।

(दूसरा बालक) मधुर मां, जब व्यक्ति ज्ञानके क्षेत्रमें प्रवेश पाता है तब क्या मध्यवर्ती क्षेत्रोंमेंसे गुजरना जरूरी है?

मध्यवर्ती? लेकिन देखो, यदि व्यक्ति उसे विधिवत् साधनाके द्वारा प्राप्त

करे तो सामान्यतः वह एक स्तरसे दूसरेमें जानेके लिये विवश होता है: वह किसी स्तर-विशेषपर जागता है, और फिर, वहीं एक प्रकारकी निद्रामें पैठ जाता है और फिर दूसरे स्तरपर जागता है; और इसी तरह चलता रहता है। और अगर तुम इस तरह करो, तो तुम्हें याद बनी रहती है, क्योंकि तुम इसे अपने सचेतन संकल्पके साथ करते हो और प्रक्रियाको देखते हो। सत्ताको शांत करनेकी ये क्रियाएं, यथार्थतः कहीं प्रवेश करके देखना कि वहां क्या हो रहा है, और वहां जो कुछ हो रहा है उसे नोट करनेकी क्रिया और अपने-आपको एक और उच्चतर उन्मीलनके लिये तैयार करना, यह सब सत्ताके विभिन्न भागोंमें सचेतन संपर्क स्थापित कर देता है, और तब तुम बिना कुछ भूले अनुभूतियां प्राप्त कर सकते हो, और वह भी जब चाहो तब।

लेकिन उदाहरणके लिये, कुछ अनपढ़ लोग होते हैं जिनमें सहसा कोई क्षमता विकसित हो जाती है और कहीं, उच्चतर मनमें या चैत्य पुरुषमें, या सत्ताके किसी भी दूसरे भागमें उनको सीधी अनुभूति प्राप्त होती है। इसके अनेक कारण हैं: यह पूर्व जन्मोंका परिणाम हो सकता है, इस जीवन-की चेतनाका तथ्य हो सकता है, यह बहुत कुछ हो सकता है। बहरहाल, उसके पूर्ण रूपसे उपयोगी होनेके लिये उसे इस संकल्पके साथ किया जाना चाहिये कि वह प्रगतिमें उपयोगी हो और तुम्हें अपनी सत्ताके विभिन्न भागों-के प्रति सचेत होना चाहिये ताकि तुम अपनी क्षमताका पूरा-पूरा लाभ उठानेमें समर्थ हो सको। उदाहरणके लिये, मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो नितांत अज्ञानी और अनपढ़ थे, लेकिन जिन्हें अंतर्दृष्टिकी देन प्राप्त थी, एक अद्‌भुत देन: उनको समाधिमें भेज दिया जाता था और वे अद्‌भुत रूपमें देखते और चीजोंका वर्णन करते थे — उन्हें देखना और देखते समय उसका वर्णन करना आता था। लेकिन जब वे उस अवस्थासे निकल आते थे तो वे शिक्षा और बुद्धिसे वंचित बिलकुल साधारण लोग बन जाते थे। फिर भी वह एक अद्‌भुत देन थी। इसका मतलब यह है कि ऐसी सत्ताएं हैं जो आध्यात्मिक दृष्टिसे, और बौद्धिक दृष्टिसे भी, अधिक-से-अधिक प्रगति कर सकती हैं और फिर भी ऊपरी तौरसे अपने बाहरी जीवनमें बिलकुल साधा-रण हैं। कुछ और है — मैंने ऐसे कइयोंको देखा है जिन्हें नितांत रूपसे विलक्षण आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त थी, जो निरंतर भागवत उपस्थितिमें ही रहते थे, फिर भी जिन्हें जीवन-भर एक भी अंतर्दर्शन नहीं प्राप्त हुआ! और वे उसकी शिकायत किया करते थे... यह स्वभाव, नियति और शायद जो काम उन्हें करना है उसका सवाल है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि व्यक्ति सब कुछ नहीं कर सकता — शारीरिक दृष्टिसे यह असंभव है।

फलस्वरूप व्यक्तिको चुनाव करना पड़ता है।

जब शरीर बीमार पड़ता है, क्या मन और प्राण भी बीमार पड़ते हैं?

यह जरूरी नहीं है। रोग (मैं तुम्हें समझा चुकी हूं) अक्सर सत्ताके विभिन्न भागोंकी अव्यवस्थासे आता है, एक प्रकारकी असंगतिसे। अच्छा, उदाहरण-के लिये, यह भली-भांति हो सकता है कि शरीरने प्रगतिकी अमुक गतिका अनुसरण नहीं किया है। वह पीछे रह गया है, और उस तरफ सत्ताके बाकी भागोंने प्रगति कर ली है। अतः वह असंतुलन, संगतिका वह भंग रोग पैदा करता है, और हो सकता है कि मन और प्राण भी, बहुत बढ़िया अवस्थामें हों। ऐसे लोग हैं जो बरसों बीमार रहे हैं — भयावह, असाध्य रोगोंसे — और जिन्होंने अपनी मानसिक क्षमताको विलक्षण रूपसे स्वच्छ और स्पष्ट रखा है और मानसिक दृष्टिसे प्रगति की है। स्यूली प्रूधौम नामक एक फ्रेंच कवि हैं (बड़े अच्छे कवि); वे सांघातिक रूपसे बीमार थे। और उन्होंने उसी हालतमें अपनी सबसे सुंदर कविताएं लिखी हैं। वह सबके साथ सौम्य, भद्र और मुस्कराते हुए रहे — सबके साथ सौजन्य-पूर्ण। और फिर भी उनकी देह टूट रही थी। यह लोगोंपर निर्भर है। इसके विपरीत कुछ और लोग हैं जिनके जरा-सा बीमार होते ही सिरसे पैरतक सब कुछ बिगड़ जाता है — तब वे बेकार हो जाते हैं। हर एकके लिये अलग-अलग संयोग होता है।

कहा जाता है कि शरीर और मनके बीच कोई संबंध है। अगर मन बिलकुल स्वस्थ न हो तो?

शरीर और मनके बीच निश्चय ही एक संबंध है! संबंधसे भी बढ़कर कुछ और है: एक बहुत घनिष्ठ बंधन है, क्योंकि बहुधा मन ही शरीरको बीमार करता है। बहरहाल, वह एक मुख्य कारक है।

अगर शरीर अस्वस्थ हो तो?

मैंने कहा तो, वह व्यक्तियोंपर निर्भर है। ऐसे व्यक्ति होते हैं — जिनके शरीरको लेशमात्र कुछ हो जाय तो उनका मन पूरी तरह गड़बड़ा जाता है। जब कि दूसरे बहुत बीमार होते हुए भी अपने मनको स्वच्छ रखते

हैं। ऐसे उदाहरण पाना ज्यादा विरल और कठिन है जहां मन तो क्षुब्ध हो और शरीर स्वस्थ। यह असंभव तो नहीं, लेकिन है ज्यादा विरल, क्योंकि शरीर मनोवस्थापर बहुत निर्भर करता है। मन (मैंने इस किताबमें लिखा है) भौतिक सत्ताका प्रभु है। और मैंने कहा है कि भौतिक सत्ता बहुत विनीत और आज्ञाकारी सेवक है। किंतु व्यक्ति अपने मनका उपयोग करना नहीं जानता, बल्कि इसके विपरीत, केवल यही नहीं कि वह उसका उपयोग करना नहीं जानता, वह उसका दुरुपयोग करता है — यथासंभव बुरी तरहसे। मनमें शरीरको रूप देने और सीधी क्रिया करनेकी काफी शक्ति होती है, और अक्सर व्यक्ति इस शक्तिका उपयोग अपने-आपको बीमार करनेमें करता है। क्योंकि जरा-सी गड़बड़ होते ही मन सभी संभव विपदाओं और अनर्थोंको आकार देने और बनाने लगता है, अपने-आपसे पूछने लगता है कि यह हो सकता है या वह हो सकता है, ऐसे होनेवाला है या नहीं, और इस सबका अंत कैसे होगा। हां, अगर मनको यह अनर्थकारी कार्य करने देनेकी जगह, तुम इसी क्षमताको कुछ अनुकूल रचनाएं बनानेके लिये उपयोगमें लाओ — उदाहरणके लिये, सिर्फ शरीरको विश्वास दिलानेमें, उससे यह कहनेमें कि यह केवल क्षणिक व्याकुलता है, यह कुछ भी नहीं, और यदि वह ग्रहणशीलताकी सच्ची अवस्थामें पैठे तो अव्यवस्था जितनी आसानीसे आयी थी उसी तरह चली भी जायगी, और कुछ ही सेकंडोंमें व्यक्ति अपने-आपको ठीक कर सकेगा यदि उसे मालूम हो कि यह किस तरह किया जा सकता है, इसके अद्भुत परिणाम मिलेंगे।

चुनावके लिये एक क्षण होता है, किसी दुर्घटनामें भी। उदाहरणके लिये, तुम फिसलकर गिर पड़ते हो। जिस क्षण तुम फिसले और जिस क्षण तुम गिरे, उनके बीच सेकंडका एक अंश होता है वह तुम्हारे लिये चुनावका क्षण होता है: हो सकता है कि कुछ भी न हो और हो सकता है कि बहुत गंभीर हो जाय। केवल, चेतनाको स्वभावतः बहुत जाग्रत होना चाहिये, और तुम्हें सतत अपने चैत्य पुरुषके संपर्कमें रहना चाहिये, तब संपर्क बनानेका समय नहीं होता, तुम्हें संपर्कमें रहना चाहिये। जिस क्षण तुम फिसलते हो और जिस क्षण तुम जमीनपर होते हो, उनके बीच, अगर मानसिक और चैत्य रचना पर्याप्त शक्तिशाली है, तो कुछ नहीं बिगड़ता, कुछ नहीं होता — बिलकुल कुछ नहीं। लेकिन अगर उस समय अपनी आदतके मुताबिक मन निराशावादी बन जाय और अपने-आपसे कहे: "ऊफ! मैं फिसल गया...।" यह चीज एक लवनिमेष ही रहती है। उसके लिये मिनट-भरकी जरूरत नहीं होती, बस जरूरत होती है

सेकंडके एक अंशमात्रकी। सेकंडके अंशभरके लिये चुनावका अवसर रहता है। लेकिन उसके लिये हमेशा जाग्रत रहना होता है, अपने जीवनके एक-एक मिनट जाग्रत रहना होता है! सेकंड-भरके लिये चुनाव होता है, सेकंडका एक अंश होता है तब तुम दुर्घटनाको गंभीर होनेसे रोक सकते हो। बीमारीको घुसनेसे रोक सकते हो, तुम्हारे सामने हमेशा चुनाव रहता है। लेकिन वह होता केवल सेकंड-भरके लिये है। और तुम्हें उसे हाथसे जाने न देना चाहिये। अगर तुम उसे खो डालो तो बस समाप्त।

क्या व्यक्ति बादमें चुनाव कर सकता है? (हंसी)

नहीं। बादमें एक और क्षण होता तो है ...। तुम गिर चुके होते हो, तुमको चोट लगी होती है; लेकिन फिर भी एक और क्षण होता है जब तुम चीजोंको अच्छे या बुरेमें बदल सकते हो। फलस्वरूप वह कोई क्षणिक चीज हो जिसके दुष्परिणाम तुरंत विलीन हो जायं या कोई बहुत गंभीर चीज हो जाय, यथासंभव गंभीर। मुझे मालूम नहीं तुमने ख्याल किया है या नहीं, कि ऐसे लोग होते हैं जो दुर्घटनाका कोई भी अवसर नहीं चूकते! जब कभी दुर्घटनाकी संभावना होती है तो वे शिकार बनते हैं। और उनकी दुर्घटना कभी साधारण नहीं होती। जब कभी दुर्घटना गंभीर हो सकती हो, होती है। हां, जीवनमें प्रायः तुम कहते हो: "ओह, यह अभागा है, इसका दुर्भाग्य है, सचमुच इसका भाग्य अच्छा नहीं है।" लेकिन वह सब अज्ञान है। चीज पूरी तरह उसकी चेतनाकी क्रिया-विधिपर निर्भर है। मैं तुम्हें उदाहरण दे सकती हूं — किंतु मुझे अमुक व्यक्तियोंके बारेमें कहना होगा और मैं यह नहीं चाहती। लेकिन मैं तुम्हें आश्चर्यजनक उदाहरण दे सकूंगी! और यह, यह ऐसी चीजें हैं जिन्हें तुम सारे समय देखते हो, यहांपर तो सारे ही समय! ऐसे व्यक्ति हैं जो मर सकते थे पर जो निरापद निकल आते हैं, कुछ और हैं जिनके लिये चीज गंभीर नहीं थी, पर गंभीर बन जाती है।

लेकिन यह विचारपर, साधारण विचारकी क्रियापर निर्भर नहीं है। बाहरी तौरपर उनके विचार दूसरोंके जितने अच्छे हो सकते हैं — यह बात नहीं है। बात है चुनावके उस सेकंडकी — उन लोगोंकी जो उचित ढंगसे समयपर प्रतिक्रिया करना जानते हैं। मैं तुम्हें सैकड़ों उदाहरण दे सकूंगी। वह बहुत मजेदार है।

यह पूरी तरह चरित्रपर निर्भर है। कइयोंकी चेतना इतनी सतर्क और जाग्रत होती है कि वे सोये नहीं रहते, वे अपने अंदर जाग्रत होते

हैं। वे ठीक जिस क्षण सहायताको बुलाना चाहिये बुलाते हैं। या भागवत शक्तिका आवाहन करते हैं। लेकिन ठीक उसी क्षण जब जरूरत हो। तो खतरा टल जाता है और कुछ नहीं होता। वे मर सकते थे; वे उसमेंसे बिलकुल अक्षत निकल आते हैं। इसके विपरीत, दूसरे ऐसे होते हैं जिन्हें छोटी-से-छोटी खेंच लगे तो, उनकी सतामें कोई चीज अव्यवस्थित हो जाती है। उनकी चेतनामें एक प्रकारका भय या निराशावाद या पराजयवाद होता है जो सहज रूपसे उभर आता है— बात कुछ नहीं थी, उनके पांवमें मोच आ गयी थी और अगले ही क्षण हड्डी टूट गयी। इसका कोई कारण नहीं था। वे बड़ी आसानीसे अपनी हड्डीको टूटनेसे बचा सकते थे।

कुछ और लोग होते हैं जो पहली मंजिलपर एक ऐसी नसैनीसे चढ़ते हैं जो उनके भारसे टूट जाती है। वे खतम हो सकते थे लेकिन जरा भी चोटके बिना बच निकलते हैं। यह उन्होंने कैसे किया? ऊपरी तौरपर वह अद्भुत लगता है, फिर भी उनके साथ ऐसा ही होता है। वे अपने-आपको धरतीपर बिलकुल अच्छी अवस्थामें लेटा हुआ पाते हैं, उन्हें कुछ भी नहीं हुआ होता। मैं तुमको नाम बता सकती हूं, मैं तुम्हें ठीक-ठीक तथ्य सुना रही हूं।

तो, यह किसपर निर्भर है? यह इसपर निर्भर है कि हम पर्याप्त जाग्रत हैं या नहीं ताकि चुनावके क्षण...। और ध्यान रहे कि यह चीज मानसिक बिलकुल नहीं है, यह वह बात नहीं है। यह सत्ताकी मनोवृत्ति है, यह वह चेतना है जो ठीक ढंगसे प्रतिक्रिया करती है। यह दूर, बहुत दूर जाती है, इस मनोवृत्तिकी शक्ति विलक्षण होती है। चूंकि वह एक निमिषमात्र होता है, उसका अर्थ है एक ऐसी चेतना जो पूर्ण रूपसे जाग्रत है, जो कभी नहीं सोती, जो कभी निश्चेतनामें नहीं पैठती। क्योंकि हमें यह नहीं मालूम कि ये चीजें कब होंगी, है न? फलस्वरूप, हमारे पास जागनेका समय नहीं होता। हमें जाग्रत ही रहना चाहिये।

मैं एक ऐसे व्यक्तिको जानती थी जिसे वास्तवमें मर जाना चाहिये था, और जो इसके कारण नहीं मरा। क्योंकि उसकी चेतनाने बहुत तेजीसे प्रतिक्रिया की। उसने भूलसे विष ले लिया था: दवाकी एक मात्रा लेनेकी जगह उसने बारह मात्रा ले ली थी और वह विष बन गयी थी; उसे मर जाना चाहिये था, उसके हृदयकी गतिको बंद हो जाना चाहिये था (बहुत साल पहलेकी बात है), और वह आजतक बिलकुल जिंदा है। उसने ठीक प्रकारकी प्रतिक्रिया की थी।

अगर ऐसी चीजें सुनायी जायं तो वे चमत्कार कहलायंगी। ये चमत्कार नहीं हैं: वह एक जाग्रत चेतना है।

उस दिन जब हम उत्तोलन (क्रेन) से काम कर रहे थे तो किस तरह बचाये गये?[1]

मेरा ख्याल है कि तुमको मालूम होना चाहिये!

हम अंशतः जानते हैं!

बहुत अंशतः, धुंधले रूपमें, "इस तरह" की एक प्रकारकी छाप, प्रायः एक मनोवृत्ति, लेकिन ज्ञान नहीं। वह किस तरह काम करता है, तुम कहनेमें समर्थ न होगे!

वह कृपासे हुआ था।

लेकिन अगर तुम मुझे यह समझा सको कि वह किस तरह काम करती है तो वह सबके लिये बहुत मजेदार होगा। यह जानना दिलचस्प होगा कि यथार्थ रूपमें किसकी थी वह जाग्रत चेतना, वह निष्ठा और एक प्रकारकी ... कोई चीज जिसने यंत्रवत् प्रत्युत्तर दिया, शायद सचेतन रूपसे नहीं।

स्तर होते हैं, अनेक स्तर होते हैं। मानव बुद्धि ऐसी है कि जबतक विरोध न हो तबतक वह समझती ही नहीं। जानते हो, मुझे लोगोंसे सैकड़ों चिट्ठियां मिली हैं जिनमें उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकट की है क्योंकि उन्हें बचा लिया गया। लेकिन कोई विरला ही, बहुत ही विरला मुझे इसलिये चिट्ठी लिखता है कि उसे कुछ नहीं हुआ, समझे! किसी

---

[1] आश्रमके युवक-साधकोंका एक दल उत्तोलनसे पेड़के एक तनेको ट्रकमें उठानेकी कोशिश कर रहा था कि उत्तोलन टूट गया। उसके टुकड़े चारों ओर बरसे लेकिन किसीको चोट नहीं आयी। फिर पेड़का तना कुछ उठ गया और धीरे-धीरे लुढ़कने लगा। इससे ट्रक एक ओर झुक गया और अनेक लड़कोंके उसके तले पिस जानेकी संभावना थी। तब बिना किसी बाहरी कारण या भौतिक वस्तुके जो उसे रोक सके, ट्रक सहसा थम गया।

दुर्घटनाको लो, वह अपने-आप एक अव्यवस्थाका आरंभ है। स्वभावतः, जब वह सार्वजनिक या सामूहिक दुर्घटना होती है तो उस चीजमें हर एक व्यक्तिके वातावरणका भाग होता है, और वह निर्भर है पराजयवादियोंके अनुपातपर, और इसके विपरीत उनपर जो ठीक पक्षमें हैं। मुझे मालूम नहीं कि मैंने यह लिखा है या नहीं — कहीं लिखा हुआ है — लेकिन यह बहुत ही मजेदार चीज है। मैं तुम्हें सुनाती हूं . . .। लोगोंको कृपाकी क्रियाका भानतक नहीं होता जबतक कोई खतरा न आ जाय, यानी, जबतक किसी दुर्घटनाका आरंभ न हो जाय या जब दुर्घटना हो चुकी हो और वे उसमेंसे बच निकले हों तब वे सचेतन हो उठते हैं, लेकिन उन्हें इस बातका भान नहीं होता, जैसे, उदाहरणके लिये, कोई यात्रा या कोई और चीज दुर्घटनाके बिना हो जाती है तो यह कहीं अधिक महान् कृपा है। यानी, सामंजस्य एक ऐसे ढंगसे स्थापित हो जाता है कि कुछ भी नहीं हो सकता; लेकिन मनको यह बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। जब लोग बीमार पड़ते हैं और जल्दी ठीक हो जाते हैं तो वे कृतज्ञतासे भरपूर होते हैं। लेकिन जब वे स्वस्थ होते हैं तो कृतज्ञ होनेका कभी विचार भी नहीं करते; फिर भी यह ज्यादा बड़ा चमत्कार है! सामूहिक दुर्घटनाओंमें जो चीज मजेदार है, वह है ठीक अनुपात, संतुलन या असंतुलनका प्रकार; व्यक्तियोंके विभिन्न वायुमंडलोंसे उत्पन्न यह संयोजन।

एक विमानचालक था। पहले महायुद्धके उन महान् उड़ाकोंमेंसे एक जिन्हें "एस" कहा जाता था। वह एक अद्भुत उड़ाका था। उसने अनेक विजयें प्राप्त की थीं। और उसे कुछ नहीं हुआ था। लेकिन उसके जीवनमें कोई चीज घटी और सहसा उसे लगा कि कुछ होनेवाला है, कोई दुर्घटना, कि अब सब कुछ खतम। वे जिसे अपना "सौभाग्य" कहते हैं, वह जा चुका था। इस आदमीने असैनिक विमानन करनेके लिये सेना छोड़ दी। वह किसी एक विभागके हवाई जहाज चलाया करता था — नहीं, असैनिक विमानन नहीं; वह युद्धसे तो निकल गया लेकिन रहा सैनिक विमानोंके साथ ही। वह दक्षिण अफ्रीकाकी यात्रा करना चाहता था: फ्रांससे दक्षिण अफ्रीका। यह स्पष्ट था कि उसकी चेतनामें कोई गड़बड़ थी (मेरा उसके साथ व्यक्तिगत परिचय न था; इसलिये मुझे मालूम नहीं कि क्या हुआ)। मेडागास्कार जानेके लिये (मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकती, मेरा ख्याल है कि वह मेडागास्कार ही था), उसने फ्रांसके किसी शहरसे प्रस्थान किया। और फिर वहांसे वह फ्रांस लौट आना चाहता था। उस समय मेरे भाई कॉंगोके गवर्नर थे और वे जल्दीसे अपने स्थानपर लौट जाना चाहते थे। उन्होंने यात्रीके रूपमें विमानमें यात्रा

करनेकी अनुमति मांगी (यह उन विमानोंमेंसे एक था जो व्यावसायिक दौरेके लिये होते हैं, यह दिखानेके लिये कि ये विमान क्या कर सकते हैं), बहुत-से लोग मेरे भाईको इस विमानसे जानेसे रोकना चाहते थे; उन्होंने उनसे कहा: "नहीं, ये यात्राएं हमेशा खतरनाक होती हैं, तुम्हें इससे नहीं जाना चाहिये।" लेकिन, आखिर वह गये उसीमें। रास्तेमें कोई खराबी हो गयी और उन्हें सहाराके बीचों-बीच उतरना पड़ा। स्थिति बहुत सुखद नहीं थी। फिर भी चमत्कारकी भांति सब कुछ व्यवस्थित हो गया, विमान दोबारा चल पड़ा और मेरे भाईको कौंगोमें उतार दिया, ठीक वहीं जहां वह जाना चाहते थे। फिर विमान और आगे दक्षिणकी ओर चला गया। और कुछ ही समय बाद, आधे रास्तेमें ही विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और वह दूसरा आदमी मर गया...। यह स्पष्ट था कि यह होना ही था। लेकिन मेरे भाईको अपनी नियतिमें पूर्ण निष्ठा थी, यह निश्चिंति कि कुछ नहीं होगा। और वह इस तरह अनूदित हुई: दोनों वायुमंडलोंके मिश्रणने अव्यवस्थाको अनिवार्य बना दिया, क्योंकि सहारामें कोई खराबी हुई और विमान उतरनेके लिये विवश हुआ, परंतु अंतमें सब कुछ व्यवस्थित हो गया और कोई सच्ची दुर्घटना नहीं हुई। लेकिन जब मेरे भाई वहां न रहे तो उस दूसरे आदमीके पास "दुर्भाग्य" (अगर चाहो तो) की पूरी शक्ति थी और दुर्घटना पूरी हुई और वह मर गया।

एक नौकाके साथ कुछ ऐसी ही घटना हुई। दो व्यक्ति थे (वे काफी प्रसिद्ध थे लेकिन अब मुझे उनके नाम याद नहीं), जो विमानसे हिंद-चीन गये हुए थे। एक दुर्घटना हुई, वे दो ही जिंदा बचे, बाकी सब मर गये। निश्चय ही वह एक नाटकीय घटना थी। लेकिन ये दोनों (दंपति) जरूर ऐसे रहे होंगे जिन्हें दुर्भाग्यके वाहक कहा जाता है। वे एक प्रकारका वातावरण लिये रहते हैं। अब, ये दोनों फ्रांस लौटना चाहते थे, (क्योंकि असलमें फ्रांस लौटते समय ही दुर्घटना हुई थी), वे फ्रांस वापस जाना चाहते थे, उन्होंने एक नौका पकड़ी और काफी अप्रत्याशित और असाधारण ढंगसे लाल सागरके बीचों-बीच वह नौका सबुद्री चट्टानसे जा टकरायी (एक ऐसी चीज जो लाखों यात्राओंमें एक बार भी नहीं होती) और डूब गयी। बाकीके सब डूब गये लेकिन ये दो बच निकले। और मैं कुछ न कर सकी, जानते हो, मैं कहना चाहती थी: "सावधान, इन लोगोंके साथ कभी यात्रा मत करो!"... इस प्रकारके व्यक्ति होते हैं, वे चाहे कहीं क्यों न हों, अपने-आप तो दुर्घटनासे अछूते निकल आते हैं, और महाविपत्तियां दूसरोंके लिये होती हैं।

अगर तुम साधारण दृष्टिकोणसे चीजोंको देखो तो इस ओर तुम्हारा ध्यान न जायगा। लेकिन वातावरणके संसर्गसे सावधान रहना चाहिये। इसलिये जब तुम दलमें यात्रा करो तो इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि तुम किसके साथ जा रहे हो। तुम्हें आंतरिक ज्ञान, अंतर्दृष्टि प्राप्त होनी चाहिये। और तब यदि तुम किसी ऐसे व्यक्तिको देखो जिसके चारों ओर एक नन्हा-सा काला बादल हो तो उसके साथ यात्रा मत करो, क्योंकि निस्संदेह कोई दुर्घटना जरूर होगी — यद्यपि, शायद उसे न हो। अतः चीजोंको बिलकुल ऊपरी ढंगसे जाननेकी अपेक्षा कुछ गहराईमें जानना अधिक उपयोगी है।

(एक बालककी ओर देखते हुए) उसे देखकर ऐसा लगता है मानों वह इस तरहसे जीवनको ज्यादा कठिन होते हुए देख रहा हो!

३० दिसम्बर, १९५३

बच्चोंमें "विनाशकी सहजवृत्ति" से आपका क्या अभिप्राय है?

यह सब बच्चोंमें नहीं होती। मैंने बहुतोंको देखा है, जो इसके विपरीत, बहुत सावधान थे।

बच्चे, अपनी भौतिक चेतनामें, वयस्क व्यक्तियोंके जितने "ठोस" और स्थूल नहीं होते — जैसे-जैसे व्यक्ति बड़ा होता है, वैसे-वैसे मानों जमता जाता है, और अपनी चेतनामें अधिकाधिक स्थूल बनता जाता है, जबतक कि संकल्पसे की गयी क्रियाके द्वारा उसका विकास और तरह न हो। उदाहरणके लिये, अधिकतर बच्चोंको अपनी कल्पना, अपने स्वप्नों और अपने अंदर जो कुछ देखते हैं उसमें और बाहरी चीजोंमें भेद करना कठिन लगता है। उन्हें दुनिया उतनी सीमित नहीं लगती जितनी कि व्यक्तिके ज्यादा बड़े और सुनिश्चित होनेपर लगती है। और वे अंदरसे बहुत ही संवेदनशील होते हैं। वे जब बड़े हो जाते हैं तबकी अपेक्षा अपने चैत्य पुरुषके अधिक निकट होते हैं और उन शक्तियोंके प्रति ज्यादा संवेदनशील होते हैं जो बादमें तो मले उनके लिये अदृश्य हो जायंगी — पर अभी नहीं हुई हैं। बच्चोंके लिये नींदमें स्वप्नोंसे भयके, या खुशी-के भी किसी प्रकारके डरे होना असाधारण नहीं है। बच्चे उन सब

प्रकारकी चीजोंसे डरते हैं जिनका बड़ोंके लिये अस्तित्व ही नहीं होता। उनकी दृष्टि विशुद्ध रूपसे भौतिक नहीं होती। उनके पास पृष्ठभूमिकी शक्तियोंकी क्रीड़ाका एक प्रकारका कम या अधिक यथार्थ और ठीक-ठीक बोध होता है। अतः उस अवस्थामें होनेके कारण वे उन शक्तियोंसे प्रभावित होते हैं जिनका, अन्यथा, उन लोगोंपर काबू नहीं रहता जो अपने अंदर बंद और अधिक स्थूल होते हैं। और ये शक्तियां — उदाहरणके लिये, विनाशकी शक्तियां या क्रूरताकी शक्तियां या दुष्टता या दुर्भावनाकी शक्तियां — सब, यह सब चीजें वातावरणमें रहती हैं। जब व्यक्ति ज्यादा सचेतन या अंदरसे ज्यादा अच्छी तरह निर्मित हो तो वह उनको अपने बाहर देख सकता है और उन्हें अभिव्यक्त करनेसे इंकार कर सकता है। लेकिन, जब तुम छोटे होते हो, और एक अर्ध-स्वप्नमें रहते हो तो यह चीजें बहुत प्रभाव डाल सकती हैं और बच्चोंसे ऐसी चीजें करवा सकती हैं जिन्हें वे अपनी सामान्य अवस्थामें न करते। मेरा ख्याल है कि यह विशेष रूपसे इसी कारण होता है।

निश्चेतनाका तथ्य भी है। बहुधा कोई बच्चा हानि पहुंचाता है और उसे पता नहीं होता कि वह हानि पहुंचा रहा है। वे अजाग्रत होते हैं, अपनी गतिविधिमें बंद रहते हैं, और जो करते हैं उसके असरके प्रति सचेतन नहीं होते। यह अक्सर होता है।

इसका अर्थ यह है कि यदि बालक उचित ढंगसे शिक्षित है, और अगर तुम उसकी श्रेष्ठ भावनाओंसे अपील करो और उसे यह समझाओ कि अमुक तरीकेसे चीजें करनेसे दूसरोंको हानि पहुंचती है (और तुम थोड़ा-बहुत दिखाकर इस बातको उनके लिये साकार बना सकते हो), तो बहुधा वे हानि पहुंचाना बंद कर देते हैं।

सबसे बढ़कर यह शिक्षाका सवाल है। क्रूरताकी अर्ध-सचेतन गतियां — मां-बापमें इन्हें न पाना बहुत विरल है; हां, तो बच्चेकी चेतनापर छाप डालनेके लिये यह काफी है। कई होते हैं — लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है — जिनके अंदर एक विकृत रचना होती है। ऐसे दुष्ट बच्चे होते हैं जिनका सुधार असंभव है। लेकिन वे बहुत विरल हैं। सौभाग्यवश, यहांपर एक भी नहीं है।

> "यह निश्चित है कि जिस बच्चेका जन्म अभी होनेवाला है उसका स्वभाव बहुत कुछ मांपर निर्भर होगा जो उसे बनाती है। उसकी अभीप्सा और संकल्पपर निर्भर होगा, और उसी तरह उस भौतिक वातावरणपर जिसमें वह रहती है। मांको

शिक्षाके जिस भागमेंसे गुजरना चाहिये वह यह है कि उसके विचार सदा सुन्दर और पवित्र रहें, उसकी भावनाएं सदा उदात्त और उत्कृष्ट, उसका भौतिक परिवेश यथासंभव सामंजस्यपूर्ण और बड़ी सरलतासे भरपूर हो। और अगर उसके साथ यह सचेतन और निश्चित संकल्प जुड़ जाय कि बच्चेको उस महत्तम उद्देश्यके अनुसार बनाना है जिसकी वह कल्पना कर सकती है, तो बच्चेके इस दुनियामें आनेके लिये अधिक-से-अधिक संभावनाओंके साथ सर्वश्रेष्ठ परिस्थितियोंका प्रबंध किया जाता है।"

शिक्षा : 'शिक्षा'

जब महान् आत्माएं धरतीपर जन्म लेना चाहती हैं तो क्या वे खुद अपने मां-बाप चुनती हैं?

ओह! यह उनकी चेतनाकी अवस्थापर निर्भर है, उनकी चैत्य रचनाकी अवस्थापर निर्भर है। यदि उसका चैत्य पुरुष पूर्ण रूपसे निर्मित है, यदि वह अपनी सत्ताकी पूर्णतापर पहुंच चुका है, और पुनर्जन्म लेने या न लेनेके लिये स्वतंत्र है, तो उसके अंदर चुनावकी भी क्षमता होती है। लेकिन मेरा ख्याल है कि मैं तुम्हें यह पहले ही समझा चुकी हूं। जबतक वे आत्माएं सशरीर नहीं हैं तबतक उनमें हमारी तरह भौतिक दृष्टि नहीं होती। अतः यह स्पष्ट है कि वे एक ऐसी देहकी खोजमें रहती हैं जो उनके अनुकूल हो और उनको अभिव्यक्त करने योग्य हो। लेकिन भौतिक निश्चेतनाको और देहके स्थूलतम विधानोंको अपना स्थान देना होगा या यूं कहें, शरीरके अत्यंत भौतिक विधानोंके अनुकूल बननेकी आवश्यकताको अपना हिस्सा देना जरूरी है। इसलिये चैत्यकी दृष्टिसे व्यक्ति जहां उत्पन्न होता है उसका काफी महत्त्व है, यह नगण्य ब्योरेसे बढ़कर कुछ है। लेकिन ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनको पहलेसे देखा नहीं जा सकता। उदाहरणके लिये, तुम एक वातावरण, देश, अमुक प्रकारका परिवार चुनते हो, तुम संभाव्य मां-बापका स्वभाव देखनेकी कोशिश करते हो, तुम उनमें अमुक पूर्ण विकसित सद्गुणोंकी और पर्याप्त आत्म-संयमकी मांग करते हो। लेकिन अगर बाधाओंको पार करनेके लिये तुम अपने अंदर पर्याप्त गतिशीलताका वहन न करो तो यह सब भी काफी नहीं है। तो सब चीजोंपर विचार करनेके बाद यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। बहरहाल, अच्छी-से-अच्छी परिस्थितियोंमें भी, चाहे मां-बापने सचेतन रूपसे साथ दिया हो, फिर भी अवचेतनाकी किमाकार राशि है और उससे भी

नीचे निश्चेतना, जो कभी-कभी सतहपर उठती है, उसे क्षति हो जाती है, किये-करायेपर पानी फेर देती है, और शांति और नीरवताको अधिकांशमें बना देती है। हमेशा, हमेशा ही तैयारीकी आवश्यकता होती है, जिसे व्यक्तिने चुनाव कर लिया हो — फिर भी एक लंबी तैयारीकी आवश्यकता होती है। और जन्मके समय, शरीरमें उतरते समय पक्केसे मौजूदके रह जानेकी जो अवस्था होती है, जो पूरी तरह पीछा छोड़नेसे पहले, काफी लंबे समयतक चलती है, उसकी तो हम यहां बात ही नहीं कर रहे।

> कुछ बच्चे दुष्ट होते हैं। क्या इसका यह कारण है कि उनके मां-बापने उनके लिये अभीप्सा नहीं की थी?

इसका कारण शायद मां-बापमें एक अवचेतन दुष्टता है। माना यह जाता है कि लोग अपनी दुष्टताको अपने बच्चोंमें पैदा करके उसे अपने अंदरसे निकाल फेंकते हैं। व्यक्तिके अंदर हमेशा एक परछाईं रहती है। ऐसे लोग होते हैं जो इसे बाहर प्रक्षिप्त करते हैं — यह उन्हें हमेशा परछाईंसे मुक्त नहीं करता, फिर भी शायद उन्हें सांत्वना मिलती हो। लेकिन उससे "लाभ" होता है बच्चेको। क्या तुम नहीं देखते? यह बिलकुल स्पष्ट है कि उस समय मां-बाप चेतनाकी जिस अवस्थामें होते हैं उसका बहुत अधिक महत्त्व होता है। अगर उनमें तुच्छ और अशुद्ध विचार हों तो बिलकुल निश्चित रूपसे बच्चे उन्हें प्रतिबिंबित करेंगे। और यह सब बच्चे जो विकृत, कुशिक्षित, अशिष्ट, अपूर्ण होते हैं (विशेष रूपसे बुद्धिकी दृष्टिसे : जिनमें छेद होता है और कई चीजें गायब होती हैं), ऐसे बच्चे जो अर्ध-सचेतन और अर्ध-निर्मित होते हैं — यह हमेशा गर्भाधानके समय मां-बापकी चेतनाके दोषकी वजहसे होता है। जिस तरह मरणासन्न व्यक्तिकी अंतिम क्षणोंकी चेतनाकी अवस्थाका उसके भविष्यके लिये बहुत अधिक महत्त्व होता है, उसी तरह, गर्भाधानके समय मां-बाप चेतनाकी जिस अवस्थामें होते हैं वह बच्चेपर एक प्रकारकी छाप छोड़ती है जिसे वह जीवन-भर प्रतिबिंबित करता रहेगा। तो ये बाहरी तौरसे इतनी छोटी चीजें हैं — उस क्षणकी मनोदशा, उस क्षणकी अभीप्सा या अयोगति, चाहे कुछ भी क्यों न हो, हर चीज जो विशिष्ट समयपर घटती है — वह कितनी क्षणिक प्रतीत होती है, और उसका परिणाम कितना बड़ा होता है — वह जगत्‌में एक ऐसे बच्चेको लाती है जो अपूर्ण या दुष्ट या अंतमें पूरी तरह असफल होता है। और लोग इसके प्रति सचेतन नहीं हैं।

बादमें, जब बच्चा बुरी तरह व्यवहार करता है तो वे उसे डाटते हैं। लेकिन उन्हें अपने-आपको डाटनेसे शुरू करना चाहिये, अपने-आपसे यह कहते हुए : "जब मैं बच्चेको इस जगत्‌में लायी मैं चेतनाकी कितनी गिरकर अवस्थामें रही हूंगी।" क्योंकि यह सचमुच वही है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि मां अपने बच्चेको अच्छी शिक्षा देती है, लेकिन आस-पासके लोग उसे बिगाड़ देते हैं। तब मां क्या कर सकती है?

हां, यह बिलकुल सच है। सबसे बुरी चीज है (जिसे लोग अक्सर करते हैं) अपने बच्चेको नौकरोंके साथ छोड़ देना। यह एक अपराध है। क्योंकि, इन लोगोंकी चेतना बिलकुल गंवारू, बिलकुल नीच और बिलकुल अंधकारपूर्ण होती है। और बिलकुल सहज रूपसे, बिना चाहे वे उसे बच्चोंमें पैठने देते हैं। स्वभावतः एक ऐसी आयु होती है जब बच्चे पाठ-शालामें भेजे जाते हैं और वहां वे बच्चोंके ऐसे दलके संपर्कमें आने लगते हैं जो हमेशा बहुत वांछनीय नहीं होता। इन संबंधोंसे बच निकलना बड़ा कठिन है। बहरहाल, अगर तुमने जीवनका आरंभ थोड़ी सचेतनता और बहुत सद्भावनाके साथ किया है तो जब तुम ऐसे व्यक्तियोंके मिलने हो जिनकी संगति वांछनीय नहीं है तो तुम उसे महसूस कर लेते हो। और अगर तुम्हारे अंदर सद्भावना हो तो तुम खुदसे न मिलने या उनके बस न रहनेकी कोशिश करते हो।

लेकिन यदि दुर्भावनाकी शक्ति दूसरे व्यक्तिकी सद्भावनाकी अपेक्षा ज्यादा सबल हो तो?

हां, यह सत्य है, ऐसा हो सकता है। मूलतः, इसी कारण हम हमेशा एक ही बातपर लौट आते हैं : तुम जितना कर सकते हो करो, यथासंभव अच्छे-से-अच्छा करो, और उसे भगवान्‌के प्रति निवेदनके रूपमें करो, और फिर, जब यह सब एक बार स्थापित और संगठित हो जाय, तो यदि सत्तामें सचमुच अभीप्सा है, और सत्ता प्रकाशकी सत्ता है, तो वह सब बुरे प्रभावोंको प्रभावहीन कर सकेगी। लेकिन तुमने इस जगत्‌में एक बार जन्म ले लिया है तो तुम बुरे प्रभावोंसे पूरी तरह निर्लिप्त और मुक्त रहनेकी बहुत आशा नहीं कर सकते। हर बार जब तुम खाते हो तो उन्हें आत्मसात् करते हो, हर बार जब तुम सांस लेते हो तो उन्हें आत्म-

साफ़ करते हो; तब तत्त्वतः, जो चीज जरूरी है वह यह कि उत्तरोत्तर, जितना कर सको, परिमार्जन करते चलो।

कुछ बच्चे चीजोंमें तभी रस लेते हैं जब कोई उत्तेजना हो। ऐसा क्यों?

वे तामसिक हैं। वह स्वभावमें तमस्के बहुत बड़े अनुपातकी वजहसे होता है। व्यक्ति जितना ज्यादा तामसिक होता है उसे उतनी ही ज्यादा प्रबल घटनाओंकी, और उत्तेजक परिस्थितियोंकी आवश्यकता होती है। जब शरीर तामसिक हो तो जबतक तुम मसाले और बहुत स्वादिष्ट खाने न खाओ तबतक पोषित अनुभव नहीं करते। फिर भी यह विष है। स्नायुओंपर वे ठीक विषके समान काम करते हैं। वे पोषित नहीं करते। लेकिन यह इसलिये होता है क्योंकि लोग तामसिक होते हैं, क्योंकि उनके शरीरमें पर्याप्त सचेतनता नहीं होती। हां, मनके लिये भी यही बात है, प्राण लिये भी यही है। यदि वे तामसिक हैं तो वे हमेशा नयी उत्तेजनाएं, नाटक, खून, आत्म-हत्याएं आदि चाहते हैं ताकि वे किसी चीजकी छाप पा सकें, अन्यथा...। और तमस्से बढ़कर ऐसी कोई चीज नहीं, कोई भी चीज नहीं जो व्यक्तिको ज्यादा क्रूर और दुष्ट बनाती हो। क्योंकि उत्तेजनाकी यह आवश्यकता ही तुम्हें थोड़ा-सा झकझोरती है, तुम्हें अपने-आपसे बाहर निकलनेको बाध्य करती है और यहां, व्यक्तिको उन लोगोंमें जो विशुद्ध रूपसे तामसिक हैं और जो मिश्रित हैं, और जो अपने विभिन्न भागोंके साथ अपने अंदर लड़ रहे हैं, इन तीनोंमें भेद करना सीखना चाहिये। तुम यह जान सकते हो, तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम्हारी प्रकृति किस अनुपातमें संगठित है, ताकि तुम आवश्यकता पड़नेपर किसी एक या दूसरी चीजपर आग्रह कर सको। कई लोग हैं जिनको हमेशा आगे बढ़नेके लिये जीवनसे कोड़ोंकी मारकी जरूरत पड़ती है, अन्यथा वे अपना समय सोनेमें ही बिता देंगे। इसके विपरीत, कुछ और हैं जिन्हें शांतिदायक चीजोंकी जरूरत होती है, नीरवता, देहातमें एकांतवास, ऐसी सब चीजें जो बहुत हितकर होती हैं, लेकिन जिन्हें तब तुरंत विलीन हो जाना चाहिये जब व्यक्तिको प्रगतिके लिये, या किसी चीजकी सिद्धिके लिये, या किसी अभावके विरुद्ध लड़नेके लिये, या कोई बाधा पार करनेके लिये परिश्रम करनेकी आवश्यकता पड़ती हो...। यह जटिल है।

तुम्हें नहीं लगता?

अनुपातका बहुत महत्त्व है, तीन गुणोंका यह अनुपात (तुम इन तीन

गुणोंको जानते हो?), प्रकृतिमें इन तीन गुणोंका अनुपात। और व्यक्तिको इसकी जानकारी होनी चाहिये कि उसके अपने अंदरका यथार्थ अनुपात क्या है और किस तरह एक गुणका दूसरेका विरोध करनेमें उपयोग करना चाहिये, इत्यादि। लेकिन एक ऐसा क्षण होता है जब व्यक्तिको अमुक संतुलनपर पहुंच जाना चाहिये, और फिर उसे थोड़ी सिरदर्दसे अपने अंदर स्थापित करनेमें और छेदोंमें गिरे बिना या भयंकर चीजोंके साथ लड़े बिना जीवनका सामना करनेमें समर्थ होना चाहिये। उस क्षणसे सब कुछ ठीक चलता है।

> यह प्रस्ताव किया गया था कि हमारी पाठशाला और विश्वविद्यालय केन्द्रमें शिक्षा श्रीअरविंदके आदेशोंके अनुसार दी जायगी, लेकिन अबतक शिक्षा बाहरकी तरह दी गयी है, हम उसी कार्यक्रमका अनुसरण करते हैं।

हां, मेरे बच्चे। और बरसों मैं इसके लिये लड़ती आया हू ताकि यह अन्यथा हो। जब तुम — तुम, यहांके बच्चे — जब तुम पर्याप्त वयस्क और अध्यापक बननेके लिये तैयार हो जाओगे तो तुम्हें नवागंतुकोंको ठीक ढंगसे, ठीक चीज सिखानेका काम सौंप दिया जायगा। मूलतः, अभीके लिये यह छात्रोंकी पाठशाला होनेकी अपेक्षा अध्यापकोंकी शाला अधिक है! जो चीज अपेक्षित है वह यह कि जो बात सब लोग जानते हैं वही सीखकर अपने-आपको तैयार करो, क्योंकि, एक अपरिहार्य आधार है: वह कोई बड़ी चीज नहीं है, कोई सविस्तार और सुदृढ़ रूपसे स्थापित आधार वही है, फिर भी सामान्य मानव ज्ञानका आधार है जो आवश्यक है — लेकिन एक बार जब तुम्हें यह आधार प्राप्त हो जाय और साथ ही तुमने उस प्रभावका लाभ उठाया हो जो यहां है, और उस दृष्टिकोणसे, यानी, वास्तविक जीवनके दृष्टिकोणसे देख सकनेके लिये तुमने पर्याप्त पढ़ा, और तपस्या हो — हां, तो जब तुम वह सब जान लोगे तब तुम ही होगे जो बाहरसे आनेवाले बच्चोंको वह सिखाओगे जो तुमने सीखा है। यह कार्यका एक भाग है।

भारतीय मनोविज्ञानके तीन तत्त्व : तमस्, रजस्, सत्त्व। तमस् आलस्य और अंधकारका तत्त्व है; रजस् अनुराग कामना और गतिशीलताका, और सत्त्व है प्रकाश और संतुलनका तत्त्व।

यह सच है कि किन्हीं इने-गिने और विरल अपवादोंके अतिरिक्त, शिक्षा सबसे साधारण सिद्धांतोंपर दी जाती है। मैं यह जानती हूं। लेकिन उदाहरणके लिये, इसके और तरह होनेके लिये जिन किताबोंका उपयोग किया जाता है उन्हें यहीं तैयार करना चाहिये, उनमें उद्धरण भी यहींके चुने हुए होने चाहिये; और शिक्षा-पद्धतिका परीक्षण भी यहींपर होना चाहिये। मैंने कई व्यक्तियोंसे यह करनेके लिये कहा है। लेकिन यह उन अनंत कार्योंमेंसे एक है जो तुमसे ऐसी शिक्षा लेनेकी संभावनाको अगले वर्षतक स्थगित करवाती है जो अतीतके खांचोंका अनुसरण नहीं करती। उदाहरणार्थ, चीजोंको ठीक तरह समझनेके लिये — पदार्थोंकी तैयारीमें समय लगता है। व्यक्तिको बहुत ठोस समस्याओंका सामना करना पड़ता है। बच्चोंको अध्ययनके लिये पुस्तकें दिये बिना सिखाना बड़ा मुश्किल है। लेकिन विवश होकर इन पुस्तकोंको प्राप्त संग्रहमेंसे ही मंगवाना पड़ता है। विशेष चुनाव नहीं हो पाता। तुम जो प्राप्य है उसमेंसे श्रेष्ठ पानेका प्रयत्न करते हो, लेकिन वहां जो श्रेष्ठ है वह अभी बहुत अच्छा नहीं है। इस क्षेत्रमें भी मुझे लगता है, इन किताबोंको, तैयार करनेके लिये व्यक्ति चाहिये। मेरा ख्याल है कि वह ठीक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो बचपनसे यहीं पला है और जिसने चीजोंको छोटी उम्रसे ही काफी अवचेतन रूपमें महसूस किया है। सब चीजोंके बावजूद इसकी एक छाप पड़ती है, यह असर डाले बिना नहीं रहता। और जब तुम बाहरके बच्चोंकी तुलनामें यहां पले बच्चोंको देखते हो तो सचमुच बड़ा अंतर दिखायी देता है (शायद बाह्य दृष्टिसे प्रशिक्षणके यंत्रवत् भागमें नहीं, बल्कि समझदारी, बुद्धि और आंतरिक जागरणमें), उनमें काफी अंतर है और समान स्तरपर पहुंचनेके लिये नये लोगोंको काफी समय लगता है। यह कोई ऐसी चीज है जो किताबोंमें परे है, क्या तुम नहीं देखते? यह भेद उसके समान है जैसे तुम किसी पवित्र वातावरणमें रहते हुए जब कभी सांस लो तो पवित्र हवासे अपने फुफ्फुसको भरो और किसी संक्रमित वातावरणमें रहते हुए हर सांसके साथ अपने-आपको विषाक्त करो। चेतनाकी दृष्टिसे यह वही तथ्य है, और तत्त्वतः यह सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है। और यही चीज है जो सतही चेतनासे बच निकलती है। तुम चेतनाके एक ऐसे समुद्रमें निमज्जित होते हो जो प्रकाश, अभीप्सा, सच्ची समझदारी, मूल पवित्रतासे भरपूर है, और तुम चाहो या न चाहो, यह तुम्हारे अंदर प्रवेश पाता है। उन लोगोंके बारेमें भी जो अपनी बाह्य चेतनामें बंद हैं, वे भी व्यर्थ नहीं सोते रह सकते। नींदके समय यही एक क्रिया है जो काफी बड़ी होती है, बड़ी। इसलिये उसका असर होता

है, वह दृष्टिगोचर होता है। मैंने ऐसे लोगोंको देखा है जो बिलकुल बाहरसे आये हुए थे, जो कुछ भी नहीं जानते थे (केवल उन्होंने बच्चोंमें रस लेते हुए जीवन बिताया था), इन लोगोंपर जो प्रभाव पड़ता है, दर्शनार्थी लोग, जो यहांसे होते हुए चले जाते हैं — वे सब बहुत आश्चर्यचकित होते हैं : "लेकिन यहांपर आपके पास ऐसे बच्चे हैं जैसे हमने अन्यत्र कभी नहीं देखे!" हमारे लिये, हम तो उनके आदी हो गये हैं, है न? वे सहज रूपसे ऐसे होते हैं, काफी स्वभाविक रूपसे। लेकिन चेतनामें एक जागरण होता है, एक प्रकारके आंतरिक प्रत्युत्तर और उन्मीलनका भाव, आंतरिक मुक्तिका भाव, जो अन्यत्र नहीं पाया जाता। यहां जो बच्चे आते हैं उनमेंसे कुछ तो बहुत ही अच्छी तरहसे पले होते हैं — इतने भद्र, इतने शिष्ट, जो तुम्हें ऐसे उत्तर देते हैं ... कि तुमपर छोटी कठपुतलियोंकी छाप पड़ती है। वे केवल अर्ध-जीवंत लगते हैं, जो बाहरसे बहुत परिष्कृत, परिमार्जित होते हैं, जिनकी खूब देख-भाल की गयी होती है, लेकिन उनके अंदरसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता। यहां, मैं नहीं कह सकती कि हम असाधारण शिष्टताका उदाहरण देते हैं (!) बल्कि व्यक्ति जरा... जरा वह है जिसे लोग "अशिष्ट" कहते हैं। लेकिन उसमें भी, वे कितने जीवंत होते हैं! तुम यहां एक चेतनाको स्पंदित होते हुए महसूस करते हो। और वही सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है। और इसके बारेमें बात नहीं की जाती, ये ऐसी चीजें हैं जिन्हें व्यक्ति करता है, पर जिनके बारेमें बोलता नहीं। इस विषयमें मेरे कुछ कहनेके लिये आजकी तरह किसी अवसरका आना जरूरी है। वास्तवमें, तुम बहुत सालोंसे यहां हो, और पहली बार ही ऐसा अवसर आया है। तो बस।

तुम्हारे सारे प्रश्न समाप्त हो चुके?

यह विषयसे बाहर है। मां, आप हर साल जनवरीकी पहली तारीखको एक संदेश देती हैं। वह ठीक क्या बताता है?

हां, हर साल ...। युद्धके समय अद्भुत बात थी, संदेश आनेवाली चीजकी भविष्यवाणीके जैसा होता था। अब युद्ध नहीं हो रहा और भविष्यवाणीकी जरूरत नहीं रही! फिर भी वह हमेशा उस प्रगतिका संकेत होता है जो हमें करनी है। तुमको वह प्रार्थना[1] कल सुबह मिल जायगी।

---

[1] १९५४ की नव-वर्ष प्रार्थना :

"मेरे स्वामी, इस सालके लिये यही है सबके लिये आपका आदेश :

लेकिन मैं तुमको उसपर बहुत गंभीरतासे विचार करनेकी सलाह दूंगी। क्योंकि सचमुच वह बहुत महत्त्वपूर्ण मानकर कहा गया है। अब हम लोग प्रायः सार्वजनिक रुचिकी वस्तु बन रहे हैं, इस अर्थमें कि यहां बहुत-से दर्शनार्थी आते हैं और हम यहांपर जो कर रहे हैं उसमें बहुत-से लोग दिलचस्पी लेते हैं, और उनको सब जगह घुमाया जाता है और उन-को यह बताया जाता है कि हमने यहां क्या-क्या तथाकथित किया है, और क्या करनेवाले हैं इत्यादि। और यह कहनेकी सचमुच बड़ी आवश्यकता थी: "कृपया जो हम कर रहे हैं उसके बारेमें इतना मत बोलिये, उसे कीजिये।" बस, इतना ही।

बोलनेकी अपेक्षा करना हमेशा ज्यादा अच्छा है। और वह भी कम-से-कम विस्तारमें।

एक और अर्थ भी है, ज्यादा गहरा। लेकिन उसके बारेमें मैं तुमको कभी और बताऊंगी।

तो बस, पुनर्दर्शनाय, मेरे बच्चो।

'किसी चीजके बारेमें डींग मत मारो, अपने क्रिया-कलापोंको ही बुलन्दी लिये बोलने दो।'"

अनुक्रमणिका

अंतरात्मा दे० 'चैत्य पुरुष'; 'समता'
अंधकार
  कुरूपता व अशुभमेंसे प्रकाश, सौंदर्य व शुभको प्रकट करनेकी जो शक्ति मनुष्यमें है वह असुरमें नहीं ९३
  (दे० 'जगत्', 'विरोधी शक्ति' भी)
अ विश्वास
  मानसिक नियम नहीं, मानसिक रचना है १४६-४८
  कि वैरागी जीवन और योग एक ही है १५६-५७ टि०
अग्नि [आग]
  तीन प्रकारकी ६२
  (दे० 'आत्मा', 'आपान' भी)
अच्छा-बुरा [शुभ-अशुभ] ३३८, ३३९
  (दे० 'विश्व' भी)
अज्ञान १४, १४०
  -के अनुपातमें अपनी जानकारीके बारेमें विश्वास २६-७
  और अशुभके परिवर्तनकी प्रार्थना १५६, ३६४

सूचना :

ऐसे पढ़ें :

कठिनाई	दूसरे	पशु	चीज
-यां	-लोंकी	-ओंमें	-, दो विरोधी,
कठिनाइयां	दूसरोंकी	पशुओंमें	दो विरोधी चीजें

(२) जिन वाक्योंमें केवल शुरूमें (') है, वह अपने-आपमें पूरा वाक्य है। उन्हें मूल शब्दके साथ मिलाकर न पढ़ें।

(३) जहां (") का आरंभ नहीं दिखाया गया, वहां मूल शब्दसे पहले (") कल्पना कर लें।

(४) कहीं-कहीं अधिक स्पष्टताके लिये लिखा है :

(दे० 'विचार' -लोंका भी), इसका मतलब है विचार के नीचेका वह वाक्य जो -लोंका से शुरू होता है।

(५) पृष्ठ संख्याके बाद अ का मतलब है कि वह प्रसंग उस पृष्ठके अंतसे शुरू होकर, बस, अगले पृष्ठके आरंभतक ही गया है।

(६) जहां वाक्य-रचना मूल शब्दके साथ संगत न जान पड़े, वहां मूल शब्दके आगे कोष्ठमें जो शब्द दिया गया है उसके साथ मिलाकर पढ़नेसे वह संगत बन जायगी।

(दे० 'जगत्', 'प्रकृति', 'सृष्टि')
अतिमन ३३८
-के अवतरणकी बात क्यों, मध्यवर्ती स्तरोंके अवतरणकी जगह? २६९-७१
किस चीजमें रस लेता है? २८७-८९
अधिमन
-के 'राज्य'का समय खतम होनेवाला है २७०
-की सत्ताएं २७१, २९४
अध्ययन दे० 'शिक्षा'
अध्यापक
-को अपने-आप पाठ तैयार १००
(दे० 'जिम्मेदारी' भी)
अनातोल फ्रांस १५४, ३०९
अनुभव [अनुभूति] दे० 'भगवान्' व 'भागवत उपस्थिति'
अनुशासन ११४, १६३
अपने-आप
-की खोज १५-६
यही है तुम्हारा कार्यक्षेत्र ३८, २१८, २८९-९०; तुम नहीं कह सकते कि यह मेरे बसका नहीं ३८
अपने रहना ५८
-को जानो १९०-९५
-को जानना, दूसरोंको जाननेकी कोशिश करनेसे क्या ज्यादा जरूरी नहीं? २८९-९०
(दे० 'अवलोकन' भी)
अभिमान [गर्व, दंभ] ३०० टि०
असामान्य होनेका भाव १
श्रेष्ठताका १३, ४२, २२६, ३३२
स्वभावका ४२
परोपकार-भावनाके पीछे १३-४, १८
-को जड़से निकालनेके लिये जन्मभर काम करना पड़ता है . . ४२
प्रार्थना न करनेके पीछे ८७
विरोधी शक्तियोंके लिये द्वार खोल देता है ८८, ९१, १४९
-का ही एक पार्श्व अयोग्यताकी भावना ३२२
और अभीप्सा ३३४
असुरके न बदलनेके पीछे ३६३
(दे० 'अहं', 'महत्त्वाकांक्षा', 'भगवान्', 'मूर्खता' भी)
अभीप्सा २०, १९९, २७२
भगवान्के लिये ६-७
भगवान्का होनेके लिये और उत्तर ५९-३
सच्ची, या तीव्र प्रार्थनाकी शक्ति ८३, ८५, ८७, १३५
(दे० 'भागवत कृपा' और भी)
केवल मानव प्रकृतिको मिला भागवत कृपाका उपहार ८३
कुछमें नहीं होती : कारण ८७
-एं और प्रार्थनाएं भी क्या विचारोंकी तरह रूप ग्रहण करती हैं? १३३
और प्रार्थनामें फर्क १३३-३७
अधिक सुंदरके लिये १५६
घटनाकी प्रकृतिको बदल देती है १८४
-के गुणपर निर्भर कि कौन-सी शक्ति उत्तर देगी २७८
मानसिक, प्राणिक और आध्यात्मिक

में क्या फर्क है ? २७९-८०
भौतिक, किस प्रकार संभव, सोचता तो मन है ? २८०
-की तीव्रता मुख्य भगवान्‌को पानेके लिये ३३२, ३३३, ३५१
(दे० 'अभिमान', 'मां', 'श्रद्धा' भी)
अमरीका
-की चीजोंमें जापानी प्रभाव ३२७
अयोग्यताकी भावना ९१, १४९, ३२२
अलगाव [विच्छेद, विभाजन]
मूल स्रोतसे ६६, ६७, ९३, १४०, २२६, ३६६; अव्यवस्थाका कारण २९५, २९७, ३५५-५६
अवतार ३०९
-का कार्य ३४४
-के शिष्य होनेका अर्थ ३४४
-के आनेका कारण ३७१
अवलोकन (अपने अंदर)
सचाईके लिये ६
सचेतनताके लिये ६७
मन-प्राण-शरीरसे आनेवाली चीजोंमें भेद करनेके लिये ९६
बेचैनीके कारणको जाननेके लिये ९६-७
अंदरकी क्रिया-प्रतिक्रियाको जाननेके लिये १८८-८९
रोज पांच मिनटके लिये १९५
(दे० 'ध्यान' भी)
अवसाद
-का आक्रमण ८८
क्या प्राणसे आता है ? २४५
अशुभ दे० 'दुर्भावना', 'अंधकार', 'अज्ञान', 'बीज', 'जगत्' व 'मानसिक रचना'
अशुभ व्यक्तित्व २६३ टि०
असंभव दे० 'संभव'
असंतुलन दे० 'संतुलन' ; 'रोग'
असुर ५
-का राज्यकाल ९१
'दानव दुर्भावनापूर्ण सत्ताएं हैं १४२
'दानव और मनुष्यका अनुपात २५४अ
-ने असुर होना इसलिये पसंद किया कि . . . ३१३
अंधकारकी सत्ताएं हैं ३५८
कुछ, बदलनेकी जगह विलीन होना पसंद करते हैं ३५८, ३६३; क्यों ? ३६३
"वे दूसरे" कौन हैं जो बदल गये हैं ? ३५८ (दे० 'सत्ता' भी)
(दे० 'मिथ्यात्वका प्रभु', 'अंधकार', 'दुर्गा', 'प्राणिक सत्ता' भी)
अहं १४१
-की तृप्ति भगवान्‌की आड़में ४, ६
सम्मान पानेका ७ (दे० 'प्रशंसा' भी)
सद्गुणी होनेका १३, १४, १५
-में बंद रहते प्रकृति नहीं १९९-२००, २०९, २२२-२३
-को भौतिक चेतनामें जीत लेनेके बाद आध्यात्मिक अहंकार ३६५-६६
आध्यात्मिक, साधारण अहंसे तो अच्छा ही है न ? ३६७
-के साथ क्या व्यक्ति भगवान्‌का साक्षात् कर सकता है ? ३६७
(दे० 'अभिमान', 'महत्त्वाकांक्षा', 'कर्म', 'चेतना', 'मनोमय्' भी)

आ

आँखें
देखकर आप किसीका चरित्र कैसे जान लेती हैं? २०९
आंतरिक वाणी [मंद स्वर] १५०
आकाश दे० 'दुःख-कष्ट'
आत्म-दान दे० 'समर्पण'
आत्म-निरीक्षण दे० 'अवलोकन'
आत्म-निवेदन दे० 'समर्पण'
आत्म-वंचना दे० 'धोखा'
आत्म-संयम [आत्म-वशित्व] ४५, १९१, २०१-५, ३०४
(दे० 'नियति' भी)
आत्म-संतोष [आत्म-तुष्टता] १३, ४२, ५१, ९२, १४९, ३२१-२२, ३३५
आत्मा
-एं, प्रकृतिकी सभी अभिव्यक्तियाँ ही हैं, आग, हवा, वर्षा, आंधी और मृत्युकी १२९-३०, ३६६
(दे० 'जाति', 'शरीर' भी)
आध्यात्मिक जीवन
और संन्यासवाद १५६
और नैतिकता ३३०
आनंद २१, ३५६
-की अवस्था ३६८
आलस्य १००
-से बरतना : शारीरिक शिक्षणकी प्रवृत्तियोंमें ११३; पढ़ाईमें ११३-१४; काममें ११४
(दे० 'तमस्' भी)
आवश्यकता
-का विचार मनमाना होता है ३५१-५२
आह्वान दे० 'भागवत कृपा', 'सहायता'
आश्रम
-के प्रांगणमें स्थित ताड़ १०६-७
'गोलकुंडके लिये पैसा,' पर सशर्त १५३
-में, तब, ऐसे लोग ही होने चाहिये जो अभिमनतक पहुँच चुके हैं २७१-७४
-में शुरूमें बच्चे नहीं थे २७३
-में पहले बच्चे क्यों नहीं लिये जाते थे? २७४-७६
'कुछ बच्चोंका यहां रहनेका चुनाव २७६
-का वातावरण ३९७; तुम चाहो-या न चाहो वह तुम्हारे अंदर प्रवेश पाता है ३९७
(दे० 'बालक', 'श्रीमाताजी', 'शिक्षा' भी)
आश्रमवासी
'हम किसी पिछले जन्ममें एक साथ थे १-२
'यहां तुम धर्मोंसे मुक्त हो २९
'हमारे करने योग्य दे० 'प्रयास'
-का परिवारमें कोई बीमार है यह पता लगनेपर, वहां जानेका आवेग १२६
'उत्तोलनसे काम करते हुए कृपा-द्वारा बचाव ३८७
आश्रमवासी बच्चोंसे :
रूपकी पूर्णताके लिये १०८
अपने अंदर देखनेके लिये कभी नजर डाली है? १८८-८९

तुम यहांपर इसीलिये हो ताकि १९४-९५
यहां यह प्रयास किया जा रहा है कि तुम्हें एकदम तलीसे सीधा चोटीपर... २७४
जीवन-भर बालक ही बने रहो २७४
(दे० 'श्रीमाताजी' मुझे वह, 'शक्ति' -का कितना भी)
आसन २५५, ३७३

इ

इच्छा ३३४
'संकल्प एक-दूसरेको काटते हैं, सबसे मजबूत सबसे सफल १६
-के परिणामस्वरूप भी चीजें हमारे पास आती हैं १६-८
'प्रत्याशासे निष्कपटतापर परदा ५१
-एं परस्पर-विरोधी हमारे अंदर १८९
(दे० 'आवश्यकता', 'कामना', 'लाभ'; 'प्रयास', 'प्रशंसा', 'भगवान्' भी)
इटली का नवजागरण-काल ३२३
इतिहास
और पुराण ३११

ई

ईसा ७४
ईसाई प्रोटेस्टेंट ३११

उ

उदारता
शक्ति-खर्चमें २००
और कृपणता ३३९-४०, ३४१-४२
(दे० 'मनुष्य' भी)
उदाहरण
'युवती, जो चेहरा बिगड़ जानेके कारण यहां आयी थी ३
'बच्चा, जो दरवाजेसे टकरा गया था ५
'नाराज व्यक्तिकी छूत ५७
'आम देखनेमें सुंदर, अंदर कीड़ा ७
'लोग, जिनमें संकल्प-बल था, पर सत्तामें जरा-सा उलेट-फेर ८
'गरीबोंको भोजन देना, हस्पताल, विद्यालय खोलना ११, १२, १४, १८, १५३
'विनोदप्रिय व्यक्ति : 'भगवान्का राज्य जल्दी नहीं आयेगा, ये बेचारे परोपकारी बेकार १२अ
'मस्त वैसो फिल्म १४
'कंजूस, जो मौतके बाद धनकी रखवाली... १७, १२७, १२८
'आंखोंमें चोट, स्वप्नमें २४
'अखरोट-सी चेतना २६
'महिला, जो सचेतन होनेपर शांति खो बैठी २७अ
'नौसिखियेकी बात २८
'एक कैथोलिक, धर्मकी क्षतिके बारेमें २८-९
'बंदर-योगिनकी सब बातें ३०

'दरवाजा खटखटाना ध्यानके समय ३९
'जीवन जिनका दो भागोंमें बंटा था ३९-४०
'संन्यासी, सठोंमें रहनेवाले ४१
'अवगढ़ पत्थर ४५
'रास्तेपर निरीक्षणके साथ ४६
'अप्रिय घटना, काममें असफल, अध्यापककी टिप्पणी ४९, ९६अ
'मार, उठाना, सोचना, लिखना, भगवान्‌के द्वारा ५२
'एक भारतीय सूफी संगीतज्ञ ५३
'स्वप्न, हवामें उड़नेका ५६
'हत्या करने या पीटनेकी यदि दूसरा कोशिश करे तो भी ६१
'नगण्य पुस्तक, मामूली संगीत ६४
'छिपकली ६६
'हर चीजमें श्रीकृष्णके दर्शन ७४-५
'चमार योगी ७९
'जूते गांठने, बागवानी, खेतीका काम ७९
'मुट्ठीसे बुराईपर चोट ८२
'गिरता खपरा ८५अ
'गेंद दीवारसे टकराकर वापस ८९, १७६
'व्यक्ति, विरोधी शक्तियोंसे ग्रस्त ९०-१
'शुतुर्मुर्ग ९६
'शरीरकी सच्ची गति यह नहीं कि वह सिर या हाथोंके बल चले १०२
'कथ-परंपरागत व्यवस्था और व्यक्तिकी निरपेक्ष स्वतंत्रताके विचार एक साथ रखनेवाले १०३
'वाल्टिंग करना, रस्सीपर कूदना ११३
'पुस्तक शुष्क ११३अ, १५०
'पेटदर्दसे पीड़ित महिलाको डाक्टर-की सलाह : अंगूरोंका एक बड़ा गुच्छा लो . . ११६
'मानों किसी दीवारमें छेद करनेवाले हो ११९
'बीकन लाइट १२१
'गुस्सेकी हालतमें की गयी रचना १२५
'नदीमें पड़ा कार्क १३१, १९३, २०२, २९०
'जैसे कोई मक्खी उड़ाता है १३८
'सांप जैसी जीभ १३८
'कीड़े, जिनके डिभक जीवित वस्तुओंपर ही जी सकते हैं १४०अ
'बिल्ली द्वारा चूहेका शिकार १४२
'आदमी, जिसे शेरने पकड़ लिया था १४३
'खरगोश, अजगरके पिंजरेमें १४३-४४
'भूकंप, आंधी, मेह १४५, ३६६
'आदमी, जो अपनी चेतनाको विस्तृत करना चाहता था १४५
'चींटियां १४५अ, २५४, ३६६
'नसैनीके नीचे होकर मत चलो १४६
'काली बिल्लीको देखना १४७
'खानेसे पहले हाथ धोना १४७
'सूअरका मांस खाना १४७-४८
'योगके लिये भारत आते समय

जिसकी सोनेकी पेन्सिल समुद्रमें गिर गयी १५०
'योगी या योगिनी कहनेसे जो चित्र बनता है १५७ टि०
'डरसे हुआ १५९
'किसीका घाव देखकर जिसके घाव हो गया था १५९
'पहली बार कसरत करते समय शारीरिक भय १६०
'खेलोंमें साधारणतः अच्छा करनेवाले उस समय अक्षम १६०
'बीमार होनेपर उसे 'कृपा' मानकर प्रगति करनेवाले १६१
'साफ-सुथरे वातावरणमें तीन दिन न नहाओ तो १६३
'हृदय जब पागलकी तरह धड़कने लगे १६६
'मशीनमें रेतका कण १६८
'छोटी-सी काली चीज पत्थर जैसी सख्त १६९
'लोग, जिन्हें कोई घातक रोग न था, पर . . १७६, ३८५
'स्वप्नमें लिफ्टका लड़का अर्थीकी ओर संकेत करता हुआ १८२
'ग्रामोफोन १८७
'मोड़ेको बचमें करना १९१, २४४अ
'जगत्के भारके नीचे दबे होना और जगत्को नीचे पहाड़परसे देखना १९३अ
'हत्यारोंका शिरच्छेदन १९८, ३६०
'राजाका जन्म, फिर बीचका जीवन २०६, २५६
'पतिंगे, रोशनीसे टकराते २१२
'मछलीघर २१४
'व्यक्ति, जो जंबुमणि पहनता था २२०
'स्फटिक पत्थर २२१, २३२
'कुत्ते, हाथी, घोड़ेकी स्वामि-भक्ति २२९, २३०
'कुत्ता शुद्ध नस्लका और मिश्रित नस्लका २३६
'विवाह छोटी जातियोंमें २३६
'अंत्यजमें भी आत्मश्रेष्ठता . २३६
'महाद्वीप, जो भारतको अफ्रीकासे मिलाता था २३७
'चूहा, जिराफ, हाथी, बिल्लीके आकारोंमें प्रकृतिकी कल्पना २३९
'लोग, जिनका मन स्पष्टदर्शी था, पर प्राण चालाक २४३
'निपट मूर्ख भी समझदार . २४६
'मृत पियानोवादक, चित्रकार, लेखकके हाथ व मस्तिष्क २४९, २५३
एक जन्ममें प्रतिभाशाली, अगलेमें महामूढ़ २५०अ, २५५-५६
'वैश्व वानरोंकी कहानी २५४अ
'गाय, खेतमें विषैली घास . २६१
'बकरी, शीरा अधिक खा गयी २६१
'अपनी ही पूंछको काटता हुआ सांप २६२
'लोग, जो संग्रहालयमें दिखाये जाने-योग्य नमूने . . २७२
'पहाड़पर चढ़नेके लिये मार्ग-दर्शक २७२
'मूर्ति-निर्माणके लिये मिट्टी २७३
'लोग, जो मूढ़ लगते हैं, पर उनके

साथ साथीका-सा व्यवहार २८८
'औरोंको झगड़ते देख, 'खामोश, खामोश! २९०
'वैरागी, जंगलमें पशुओंमें रस २९१
'पानीकी बूंद क्या बता सकती है कि समुद्र क्या है २९८
'घिसे जूतोंके लिये नहीं रोता ३०२
'हत्या करना चाहनेवालेको आनेका इशारा ३०३
'रंगीन कांचकी खिड़कियां बनानेवाले ३०६
'नीग्रो राजकुमारका मत, सबसे सुंदर लड़कीके बारेमें ३१४
'बकूतपर मिस्लटो ३२३
'कड़ाहा प्रकृतिका ३२७
'मस्तकहीन कालीका मंदिर ३३१
'पियक्कड़को भगवान्‌का संपर्क ३३२
'प्रकाशपर मेरा अधिकार ३४०अ
'रस्सीपर चलनेवाला ३४१
'विष यदि खा लो तो.. ३४६
'बटर फ्रूट व अंजीर कच्चा और पका ३४७-४८
'सांपके बिलके पास सांप-काटेका पौधा ३४८
'पोटाशियम क्लोरेट ३४९
'बांसके अंकुर, ताड़ या नारियलकी कलियां खायी हैं? ३४९
'आगको अगर तुम छू लो ३५०
'मुरगीसे अंडा या अंडेसे मुरगी? ३५१
'एक डब चित्रकारकी एकमात्र आवश्यकता, दुख-त्रास; एक औरकी, साबुन ३५१-५२
'बच्चा दुष्ट, मां-बाप अच्छे ३६४
'चुंबक २६९
'बच्चा खांसे, भोजन ठीक न पका हो, नौकरी छूट जाय तो ये. ३७५
'बिलमें केंचुआ ३७५
'अनपढ़ लोग जिनमें सहसा कोई क्षमता विकसित हो जाती है ३८२
'लोग, जिन्हें आध्यात्मिक सिद्धि तो प्राप्त थी, पर अंतर्दर्शन एक भी नहीं ३८२
'लोग, जो बरसों बीमार रहे, पर मनको स्वच्छ रखा ३८३
'लोग, जो दुर्घटनाका कोई अवसर नहीं चूकते ३८५
'व्यक्ति, जो मर सकते थे, प्रेतबाधा निकल जाते हैं, अब कि कुछ अन्य.. ३८५
'लोग, जिन्हें छोटी-सी खेंच, पैरमें मोच.. ३८६
'नसैनी, चढ़ते हुए मारसे टूट जाती है, पर चोट नहीं ३८६
'भूलसे विष ले लिया पर.. ३८६
'दंपति जो विमान-दुर्घटना और नौका दुर्घटनाके वाहक थे ३८९
'लोग, जिन्हें बढ़नेके लिये कोड़ोंकी मारकी जरूरत, दूसरे जिन्हें शांतिदायक चीजोंकी.. ३९५
(दे० 'आश्रम', 'आश्रमवासी', 'तादात्म्य', 'वनस्पति जगत्', 'श्रीअरविंद', 'श्रीमाताजी', 'साधु' भी)

ऊ

ऊब २००
-का मतलब : अप्रगति ४६, ४७
जानेपर करणीय ४७-८
कक्षामें ९८-९

ए

एकता
'परस्पर-एकता' (आश्रितता) १८५, २९१-९२
'मानव एकताकी प्राप्ति ३३७
एकांतवास १९९-२००; २९१, ३९५
एकाग्रता १९९; २१६
-की शक्ति ६९, ३८१
कठिन व शुष्क विषयोंको समझने-के लिये ९९
प्रश्न या समस्याके हलके लिये ११८-१९, २१०अ, ३८१
-की शक्ति : एक ही यंत्र, विज्ञान और कल्पनामें १२१-२२
सबसे आवश्यक, बौद्धिक दृष्टिबिंदु-से १२२
और संकल्प यदि दोनों हों १२२
किसी वस्तु, आलेख या विचारपर २१०
-की स्थिति ३८०; उस क्षण सोचेको पकड़ न पानेका कारण ३८०-८१
(दे० 'कक्षा', 'समय' भी)
एकीकरण दे० 'सत्ता'

ओ

ओरोविल
-के घोषणा-पत्रमें 'भागवत चेतना' शब्द ७७

औ

औषधि [दवाई] ११५
-यां कीटाणु-नाशक १६९
-की पुड़ियोंसे चेतना अधिक फल-प्रद १७६
'जड़ी-बूटियां प्रकृतिमें ३४८

क

कक्षा
एक अवसर, प्रगति एवं यंत्रके परिष्कारका ४५-७
-में अगर इस तरह बेचैनी लगे ९७
-में एकाग्र न हो सकना ९८-९
-का काम कभी-कभी बहुत होता है . ., ११६-१८, ११९; काम जो कर रहे हो उसीपर एकाग्र होओ ११८
-के कामका उपयोग १२०
(दे० 'आलस्य', ऊब', 'शिक्षा' भी)
कठिनाई [अग्नि-परीक्षा] २५४
-यां कसौटियां हैं ८७, १४८
तुम्हारी मानसिक रचनाको तोड़ने के लिये भी १४८
इस बातका प्रमाण है कि . १५१
किसीमें देखो तो उसे बदलनेके

लिये अपने अंदर . . २८९
(दे० 'दुःख-कष्ट', 'परिस्थिति', 'प्रार्थना' भी)

कर्म
और ध्यान ४१
निष्काम, अहंकारमय नहीं, फिर भी अहं तो है ही ५१
भौतिक और भागवत उपलब्धि ७९
'निष्काम, निःस्वार्थ क्रिया चैत्य चेतनाका : परिणाम २३१; बच्चोंमें यह चीज होती है, पर माता-पिता, वातावरण . . २३१
-में अपने-आपको करते हुए देखनेकी प्रवृत्ति २३२
' "क्रियामें विश्राम" किस तरह ? ३७८
(दे० 'काम' भी)

कर्म-फल
और भागवत कृपा ८५, २२५
कठोर नहीं है ? ८६-७
कठोर, का वर्णन धर्मोंमें ८६-७, १२३-२४, २०८
-को बदलना ८७ (दे० 'नियति' भी)
'जो अच्छे कर्म करते हैं वे स्वर्ग जाते हैं ? १२३-२४

कलकत्ता की कला ३२५

कला
'रचनाका सच्चा मूल्य और उसके कार्यरूपका मूल्य ७१
रूपांतरतक नहीं पहुंचती इसलिये इसका कुछ मूल्य नहीं ! ७८-९
और अन्य क्रियाओंमें भेद क्यों करते हो ३०६-७
सच्ची ३१५-१६
-का सच्चा उद्देश्य ३१६
पिछली शताब्दीके आरंभसे अबतककी ३१७-१८; इसमें व्यापार-बुद्धि ३२०, ३२४; इसका औचित्य व लाभ ३२४अ, ३२६
का विकास भी कुंडलाकार ३१७-१८, ३२०-२१
कुकुरमुत्ते जैसी" : व्याख्या ३२३-२४
'कलात्मक युगोंके देवता-गृह ३२३
-कृतियोंपर हस्ताक्षर ३२५-२६
पूर्व और पश्चिमकी, में समन्वय किया जा सकता है ? ३२६-२७
(दे० 'संगीत' भी)

कलाकार ७८, २४८
क्या कलाद्वारा भगवान्‌को अभिव्यक्त कर सकता है ? ३०५-७
तुम किसे कहते हो ? ३०५-६
वे सब हैं जो . ३०९-१०
-का काम ३१६
(दे० 'चित्रकार' भी)

कल्पना
मनुष्यकी इतनी सृजनशील : कि सचमुच इन स्वर्गोंका स्थान है १२४अ; कि उसने अपने प्रतिरूप देवोंकी श्रेणी बना रखी है १२५
तुम किसी चीजकी नहीं कर सकते जिसका कहीं अस्तित्व न हो २१७
(दे० 'एकाग्रता', 'विचार' -ोंका भी)

कांगो ३८८
"काबोतिनाज" २५६-५७
काम [कार्य]
सबसे मजेदार ९-१०, १९०-९१, १९३, २११-१३
सक्रिय समर्पण और गतिशील संकल्पके साथ ४३-४
करवानेके लिये प्रकृतिकी चालाकी ८४-५
जारी रखना चाहिये, भले बीमार-से क्यों न हो ११४
अंदरकी खोज एवं अपने-आपको व्यवस्थित करनेका १८९-९५
-की योग्यताका पता कैसे चले? ३०५
-में तुरंत सफल न होओ तो लगे रहो ३०५
'करो अच्छे-से-अच्छा और उसे भगवान्‌के प्रति .. ३९४
(दे० 'कर्म', 'प्रयास', 'आलस्य', 'कक्षा' भी)
कामना
-पर, अपने अंदर, विजय : परिणाम ८
-के तूफानका सामना अचंचल रहकर २०१-२, २०४-५
(दे० 'इच्छा' भी)
कारण
और कार्य ३४५-४६
काला जादू [भ्रष्ट गुह्यविद्या] १७१
कीटाणु जाति
-का मूल १४१, १७२, १७३, २९४
(दे० 'रोग' भी)
कुंडल
-में, सर्पिल, का गोला ३२८-२९
कुरूपता दे० 'अंधकार', 'जगत्'
कृतज्ञता
पशुओंमें २३०
बच जानेपर, लेकिन यदि कुछ न हुआ हो तो . . ३८७-८८
(दे० 'प्रार्थना' भी)
कृपणता दे० 'उदारता'
कृपा दे० 'भागवत कृपा'
क्यूरी दंपति ३७४
क्वानोन (जापानियोंकी देवी) २५

ख

खोज
-के लायक चीजें दो नहीं ७६
(दे० 'अपने-आप', 'काम', 'विज्ञान' भी)

ग

गर्भाधान का क्षण ३९३
गुरु २९, १४९, २३४, ३६९
गुरुत्वाकर्षण ५६, ६६
गुलाब दे० 'वनस्पति'
गुह्यज्ञान दे० 'काला जादू'
ग्रहणशीलता १९९
भगवान्‌के प्रति ४३
भौतिक, प्राणिक, मानसिक २००-१
प्रतिरोधके साथ रहती है" यह प्रतिरोध क्या है? २५७-५८
अगर दीक्ष जाय अतिमनको २८८
-में बाधक चीज ३७८
(दे० 'पत्थर', 'भागवत शक्ति'

'मां', 'रोग', 'विरोधी शक्ति' -योंको कोई, 'शरीर' भी)

घ

घटना
'जो हुआ, होना ही था ७५
-का पूर्वज्ञान और उन्हें बदलनेकी संभावना ८१-३, १८२-८५ ; इन चीजोंको समझनेके लिये विश्व चेतना चाहिये १८५ (दे० 'नियति' भी)
घृणा दे० 'अंधकार', 'प्राणिक सत्ता', 'विरोधी शक्ति'

च

चमत्कार २६८; ३८७
चिकित्सक [डाक्टर] ११५, ३४४
चित्रकार ३०६, ३७०
-में प्रेरणा और संकल्पका मेल ४३-४
आजके, उतने अच्छे क्यों नहीं जितने लियोनार्दो द विन्सीके समय थे ? ३१६-१८
(दे० 'कलाकार' भी)
चीज
', जैसी हैं, वैसी हैं ३७, ७६, २९५
महत्त्वपूर्ण ६९ टि०, १३१, १३९, २५६, २८९, ३३२, ३४२
अच्छी करनेकी अपेक्षा बुरी चीजें करना आसान क्यों ? २२३-२५
सुंदर, के प्रति सच्ची क्रिया और विरोधी शक्तियोंकी क्रिया २२४
', दो विरोधी, साथ-साथ २६३
-की महत्ता उसके उपयोगपर निर्भर ३२२
कोई गायब नहीं होती, रूप गायब होता है ३६२
(दे० 'चेतना', 'जगत्', 'नियति', 'प्रगति', 'विश्व' भी)
चुनाव
-की स्वाधीनता विश्व-रचनामें २९६, ३५६-५७, ३५९, ३६३, ३६४
-का क्षण, रोगाक्रांत होने व दुर्घटना-में ३८४-८५
क्या व्यक्ति बादमें कर सकता है ? ३८५
(दे० 'आश्रम', 'स्वतंत्रता' भी)
चेतना
पंचमेल ८
-की उच्च स्थितिको बनाये न रख सकनेका कारण ८-९
-का परिवर्तन ही समाधान १४
-पर परदा, यही दंड २०-१
अहं-सीमित, का ज्ञान २६
-की बहुत अप्रिय स्थिति १३२, १९३-९४
-को विस्तृत : करना होगा १४५, १८५, २२२-२३, २५७, २७७; करनेका तरीका १४५ (दे० 'विचार' भी)
दर्पण जैसी अचल १८३
दो प्रकारकी — चीजोंको एकके-बाद-एक करके जानना और

समग्रको एक साथ जानना — को नजदीक लानेकी कोशिश १८६
-की सच्ची स्थिति १९४
सामान्य लोगोंकी २१२ (दे० 'मनुष्य' भी)
-का समुद्र २५७-५८
-की स्थितिको बदल लो तो वस्तुओं-की प्रकृति बदल जायगी २९७, ३६८
-को, ज्योति-पुरुषको, बदला जा चुका है ३५८; तो निश्चेतनाको अब चला जाना चाहिये ? ३५९
नयी, का जन्म हो ३६० टि०
पूर्ण रूपसे जाग्रत चाहिये, तब जागनेका समय नहीं होता ३८४-८६
(दे० 'औषधि' भी)

चैत्य चेतना
रूपी दर्पण या परदा ९-१०, १५० १९०-९१, १९३; उसके आगे चीजोंको रखनेके लिये चाहिये, सच्चाई, साहस, अध्यवसाय १९१, १९३
और बाह्यतम भौतिक चेतनामें संपर्क : २४६-४७

चैत्य पुरुष [चैत्य सत्ता] १३५, ३०९
-के साथ संपर्ककी जरूरत व फल १, २, ९, ३१अ, १२७, १५०, १९७, २४३, ३०२, ३८४
ही नजदीक लाता है २
-की अग्रमुखताका जीवन २
-की प्रधानताका जीवन १२७
का संपर्क ही तुम्हें विरोधी शक्तियोंसे बचा सकता है १५०
-की दो भिन्न प्रकारकी प्रगतियां १९५-९६
-का नये शरीरका चुनाव २०५-८, २४१, २५०-५२, २५५-५६, २९९, ३९२-९३
क्या दो शरीरोंमें जन्म ले सकता है ? २५२
-को पानेके तरीके —मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, यांत्रिक : व्याख्या ३७३-७४
हमेशा पवित्र है या उसे पवित्र करना पड़ता है ? ३७५
क्या साधारणतः ढका रहता है ? ३७५अ
-में क्या कोई शक्ति होती है ? ३७६
ही सत्ताका संचालन करता है ३७६, ३७७
सत्यको किस तरह अभिव्यक्त करता है ? ३७७
नाम हम अपनी सत्ताके उस केंद्रको देते हैं . . ३७७
(दे० 'ज्ञान', 'मनुष्य', 'भय', 'मूर्खता' भी)

चैत्य लोक, १२७, १९६, २०६
चैत्य स्मृति ३१, ३३, ३४२

छ

छूत १६६
स्पंदनोंकी : गुस्सेके ५-६; दुर्घटनाके १५९, १७०; वातावरणके १७० (दे०

'शक्ति'-को अकेला भी)

ज

जगत् [संसार]
यदि मैंने रचा होता तो ऐसा न बनाता १३
-से भागना और प्रगति व परिवर्तन ४०-१, ४८, ११०
यदि सत्य होनेकी शर्तपर टिका रह सकता . . ६१
-में कुरूप, अशुभ चीजें क्यों जब कि सबका मूल भगवान्‌में है ? ६६-७, २६३, २९३, २९५-९८, ३५५-५६
-में अंधकार, अज्ञान, अशुभ, क्यों है यह पूछनेकी अपेक्षा महत्त्वपूर्ण चीज १३९, २९५
अभीतक विरोधी शक्तियोंके प्रभाव-में है २२४
-में चीजें इतनी बुरी हालतमें हैं : कारण २८६, २९०
-में चीजें ठीक न लगनेका कारण २९७, २९८
जो विगत कल अच्छा था, आगामी कलके लिये अच्छा न रहेगा २९८
एक गोला है, सीधी लकीर नहीं ३१८
-में एक शतीसे यंत्रीकरण और व्यापार-वृत्ति प्रधान ३२०अ
(दे० 'भौतिक जगत्', 'विश्व'; 'परिवर्तन' भी)
जगदीशचंद्र बसु ६३
जड़पदार्थ
'गोचर द्रव्य पंचभूतोंसे बना है ६२
जन्म १९१
इस, में बुद्धिमान् बननेकी कोशिश करे, पर अगले जन्ममें महामूढ़ बन जाय तो उस सारे प्रयास-का लाभ क्या ? २५५
(दे० 'पूर्वजीवन'; 'प्रगति' भी)
जागरूकता [सचेतनता]
-की जरूरत ४, २८, ५९अ, ६७, ८९, ९५, १४९, १५८, १६६, १६८, १७६अ, १७८, ३८४-८६
(दे० 'चैत्य पुरुष'-के साथ भी)
जाति
-की आत्मा १४१, १४४, २९१, ३४०
'जात-पांत, २३५-३६
(दे० 'सुझाव' भी)
जानना दे० 'ज्ञान', 'समझना', 'सीखना', 'अपने-आप', 'घटना', 'विश्व'
जापान १७
-में आग १३०
-के कलाकार माली ३०९-१०
-के बौद्ध मंदिर ३११
-की कला व वहांके मकान ३१५अ
-में वनस्पतियोंका उपयोग ३४९-५०
-का प्रसिद्ध व्यंजन, बांसके अंकुर ३५०
(दे० 'अमरीका', 'श्रीमाताजी' भी)
जिम्मेदारी
कोई, जिन लोगोंपर है उनका पहला काम २८६-८७
-का काम अद्‌भुत कृपा है २८६

जीवन ३५६
धरतीपर, प्रगतिका क्षेत्र ४६; ४७, १२३
-को मजेदार और प्रसन्नतायुक्त बनानेका तरीका ४७ (दे० 'काम' भी)
मेरा भगवान्‌का है" : निर्णय ४९, ७३
-में भलोंकी अपेक्षा बुरे ज्यादा सफल १२३
-के अस्तित्वका हेतु १९४
(दे० 'जन्म'; 'मृत्यु' भी)
जोग्लर (अनातोल फ्रांसका) ३०९
जोन ऑफ आर्क २५
ज्ञान
सभी, तादात्म्यके द्वारा २०९, २८५-८७
वनस्पति जगत्‌का, बहुत-सा खो चुका है ३४८
सत्ताका कौन-सा भाग प्राप्त करता है, अगर मन ज्ञान प्राप्त करनेमें असमर्थ है ? ३७९
क्या मनमें नहीं उतरता ? ३७९
चैत्य पुरुषका ३७९
-के क्षेत्रमें प्रवेश पानेके लिये क्या मध्यवर्ती क्षेत्रोंमेंसे गुजरना जरूरी है ? ३८१-८२
(दे० 'अज्ञान', 'सत्य'; 'चेतना', 'विनम्रता' भी)
ज्यूल रोमें (नाटककार) १७९

झ

झगड़ा [लड़ाई] ५, ६०, ८५, १६६-६७, २४२, २५३-५४, २९०

त

तपस्या ३४४
तमस् १६८
और ध्यान ३९
-के लिये उत्तेजनाकी आवश्यकता ३९५
-से क्रूरता व धृष्टता ३९५
(दे० 'आलस्य' भी)
तर्कशास्त्र ३००टि०
तादात्म्य ३६४
करना सीखना अनिवार्य : अहंसे निकलनेके लिये २०९, २२३; जब तुमपर दूसरोंकी जिम्मेदारी हो २८५-८७; भगवान् और सृष्टिको समझनेके लिये २९६, २९८
करनेकी एक पद्धति २१७-१२
पुस्तक व उपन्यास पढ़ते हुए २१३
-की घटनाएं पैरिसकी रंगशालाओंमें २१३-१४
(दे० 'भगवान्' भी)

द

दंड दे० 'चेतना', 'न्याय', 'भूल'
दुःख-कष्ट [आघात] २२४
मानव जातिके, कम करना चाहो तो अपने अंदर दुःखको १४
भुलानेकी कोशिश ४८
-की हिमवर्षा हमेशा सच्चोंके लिये १५०-५१

जीवनमें किस लिये १९४
एक दंड, ऐसी धारणा २०८
मन-प्राणकी खींचातानीसे २४२
भगवान्‌के निकट आनेका एक अवसर ३६८
चैत्यपुरुषकी योजनासे ३७६
(दे० 'कठिनाई'; 'जगत्', 'भगवान्', 'व्याख्या' भी)
दुःखोंकी माता (सावित्रीमें)
कहती है : 'जब जगत् अंतिम निद्रामें . . मैं भी शाश्वत शांतिमें . . ' ३७२-७३
दुर्गा
-की कहानी, असुर-संहारकी १९१
दुर्घटना १०७, ११३, १५८
भयके कारण १५९
भी संतुलन-भंगसे १६४
-से सुरक्षा १६८
-के पीछे छोटी-छोटी सत्ताएं १७२
सामूहिक, में अनुपातका प्रश्न ३८८, ३९०
(दे० 'चुनाव', 'छूत' भी)
दुर्भावना ९७, १३३, १३९, १५४, १७७, २५८
किस तरह क्रिया करती है ? १३७-३८
क्यों होती है ? १३९-४१
पशुओंमें होती है क्या ? १४०-४४
मनुष्यमें, का मूल १४०, १४१, १४२, १४४
-के आक्रमण १७१
-से सुरक्षा १७१-७२
दूसरी ओर [दूसरी दिशा]
अचानक, जा पहुंचते हो ४८, ९९, २१०, २११, ३८१
-से मतलब ४८अ
दूसरे
-की मान्यताको दकियानूसी मानना और अपनीको सत्य १४६
-की जान लेनेका तुम्हें क्या अधिकार है ? ३३१
(दे० 'अपने-आप', 'दोष', 'परिवर्तन', 'प्रगति' भी)
दृष्टि (संपूर्ण) १८३
देना
'देकर बदलेमें लेनेकी इच्छा १३५, २२२-२३
'तुम देते हो और लेते हो १७०
'जो देते ज्यादा हैं, उन्हें मिलता भी ज्यादा है, २००
देवता
-ओंमें निर्गम अंश पैदा करनेकी क्षमता २५२, २९४
कहांसे आते हैं ? ३५५-५६
(दे० 'कल्पना' भी)
दोष
सदा दूसरेका ५, ६०
दूसरोंमें दीखनेवाले, स्वयं अपने अंदर भी २८९
(दे० 'मूल' भी)

ध

धन
-शक्ति विरोधी शक्तियोंकी पकड़में १५१-५२; अब क्या अवस्था है ? १५२
-पर अधिकारकी शर्त १५२ टि०;

यह पूरी नहीं हुई १५२
देनेवालोंकी शर्त १५२-५३
एक शक्ति है, उसे व्यक्तिगत रूपसे अपने वशमें . . ३४०-४१
(दे० 'भगवान्' भी)
धर्म
-ोंका आधार व उनका जन्म २८-९; २३४
प्रत्येक, का संपूर्ण सत्यको पा लेनेका दावा २८, २३४; २३६अ; यही चीज आध्यात्मिक जीवनमें बाधक २३४-३५
-का अनुसरण करता हुआ क्या कोई भगवान्‌के साथ तादात्म्यतक पहुंच सकता है? २३५
-ों, सभी, में "कुछ चीज" सच्ची, बाकी सब . . ३११
(दे० 'कर्म-फल', 'चैत्य पुरुष', 'प्रगति' भी)
धार्मिक नियम
बहुत-से स्वास्थ्यवृत्तिके नियमोंपर आधारित १४७-४८
धोखा
देना अपने-आपको ५-६, ७, १३; ९६, १४९
'कपटीका दुर्भाग्य, २१, २७
'कपट प्राणमें छिपा रहता है ५०-२
धैर्य [धीरज] १४८, २३३
(दे० 'प्रतीक्षा', 'समय' लगता भी)
ध्यान १२४, १९९
और आध्यात्मिक प्रगति ३८-४१
-का, तो, कोई उपयोग नहीं? ४१-२
घंटोंका, और तीव्र अभीप्साका एक क्षण ८३
-में अपने-आपको रिक्त कर लेनेका यह अर्थ नहीं . . २७८अ
-के समय चेतनाका स्वभाव और दबावकी अवस्था . . २७९
हर, एक नया अंतःप्रकाश . . ., क्या ध्यानके बाद सुध रहती है कि क्या हुआ था? ३७०
-के लिये प्रतिदिन एक विशिष्ट समय रखो तो . . ३८०

न

नमनीयता [लचीलापन] १२१, २५५, २७२-७४
नम्रता दे० 'विनम्रता'
नरक ८६, १२४
नॉक, डाक्टर (ज्यूल रोमेंका) १७९
निद्रा
-से तरोताजगी : तरीका २३
और रातें भी उतनी ही विभिन्न प्रकारकी जितने कि दिन ३६
-में आश्रमके वातावरणका प्रभाव ३९७अ
(दे० 'स्वप्न'; 'रोग' भी)
नियति ३५१
-यां तीन: भौतिक, प्राणिक, मानसिक स्तरकी ८०
-को बदलना ८१; ८३, ८५-६
(दे० 'कर्म-फल', 'घटना' भी)
अपनी, का स्वामी १३१अ, १९४; चीजें प्रीतिकर नहीं हो जातीं,

प्रतिक्रिया सच्ची बन जाती है १९४
(दे० 'मृत्यु' भी)
नियतिवाद १६
-का अर्थ ३४५
(दे० 'स्वतंत्रता' भी)
नियम
बनाना ३६
व्याकरणके ९९, १२०
(दे० 'मन' भी)
निराशा दे० 'अवसाद'
निश्चेतना ८६, १३९, २०७
-का जन्म ६६, ६७
-के कारण विकृति ६६, ६७, ३९३
'निश्चेतन अपनी गतिविधिमें २१, ९५अ, ३९१
(दे० 'चेतना', 'भागवत चेतना' भी)
नैतिकता ३४४
'नैतिक अवस्था भौतिक अवस्थासे अधिक महत्त्वपूर्ण १६२-६३
(दे० 'आध्यात्मिक जीवन', 'युद्ध', 'योग' भी)
नैपोलियन ३२, ३३
न्याय
पुरस्कार और दंडकी मनुष्यकी धारणा २१, २०८

प

पत्थर
भी अभीप्सा करते हैं २१९-२०
-में ग्रहणशीलता २२०
शक्तियोंको संचित व संचारित कर सकते हैं २२०-२१
पथ [मार्ग, रास्ता]
-में ही न रुको . . ४
भगवान्‌को पानेके ६८
हर एकका, अपना ही ३६९
परदा
-पर प्रक्षिप्त, स्पंदनोंका वह बिंब ही भौतिक जगत् है २५९-६०
(दे० 'चैत्य चेतना' भी)
परिवर्तन [बदलना]
कुछ वर्ष पीछेकी तुलनामें १०, १०८
जगत्‌में ११, १४, १८; ४१, ३६०
अपना किये बिना तुम दूसरेको कैसे बदल . . १२, १४, २८९
कुछ पा चुके व प्रगति कर चुके लोगोंका २७१-७४
बूढ़ोंका २७४
(दे० 'असुर', 'प्राण', 'विरोधी शक्ति' भी)
परिस्थिति (प्रतिकूल) ६१, १४८, ३७६
परोपकार दे० 'योग', 'सहायता'
पवित्रता ९३, १७१
पशु [जानवर] ८१
-ओंमें क्रिया सहज-बोधसे १४१-४२, २३०, २३३; 'सहज-बोध ठीक-ठीक क्या है? १४४
-ओंमें मनुष्य बननेकी अभीप्सा २१९
-ओंमें मनुष्योंके लिये कैसा प्रेम होता है? २२९-३०
-ओंमें विकृति मनुष्यके संपर्कसे २३१, २६०-६१

-ओंमें रोगका क्या कारण होता है २६०
-ओंमें एक निश्चित सहज-बोध होता है २६०-६१
भूखके अनुसार खाते हैं २६१
-ओंकी अपेक्षा मनुष्योंका स्वास्थ्य नाजुक २८१
(दे० 'उदाहरण', 'कृतज्ञता', 'दुर्भावना', 'प्रेम' भी)
पाकिस्तान १८१
पुनर्जन्म ३०, १९६
(दे० 'चैत्यपुरुष' का नये भी)
पुस्तक दे० 'उदाहरण', 'तादात्म्य', 'शिक्षा'
पूर्णता
व्यक्तिगत, और परिवेश २९१
(दे० 'शरीर' भी)
पूर्णयोग
वहांसे शुरू होता है जहां दूसरे योग समाप्त होते हैं २७०
पूर्व जीवन
-ोंकी स्मृति ३०-२, ३३, ३४२
दूसरोंका बताना, ३२-३
पृथ्वी [धरती] १४५
विश्वका घन प्रतीक २६२
ज्योतिर्मय २६३अ
(दे० 'भौतिक जगत्'; 'जीवन', 'प्रगति', 'शिक्षा' भी)
पौधा दे० 'वनस्पति'
"प्रकारकी आत्मा" ३४०
प्रकृति
-की शक्तियोंका खिलौना २, १३१
-का कार्य करनेका तरीका ; इसमें प्रगति मंद और अपव्यय ५९, ३१९-२०, ३२७, ३४३; इसमें उसका सुख हो सकता है, मनुष्यका नहीं ३२८
-के लिये सब गुड़ियोंके समान ८५
एक सचेतन शक्ति है १४४
-की शक्तियों और मनुष्यमें अनुपात १४४-४५, २५४, ३६६ (दे० 'असुर' भी)
-में सब संभावनाएं हैं, २१६-१७
-की कल्पना-शक्ति २१७, २३९
-का सहयोग जरूरी, पर इसे पानेमें कठिनाई २३८-३९
-का तरीका लोगोंको मिलानेका ३२७; क्या यह जानबूझकर है ? ३२७
-का उत्तर, जल्दी करनेवालोंको ३४४
-में भी अज्ञान कोई बहाना नहीं, प्रकृतिकी चीजोंका उपयोग करना सीखनेमें मनुष्यको ३४६-५०
-के तीन गुणोंका हममें क्या अनुपात है इसे जानना जरूरी ३९५-९६
(दे० 'काम', 'समाधान' भी)
प्रगति
-का द्वार बंद : कपटीका २७; धर्म-में २९, २३५; अभिमानीका ४२
-का अवसर जीवनका प्रत्येक क्षण, प्रत्येक परिस्थिति ४५; हुई भूल १३४; दूसरोंके साथ बात-चीत या काममें असहमति २११-१२
सचेतन, और अचेतन ५८-९, ३१९

और अंतरावलोकन ९७
-के लिये हर बीजको मार्गकी कसौटी . . १६१
-से बाहर, अभिव्यक्तिसे बाहर १९६, १९७अ
घरतीपर ही १९६
-की चोटीपर पहुंचकर यदि प्रगति-का स्तर बदल न जाय . . १९६-९७
'जो चीज आगे नहीं बढ़ती, वह पीछे गिरती है १९७
भौतिक १९७
मानसिक १९७, २०१
मृत्युके बाद भी १९७, २४८-४९
आंतरिक, और सच्ची १९९-२००
-की यदि प्राण ठान ले २४६
युद्धोंके द्वारा २५४
सतत, की आवश्यकताके कारण ही चीजें ठीक नहीं लगतीं २९८
मन-प्राणकी, का अगले जन्ममें महत्त्व उसी हदतक जितना वे चैत्य प्रभावमें . ३४२अ (दे० 'जन्म' भी)
आध्यात्मिक . . . अदृश्य शत्रु बदला लेने . . लेकिन भागवत कृपा हमारे साथ है ३५८
और शांति ३९५
(दे० 'विकास'; 'चैत्यपुरुष', 'जीवन', 'ध्यान', 'परिवर्तन', 'भगवान्', 'मनुष्य', 'योग', 'रोग' भी)
प्रतिमाशास्त्री १२२, २५५
प्रतिरोध दे० 'ग्रहणशीलता'
प्रतीक्षा
करना जानना समयको पक्षमें रखना है ३७८
प्रयास [अध्यवसाय]
-ों, छोटे, अलक्षित, आंतरिक विजयके, का प्रभाव संसारपर १८-९
करने योग्य, ३७-८, ५४अ, ६१, १३८, १९०-९५, २१७अ, २३९, २८९ (दे० 'चीज' महत्त्व-पूर्ण भी)
-की अपेक्षा ८९, १९३, २५७
व्यक्तिगत, का स्थान ही कहां यदि हमारी इच्छा केवल विश्व 'इच्छा' की अभिव्यक्ति रूप ही है? १८६-८८
ज्यादा अच्छेके लिये, न करते यदि सब ठीक चलता २९८
'तुम हमेशा शुरू कर सकते हो ३३४ (दे० 'संकल्प', 'काम'; 'अभिमान', 'जन्म' भी)
प्रलय ३३६, ३७२
प्रशंसा
ख्याति व सम्मानकी इच्छा ७, १४९, १५३, २३१, ३२६ (दे० 'लाभ' भी)
प्रश्न
पूछना, १०३
(दे० 'एकाग्रता', 'योगी' भी)
प्राण
सहयोगी, में भी छिपी प्रत्याशा ५०-२
-पर निर्भर संगीतकी शक्ति ७०-१
-को सुप्त कर देनेका फल ७०, ११०, २४५

-की सच्ची और गलत भूमिका ९५
(दे० 'सत्ता' भी)
-शक्तिके बिना तुम कुछ नहीं कर सकते ११०
-के स्थानपर क्या कोई और उच्चतर शक्ति नहीं रखी जा सकती ? ११०
-के रूपांतरकी जरूरत ११०
-प्रधान जीवन १२७
मृत्युके बाद १२७-२८
स्वभावसे अमर है २०१
अपने-आपको नष्ट कैसे कर लेता है २०१
विरोधी प्राणके प्रभावमें २२४
और मनमें ज्यादा जल्दी प्रगति किसकी ? २४१-४२
अगर परिवर्तित न हो और मनको विश्वास हो ? २४२
-को क्या बदला नहीं जा सकता ? २४२
-का चरित्र २४३-४६
-का आत्मदान, २४३-४४
परिवर्तित, मूल्यवान् यंत्र २४४, २४६
-के साथ व्यवहार २४७
(दे० 'अभीप्सा', 'ग्रहणशीलता', 'नियति', 'प्रगति', 'मन', 'रोग' भी)

प्राणायाम ५६ टि०

प्राणिक सत्ता [प्राणलोककी सत्ता]
-एं छोटी-छोटी ३३, १७२
-ओंसे छुटकारा पानेके लिये . . ९०-१
-ओंमें चैत्य पुरुष नहीं ९३
-ओंमें शुद्ध, उदात्त और सुन्दरके प्रति, (भागवत उपस्थितिके प्रति) घृणा ९३, २२४
-एं आध्यात्मिक पवित्रताकी शक्तिमें पड़कर विलीन . . ९३, १११अ, १७८
-एं तुम्हारे चारों ओर मृत्युके बाद इकट्ठी . . १२२
-ओंको मनुष्योंने परम प्रभु माना २७०अ
-एं, अंतिम स्रष्टा २९४
(दे० 'असुर', 'विरोधी शक्ति', 'भागवत शक्ति', 'मनुष्य', 'युद्ध' भी)

प्रार्थना १८, १८५
कुछको, पसंद नहीं : कारण ८७
रोगीके मंगलके लिये १२६
-के कई प्रकार : यांत्रिक, याचनारूप, अभीप्सा रूप १३३
कृतज्ञता-भरी १३५, १३७
सहज, निःस्वार्थ १३५
अभीप्साके बावजूद, जरूरी १३६-३७
छोटे बच्चेकी १५५
दूसरेके कष्ट व कठिनाईमें १५६
अपनी रोग-मुक्तिके लिये २७८
(दे० 'अभीप्सा', 'भगवती माता' भी)

प्रेम
-की प्राणियोंमें पहली अभिव्यक्ति, हड़प लेनेकी इच्छामें १४२-४३
-की क्रिया मनुष्योंतक ही सीमित नहीं, वह फूलों, पेड़ों, पत्थरोंमें भी २१८, २१९ टि०, २२०

शाश्वत और सार्वभौम है, यह भागवत शक्ति है २१९ टि०, २२५, २३२
-में जो विकार हम देखते हैं वे यंत्रों- के हैं २१९ टि०, २२१-२२
-की शुद्ध गति २२१अ
-का मनुष्यने जो कर डाला है २२२, २२४
-का प्रथम संपर्क अपने शुद्ध तत्त्वका कुछ अंश . . लेकिन बादमें मानव स्वभाव . . २२२
आया, जगत्‌को भगवान्‌की ओर वापस . . २२५-२६, २२७
तादात्म्यका आनंद है, ऐक्यके आनंदमें वह . . २२६
दो तरहकी गतियों — आकर्षण और आत्मदान — से बना है २२७
'तुम मुझसे प्यार करो तो मैं भी तुमसे प्यार करूंगा २२७, २२८
मानव : व्यापार रूप २२७, २२९
सच्चा २२८, २२९
-में पतनका आरंभ २२८-२९
भागवत, में सबसे बाधक चीज २३१
-का रूप जड़पदार्थ, वनस्पति व पशुओंमें २३२
मादामें २३२-३४
(दे० 'पशु', 'वनस्पति जगत्' भी)
प्रेरणा
और तकनीक ४४, ६५
-एं बहुत स्थानोंसे आती हैं १९८
"प्रेरित या अनुप्रेरित :" अर्थ १९८
जब हम चाहें तब नहीं आती ? १९९
-को सीधे कागजतक . . ३०८
(दे० 'संगीत' भी)

फ

फल दे० 'वनस्पति'
फल-कामना दे० 'लाभ'
फूल दे० 'वनस्पति'
फोटो
-से चरित्र जानना २०९
फोटोग्राफी ३१७

ब

बंबई की कलाशैलियां ३२५
बलि
मनुष्यकी, और बकरेकी ३३०-३१
बाल ७१, ७३, २४९
बालक [बच्चे]
-के शरीर : का सहजबोध और आत्म-विश्वास १७९, २८२, २८३-८४; में वृद्धिकी लोच २४८
आश्रमके १७९; और बाहरके २७६, ३९७-९८
खर्च करते हैं और पाते हैं २००
-का मूल्य ऐसी चीज होनेमें ही है . . २७३
जब किसी चीजमें रस लेते हैं तो सोना नहीं चाहते २८२
-के लिये बड़ोंके बीच अधिक रहना बुरा २८२

हमसे पूछते हैं कि हम यहां क्यों हैं . . २८४-८५
मांका निःसृत अंश, पर मां-बापसे भिन्न ३६४-६५
में "विनाशकी सहज प्रवृत्ति" : व्याख्या ३९०-९१
वयस्क व्यक्तियों जितने 'ठोस', स्थूल नहीं होते ३९०-९१
-के इस दुनियामें आनेके लिये सर्वश्रेष्ठ परिस्थिति ३९१-९२
कुछ, दुष्ट होते हैं : कारण ३९३-९४
-पर गर्भाधानके समयकी मां-बाप की चेतनाका प्रभाव ३९३
-को मां तो अच्छी शिक्षा दे, पर आस-पासके लोग . . ३९४
-को नौकरोंके साथ छोड़ना ३९४
कुछ, चीजोंमें तभी रस लेते हैं जब कोई उत्तेजना हो, क्यों ? ३९५
(दे० 'आश्रमवासी बच्चोंसे', 'कर्म' भी)
बाल्मीकि ३१२
बिल्ली दे० 'उदाहरण'; 'श्रीमाताजी'
बुद्ध १८, ७४, ३४१
(दे० 'समाधान' भी)
बुद्धि
-की एक सच्ची गति है और एक गलत", सच्ची गति कौन-सी है ? १०१-३, १०५ (दे० 'सत्ता' भी)
-का काम : भावोंको विचारोंका रूप देना और उन्हें संगठित करना १०२
-का गलत उपयोग २३०अ
(दे० 'मन' भी)
बुद्धिमत्ता ७६
ल बोस्यू (कुबड़ा) नाटक २१३-१४
बौद्ध धर्म
दक्षिण भारत और उत्तर भारतका ३१०-११
(दे० 'जापान' भी)
ब्राह्मणजाति २३६

भ

भगवती माता [दिव्य माता]
-का अंतर्दर्शन विभिन्न रूपोंमें २५
-का अपने बच्चोंके लिये कष्ट झेलना ३७०
-के धरतीपर उतरने और मानव रूप धारण करनेका कारण ३७१
भगवान्
-को काममें लाना अपनी इच्छाओं-की तुष्टिके लिये ४, ६
-को असुर भी धोखा नहीं . . ५
-के बिना जब जीवनका कोई अर्थ नहीं होता ६
सब जगह हैं, मानव जातिकी सेवा भगवान्‌की सेवा १०-१
सब चीजोंमें हैं, फिर चीजें बदलती क्यों नहीं ? ११
-के कार्यके लिये पैसा . . १२, १५२
-की अनुभूति और अहं (अभिमान) १३, ३३२, ३६७
-के वह ज्यादा निकट जिसने भूलें कीं . . १३, ३३३
ही हैं जिनका अस्तित्व है १५, ६८, ७७, २९५

-से ही यदि सब कुछ आता है तो इतनी भूलें क्यों ? १६
प्रत्युत्तर कैसे देते हैं जब वे निष्कपट नहीं ? २०
तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो ४९, १११
हमारे द्वारा कार्य कर रहे हैं यह अनुभव करनेका उपाय ५२-३
-के साथ ऐक्य-प्राप्त चेतना सभी चीजोंमें रस लेती . . ६३-४
और उनकी सृष्टि ६६-८, १५४-५५, २९४-९८, ३५५-५७
(दे० 'जगत्', 'विश्व' भी)
-का अनुभव हर एकका वही होता है ६८, ७४
-के रूपको हर चीजमें देखना और भगवान्‌का शुद्ध बोध ७४-५, ३०७-८
क्या अपने-आपको हमसे अलग कर सकते हैं ? ७७
और देव ७७ टि०, १५६, २२१
-को पाकर भी न जानना, यह कैसे ? ७८ टि०
-के अस्तित्वपर तो नहीं, पर प्रगति-पर विश्वास; ये लोग प्रार्थना नहीं अभीप्सा कर सकते हैं १३६
सर्वशक्तिमान् हैं, वे जो चाहें कर सकते हैं" का विचार १५३-५४ ; ऐसे भगवान् दानव १५४
-को तुम एक व्यक्ति बना लेते हो, पर भगवान् और सृष्टि एक ही चीज हैं १५४-५५, २९६-९७
-को क्या तादात्म्य-पद्धति द्वारा पाया जा सकता है ? २१४-१५, ३०८
-के साथ एकता तीन दिन या तीन घंटे या तीन मिनटमें (श्री रामकृष्ण) २१५
-की अनुभूतिमें बाधक चीज २१६, ३२१, ३३२, ३३५
-के बारेमें कुछ क्षण सोचना फिर सैकड़ों दूसरी चीजों . . २१६
वे, अधिमानसके हैं २७०
-को पूरी तरह भौतिक जगत्‌में कैसे अभिव्यक्त कर सकते हो ! ३०६-७, ३०८
-की अनुभूति भौतिक क्षेत्रमें ३०८
नैतिकतावादी नहीं ३३२
-को पानेके लिये महत्त्वपूर्ण चीज ३३२, ३३३
-से कभी कुछ न मांगो" पर सामान्य लोगोंकी प्रतिक्रिया ३५१
-के ये अदृश्य शत्रु कौन-से हैं ? ३५८
क्या दुःख-कष्ट देते हैं ? (तू मेरे लिये सुख चुने या दुःख . .) ३६७-६८
'भागवत बलिदान ३७१
(दे० 'अभीप्सा', 'जीवन', 'भौतिक जगत्', 'श्रद्धा', 'समर्पण', 'सौदेबाजी' तथा 'भागवत . . ' के अंतर्गत भी)
भय [डर] १७१, १९८
कर्म-फलका व भगवान्‌का ८६-७, १४७, १४८
प्राणिक सत्ताओंकी शरारत ११०अ
-से मुक्तिके तरीके : चैत्य प्रकाश, विवेक, श्रद्धा, साहस . . १११-१२, ३०१-५

जिम्नास्टिक्स करते समय ११२
और भौतिक सहज-बोध ११२-१३
शारीरिक १५९, १६०
मानसिक, प्राणिक और शारीरिकमें क्या भेद है? १५९-६१
और जुगुप्सा १७०
खोनेका, बदलेमें कुछ लेनेके पीछे २२२-२३
पशुओंके प्रेममें २२९अ
-के सुझावोंको शरीर-ग्रहण करनेके साथ स्वीकार करना जरूरी है क्या? २९९
उस चीजको खींचता है जिससे तुम डरते हो ३०३
-के बारेमें शेखी ३०४
सामूहिक, छूतकी चीज ३०४
(दे० 'दुर्घटना', 'रोग' भी)
भागवत उपलब्धि
और रूपांतरतक संगीत, कला या किसी और चीजके रास्ते हम क्यों नहीं पहुंच सकते? ७८-९
भागवत उपस्थिति
-की चेतना ही तब काम करेगी ६९-७०
पत्थरोंतकमें २२०, २२१
-का अनुभव क्या बुरे वातावरणमें भी संभव है? ३३२
(दे० 'प्राणिक सत्ता' भी)
भागवत कृपा [कृपा] २१२, २७१
है यह, कि सारे द्रव्यको एक जगह . . और यह तुम्हारा कार्यक्षेत्र है २८९अ
और वैश्व न्याय ३४४-५०
क्या आवाहन करनेपर हस्तक्षेप करती है? ३५०; इस कार्य-का, आवाहनका, कारण क्या है? ३५१
हमारे विश्वासके अनुपातमें काम करती है ३५३, ३५४; भगवान्-में अगर विश्वास न हो और संकटमें कोई पुकारे तो? ३५३; भगवान्‌को अगर बुलाया न जाय तो क्या वे सहायता नहीं करते? ३५४
-का लोगोंको भान नहीं होता जब-तक कोई खतरा न आ जाय ३८८
(दे० 'आश्रमवासी', 'कर्म-फल', 'जिम्मेदारी', 'प्रगति,' 'मनुष्य' भी)
भागवत चेतना [परम सत्य चेतना]
-का अभ्यास कैसे किया जाय? ५९-६१
-का तरीका, और प्रकृतिका तरीका निश्चेतनाको चेतनाकी ओर गति करवानेका ८४-५
-की दृष्टि २५६, २६०
(दे० 'ओरोविल' भी)
भागवत प्रेम दे० 'प्रेम'
भागवत शक्ति [दिव्य शक्ति]
-योंको जबरदस्ती खींचना २०
-योंको समा सकनेके लिये २१
-का कार्य हमारे सचेतन सहयोगके साथ और उसके बिना ५८-९
-के अवतरणको न सह सकनेवाले लोग और सह सकनेवाले चुने यंत्र २४०
यंत्रका चुनाव कैसे करती है?

२४०-४१
-के अवतरणके परिणाम साधकके मन, प्राण व शरीरकी ग्रहणशीलताके अनुरूप २४७
शब्दोंको नहीं, चेतनाकी अवस्थाको देखती है २८८
-के अवतरणकी प्रतिक्रिया-स्वरूप प्राणिक शक्तियोंका अवतरण २९३
(दे० 'शक्ति' भी)
मागवत संरक्षण
-के अंदर होने और संरक्षणसे बाहर चले जानेका अर्थ १५८, १६८, १७१-७२
भारत
-की स्वतंत्रता दे० 'श्रीमाताजी'
दक्षिण, के लोग ३१०
-की कला ३१६, ३२५
भाव
और विचारमें भेद जानते हो? १०३-४
'शुद्ध भाव ३७९अ
भूत
भविष्य, वर्तमान सब एक ही काल हैं १८०
भूल १३, ५९, ११०
-ों, बिन जाने हुई, को कैसे जाना जाय? ५०-१
-का बोध, सहज रूपसे होना सत्य-चेतनाकी ओर एक प्रगति ६०
मैंने कभी कोई नहीं की, ऐसा कौन ... ३४४अ, ३५०
-की सजा जैसे कानूनमें, वैसे प्रकृतिमें ३४६-५०
(दे० 'दोष'; 'प्रगति', 'भगवान्', 'व्याख्या' भी)
भुलाना दे० 'दुःख-कष्ट'
भोजन मसालेवाला ३९५
भौतिक जगत् २०७
-की स्थिरताका प्रयोजन २४८
वैश्व गतियोंका स्फटिकीकरण २५९
-का रूपांतर करनेके लिये भागवत अंश यहां क्यों आते हैं, अदृश्य लोकोंमें ही काम कर लें तो.. २६१-६२
(दे० 'जगत्', 'पृथ्वी'; 'परदा' भी)

म

मंदिर
कलाकी अभिव्यक्ति थे ३२३अ
मतांधता २६, १४६, ३१४
मध्यम मार्ग ३४१
मन
-को विश्राम देना कठिन २३
नीरव..., नींद अच्छी २३
और प्राण वहां मौजूद लाभ उठानेके लिये ५१अ
'मानसिक तत्त्व हमारी अनुभूतिकी व्याख्याओंमें ७५
-की सच्ची व गलत भूमिका व उपयोग ९४, ३८४ (दे० 'बुद्धि' भी)
-यंत्रकी रचना किस लिये १३२, २०२
-के किसी नियमके साथ बंधन.. १४६

भौतिक १६६अ; की निम्न प्राण-के साथ मैत्री २०२-३टि०
प्राणके परिवर्तनके लिये काफी नहीं २०२-३, २४२-४३
-से ही विकृतिका आरंभ २३०, २३१
-का परिवर्तन पहले होना अच्छा २४२
और प्राणका संघर्ष २४२-४३
एक बड़ा उपदेशक २४३
-का एक स्तर है जहां हर चीजकी स्मृति संचित है २६४
-को नीरव करना होगा पृथ्वीकी स्मृतिको पढ़नेके लिये २६४; तब दिनके काम अगर भूल जायं.. २६५
-को ठीक राहपर दौड़ाओ ३६९-७०
(दे० 'अभीप्सा', 'प्रगति', 'प्राण', 'भय', 'शरीर', 'सुझाव' भी)
मनुष्य [लोग]
-ोंका एक साथ मिलना और एक-दूसरेको पहचानना २, २९-३०
उदार और बुद्धिमान्को बदलना कठिन १३, १५
है ही क्या! ११, १३, २१८, २९८, ३२१
झूठे, दुष्ट, कपटी, अपराधी, अधम २०अ, ९३, २४३, २४४, ३६४
-की प्रतिक्रिया भागवत शक्तिकी क्रियाके प्रति : असचेतनता, विद्रोह, आत्मदान ५८-९
-की प्रगति पिछले तीन हजार वर्षों-में ५९
-का हस्तक्षेप प्रकृतिके कार्योंमें ५९
अधिकतर, आवेगोंके अनुसार.. ८६
और प्राणलोककी सत्ताओंमें अंतर ९२-३
-में चैत्य उपस्थिति एक विशेष कृपा, ९२-३
कोई ऐसा नहीं जो बदल न सके ९३
हीं रूपांतरका काम करेगा और असुरको भाग जाने.. ९३
-की चेतना व दृष्टि सीमित १४४, १७२
अपने-आपमें बंद है २१२, २२२, २९८, ३७५
कुछ, बुद्धिमान् और कुछ मूर्ख, ऐसा क्यों? २१६-१७
क्या भगवान्की ओर बढ़ रहे हैं? २३७
कुछ पहाड़का पूरा चक्कर लगानेको बाधित और कुछ.. २७३
-की अपनी महत्ता व मूल्यके बारेमें अजीब धारणा ३३१
(दे० 'व्यक्ति', 'सत्ता', 'उदाहरण', 'पशु', 'प्रेम', 'प्रकृति', 'प्राणिक सत्ता' भी)
मरियम कुमारी २५
महत्त्वाकांक्षा २०, २४४
-से अनेक योगियोंका नाश ७
एक नासूर ७
-का एक सामान्य रूप : मानव सेवा-का विचार १०-१९
(दे० 'अभिमान', 'प्रशंसा' भी)
महाभारत दे० 'रामायण'
मां

-में ग्रहणशीलता और अभीप्सा २०७
-को शिक्षाके जिस भागमेंसे गुजरना चाहिये ३९२
माताजी दे० 'श्रीमाताजी'
मानवजाति दे० 'दुःख-कष्ट', 'सहायता'
मानसिक रचना [रचना] १२५, १५७ टि०, १६८
-एं अशुभ २१, १३७-३८, १६६, १७१, ३६९, ३८४
जिसने नीले कागजका रूप लिया २४२
-एं प्रसन्न, अनुकूल ३७०, ३८४ (दे० 'अंधविश्वास' भी)
मिथ्यात्व २३७, ३५६
मिथ्यात्वका प्रभु [राष्ट्रोंका स्वामी] ९२; ३५९-६०, ३६१, ३६२
मिस्र (प्राचीन) ३१५, ३२३
मुस्कराना
शत्रुके सामने ३५३-५४ (दे० 'समता' भी)
मूर्खता ४८, १८६, २४२
घमंडके अनुपातमें २६
-भरी चीजोंको : रोकनेका बल मनमें नहीं, केवल चैत्यपुरुषमें २०२-३; करनेका एक सामान्य बहाना २०३-४
सबसे बड़ी : आत्मसंतोष ३२१
मूल्यांकन
मानव चेतनाके मापसे १३, २५४, २५६, २९८
मृत्यु १०७, २६०, ३६२
-के बाद जो बना रहता है ३०, ३४३
न हो तो बुढ़ापेके साथ शरीर बेकार हो जायंगे ? १०५-६
-का कारण १०५, १३१, १९७, २४८
जरूरी नहीं १०५, १३१, ३०२, ३४३
-के बाद : आदमी कहां जाता है ? १०९ ; की नियति सबकी समान क्यों हो ? १०९
-को एक छुटकारा मानना १२२-२३
-के समय सब बिखर जायगा यदि सत्तामें एकीकरण न हुआ १२७-२८ ; और यह बड़े सौभाग्यकी बात है १२८
-का देवता या आत्माएं १२८-२९
-की आत्माको किसीके घर आनेसे रोका जा सकता है, पर उसे उसके प्राप्यसे वंचित नहीं १२९, १८४
-की आत्माको लोग चले जानेको क्यों नहीं कह देते ? १३०-३१
-को यदि हमारी स्वीकृति न हो १३१
-के सामूहिक सुझावसे मुक्त होनेके लिये २९९
-के भयसे मुक्तिके तरीके : बौद्धिक, चैत्य और योद्धाका ३०१-३
क्यों नहीं मरती अगर जीवन मृत्युमें बदल गया है ? ३६०अ
-के अंतिम क्षणोंकी चेतना ३९३ (दे० 'प्रगति' भी)
मोजार ७३

य

यंत्र
-को पूर्ण बनानेके लिये . . ४५
भौतिक, का महत्त्व नहीं, महत्त्व है पीछेकी चीजका ७०
यसाई (वायलिन वादक) २५१
युद्ध
जब अनिवार्य हो तो भी उच्चतर शक्तिके आवाहनसे उसके विस्तार और परिणामोंको बदल . . १८४
पहला, भौतिक जगत्में प्राणिक शक्तियोंके अवतरणका परिणाम २९२; इसके बाद नैतिक स्तर बहुत गिर गया २९२अ; यह अवतरण क्यों हुआ ? २९३
मृत्युके विरुद्ध ३०२-३
हर, के साथ धरतीपर सड़ांध ३१७
नयी सृष्टिके लिये, देवोंका असुरोंके साथ ३५६
-में, पहले दो, के पीछे 'मिथ्यात्वका प्रभु' ३५९
(दे० 'झगड़ा'; 'प्रगति' भी)
यूनान (प्राचीन) ३१५, ३२३, ३२६
योग १९९, २९९, ३७४
शुरू करनेपर अंततक जाना ४
और परोपकार १५
जो योग करनेके लिये नहीं, परिणाम पानेके लिये . . २०
करनेका जिन्होंने कभी दावा नहीं किया, पर . . ४१
-का लक्ष्य : संकेंद्रित प्रगति ५९, २५३ टि०
और संगीत ७१, ७२
प्रारंभ करनेपर बाधाएं . . १४८
-का अनिवार्य आधार १४८
और रोग दे० 'रोग'
-में प्रगति करनेके लिये कहा जाता है कि . . १६८, ३५१
करनेवालोंको प्राणलोकका सैनिक होना चाहिये १७१अ
-की जरूरतें और नैतिकता ३३३
(दे० 'आध्यात्मिक जीवन', 'पूर्ण-योग'; 'अंधविश्वास', 'सच्चाई' भी)
योगी १२७
-के लिये कोई नियम नहीं १२८
सब प्रश्नोंका उत्तर दे सकता है, की धारणा २६८ टि०
(दे० 'महत्त्वाकांक्षा', 'साधु' भी)

र

राधाकी प्रार्थना ३६७
राम ३०९
रामायण ३६२
और महाभारतकी घटनाएं क्या सच्ची नहीं हैं ? ३०८अ, ३१०-१४
रावण ३१०, ३१३, ३६२
रूप [आकार] दे० 'शरीर'
रूपदाता [मध्यवर्ती सत्ताएं]
-ओंका सृष्टि-रचनामें हाथ ८१-२, २९३
ये, कौन हैं ? २९४
ये, भी क्या भगवान्से ही आये ? २९४अ

रूपांतर
किसी भी मार्गने नहीं पाया ७८
और ग्रहणशीलतामें अतिमनका रस २८७-८९
(दे० 'कला', 'भागवत उपलब्धि', 'भौतिक जगत्', 'शरीर' भी)
रोग [बीमारी]
स्वप्नगत आघातसे २४अ
-से छुटकारा, कामके द्वारा ११४
-के बारेमें ११४-१६, १५७-५८, १६१-७९, २४७-४८, २५९, २७८
संतुलन-भंग : से, न कि कीटाणुओंसे ११४-१६, १६१अ, १६३अ, १६९; को कुछ पकड़े रहते हैं ११५, १७६; के आंतरिक कारण — शारीरिक १६५, प्राणिक व मानसिक १६६, अवयवोंका संघर्ष १६६-६७, आध्यात्मिक (एक भागमें तीव्र अभीप्सा और प्रगति, दूसरेमें अग्रहणशीलता) १५७-५८ १६७-६९, २४८; के बाहरी कारण (दुर्भावना, विरोधी शक्तियोंके आक्रमण . .) १७०-७३
ठीक करनेके लिये ११४-१५, १६६, १६९, १७२, १७६-७९, २५९, २७८
'मैं तो बीमार होना नहीं चाहता, का तर्क ११५, १७८
और भय १५९, १६२, १७०
क्या योगमें कसौटियां हैं ? १६१
'बीमार होनेपर गलत और सही चिंतन १६१, २८३-८४, ३६९, ३८४
साधारण जीवनमें समीके साथ १७९; वहां भी जिनमें आत्म-विश्वास . . १७९
स्नायविक व अनिद्रा, दूर करनेके लिये तादात्म्य-पद्धति २१४
-मुक्तिकी चेतना २७८
वैश्व न्याय है ३४४
-के साथ प्रकृतिमें उसका इलाज भी ३४८
(दे० 'चुनाव', 'प्रार्थना', 'हस्तक्षेप' भी)
रोम
-ने यूनानको जीता और उससे प्रभावित हुआ ३२६

ल

लक्ष्य
ऊंचा, विस्तृत, उदार, निःस्वार्थ : व्याख्या ३७४-७५; यह तुम्हारे जीवनको बहुमूल्य बना देगा ३७५
सबसे ऊंचा ३७४
(दे० 'जीवन'-के, 'श्रीमाताजी' भी)
लाभ
आत्मसंतोषका, सुखका, अच्छी रायका ५१अ
बदलेमें, उठानेकी इच्छा २३१
(दे० 'सौदेबाजी' भी)
लियोनार्दो द विन्सी ३१६
लुई चौदहवें, का काल ३२०

वनस्पति जगत् ८०, ८१, ३४८
कुकुरमुत्ता : ३२२, ३२३, ३२४
गुलाब : खिलता है सौंदर्यके सहज आनंदके लिये २३१, २३२; चैत्य दृष्टिसे मनुष्यसे अच्छा २३१
पौधा : -ोंकी प्रकाशके लिये अभीप्सा २१८, २३९; -, क्या किसी और चीजके लिये अभीप्सा कर सकते हैं ? २१९; -, पराश्रयी ३२३; -ोंकी संख्या धरतीपर और उपयोगमें आनेवाले ३४९
फल : अच्छे भी हैं, विषैले भी ३४७; कुछ, पक जानेपर पुष्टिकर, कच्चे . . विषकारी ३४७-४८
फूल : -ोंको आप किस तरह अर्थ देती हैं ? २२१; क्या प्रेम करते हैं ? २३१-३२ (दे० 'ज्ञान', 'प्रेम' भी)
वाणी
'हम चीजोंको एक-दूसरेके बाद कहनेके लिये बाधित हैं १८०, १८६
'विवाद जब किसीके साथ हो २११
'संसारको "शाश्वत वाणी" प्रदान करना ३३७, ३३८
'डींग मत मारो, अपने क्रिया-कलापोंको बोलने दो ३९९ टि० (दे० 'आंतरिक वाणी' भी)
वातावरण
असंतुलनसे भरा है १७०, १७१
-में छोटी-छोटी सताएं, १७२
चुननेका महत्त्व २००
-के संसर्गसे सावधान ३९०
वायु ५६ टि०, ६२अ
विकास
एक कुंडलाकार गति है २३७, ३१७
कुंडलाकार क्यों बढ़ता है ? ३१८
-में क्या सब कुंडलाकार गति करते हैं, सब साथ या अलग-अलग ? ३१९-२०
(दे० 'प्रगति' भी)
विकृति दे० 'मन', 'सत्ता'
विचार
-ोंका स्वतंत्र जीवन एवं विचार-रचनाकी शक्ति १७, १२५-२६, १३२-३३ (दे० 'मानसिक रचना' भी)
-के स्पंदनोंके, शब्द केवल माध्यम ६८-९
-ोंकी व्यवस्था १०२, १९५
विरोधी, मनमें, एक साथ, १०३ (दे० 'इच्छा' भी)
-ों, विरोधी, में समन्वय ढूंढ़नेके लिये १०४, २११
-ोंके बारेमें सतर्क रहना चाहिये १२५
बुरा, बुरा कार्य है १३८
बुरे, उकसानेमें मजा लेना १३८
-ोंको विस्तृत करनेका तरीका २११
-की भगवान्‌पर एकाग्रता २१५
कि अनंत सांतमें नहीं रह सकता . . ३००
(दे० 'सिद्धांत', 'सहायता', 'रोग', 'बीमार' भी)

विजय २५४
हमारी, क्या संसारके लिये काम करेगी ? १९
कामनाके आवेगोंपर : क्रम २०४-५
प्राप्त करनेवालेपर विजितकी आत्माका प्रभाव ३२६-२७
(दे० 'सफलता'; 'प्रयास' भी)
विज्ञान
'वैज्ञानिकोंकी चेतना क्या छोटी . . २७
-के बारेमें ६२-३
द्वारा क्या मूल वस्तुको खोजा जा सकता है ? ७६
-में नया शोध, भूतकालके परीक्षणों-परसे, आगे २७१
(दे० 'एकाग्रता' भी)
विनम्रता [नम्रता]
और ज्ञान २६-७
दिखावटी २७
-की आवश्यकता ४२, ८७
ठीक और गलत ४२-३
विनाश
-की सहज प्रवृत्ति २२४-२५, ३९०-९१
(दे० 'महत्त्वाकांक्षा', 'सभ्यता' भी)
विभाजन दे० 'अलगाव'
विभिन्नता का सत्य ३३०
विरोधी शक्ति
-योंके अस्तित्वका हेतु ८७-८, ९०, ९१
-के आक्रमण : अग्नि-परीक्षाएं ८७-९०, १४८; को न देख पानेका कारण ९५; को हम कैसे जान सकते हैं ? १४९; संरक्षणसे बाहर जानेपर १५८
-को खदेड़ देनेपर दुबारा आक्रमण क्यों ? ८८-९
-को कोई चीज प्रत्युत्तर देती है ८८-९०, १७३; इसमें करणीय ८९-९०
-को बाहर फेंक देनेपर वे मरती नहीं, कहीं और चली जाती हैं ९०, ३६०
-को नष्ट करनेके लिये ९०
-को बदल देना क्या ज्यादा अच्छा न होगा ? ९२-३
और दूसरी शक्तियोंमें भेद न कर सकना, दो अवस्थाओंमें ९५-६
द्वारा—अंधकार, विनाश, दुष्टता, घृणाकी शक्तियोंद्वारा — कभी हांके न जानेके लिये . . २२५
(दे० 'असुर', 'प्राणिक सत्ता'; 'जगत्', 'मद्य', 'रोग' भी)
विवेकानंद २७१, ३६४
विश्व [सृष्टि]
-के अस्तित्वका हेतु ७, ६५
-में कोई दो क्षण, दो चीजें, दो सत्ताएं एक-सी नहीं २६, २१६, २१७, ३६४
-में यदि सत्य न होता तो वह टिक न सकता ३७
विषयक क्यों, कैसे, का उत्तर एक गुह्यवेत्ताका ३७
जिन्हें संतोषजनक नहीं लगता उन्हें मैं कहूंगी ३७-८, २९५
-का मूल स्रोत और अभिव्यक्ति ६६-८
-में शाश्वत शुभ-अशुभकी मान्यता

६७-८
-की व्याख्या सब कुछसे ७५
'संभूतिमें सब कालमें रूप लेता है ८३
-के क्यों और कैसेको जाननेके लिये ८३, २९६, २९८
-में लोकोंका गायब हो जाना भी क्या है! १४५
-की व्याख्या जब शब्दोंमें १८०, १८६
सारा एक संबद्ध लड़ी है १८५ (दे० 'एकता' भी)
-लीलामें भाग लेनेके तरीके १९२ टि०; यह लीला क्या है? १९२
एक चक्र है, गोला है २६२
-की रचना सात बार, ३३६
वर्तमान, का तत्त्व संतुलन ३३६
हमारी, ही भगवान्‌का एकमात्र बाह्य मूर्त रूप नहीं ३५७अ
हमारी, बाह्य रूपमें ही शोचनीय ३५८
(दे० 'जगत्'; 'चुनाव', 'भगवान्' भी)
विश्व-चेतना [विस्तृत चेतना] दे० 'घटना', 'चेतना', 'सौंदर्य'
विश्वामित्र (ऋषि) १५
विश्वास दे० 'श्रद्धा'
विस्फोटकों की खोज ३४८-४९
वीर ४८, १७१अ, २२५, २४३, ३०३ (दे० 'साहस' भी)
वैज्ञानिक २७, १२१, १२२, २७१
व्यक्ति
अलग-अलग मार्गोंसे बना है ८, ९, १६, १२६
-का सोचने-समझनेका अपना ही तरीका, २६
दूसरोंसे अलग, एक स्वतंत्र सत्ता है यह प्रतीति ५३, ६६, १८८
प्रत्येक, में दकियानूसी मान्यता १४६
क्या वैश्व गतियोंका अभिलेखीमर है? उसमें सर्जन या आरंभ करनेकी कोई शक्ति नहीं? १८७-८८
फिसल जाता है, फिर वापस चढ़ना आसान नहीं २२५
ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है मानों जमता जाता है २७२, ३९०
-को अकेला रहना चाहिये, दी गयी समस्याको सुलझानेके लिये, मिलकर रहनेसे समूहकी कठिनाइयां भी २९०-९२
और समूहमें हमेशा एक संबंध, एक अनुपात २९२
प्रत्येक, एक असंभवताका प्रतिनिधि ३४५
जो अकेले-अकेले सुखी रहना नहीं चाहते ३६८
(दे० 'मनुष्य', 'सत्ता', 'अपने-आप' भी)
व्यवस्था दे० 'काम', 'सत्ता'
व्याकरण ९८-९, १२०
व्याख्या
अनुकूल, की मनकी प्रवृत्ति ५, ६०, २०२अ
जीवनमें हुई भूलों व मुसीबतोंकी ७५

किसी चीजकी, के लिये विश्वका चक्कर ७५-६, ८०
(दे० 'मन', 'विश्व', 'समझना' भी)
व्यास ३१२

श

शक्ति ६५
पानेपर महत्त्वाकांक्षा ७
पानेपर सम्यक् वृत्ति ७
''खोजनेलायक यह वह चीज है वह शक्ति'' : व्याख्या ७६-७ टि०
लोग जिसे कहते हैं वह प्राण-शक्ति ही होती है ११०
-योंकी प्रवृत्ति, धरतीपर अपने-आपको प्रकट करनेकी २०५
-का कितना बड़ा सैलाब तुम्हारे अधिकारमें है! २५७-५८
(दे० 'भागवत शक्ति' भी)
शब्द दे० 'विचार', 'श्रीमाताजी'
शरीर [भौतिक]
एक बोरेकी न्याईं ८, १२६-२७
स्वस्थ, ठोस, संतुलित २१
-से बाहर जाना ४९
और शारीरिक चेतना ५४
-का रूपांतर किसीने नहीं किया ५४
-के रूपांतरमें तीन सौ वर्ष ५४-८; तीन सौ वर्ष कबसे? ५४
-का दीर्घायुष्य अपेक्षित ५५
-के रूपांतरका मतलब ५५-७
एक, में ही तीन सौ वर्ष? ५७
-के रूपांतरके लिये परिवेशमें कुछ परिवर्तन जरूरी ५७अ, २९१
-को यदि चैत्य प्रभावमें लाया जा सके १०५, ३४३
'रूपकी पूर्णता १०६, १०७-९
-का असामंजस्य चरित्रकी किसी कमीके कारण १०८
-के ह्रासका कारण १०८ (दे० 'मृत्यु' भी)
-का सहज-बोध ११२-१३, २८१-८२
ही स्वयं अपनेको अच्छा करता है ११५, १७६
-से घृणा १२२
तुम्हारा दुर्ग १२२-२३
'रूप या आकारकी एक आत्म होती है १२८
-का स्वस्थतामें आत्म-विश्वास १७७, १७९, २८३-८४
-की ग्रहणशीलता सीमित क्यों? २४८
-को कठोर होनेसे रोक सकना क्या संभव नहीं? २५५
-का हर स्थान किसी आंतरिक क्रियाका प्रतीक है'', क्यों? २५९, २६०
-की, मनसे स्वतंत्र, अपनी निजी चेतना होती है २८०-८२
-के साथ ''मैं'' पन ३०१, ३४४
-के प्रति चैत्यपुरुषकी वृत्ति ३०२
-के कारण उच्चतम मानसिक अभि-व्यक्तिमें हस्तक्षेप ३०८
-को क्षिप्त करनेवाली चीजोंसे परहेज नैतिक कारणोंसे या यौगिक कारणोंसे ३३३
-में अनुकूल बनने और सहनेकी अद्भुत क्षमता ३७७-७८, ३८४

और मनके संबंध ३८३-८४
(दे० 'अभीप्सा', 'कर्म', 'ग्रहणशीलता', 'चैत्य चेतना', 'चैत्य पुरुष', 'नैतिकता', 'प्रगति', 'बालक', 'भय,' 'यंत्र', 'समता' भी)
शांति ६१, १७७, ३७२, ३९५
(दे० 'समता' भी)
शिक्षा २०८, २३३, २८२, २८३, ३९१
'अध्ययन करना क्या खतरनाक है? २७
'पाठ्यक्रम एक वर्षमें समाप्त करना ९९-१००
'पढ़ानेके बारेमें श्रीमाताजीकी धारणा १००-१
-की वर्तमान पद्धति १००
'किताबें पढ़नेकी जगह पृथ्वीकी स्मृतिको पढ़नेका ही प्रयत्न क्यों नहीं करते? २६५-६८
सामान्य विद्यालयोंकी २७६
आश्रम-विद्यालयमें, का आदर्श स्थापित करनेमें कठिनाई ३९५-९६
(दे० 'अध्यापक', 'कक्षा', 'सीखना', 'स्मरणशक्ति' भी)
शुद्धि
-के बहाने मूर्खताभरी चीजें २०४
-का प्रभावशाली क्रम २०४-५
शेक्सपियर ३२
श्रद्धा [विश्वास]
-का फल २२५, ३५४, ३७८
अटल, भागवत इच्छाकी उपस्थिति-का चिह्न," क्रियाशील श्रद्धा और महान् विश्वास क्या एक ही नहीं? २८२-८४
करनेके लिये भगवान्‌को चुनौती देना ३५४
हो तो क्या सहायता अपने-आप आती है? ३५४अ
कि अभीप्साकी सुनायी होगी, कि ऐसी कोई अभीप्सा नहीं जिसका उत्तर नहीं मिलता ३७८
(दे० 'संदेह', 'भगवान्', 'भय', 'भागवत कृपा', 'शरीर', 'संकल्प', 'साधु' भी)
श्रीअरविंद
पूर्व जीवन सुनानेवालोंके बारेमें ३२
-की टिप्पणी, बुद्धके समाधानपर १३९-४०
-की बातचीत, एक फरासीसी वैज्ञानिक शिष्यसे ६२-३
-की बात मान ली जाती तो पाकिस्तान न बनता १८१
कुछ नयी बात कहने आये थे २७०
पूर्णयोगके बारेमें २७०
-का प्रयास २७१
-से मिलने आये कुछ आत्म-संतुष्ट लोग ३२२
-का चित्र, डच चित्रकारद्वारा ३५१
श्रीमाताजी
-को स्वप्नमें चेहरेपर मार २४
'किसी धर्मको माननेवाला यदि मेरे सामने हो २९
'तुम मुझसे पूछ सकते हो मैं आज चौदह वर्षका क्यों हूं? ३७
-का अनुभव ध्यानसे अगतिके बारेमें ४०-१

'मैं ऐसे एकके बदले वैसे बारह संन्यासी लेना पसंद न करूं ४१
'मैंने तो बच्चोंकी बकबकसे भी सीखा है ४६
-को यूनानी संस्कृतिका प्रबोध, सुंदर चालवाली एक स्त्रीसे ४६
-को जिस तरहका संगीत पसंद है ७३
-का अनुभव प्राणिक सत्ताओंको बदलनेके बारेमें ९२
'मेरे पास समय होता तो मैं एक कक्षा लेती १०१
'मैं मृत्युकी आत्माओंसे मिली हूं १२९
'मैंने आगकी आत्मा देखी है १३०
'पांच वर्षकी अवस्थामें ही : मुझे दासता असह्य . . १३२; मैंने शुरू किया था १३२, १८९; मैंने पिताजीसे कहा, मैं सरकस देखनेसे ज्यादा मजेदार काम कर रही हूं १९७; तब सिनेमा न था . . १९२अ
'मुझे वह अवसर प्राप्त न था जो तुम्हें प्राप्त है; मुझे अपने-आप ही . . १३२
'"अगर आप धरतीपर भगवान्का प्रतिनिधित्व कर रही हैं तो हमें आपको कुछ भी देनेकी जरूरत नहीं" १५३
'जब मैं पांच वर्षकी थी, तो सोचा करती थी कि ऐसे भगवान् सत्य नहीं हैं १५४
'पांच वर्षमें मैं तुम्हें आध्यात्मिक जीवनका अध्ययन . . १५६
'मैंने इस देशमें ग्रामीणोंको ऐसा पानी पीते देखा है . . १६२
'हम चाहते हैं कि शरीर भी योगमें भाग ले १६३
'मेरी साड़ी खींचकर दूधमें उफानको बतानेवाली छोटी सत्ताएं १७२
-द्वारा जापानमें भयंकर महामारी फैलानेवाली सत्ताओंका सामना १७३-७६
'मैं चीजोंको प्रकट करनेके लिये सभी शब्द एक साथ नहीं बोल सकती १८०, १८६
'भारत स्वतंत्र है, यह मैंने १९२० में देखा था, श्रीअरविंदके साथ ध्यानमें १८१
'आप किसी आनेवाली विपत्तिको बदल सकती हैं ? १८१-८५
'पैरिसमें एक स्वीडन महिलाने हमारे आगे ज्ञान-प्रणालीकी व्याख्या की २१०
'मेरे पास एक बिल्ली थी : जो मनुष्य बनना चाहती थी २१९; पहली बार जब उसने बच्चे दिये २३३-३४
-की अनुभूति, ज्योतिर्मय पृथ्वीकी २६४
'मैं अपने कामके लिये किसी ऐसेको ज्यादा पसंद करूंगी जो कम जानता है, पर अभीप्सा . . २७२
'आश्रममें बच्चोंको लेनेका मुझे पछतावा नहीं २७३
-ने रामायण जिनसे सुनी थी ३१३-१४

-द्वारा १९१२ में देखा गया लक्ष्य ३३५-३९
'उस समय मैं श्रीअरविंदको न जानती थी ३३६
'मुझे मालूम न था कि यह काम श्रीअरविंद करेंगे ३३८
'मैं पहली बार श्रीअरविंदसे १९१४ में मिली थी ३३८
'आश्रमकी स्थापना आपने किस जगह करनेका निश्चय किया था ? ३३९
'मैंने बांसके अंकुर खाये हैं ३४९अ
'मुझे कृतज्ञताकी चिट्ठियां बचा लिये जानेके बारेमें, पर कोई विरला ही . . ३८७
'मेरे भाई और विमानचालककी मिश्रित नियति . . ३८८-८९
श्री रामकृष्ण परमहंस २१५

स

संकल्प २३
कि भगवान्‌का ही होना है ५
और प्रयासमें फर्क ४३-४
और नम्रता चाहिये कर्म-फलको बदलनेके लिये ८७
चाहिये, रूपकी पूर्णताके लिये १०८
सबसे महत्त्वपूर्ण, क्रियाके दृष्टि-बिंदुसे १२२
और विश्वास चरितार्थताका, और आत्म-संतोष ३२१
(दे० 'एकाग्रता' भी)
संगीत
-के बाहरी रूपके "पीछे" क्या है ? ६४-५
-की प्रेरणा और अभिव्यक्ति ६४-५, ७० (दे० 'प्रेरणा' भी)
यांत्रिक ६४, ६५
साधारणतः किस स्तरसे आता है ? ७०
उच्चतर प्राण, चैत्य व आध्यात्मिक स्रोतवाला ७०
होटलों व सिनेमाका ७१
यूरोपीय और भारतीय ७२
संगीतकारोंके पास किस रूपमें आता है ? ७३
भारतमें ७३
और लय ७३
'वृंदवाद्यकरण २५०
आध्यात्मिक कला है, पर वह असली भावसे भटक . . ३२२
'सांगीतीय गानका उपयोग ३२२
(दे० 'प्राण', 'श्रीमाताजी' भी)
संतुलन
बाहरी संसारमें, का आधार" : मतलब २१
मानसिक २२
ही, इस समय, सच्ची चीज ३४१
(दे० 'रोग' भी)
संदेश
२१ फरवरी, १९५३ का ३६० टि०
जो आप हर साल पहली जनवरी को देती हैं, क्या बताता है ? ३९८-९९
नव-वर्ष, १९५४ का ३९८ टि०
संदेह १४९, १५८, ३९१, ३९५, ३७८
संन्यासी [वैरागी] ४१, ११०, १५६ टि०, २२१

संभव
सब कुछ है ८२, ८३
'असंभव कुछ भी नहीं यदि आदमी ..३२१
(दे० 'प्रकृति' भी)
संयोग २६०, ३५६, ३५७
संवेदनशीलता १७०
संस्कृति
एकके बाद दूसरी आती, पर.. १४
सचेतनता दे० 'जागरूकता'
सच्चाई [सिध्कपटता] २१६
-का सवाल योगमें ४-७
सबसे कठिन, सबसे प्रभावशाली भी ५
-के साथ विजय निश्चित ५-६
-को तीव्रतर बनानेमें ऐसा एक भी दिन, घंटा, क्षण ..५
मैं किसे कहती हूं ५-६
सच्चे न होनेका दंड २०
-की जरूरत : भूलको पहचाननेमें ५७-१; विरोधी शक्तियोंका सामना करने व उनकी चतुराई-को पहचाननेमें ९३, १४९, २२५; कामना-जयमें २०५
(दे० 'चैत्य चेतना' भी)
-पर परदा डालनेवाली चीज ५१
और अभीप्साको देखती है दिव्य शक्ति २८८ब, ३३३
-का अकुमार भी काफी है, पुकारमें ३५५
(दे० 'धोखा', 'सौदेबाजी', 'दुःख'-कष्ट', 'समय' भी)
सत्ता
-के नगण्य भाग कौन-से हैं? १
-ओंके बड़े परिवार २
-में समरूपता जरूरी : व्याख्या ८-९
-के विभिन्न भागोंकी उपरातली ८-९
-एं, जो प्रकाश लायीं १३
-को भागवत केंद्रके चारों ओर एकत्र करनेकी आवश्यकता ३१अ, १२७, १२८, १३१
-का कोई भाग जैसे ही अपने क्षेत्र-से बाहर .. वह विकृत और भ्रष्ट .. ९४-५
-के हर भागकी सच्ची और गलत क्रिया ९४; सच्ची क्रिया दोहरी १०५
-में पराजयवादी १३०अ, २२५
-एं जिनके लिये हम चींटियोंके समान हैं १३०अ, २५७, ३६६
-एं विकसनशील और अंतर्लयात्मक : मतलब ३०९
-एं चार, पहली निःसृत, अपने विरोधोंमें बदल गयीं ३५५-५६; यह बदलना क्या संयोग था? ३५६-५७; इन निःसृत अंशों-की चेतना प्रभुकी चेतनासे भिन्न कैसे संभव? ३६३-६५
(दे० 'प्राणिक सत्ता' भी)
सत्य
साधारण चेतनाके लिये २६, २६०
-को अगर हमें वस्तुओंमें पा लें तो क्या : हमने भगवान्‌को पा लिया? ३७
-को खोज लेनेपर तुम विश्वके क्यों, कैसे और उसे बदलनेकी प्रक्रिया

सब कुछ जान जाते हो ३८
अपनी सत्ताका, क्या तुम जानते हो? ६६
कहनेके लिये सब कुछ एक साथ कहना चाहिये १८०, १८६
समन्वयकारी, पानेका तरीका २११
-के साथ मिथ्यात्वका मिश्रण जरूरी, मानवके लिये २३७
शाश्वत, उसे पानेके लिये ३३७
(दे० 'ज्ञान'; 'धर्म' भी)
सत्यवान् ३७३
सफलता ५१
बलवान्‌की १६, ८२, १३०
-के पीछे 'घटिया अभिनय' २५६
सभ्यता २८२
-एं लुप्त हो जाती हैं और फिर अंधकार, अचेतनाका काल.. २३७
'क्या फिरसे पतन होगा? २३८
समझना
चीजोंको २६, ३९०
एक-दूसरेको ६८-९, २८५-८७
भागवत उपस्थितिकी व्याख्याको ७४
रटना नहीं ९९, १२०
(दे० 'घटना', 'तादात्म्य' भी)
समता [अचंचलता]
अंतरात्माकी, और शरीरकी २१अ
दोनों अवस्थाओंमें ४९-५०, १५७ टि०
-की मुस्कान महामूर्खतापूर्ण चीजों-पर भी ६०-१
योगका अनिवार्य आधार १४८
स्थापित करनेवाली निष्ठा ३७८
(दे० 'कामना', 'मुस्कराना' भी)
समय
लगता है : सत्तामें समरूपता स्थापित करनेमें ९; परम निष्कपटता प्राप्त करनेमें ५१; अचेतन प्रगति व प्रकृतिकी प्रक्रियामें ५८, ५९, ३२७, ३४३; कामना-जयमें २०५; चैत्यपुरुषको अपने व्यामोहमेंसे जगनेमें २०७अ, ३९३
लाभ करना चाहो तो एकाग्र होना सीखो ११८
-की बचत योगसे २५३ टि०
(दे० 'प्रतीक्षा' भी)
समर्पण [आत्मदान]
ही मानव सेवाका समाधान ११, १३
करो तो प्रयास छोड़ दो; पर संकल्पके कार्य नहीं: व्याख्या ४३-४
और आत्मनिवेदन : भेद ४९-५०
-के निश्चयको व्योरेमें कार्यान्वित करना होगा ४९, ७३अ
सच्चा, बहुत कठिन ५०
या पूजासे भी ऊंची अभेदकी एक अवस्था (रहस्यवादी) ५३-४; क्या यही आत्म-प्रगतिका अंत है? ५४; क्या यह शरीरके रूपांतरसे पहले भी.. ५४
करनेकी जगह अपनी धारणाएं भगवान्‌पर आरोपित करते हो १५१, २२७
और बलिदान ३३३अ
(दे० 'प्रेम', 'मनुष्य' भी)
समस्या दे० 'एकाग्रता'
समाज
आदर्श, की स्थापना करना ३३९

समाधान
प्रकृतिको बदलना संभव न माननेवालोंका ४०
बुद्धका १३९अ
(दे० 'चेतना', 'समर्पण' भी)
समाधि, संगीतसे ७२
सरकार २८७, २९३
(दे० 'जिम्मेदारी' भी)
सहज-बोध दे० 'पशु', 'शरीर'
सहायता
मानवजातिकी १०-९
करने योग्य होनेसे पहले १५-६, २९०
सद्भावनाके स्पंदनों, विचारोंद्वारा १८, १२६
सबसे अच्छी १९
'भला कर सकना कमरेमें बैठे-बिठाये १२६
-का आवाहन ३५०-५१, ३५५; समयपर ३८६
(दे० 'भागवत कृपा', 'श्रद्धा' भी)
साधु
जान-बूझकर गंदी स्थितिमें; पर बीमार नहीं, उनमें श्रद्धा . . १६२-६३
जिनकी एक भुजा या पैर तपस्याके कारण कड़ा . . १६३
नहीं, हमें योगी होना है १६३
सापेक्षता
-का सिद्धांत क्या है? २६८
सावित्री ३७३
क्या पहलेसे जानती थी कि वह क्या करनेवाली है ? ३७२
साहस ८९, १११, १९३
(दे० 'वीर' भी)
सिद्धांत
विज्ञानके ६२
मानसिक ८३, १४६, २०३
सीखना
अगर तुम चाहो तो हर क्षण . . २६अ, ४६
थोड़ा-सा, बहुत बुरा २८
क्या तुम नहीं चाहते ? ९८-९
सीजर ३२
सीजर फ्रेंक ७१, २४९
सीता ३१०, ३१३
सुझाव (जातीय, सामूहिक)
-ोंको मनुष्य शरीर ग्रहण करनेके साथ स्वीकार कर लेता है २९८-३००
-ोंसे मुक्ति पानेके लिये २९९, ३१५
मानसिक ३००
सुरक्षा दे० 'भागवत संरक्षण'
सूर्य २१८
-की अग्नि ६२-३ टि०
सोचना
'जब तुम किसीके बारेमें सोचते हो तो तुम्हारा विचार . . १३२
'हम हमेशा उन चीजोंसे घिरे रहते हैं जिनके बारेमें हम सोचते हैं ३६५, ३६९-७०
(दे० 'मन', 'बुद्धि', 'विचार', 'रोग' भी)
सौंदर्य ९३
अंततक बनाये रखना १०७-८
-का निष्काम, सहज खिलाव २३१
-को देखने व पहचाननेके लिये वैश्व चेतना चाहिये ३१४-१५

सौदेबाजी, हिसाब-किताब १९, २३१
भगवान्‌के साथ २२७, २२८, ३३४, ३५४
स्टालिन ३६०,३६१
स्पंदन २३, २८७
जीते रहते हैं (बुद्ध) १८
चैत्य सत्ताके २०७, २४१
-ोंको देखता है अतिमन २८८
-ोंकी अमुक संख्या तुम्हारे अधिकारमें है २८९
एक ही, आनंद ला सकता है या निराशा ३६८
(दे० 'छूत', 'परदा', 'विचार', 'सहायता' भी)
स्मरण-शक्ति
-को कैसे बढ़ाया जा सकता है ? २५७, २७७
स्मृति १६
पूर्वजन्मोंकी ३१-२
और याद रखना क्या एक ही चीज है ? २७६-७७
(दे० 'चैत्य स्मृति', 'मन', 'शिक्षा' भी)
स्यूली प्रूद्दोम (फ्रेंच कवि) ३८३
स्वतंत्रता [स्वाधीनता] १८१
और नियतिवाद ८०-७, १८०-८१
निर्बाध, का लोक ८१, ८३
-का संवेद, चुनावका संकल्प और चुनाव प्रकृति-आरोपित तीन भ्रम ८४-५
-का अर्थ है, चुनावकी छूट ८४
'मुक्त, स्वतंत्र सत्ता १५७, २०४
स्वतः लेखन ३२-३
स्वप्न
और नींदके बारेमें २२-३; यदि सचेतन हो तो आनेवाली घटना . . १८३
-ोंकी दिशा बदलना २३-४
-ोंसे सचेतन होनेका महत्त्व २४
-में यदि कोई मार डाले २४
-ोंके प्रतीक बदलते क्यों रहते हैं ? २५
-बिंबोंकी, हर व्यक्तिके, अपनी ही दुनिया २६
हम भूल क्यों जाते हैं ? ३३-६
मानसिक, प्राणिक, सूक्ष्म भौतिक ३४-६
याद करनेके लिये ३४-६
कोई दो, एक जैसे क्यों नहीं ? ३६
(दे० 'निद्रा' ; 'श्रीमाताजी' भी)
स्वर्ग
नरक और शोधन-स्थानका विचार १२३-२५
-का काव्यात्मक अर्थ १२४, १२७

ह

हनुमान ३०९
हस्तक्षेप
होनेवाली घटनामें १८३
रोगीको अच्छा करनेके लिये १८३
(दे० 'घटना', 'मनुष्य' भी)
हिटलर ३६०, ३६१-६२
हृदय
'अंदर गहरे पैठना होगा १, ११, १५, ८९, ९६-७
-में अंदर घुसो और चाबी खोज लो ३८

सूची

१८ मार्च	१९५३	१
२५ मार्च	१९५३	४
१ अप्रैल	१९५३	७
८ अप्रैल	१९५३	१०
१५ अप्रैल	१९५३	२०
२२ अप्रैल	१९५३	२२
२९ अप्रैल	१९५३	२३
६ मई	१९५३	२९
१३ मई	१९५३	३८
२० मई	१९५३	४८
२७ मई	१९५३	६३
३ जून	१९५३	८०
१० जून	१९५३	८७
१७ जून	१९५३	१०१
२४ जून	१९५३	१०९
१ जुलाई	१९५३	१२२
८ जुलाई	१९५३	१३२
१५ जुलाई	१९५३	१४६
२२ जुलाई	१९५३	१५७
२९ जुलाई	१९५३	१८०
५ अगस्त	१९५३	१९५
१२ अगस्त	१९५३	२०९
१९ अगस्त	१९५३	२१८
२६ अगस्त	१९५३	२२५
२ सितंबर	१९५३	२३४
९ सितंबर	१९५३	२४०
१६ सितंबर	१९५३	२४७
२३ सितंबर	१९५३	२५९
३० सितंबर	१९५३	२६४
७ अक्तूबर	१९५३	२७८
१४ अक्तूबर	१९५३	२९३
२१ अक्तूबर	१९५३	३०५
२८ अक्तूबर	१९५३	३१५
४ नवंबर	१९५३	३२८
११ नवंबर	१९५३	३३५
१८ नवंबर	१९५३	३४२
२५ नवंबर	१९५३	३५३
९ दिसंबर	१९५३	३६५
१६ दिसंबर	१९५३	३७३
२३ दिसंबर	१९५३	३७९
३० दिसंबर	१९५३	३९०
अनुक्रमणिका		४०१

सूची (उद्धरण)

प्रश्न और उत्तर १९२९	१-३४८
शिक्षण पत्रिका	७७
चार तपस्याएं और चार मुक्तियां	२२६-२३२
श्रीअरविंदके पैत्र, सेंटिनरी वाल्यूम २४	२६३ टि०
Quelques Paroles Quelques Prières	३३५-३३९
मातृवाणी	३४२-३६७
सावित्री	३७२
शिक्षा : जीवन-विज्ञान	३७७-३९४